Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत प्रवचन

भाग-१

('बहिनश्रीके वचनामृत' पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके प्रवचन)

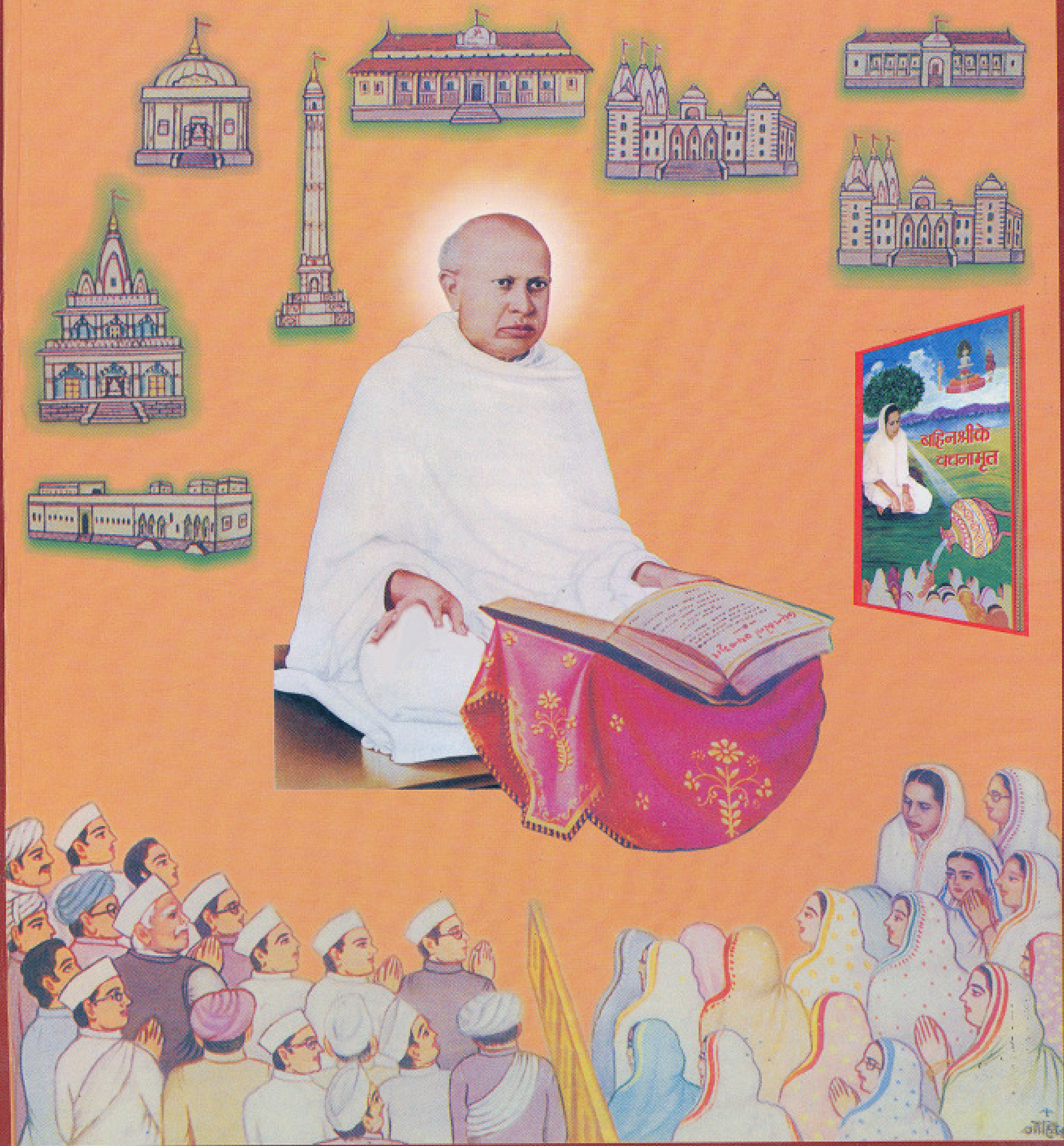

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

❀ भगवान श्री कुन्दकुन्द-कहान जैन शास्त्रमाला, पुष्प-१९० ❀

ॐ

परमात्मने नमः।

श्री

वचनामृत-प्रवचन

[प्रथम भाग]

पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके वचनामृत
पर
परमपूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामीके प्रवचन

卐

अनुवादक :
श्री मगनलाल जैन

卐

प्रकाशक :
श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ-364250 (सौराष्ट्र)

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रथमावृत्ति : 2000 प्रति वि.सं. 2053 ई.स. 1996
द्वितीयावृत्ति : 1200 प्रति वि.सं. 2063 ई.स. 2007

मूल्य : रु. 30=00

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Thanks & Our Request

This shastra has been donated by Nisha Kapashi, New York, USA who has paid for it to be "electronised" and made available on the internet.

Our request to you:

1) Great care has been taken to ensure this electronic version of VachanAmrut Pravachan Part 1 (Hindi) is a faithful copy of the paper version. However if you find any errors please inform us on rajesh@AtmaDharma.com so that we can make this beautiful work even more accurate.

2) Keep checking the version number of the on-line shastra so that if corrections have been made you can replace your copy with the corrected one.

Version History

Version Number	Date	Changes
001	23 May 2010	First electronic version

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबेन

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

• પરમોપકારી પૂજ્ય ગુરુદેવ શ્રી કાનજી સ્વામી •

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रकाशकीय निवेदन

भारतवर्षमें धर्मजिज्ञासु जीवोंके महान भाग्योदयसे इस शताब्दिमें अध्यात्ममूर्ति आत्मज्ञसंत सत्पुरुष परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीका महान उदय हुआ। उनकी प्रबल वाणीके पुनितयोगसे प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबहिनने १८ सालकी लघुवयमें अतीन्द्रिय आनंदरसप्लावित स्वात्मानुभूति-समन्वित सम्यक्दर्शनको प्राप्त कर लिया।

पूज्य बहिनश्रीने ब्र. बहिनोंके आश्रममें रात्रि स्वाध्यायमें किये हुए प्रवचनोंमेंसे, आत्मार्थी ब्र. बहिनों द्वारा लिखी गयी नोंधमेंसे ''बहिनश्रीके वचनामृत'' ग्रंथ प्रकाशित किया गया। यह ग्रंथ पूज्य गुरुदेवश्रीको बहुत पसंद आया। उन्होंने ''यह पुस्तक द्वादशांगका सार है'' ऐसा कहकर वचनामृतकी बहुत महिमा बतायी। इसका अभ्यास करनेका अनुरोध किया तथा मुमुक्षुओंके भक्तिभीगे अनुग्रहसे ''बहिनश्रीके वचनामृत'' ग्रंथ पर पूज्य गुरुदेवश्रीने अनुभवरसझरते प्रवचन किये।

इन प्रवचनोंको पूज्य गुरुदेवश्रीके अंतेवासी ब्र. श्री चंदुभाईने गुर्जर भाषामें लिपिबद्ध किये तथा चार भागोंमें इन्हें प्रकाशित किया गया। इन प्रवचनोंसे मुमुक्षु समाज अत्यंत लाभान्वित हुआ। इन प्रवचनोंकी हिन्दीभाषी मुमुक्षु समाजकी ओरसे भी बहुत मांग होनेसे श्री मगनलालजी जैन द्वारा इनका अनुवाद कराके यह सभी प्रवचन हिन्दीमें प्रकाशित किये जा रहे हैं। आशा है कि इस ग्रंथके स्वाध्याय द्वारा मुमुक्षुजन निज आत्मसाधनामें प्रवृत्त होंगे।

इस ग्रंथके प्रकाशनमें ब्र. श्री चंदुभाईने अति परिश्रमपूर्वक तथा अति उल्लसितभावसे जो सहयोग दिया है इस हेतु हम उनके अत्यन्त उपकृत है। इस ग्रंथका सुन्दर मुद्रण-कार्य शीघ्रतासे करनेके लिये कहान मुद्रणालय, सोनगढके भी हम अत्यंत आभारी हैं।

वैशाख शुक्ला दूज, सं २०६३
(पूज्य गुरुदेवश्रीकी ११८वीं जन्मजयंती)

साहित्यप्रकाशनसमिति
श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ–३६४२५० (सौराष्ट्र)

ॐ

नमः श्रीसद्‌गुरुदेवाय।

प्रस्तावना

भारतवर्षकी भव्य वसुंधरा संतरत्नोंकी पुण्य जन्मस्थली है। पवित्र आर्यभूमिमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव आदि शलाका पुरुष उत्पन्न होते हैं। उसमें सौराष्ट्रका भी प्रमुख स्थान है। बाईसवें तीर्थंकरदेव श्री नेमिनाथ भगवानके समुद्‌भवसे सौराष्ट्रकी भूमि पावन हुई है। अर्वाचीन युगमें भी अध्यात्मप्रधान जैनाकाशमें चमकते हुए नक्षत्रोंके समान समीपसमयज्ञ श्रीमद् राजचन्द्र, अध्यात्मयुगस्रष्टा आत्मज्ञ संत पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं स्वानुभवविभूषित पवित्रात्मा बहिनश्री चम्पाबहिन जैसे असाधारण स्वानुभूति धर्मप्रकाशक साधक महात्माओंकी जगतको भेट देकर सौराष्ट्रकी वसुंधरा पुण्यभूमि बनी है।

परम देवाधिदेव सर्वज्ञ वीतराग चरमतीर्थंकर परम पूज्य श्री महावीरस्वामीकी दिव्यध्वनि द्वारा पुनः प्रवाहित एवं गुरुपरम्परा द्वारा सम्प्राप्त जिस परमपावन अध्यात्मप्रवाहको भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने समयसार आदि प्राभृत-भाजनोंमें सूत्रबद्ध करके चिरंजीव किया है उस पुनीत प्रवाहके अमृतका पान करके, अंतरके पुरुषार्थ द्वारा स्वानुभूतिसमृद्ध आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करके जिन्होंने सौराष्ट्र—गुजरातमें, समग्र भारतवर्षमें तथा विदेशमें भी शुद्धात्मतत्त्वप्रमुख अध्यात्मविद्याका पवित्र आन्दोलन प्रसारित कर बीसवीं—इक्कीसवीं सदीके विषमय भौतिकयुगनें दुःखार्त जीवोंका उद्धार किया है उन जिनशासनप्रभावक परमोपकारी परम पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीकी शुद्धात्मसुधारसस्यंदी मंगलमय पवित्रता, पुरुषार्थ-धड़कता ध्येयनिष्ठ सहज वैराग्यझरता जीवन, स्वानुभूतिमूलक वीतरागमार्गदर्शक सदुपदेश एवं अन्य अनेकानेक उपकारोंका वर्णन चाहे जितने संक्षिप्त रूपमें किया जाय तथापि अनेक पृष्ठ भर जायँगे इसलिये पूज्य गुरुदेवका संक्षिप्त जीवनवृत्त तथा उपकार-गुणकीर्तन इस वचनामृत-प्रवचन ग्रन्थमें अन्यत्र दिया है।

'बहिनश्रीके वचनामृत' पुस्तकके प्रवचनकार परमोपकारी परमपूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी शुद्धात्मदृष्टिवंत, स्वरूपानुभवी, वीतराग देव-गुरुके परमभक्त, बालब्रह्मचारी, समयसार आदि अनेक गहन शास्त्रोंके पारगामी, स्वानुभवस्यंदी भावश्रुतलब्धिके धनी, सततज्ञानोपयोगी, वैराग्यमूर्ति, नयाधिराज शुद्धनयकी प्रमुखतासहित सम्यक् अनेकान्तरूप अध्यात्मतत्त्वके उत्तम व्याख्यानकार एवं आश्चर्यकारी प्रभावना उदयके धारक अध्यात्मयुगस्रष्टा महापुरुष हैं। उनके यह प्रवचन पढ़ते ही पाठकको उनका गाढ़ अध्यात्मप्रेम, शुद्धात्म-अनुभव, स्वरूपकी ओर ढलती हुई परिणति, वीतरागभक्तिके रंगमें रंगा हुआ चित्त, ज्ञायकदेवके तलका स्पर्श करनेवाला अगाध श्रुतज्ञान एवं प्रभावशाली परम कल्याणकारी वचनयोगका खयाल आ जाता है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पूज्य गुरुदेवने अध्यात्मनवनीत समान इस 'वचनामृत'के प्रत्येक बोलको हर ओरसे छनकर उन संक्षिप्त सूत्रवाक्योंके विराट अर्थोंको इन प्रवचनोंमें खोला है। सबके अनुभवमें आये हों ऐसे घरेलू प्रसंगोंके अनेकों उदाहरणों द्वारा, अतिशय सचोट तथापि सुगम ऐसे अनेक न्यायों द्वारा तथा अनेक यथोचित दृष्टान्तों द्वारा पूज्य गुरुदेवने 'वचनामृत'के अर्थगम्भीर सूक्ष्मभावोंको अतिशय स्पष्ट एवं सरल बनाया है। जीवके कैसे भाव रहें तब जीव–पुद्‌गलका स्वतंत्र परिणमन समझमें आया कहा जाय, कैसे भाव रहें तब आत्माका यथार्थ स्वरूप समझमें आया माना जाय, भूतार्थ ज्ञायक निज ध्रुवतत्त्वका कैसा आश्रय हो तो द्रव्यदृष्टि परिणमी कही जाय, कैसे-कैसे भाव रहें तब स्वावलम्बी पुरुषार्थका आदर, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप-वीर्यादिककी प्राप्ति हुई कही जाय,—आदि मोक्षमार्गमें प्रयोजनभूत विषय मनुष्यके जीवनमें होनेवाली अनेक घटनाओंके सचोट उदाहरण देकर ऐसे स्पष्ट किये गये हैं कि आत्मार्थीको उस-उस विषयका स्पष्ट भावभासन होकर अपूर्व गंभीर अर्थ दृष्टिगोचर हों और वह, शुभभावरूप बंधमार्गमें मोक्षमार्गकी कल्पना छोड़कर, शुद्धभावरूप यथार्थ मोक्षमार्गको समझकर, सम्यक् पुरुषार्थमें लग जाय। इस प्रकार 'वचनामृत'के स्वानुभूतिदायक गंभीर भावोंको, आरपार उतर जाय ऐसी प्रभावकारी भाषामें तथा अतिशय मधुर, नित्य-नवीन वैविध्यपूर्ण शैलीसे अत्यन्त स्पष्टरूपसे समझाकर गुरुदेवने आत्मार्थी जगतपर असीम उपकार किया है। 'वचनामृत'की सादी भाषाके गर्भमें छिपे हुए अनमोल तत्त्वरत्नोंके मूल्य स्वानुभवविभूषित गुरुदेवने जगतविदित किये हैं।

यह परम पुनीत प्रवचन स्वानुभूतिके पंथको अत्यन्त स्पष्टरूपसे प्रकाशित करते हैं इतना ही नहीं, किन्तु साथ-साथ मुमुक्षुजीवोंके हृदयमें स्वानुभवकी रुचि एवं पुरुषार्थ जागृत करके, कुछ अशमें सत्पुरुषके प्रत्यक्ष उपदेश जैसा चमत्कारिक कार्य करते हैं। प्रवचनोंकी वाणी इतनी सहज, भावार्द्र, चेतनवंती और जोरदार है कि चैतन्यमूर्ति गुरुदेवके स्वानुभवस्यंदी चैतन्यभाव ही मानो मूर्तिमंत होकर वाणी-प्रवाहरूपसे बह रहे न हों! ऐसी अत्यंत भाववाहिनी—अंतर्वेदनको अति उग्ररूपसे व्यक्त करती, शुद्धात्मा—ज्ञायक—के प्रति अपार प्रेमसे छलकती, हृदयस्पर्शी जोरदार वाणी सुपात्र पाठकके हृदयको आन्दोलित कर देती है और उसकी विपरीत रुचिको क्षीण करके शुद्धात्मरुचिको जागृत करती है। प्रवचनोंके प्रत्येक पृष्ठमें शुद्धात्ममहिमाका अत्यंत भक्तिमय वातावरण गूँज रहा है और उसके प्रत्येक शब्दमेंसे मधुर अनुभवरस टपक रहा है। उस शुद्धात्मभक्तिरससे और अनुभवरससे मुमुक्षुका हृदय भीग जाता है, उसे शुद्धात्माकी लय लगती है, शुद्धात्माके सिवा सर्व भाव उसे तुच्छ भासते हैं और पुरुषार्थ 'चल पड़ूँ, चल पड़ूँ' होने लगता है। ऐसी अपूर्व चमत्कारिक शक्ति पुस्तकारूढ़ प्रवचनवाणीमें क्वचित् ही देखनेमें आती है।

इस प्रकार अध्यात्मतत्त्वविज्ञानके गहन रहस्य अमृत-झरती वाणीमें समझाकर और साथ-साथ शुद्धात्मरुचिको जागृत करके, पुरुषार्थको प्रेरणा देकर, प्रत्यक्ष सत्समागमकी झाँकी करानेवाले, ये प्रवचन जैनसाहित्यमें अद्वितीय हैं। प्रत्यक्ष सत्समागमके वियोगमें मुमुक्षुओंको ये प्रचवन अनन्य आधारभूत हैं। निरालम्बी पुरुषार्थ समझाना और प्रेरित करना वही उद्देश होनेके साथ 'वचनामृत'के सर्वांग स्पष्टीकरणस्वरूप इन प्रवचनोंमें समस्त शास्त्रोंके सर्व प्रयोजनभूत तत्त्वोंका तलस्पर्शी दर्शन आ गया है। श्रुतामृतका सुखसिन्धु मानों इन प्रवचनोंमें लहरा रहा है। यह प्रवचनग्रन्थ हजारों प्रश्नोंके निराकरणका महाकोष है, शुद्धात्मतत्त्वकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रुचि उत्पन्न करके परके ओरकी रुचि नष्ट करनेकी परम औषधि है, स्वानुभूतिका सुगम पंथ है और भिन्न भिन्न कोटिके सर्व आत्मार्थियोंको अत्यन्त उपकारक है। परम पूज्य गुरुदेवने इन अमृतसागर समान प्रवचनोंकी भेट देकर भारतवर्षके मुमुक्षुओंको निहाल कर दिया है।

स्वरूपसुधा प्राप्त करनेके इच्छुक जीवोंको इन परम पवित्र प्रवचनोंका बारम्बार मनन करने योग्य है। संसार-विषवृक्षको छेदनेका वह अमोघ शस्त्र है। डालियों-पत्तोंको पकड़े बिना वे मूलपर ही आघात करते हैं। इस अल्पायु मनुष्यभवमें जीवका सर्वप्रथम कर्त्तव्य एक निज शुद्धात्माका बहुमान, प्रतीति एवं अनुभव है। वे बहुमानादि करानेमें ये प्रवचन परम निमित्तभूत हैं। मुमुक्षु अतिशय उल्लासपूर्वक उनका अभ्यास करके, उग्र पुरुषार्थसे उनमें कहे हुए भावोंको सम्पूर्णतया हृदयमें उतार कर, शुद्धात्माकी रुचि, प्रतीति तथा अनुभव करके, शाश्वत परमानन्दको प्राप्त करो।

परमोपकारी परमकृपालु परम पूज्य गुरुदेवश्रीने जिनके 'वचनामृत' पर ये सुन्दर भाववाही प्रवचन दिये हैं उन प्रशममूर्ति स्वानुभूतिपरिणत पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके संक्षिप्त परिचयके साथ, पूज्य गुरुदेवश्रीके हृदयमें वर्तती–उनकी आध्यात्मिक पवित्रता, स्वानुभूति तथा लोकोत्तर प्रशान्त जीवन सम्बन्धी–विशिष्ट महिमाका और पूज्य बहिनश्रीकी स्वानुभवदशामेंसे प्रवाहित 'वचनामृत'के विषयमें पूज्यपाद गुरुदेवश्रीके उच्चारे हुए पवित्र उद्‌गारोंका, आत्मार्थी जीवोंके लाभ हेतु यहाँ संक्षेपमें उल्लेख किया जाता है।

जिनकी पवित्र परिणतिमेंसे भव्यजनकल्याणकारी 'वचनामृत'का पुनीत प्रवाह बहा है उन महान आत्माकी अंतरंग सहजदशाका–शुद्धज्ञायकभावसमर्पित सर्वस्व लोकोत्तर जीवनका क्या वर्णन हो सकता है? उन पवित्रात्मा पूज्य बहिनश्री–चम्पाबेनका जन्म वि. सं. १९७० भाद्रपद कृष्णा २, शुक्रवार, तदनुसार ता. ७-८-१९१४के शुभदिन वढवाण शहरमें हुआ था। पिताजीका नाम श्री जेठालाल मोतीचन्द शाह, माताजीका नाम तेजबा। श्री व्रजलालभाई तथा विद्वान श्री हिम्मतलालभाई–ये दो भाई दो बहिनें–इसप्रकार चार भाई-बहिनोंमें चम्पाबेन सबसे छोटीं। पूज्य चम्पाबेनका प्रतिभासम्पन्न व्यक्तित्व–अंतर तथा बाह्य–अति गम्भीर और महान है। बचपनसे ही वैराग्यप्रेम, कुशाग्रबुद्धि, चिन्तनशील स्वभाव तथा दृढ़ निर्णयशक्ति आदि अनेक गुण उनमें सहज उपलब्ध हैं।

वैराग्यभीना और सत्यशोधक उनका हृदय आत्माकी प्राप्तिके लिये तड़पता था। पूज्य गुरुदेवका सत्समागम हुआ, उनकी अध्यात्मामृतझरती अमोघ वज्रवाणीने बहिनश्रीका अंतरंग सत्त्व झलका दिया। निजशुद्धात्मदर्शन–सम्यक्त्व प्राप्त करनेकी आकांक्षा तीव्र बनी। उन्होंने सर्व शक्ति आत्मामें केन्द्रित करके दिन-रात दृष्टिकी निर्मलता तथा स्वात्मानुभूतिकी साक्षात् प्राप्तिके लिये अथक्, अविरत पुरुषार्थ किया, और अन्तमें तीव्र तड़पके परिणामस्वरूप मात्र अठारह वर्षकी छोटी उम्रमें ही वि. सं. १९८९, चैत्र कृष्णा दसवींके दिन वांकानेरमें अपना अप्रतिम पुरुषार्थ सफल किया–भवसंततिछेदक, कल्याणबीज सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, निज भगवान आत्माका अद्‌भुत साक्षात्कार हुआ और परिणतिमें अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दमय निर्मल निर्विकल्प स्वात्मानुभूतिका मंगलमय अमृतझरना बहने लगा। अहा! धन्य हैं वे महान आत्मा, धन्य है उनका ध्येयलक्षी अचल पुरुषार्थ और धन्य है उनका अवतार कि जिसमें उन्होंने अवतारसंततिके छेदनका महान कार्य किया!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दिन-प्रतिदिन उस अमृतझरनेकी—सुधासिक्त आत्मसाधनाकी परिणति वृद्धिंगत होने लगी, और साथ ही साथ सोनगढ़में वि. सं. १९९३, वैशाख कृष्णा अष्टमीके दिन ज्ञानपरिणतिमें जातिस्मरण ज्ञानकी सातिशय निर्मलता भी प्रगट हुई। पूज्य गुरुदेवको स्वयंको कुछ बातोंका—अमुक प्रकारके बहुमूल्य वस्त्र पहिने हुए ऊँची देहवाले राजकुमार, तीर्थंकरत्व इत्यादिका—जो 'भास' होता था उनका स्पष्ट सत्य निराकरण पूज्य बहिनश्रीके स्मरणज्ञानने कर दिया। पूज्य गुरुदेवके भूत, वर्तमान और भावी भवोंका आश्चर्यकारी अनुसंधान—गतभवमें श्रेष्ठीपुत्ररूपमें श्री सीमंधर भगवानकी सभामें प्रत्यक्ष श्रवण किया था वह—उनके स्मरणज्ञानने दिया। उस पवित्र अनुसंधानज्ञान द्वारा मुमुक्षु समाज पर विशिष्ट उपकार हुआ है।

परम पूज्य अध्यात्मयुगस्रष्टा करुणासागर गुरुदेवश्री कानजीस्वामीका समस्त मुमुक्षु जगत पर अनंत-अनंत उपकार है। उनके विविध उपकारोंमेंसे एक महान उपकार यह है कि उन्होंने जिनके 'वचनामृत' पर स्वयं भावविभोर होकर यह अद्भुत प्रवचन दिये हैं उन प्रशममूर्ति धन्यावतार भगवती माता पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनकी पवित्र अलौकिक अंतरंगदशाकी यथार्थ पहिचान करायी है।

सुधास्यंदी-स्वात्मानुभूतिपरिणत, विशिष्टज्ञानविभूषित पूज्य बहिनश्रीकी सहज प्रशमरसझरती पवित्र मुद्रा ही मानों, साधकका मूर्त रूप हो तदनुसार सम्यक् मोक्षमार्गका मूल उपदेश दे रही है। शास्त्रोपम-गम्भीर तथापि सरल ऐसे उनके 'वचनामृत' विविध कोटिके सर्व जीवोंको अति उपकारक होते हैं, चमत्कारिक विशदतासे वस्तुस्वरूपको—शुद्धात्मद्रव्यसामान्यकी मुख्यतापूर्वक अनेकान्त सुसंगत द्रव्य–पर्यायस्वरूप निज आत्मतत्त्वको—हस्तामलकवत् दर्शाते हैं और साधक जीवोंकी अटपटी अंतर परिणतिकी अविरुद्धरूपसे स्पष्ट सूझ देते हैं। कृपासागर पूज्य गुरुदेवश्री बहिनश्रीकी पवित्र दशाकी और 'वचनामृत'की महिमा बतलाते हुए सभामें अनेकबार अति प्रसन्नताका अनुभव करते थे। पूज्य बहिनश्रीकी स्वानुभूतिविभूषित पवित्रता, अनेक भव सम्बन्धी धर्मविषयक असाधारण जातिस्मरणज्ञान और 'वचनामृत'की विशिष्टताका मुक्तकण्ठसे प्रकाश करते हुए गुरुदेवकी प्रसन्न मुद्रा हजारों श्रोताओंकी दृष्टि समक्ष आज भी स्पष्ट तैरती है।

प्रशममूर्ति, धन्यावतार, गुणगम्भीर, उदारचित्त तथा देव–गुरुकी परमभक्त पूज्य बहिनश्री अंतरमें अतिमहान और बाह्यमें अति निर्लेप हैं। उनका आत्मलक्षी अंतरंग जीवन और उनकी निर्विकल्प आनन्दमय अद्भुतदशा वर्णनातीत है। उनके विशुद्ध गहन व्यक्तित्व पर, उनकी दशाके पारखी पूज्य गुरुदेवने उन्हें 'भगवती' एवं 'जगदम्बा'के असाधारण विशेषण दिये हैं वह उनकी सहज अंतरंगदशाके तथा उनकी महानताके यथार्थ द्योतक हैं। हमेशा तोल-तोलकर वचन उच्चारनेवाले, तीक्ष्णदृष्टिवंत, गहन विचारक, स्वरूपानुभवी परम पूज्य गुरुदेवश्री अन्य किसी भी व्यक्तिको जिन विशेषणोंसे कभी विशेषित नहीं करते थे, ऐसे उपरोक्त दो महिमापूर्ण विशेषणोंसे पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिनको अनेकबार प्रसन्नतापूर्वक बिरदाते थे, वही वास्तविकता पूज्य बहिनश्रीकी अद्भुत महत्ता अपने हृदयमें दृढ़रूपसे स्थापित करनेके लिये पर्याप्त है। इन विशेषणों द्वारा पूज्य गुरुदेवने संक्षेपसे उनके प्रति अहोभाव व्यक्त करता हुआ अपना हार्द प्रगट किया है। अहा! गुरुदेवके हार्दको तथा उन विशेषणोंकी मर्मभरी गहराईको हम गम्भीरतासे समझें, गुरुदेवके दिये हुए अध्यात्मबोधको जीवनमें बुन लेनेवाली इन 'भगवती माता'की

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

आत्मसाधनाके आदर्शको दृष्टि समक्ष रखें और उनके जीवनमेंसे प्राप्त होनेवाली प्रेरणा द्वारा हम अपने आत्मार्थको साधें।

सचमुच 'भगवती माता' पूज्य बहिनश्री मात्र भारतवर्षकी ही नहीं, अपितु दृष्टिगम्य जगतकी अद्वितीय महिलारत्न हैं, मुमुक्षुसमाजकी शिरोमणि हैं, मुमुक्षुमहिला-समाजकी सिरछत्र हैं, कुमारिका ब्रह्मचारिणी बहिनोंकी जीवनाधार हैं और आत्मार्थियोंकी महान आदर्श हैं।

स्वानुभूतिविभूषित पूज बहिनश्रीके असाधारण गुणगंभीर व्यक्तित्वका परिचय देते हुए पूज्य गुरुदेव स्वयं प्रसन्न हृदयसे सभामें अनेकबार प्रकाशित करते कि :—

"बहिनोंके महान भाग्य हैं कि चम्पाबेन जैसी 'धर्मरत्न' इस कालमें पैदा हुई हैं। बहिन तो भारतका अनमोल रतन हैं। अतीन्द्रिय आनन्दका नाथ उनको अंतरसे जागृत हुआ है। उनकी अंतरंग स्थिति कोई और ही है। उनकी सुदृढ़ निर्मल आत्मदृष्टि तथा निर्विकल्प स्वानुभूतिका जोड़ इस कालमें मिलना दुर्लभ है...असंख्य अरब वर्षका उन्हें जातिस्मरण ज्ञान है। बहिन जब ध्यानमें बैठती हैं तब कई बार तो अंतरमें भूल जाती हैं कि 'मैं महाविदेहमें हूँ या भरतमें' !!....बहिन तो अपने अंतरमें—आत्माके कार्यमें—ऐसी लीन हैं कि उन्हें बाहरकी कुछ पड़ी ही नहीं है। प्रवृत्तिका उन्हें किंचित् भी रस नहीं है। उनकी बाह्यमें प्रसिद्धि हो यह उन्हें स्वयंको बिलकुल अच्छा नहीं लगता। परन्तु हमें ऐसा भाव आता है कि बहिन कई वर्षतक छिपी रहीं, अब लोग बहिनको पहिचानें।"

—ऐसे वात्सल्योर्मिभरे भावोद्गारभरी पूज्य गुरुदेवकी मंगल वाणीमें जिनकी आध्यात्मिक पवित्र महिमा सभामें अनेकबार प्रसिद्ध हुई है उन पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके, उन्होंने महिला—शास्त्रसभामें तथा ब्रह्मचारिणी बहिनोंके समक्ष चर्चामें उच्चारे हुए—उनकी स्वानुभवस्यंदी ज्ञानधारामेंसे प्रवाहित—आत्मार्थ-पोषक वचनामृत लिपिबद्ध हों तो अनेक मुमुक्ष जीवोंको महान आत्मलाभका कारण होगा, ऐसी बहुत समयसे समाजके अनेक भाई-बहिनोंको उत्कट भावना वर्तती थी! उस शुभभावनाको साकार करनेमें, कुछ ब्रह्मचारिणी बहिनोंने पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिनकी प्रवचनधारा तथा चर्चामेंसे अपनेको विशेष लाभ हो ऐसे वचनामृत लिख लिये थे, उनमेंसे विशिष्ट बोल चुनकर एक संग्रह तैयार किया गया, जो 'बहिनश्रीके वचनामृत' नामक पुस्तकरूपमें श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट—सोनगढ़की ओरसे वि. सं. २०३३में पूज्य बहिनश्रीकी ६४वीं जन्मजयन्ती-उत्सवके मंगल-अवसर पर प्रकाशित किया गया।

इस 'वचनामृत' पुस्तकका गहन अध्ययन करके, जिस प्रकार कुशल जौहरी रत्नको परख लेता है उसीप्रकार उसमें भरे हुए गंभीर भावोंको पूज्य गुरुदेवने तुरन्त परख लिया और श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़के अध्यक्ष श्री रामजीभाई माणेकचन्द दोशीसे कहा—"भाई! इस पुस्तककी लाख प्रतियाँ छपाओ।' (अभी तक—पाँच वर्षके अल्प समयमें ८६००० प्रतियाँ गुजराती, हिन्दी, मराठी तथा कन्नड़—इसप्रकार भिन्न-भिन्न भाषाओंमें प्रकाशित हो चुकी हैं।) अध्यात्मतत्त्व समझनेके लिये यह पुस्तक ध्यानपूर्वक पढ़नेको पूज्य गुरुदेव विशेषरूपसे कहते और नवागंतुकको प्रसन्नतासे भेट देते थे।

इस आत्मार्थिप्रिय अमूल्य पुस्तककी महत्ता, विभिन्न प्रसंगों पर निकले हुए गुरुदेवके मंगलमय पवित्र उद्गारोंमें देखें :—

'(बहिनश्रीके वचनामृत) पुस्तक समयसर प्रकाशित हो गई। बहिनको कहाँ बाहर आनेकी इच्छा है, किन्तु पुस्तकने उन्हें प्रगट कर दिया। भाषा सरल है किन्तु भाव अति गम्भीर हैं। मैंने पूरी पढ़ ली है। एकबार नहीं लेकिन पच्चीसबार पढ़े तब भी संतोष न हो ऐसी पुस्तक है। दस हजार पुस्तकें छपवाकर हिन्दी-गुजराती 'आत्मधर्म'के सब ग्राहकोंको भेट देना चाहिये ऐसा मुझे विचार आया।' (पूज्य गुरुदेवके भाव-अनुसार हिन्दी-गुजराती 'आत्मधर्म'के ग्राहकोंको यह पुस्तक भेट दी गई थी।)

"परिणमनमेंसे निकले हुए शब्द हैं। बेनकी तो निवृत्ति बहुत। निमृत्तिमेंसे आये हुए शब्द हैं। पुस्तकमें तो समयसारका सार आ गया है—अनुभवका सार है; परम सत्य है। 'वचनामृत' तो ऐसी वस्तु प्रगट हो गई है कि भारतमें सर्वत्र इसका प्रकाशन होना चाहिये।"

'यह (वचनामृत) पुस्तक ऐसी आयी हैं कि चाहे जितने शास्त्र हों, इसमें एक भी बात बाकी नहीं है। थोड़े शब्दोंमें द्रव्य-गुण-पर्याय, व्यवहार-निश्चय आदि सब आ गया है। जगतके भाग्य कि ऐसी सादी भाषामें पुस्तक प्रकाशित हो गई। वीतरागके भावका रटन और मंथन है। सारे देशमें ढिंढोरा पिटेगा। जहाँ पुस्तक हाथमें आयी वहीं कहा कि एक लाख पुस्तकें छपना चाहिये।'

'मैं कहता हूँ कि (वचनामृत) पुस्तक सर्वोत्कृष्ट है—सम्पूर्ण समयसारका सार आ गया है इसलिये सर्वोत्कृष्ट है। यह पुस्तक बाहर लोगोंके हाथमें पहुँचेगी तो डंका बजेगा। इसे पढ़कर तो विरोधी भी मध्यस्थ हो जायँगे—ऐसी बात है। जगतको लाभका कारण है।'

"बेनकी पुस्तक (वचनामृत) बड़ी ऊँची है। सादी भाषा, मर्म बहुत। अतीन्द्रिय आनन्दमेंसे आयी हुई बात है। अकेला मक्खन भरा है—माल भरा है। अति गम्भीर! थोड़े शब्दोंमें बहुत गंभीरता! यह तो अमृतधाराकी वर्षा है। वचनामृत तो बारह अंगका सार है, सारमें सार तत्त्व आ गया है। 'द्रव्यदृष्टिप्रकाश'की अपेक्षा यह पुस्तक अलौकिक है। जगतके भाग्य हैं कि ऐसी वस्तु प्रगट हुई!"

'जो आनन्दमें जमकर बैठ गया है, जो अतीन्द्रिय आनन्दके ग्रास ले रहा है तथा जो अतीन्द्रिय आनन्दको गटागट पी रहा है ऐसे धर्मीका (—साधकका) यह स्वरूप बहिनके मुखसे (वचनामृतमें) आया है। बिलकुल सादी भाषा। प्रभुके समवसरणमें ऐसी बात चलती थी, भाई! अरे! यह बात बैठ जाय तो निहाल हो जाय! जिनेश्वरका जो आदेश है वह बहिन कह रही हैं।'

पूज्य गुरुदेवके श्रीमुखसे अनेकबार 'वचनामृत'की भूरि-भूरि प्रशंसा सुनकर मुमुक्षुसमाजने 'वचनामृत' पर प्रवचन द्वारा उसके गहन भावोंको समझानेकी प्रार्थना पूज्य गुरुदेवसे की। पूज्य गुरुदेवने भक्तोंकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और प्रवचन दिये। प्रवचनोंमें 'वचनामृत'के भावोंको खूब रसपूर्वक स्पष्ट किया। 'वचनामृत'में ४३२ बोल हैं; उन पर १८१ प्रवचन हुए हैं। वे प्रवचन चार भागोंमें प्रकाशित हो चुके हैं। उनमेंसे यह पहला भाग है।

'बहिनश्रीके वचनामृत'में समादिष्ट अनेक आध्यात्मिक विषयोंपर पूज्य गुरुदेवने इस प्रवचन ग्रन्थमें जो अद्भुत छानबीन की है—तलस्पर्शी स्पष्टीकरण किये हैं, उन्हें पढ़कर आश्चर्य होता है कि—अहा! इसमें ऐसे अलौकिक भाव भरे हैं। सचमुच, पूज्य गुरुदेवने 'वचनामृत'के गहन भावोंको खोलकर मुमुक्षुओंपर महान उपकार किया है।

T-2

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ये प्रवचन पूज्य बहिनश्रीकी चरणोपासिका कुछ ब्रह्मचारी बहिनों तथा मुमुक्षु भाई-बहिनोंने टेप-रिकॉर्डमेंसे उतार दिये हैं। उनका यह संकलन तैयार किया गया है। यह संकलन अध्यात्मप्रेमी आदरणीय विद्वद्वर्य भाईश्री हिंमतलाल जेठालाल शाहने अथक परिश्रम लेकर अत्यन्त सावधानीपूर्वक जाँच लिया है तथा प्रूफ-संशोधनमें भी सहयोग दिया है। वास्तवमें उनके अमूल्य सहयोग बिना इन प्रवचनोंका ऐसे सुन्दररूपमें तैयार होना असम्भव था। इस हेतु कृतज्ञतापूर्वक उनका जितना आभार मानूँ उतना कम है। भावनगरनिवासी धर्मप्रेमी भाईश्री शशिकान्तभाई सेठने भी इन प्रवचनोंका बड़ा भाग जाँच दिया है। वे तथा टेपमेंसे उतार देनेवाले भी धन्यवादके पात्र हैं।

अंतमें, हम—अध्यात्मतत्त्व पिपासु जीव, पूज्य बहिनश्रीकी स्वानुभूति-रसधारामेंसे प्रवाहित इस शुद्धात्मस्पर्शी 'वचनामृत' पर परमोपकारी कृपासिंधु पूज्य गुरुदेवके स्वानुभवप्रधान समस्त निजात्मवैभव खोलकर दिये हुए इन विशद प्रवचनोंके गहरे अवगाहन द्वारा भवसंततिछेदक स्वानुभूति साधनेकी प्रबल प्रेरणा प्राप्त कर अपने साधनापंथको सुधास्यंदी बनाएँ—यही भावना।

भाद्रपद कृष्णा २, सं. २०३८
(पूज्य बहिनश्रीकी ६९वीं जन्मजयंती)

—*संकलयिता*

* * *

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अध्यात्मयुगस्रष्टा

गुरुदेव श्री कानजीस्वामी

[संक्षिप्त जीवनवृत्त एवं उपकारगुणकीर्तन]

भरतक्षेत्रकी वर्तमान चौबीसीके चरम तीर्थंकर भगवान श्री महावीरस्वामी द्वारा समुपदिष्ट और भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव आदि निर्ग्रंथ संतों द्वारा सुरक्षित, तर्कशुद्ध अबाधित सुविज्ञान-सिद्धान्तोंकी कसौटी पर पार उतर सके ऐसा, अध्यात्मरसप्रमुख वीतराग जैनधर्म कालदोषके कारण वैज्ञानिक भूमिकासे च्युत होकर रूढ़िग्रस्त साँप्रदायिकतामें और क्रियाकांडमें फँस गया था ऐसे इस युगमें—विक्रमकी २०–२१वीं शताब्दिमें—भारतवर्षके जीवोंके महान पुण्योदयसे जिस महापुरुषने अवतार लेकर आत्मसाधनाके अध्यात्मपथको प्रकाशित किया, संप्रदायकी कैदमेंसे बाहर निकालकर जिन्होंने हजारों जीवोंमें शुद्ध आत्मा समझनेकी जिज्ञासा जगाकर एक नये मुमुक्षुसमाजका सर्जन किया, स्वयंकी स्वानुभवसमृद्ध भेदज्ञान-कलासे जिनशासनके सूक्ष्म रहस्योंको खोलकर जिन्होंने 'तुझमें सब भरा पड़ा है' ऐसा घोषित करके प्रत्येक जीवकी शक्तिरूप प्रभुताका जगतमें ढिंढोरा पीटा—इत्यादि अनेक प्रकारसे भारतवर्षके धर्मपिपासु जीवों पर जिनका अनंत-अनंत उपकार है ऐसे अध्यात्मयुगस्रष्टा परमकृपालु परमपूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीका संक्षिप्त ★जीवनवृत्त एवं उपकारगुणकीर्तन यहाँ प्रस्तुत किया है।

आध्यात्मिक सत्पुरुष परमपूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीका पवित्र जन्म सौराष्ट्रके उमराला गांवमें वि. सं. १९४७ वैशाख सुदी दूज, रविवारके शुभ दिन प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें हुआ था। गुरुदेवश्रीकी मातुश्री उजमबा व पिताश्री मोतीचंदभाई जातिसे दशाश्रीमाली वणिक एवं धर्मसे स्थानकवासी जैन थे। बचपनसे ही उनके मुखपर वैराग्यकी सौम्यता और आंखोंमें बुद्धि और वीर्यकी प्रतिभा झलकती थी। स्कूलमें तथा जैनशालामें भी प्रायः प्रथम नंबर ही रखते थे।

ग्यारह वर्षकी उम्रमें एक बार जैनशालाकी सीढ़ियोंसे उतरते समय संप्रदायके एक साधुको वैराग्यकी मस्त चालसे जाते हुए देखकर इस होनहार महापुरुषके हृदयमें गहरी छाप पड़ी तथा अन्तर्मनमें ऐसा लगा कि 'अहा! कैसी वैराग्यकी धुन! झुके हुए नेत्रोंके साथ कैसी मस्त चाल! नितांत अकेले, कोई साथी–संगी नहीं! कैसी अवधूत दशा!' इस प्रकार बचपनसे ही वैरागी मस्त जीवनके प्रति उनका चित्त समर्पित हो जाता था। पाठशालाके लौकिक ज्ञानसे उनको संतोष नहीं होता था; उनको अंतरंगमें लगता रहता कि 'जिसकी खोजमें मैं हूँ वह यह नहीं है।' कभी कभी यह दुःख तीव्र हो जाता, और एक बार तो माँसे बिछुड़े बालककी भाँति, यह बाल-महात्मा सत्‌के वियोगमें बहुत रोये थे।

छोटी उम्रमें ही माताका (वि. सं. १९५९में) व पिताजीका (वि. सं. १९६३में) वियोग हुआ।

★ *जीवनवृत्तका कुछ भाग आदरणीय पं. श्री हिंमतलाल जे. शाहके लेखोंमेंसे शब्दशः लिया है।*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वे पालेजमें पिताजीकी दुकान पर बैठने लगे। व्यापारमें उनका वर्तन प्रामाणिक और सरल था। एक बार बड़ौदाकी अदालतमें जाना पड़ा था। वहाँ उन्होंने न्यायाधीशके समक्ष सत्य घटना स्पष्टतासे बता दी। उनके मुखपर झलकती सरलता, निर्दोषता और निर्भीकताकी न्यायाधीश पर छाप पड़ी, और उनका कहा हुआ सारा विवरण यथार्थ है, ऐसा विश्वास आ जानेसे उसे संपूर्णरूपसे मान्य रखा।

वे कभी कभी नाटक देखने जाते थे; अतिशय आश्चर्यकी बात तो यह है कि नाटकका श्रृंगारिक प्रभाव होनेके बदले किसी वैराग्यप्रेरक दृश्यकी उन पर गहरी छाप पड़ती थी और वह कितने ही दिनों तक रहती थी। कभी कभी तो नाटक देखकर आनेके बाद पूरी रात वैराग्यकी धुन रहती। एक बार नाटक देखकर आनेके बाद उसकी धुनमें 'शिवरमणी रमनार तुं, तुं ही देवनो देव' इन शब्दोंसे प्रारम्भ होनेवाला बारह कड़ीका एक काव्य उन्होंने बनाया था। अहा! सांसारिक रसके प्रबल निमित्तोंको भी महान आत्माएँ वैराग्यका कैसा निमित्त बना लेती हैं।

दुकान पर भी वे वैराग्यप्रेरक और तत्त्वबोधक धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। उनका मन व्यापारमय या संसारमय नहीं हुआ था। उनका आत्मा अन्दर कुछ और ही शोधमें था। उनके अन्तरका झुकाव सदा धर्म व सत्यकी शोधके प्रति ही था। उनका धार्मिक अभ्यास, उदासीन जीवन और सरल अंतःकरण देखकर सगे-संबंधी उनको 'भगत' कहते थे। सगाईके संदेश आने पर उन्होंने अपने बड़े भाई खुशालभाईको स्पष्ट कह दिया कि 'मेरी सगाई नहीं करना, मेरे आजीवन ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा है और मेरे दीक्षा लेनेके भाव हैं।' खुशालभाई और सगे-सम्बन्धियोंके द्वारा बहुत समझाने पर भी उन महात्माके वैराग्यभीने चित्तको संसारमें रहना पसंद नहीं आया! उन्होंने योग्य गुरुके लिये बहुत शोध की। सौराष्ट्र, गुजरात व राजस्थानसे बहुतसे साधुओंसे मिले, पर कहीं भी मन स्थिर नहीं हुआ। अन्तमें बोटाद संप्रदायके श्री हीराचंदजी महाराजके हाथसे दीक्षा लेनेका निश्चित हुआ। विक्रम संवत् १९७०के मागशिर सुदी ९वीं, रविवारके दिन उमरालामें बड़ी धूमधामसे दीक्षा-महोत्सव सम्पन्न हुआ।

दीक्षा लेकर तुरन्त ही गुरुदेवश्री श्वेतांबरके आगमोंका कड़ा अभ्यास करने लगे। उन्होंने चारेक वर्षमें ४५ आगम, लाखों श्लोकोंकी टीका सहित, विचारपूर्वक पढ़ लिये। वे संप्रदायकी रीति अनुसार चारित्र भी कठोर पालते थे। थोड़े ही समयमें उनकी आत्मार्थिताकी, ज्ञान-पिपासाकी और चारित्रकी सुवास स्थानकवासी जैन संप्रदायमें खूब फैल गयी थी।

गुरुदेवश्री प्रारम्भसे ही तीव्र पुरुषार्थी थे। पुरुषार्थ ही उनका जीवनमंत्र था। 'केवली भगवानने देखा होगा तब मोक्ष होगा'—ऐसी काललब्धि और भवितव्यताकी पुरुषार्थहीनता भरी बातें कोई करे तो वे सहन नहीं कर सकते थे। वे दृढ़तासे कहते थे कि जो पुरुषार्थी हैं उसके अनन्त भव होते ही नहीं; केवलीभगवानने भी उसके अनन्त भव देखे ही नहीं; पुरुषार्थीको भवस्थिति आदि कुछ बाधक नहीं होते।'

दीक्षापर्यायके कालमें उन्होंने श्वेतांबरके शास्त्रोंका खूब मननपूर्वक अभ्यास किया। उन्होंने एक लाख श्लोकप्रमाण टीकायुक्त भगवतीसूत्र सत्रह बार पढ़ा। हर कार्य करते समय उनका लक्ष सत्यकी शोधके प्रति ही रहता था। फिर भी वे जिसकी शोधमें थे वह उन्हें अभी तक मिला नहीं था, अथकरूप उल्लसितवीर्यसे उनकी शोधवृत्ति चालू ही थी; तब—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

विक्रम संवत् १९७८में विधिकी किसी धन्य घड़ीमें श्रीमद् भगवत्कुंदकुंदाचार्यदेवप्रणीत समयसार नामका महान ग्रंथ गुरुदेवश्रीके करकमलमें आया। उसे पढ़ते ही उनके हर्षका पार न रहा। जिसकी शोधमें वे थे वह उन्हें मिल गया। गुरुदेवश्रीके अन्तर्नयनोंने समयसारमें अमृतके सरोवर छलकते देखे। एकके पीछे एक गाथाएं पढ़ते हुए उन्होंने घूंट भर-भरके वह अमृत पिया। ग्रंथाधिराज समयसारने गुरुदेवश्री पर अपूर्व, अलौकिक, अनुपम उपकार किया और उनके आत्मानन्दका पार न रहा। गुरुदेवश्रीके अन्तर्जीवनमें परम पवित्र परिवर्तन हुआ, भूली हुई परिणति निज घरकी ओर ढली—उपयोगका प्रवाह सुधासिंधु ज्ञायकदेवकी ओर ढला। उनकी ज्ञानकला अपूर्व रीतिसे खिल उठी।

विक्रम संवत् १९९१ तक स्थानकवासी संप्रदायमें रहकर गुरुदेवश्रीने सौराष्ट्रके अनेक प्रमुख शहरोंमें चातुर्मास किया। और शेषकालमें सैकड़ों छोटे–बड़े नगरोंको पावन किया। हजारों श्रोताओंको उनके उपदेशके प्रति बहुमान जागृत हुआ। क्रियाकांडमें लुप्त हुए अध्यात्मधर्मका बहुत उद्योत हुआ। उनके प्रवचनमें ऐसे अलौकिक अध्यात्मिक न्याय आते थे कि जो अन्यत्र कहीं भी सुननेको न मिले हों। 'जिस भावसे तीर्थंकर नामकर्म बंधे वह भाव भी हेय है।.....शरीरके रोमरोममें तीव्र रोग हो तो भी वह दुःख नहीं, दुःखका स्वरूप ही कुछ और है।....व्याख्यान सुनकर बहुत जीव समझें तो मुझे बहुत लाभ हो ऐसा माननेवाले व्याख्याता मिथ्यादृष्टि हैं।.....इस दुखमें समता नहीं रखूंगा तो कर्मबन्धन होगा–ऐसे भावसे समता रखना वह भी मोक्षमार्ग नहीं।....पाँच महाव्रत भी मात्र पुण्यबंधके कारण हैं।' ऐसे हजारों अपूर्व न्याय व्याख्यानमें अत्यन्त स्पष्ट रीतिसे लोगोंको समझाते थे। प्रत्येक प्रवचनमें वे कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शन पर अत्यन्त अत्यन्त भार देते थे। वे कहते थे कि–"शरीरकी चमड़ी उतारकर नमक छिड़कनेवालेके उपर भी क्रोध न किया–ऐसा व्यवहारचारित्र भी इस जीवने अनंत बार पालन किया, परन्तु सम्यग्दर्शन एक बार भी प्राप्त नहीं किया। लाखों जीवोंकी हिंसाके पापसे भी मिथ्यादर्शनका पाप अनन्तगुना है।....सम्यग्दर्शन प्राप्त करना सरल नहीं है, लाखों-करोड़ोंमें किसी विरल जीवको ही वह प्राप्त होता है। सम्यग्दृष्टि जीव अपने सम्यक्त्वका निर्णय स्वयं ही कर सकता है। सम्यग्दृष्टि संपूर्ण ब्रह्मांडके भावोंको पी गया होता है।....सम्यक्त्व वह कोई और ही वस्तु है।...सम्यग्दर्शन शून्य क्रियाएं बिना एकाईकी बिंदी हैं।....सम्यग्दर्शनका स्वरूप बहुत ही सूक्ष्म है।....हीरेकी कीमत तो हजारों रूपया होती है परन्तु उसके पहल पाड़ते समय खिरी हुई रजका मूल्य भी सैकड़ों रुपया होता है; वैसे सम्यक्त्वहीरेकी कीमत तो अमूल्य है, वह मिले तो तो कल्याण हो जाय परन्तु न मिले तो भी 'सम्यग्दर्शन यह कोई जुदी ही वस्तु है'–इस प्रकार उसकी महिमा समझकर उसे प्राप्त करनेकी उत्कंठारूप रज भी बहुत लाभकारी है।....मात्र जानना ही ज्ञान नहीं। सम्यक्त्व सहित जानना वही ज्ञान है। ग्यारह अंग मुखाग्र हों परन्तु सम्यग्दर्शन न हो तो वह अज्ञान है।....आजकल तो सभी अपने अपने घरका सम्यक्त्व मान बैठे हैं। सम्यग्दृष्टिको तो मोक्षके अनंत अतीन्द्रिय सुखकी वानगी प्राप्त हो गयी है। वह वानगी मोक्षसुखके अनन्तवें भाग होने पर भी अनन्त है।" इस प्रकार सम्यग्दर्शनकी अद्‌भुत महिमा अनेक सम्यक् युक्तियोंसे, अनेक प्रमाणोंसे और अनेक सचोट दृष्टांतोंसे वे लोगोंको ठसा देते थे। उनका प्रिय और मुख्य विषय सम्यग्दर्शन था। और वे संप्रदायमें थे तबसे ही इसका स्पष्ट रीतिसे प्रतिपादन करते थे। प्रथम सत्य समझनेकी मुख्य आवश्यकता

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है ऐसा वे अति दृढ़तापूर्वक पहलेसे ही कहते थे और प्रवचनके प्रारम्भमें एक गाथा बोलते थे—'संबुज्झह जंतवो....' जिसका सारांश था कि—हे जीवों! तुम सम्यक् प्रकारसे समझो समझो! इस प्रकार वे प्रारम्भसे ही सत्य समझनेका उपदेश देते थे।

जैनधर्म पर उनकी अनन्य श्रद्धा, सारा विश्व न माने तो भी अपनी मान्यतामें स्वयं अकेले टिके रहनेकी उनकी अजब दृढ़ता और अनुभवके बलपूर्वक निकलती उनकी न्यायसंगत वाणी बड़े बड़े नास्तिकोंको भी विचारमें डाल देती थी और बहुतोंको आस्तिक बना देती थी। उनका सिंहनाद पात्र जीवोंके हृदयकी गहराईको स्पर्शकर उनके आत्मिक वीर्यको उछाल देता था। अहा! सत्य और अनुभवके जोरसे सारे जगतके अभिप्रायोंके सामने जूझते इस अध्यात्मयोगीकी गर्जना जिन्होंने सुनी होगी उनके कानोंमें उसकी झंकार अभी भी गूंजती होगी! थोड़े ही वर्षोंमें उनके प्रखर ज्ञान, कड़े चारित्र और प्रवचनकौशल्यकी सुवास इतनी अधिक फैल गई कि स्थानकवासी जैनसमाज उनको साधुके रूपमें 'काठियावाडके कोहनूर' कहती थी।

लघु वयसे ही गुरुदेवका वैरागी, चिन्तनपूर्ण, बुद्धिप्रतिभायुक्त, ध्येयलक्षी भक्तजीवन था। बालब्रह्मचारीरूपसे दीक्षित होकर उच्चतम कोटिके स्थानकवासी साधुके रूपमें विचरण करते समय, 'भवभ्रमणका अंत लानेका सच्चा उपाय क्या?', 'द्रव्यसंयमसे ग्रीवक पाया, फिर पीछो पटक्यो, वहाँ क्या करना बाकी रहा?'—इस विषयमें गहरा मंथन व अभ्यास करके उन्होंने खोज निकाला कि—मार्ग कोई जुदा ही है; वर्तमानमें तो शुरुआत ही उल्टी है। क्रियाकांड मोक्षमार्ग नहीं है, परन्तु पारमार्थिक आत्मा तथा सम्यग्दर्शन आदिका स्वरूप निश्चित कर स्वानुभव करना वह मार्ग है; अनुभवमें विशेष लीनता वह श्रावकमार्ग है और उससे भी विशेष स्वरूपरमणता वह मुनिमार्ग है। साथमें होनेवाले बाह्य व्रत-नियम तो अधूरेपनकी–अपरिपक्वताकी प्रगटता है। मोक्षमार्गकी मूल बातमें बहुत बड़ा अन्तर पड़ गया है ऐसा गुरुदेवश्रीने अन्तरसे खोज निकाला।

समयसार-प्ररूपित वास्तविक वस्तुस्वभाव और वास्तविक निर्ग्रंथमार्ग बहुत समयसे भीतर सत्य लगता था, और बाह्यमें वेश तथा आचरण अलग था,–यह विषम स्थिति उन्हें खटकती थी; इसलिये उन्होंने सोनगढ़में योग्य समय–विक्रम संवत् १९९१ की चैत्र शुक्ला त्रयोदशी (महावीर-जयंती), मंगलवारके दिन—'परिवर्तन' किया, स्थानकवासी सम्प्रदायका त्याग किया। संप्रदायका त्याग करनेवालोंको किस किस प्रकारकी अनेक महाविपत्तियां सहनी पड़ती है, उन पर कैसी कैसी अघटीत निंदाकी झड़ियाँ बरसती हैं, वह सब उनके ख्यालमें था, फिर भी उस निडर और निस्पृह महात्माने उसकी कुछ भी परवाह न की। सत्के प्रति परम भक्तिमें सब प्रकारकी प्रतिकूलताका भय व अनुकूलताका राग अत्यंत गौण हो गया। जगतसे बिलकुल निरपेक्षरूप हजारोंके जनसमुदायमें गर्जनेवाला सिंह सत्के लिये सोनगढ़के एकांत स्थलमें जा बैठा।

उनके 'परिवर्तन'से स्थानकवासी संप्रदायमें बहुत खलबली हुई, विरोध हुआ। परन्तु गुरुदेवश्री काठियावाड़के स्थानकवासी जैनोंके हृदयमें बस गये थे। उनके पीछे काठियावाड़ पागल बना हुआ था। इसलिये 'गुरुदेवश्रीने जो किया होगा वह समझकर ही किया होगा' ऐसा विचार कर धीरे-धीरे लोगोंका प्रवाह सोनगढ़की ओर बहने लगा। सांप्रदायिक मोह अत्यन्त दुर्निवार होने पर भी, सत्के

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अर्थी जीवोंकी संख्या तीनों कालमें अत्यन्त अल्प होने पर भी, सांप्रदायिक व्यामोह तथा लौकिक भयको छोड़कर सोनगढ़की ओर बहता सत्संगार्थी जनोंका प्रवाह दिन-प्रतिदिन वेगपूर्वक बढ़ता ही गया।

पूज्य गुरुदेव कहते थे : जैनधर्म यह कोई संप्रदाय नहीं है, यह तो वस्तुस्वभाव—आत्मधर्म है। उसका अन्य किसी धर्मके साथ मेल है ही नहीं। उसका अन्य धर्मके साथ समन्वय करना वह रेशम और टाटके समन्वय जैसा व्यर्थ है। दिगंबर जैनधर्म वही वास्तविक जैनधर्म है और आंतरिक तथा बाह्य दिगंबरत्वके बिना कोई जीव मुनिपना और मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता—ऐसी उनकी दृढ़ मान्यता थी।

गुरुदेव सम्प्रदायमें थे तभीसे प्रत्येक द्रव्यकी स्वतंत्रताकी श्रद्धा उनके अंतरमें ओतप्रोत हो गयी थी। मैं एक स्वतंत्र पदार्थ हूं, मुझे कोई कर्म रोक नहीं सकते—ऐसा वे बारम्बार कहते थे। वह विशेष स्पष्टतासे समझनेके लिये जामनगरमें चातुर्मासके समय आत्मार्थी श्री हिंमतभाई जे. शाहने प्रश्न पूछा—'महाराज! दो जीवोंके १४८ कर्मप्रकार सम्बन्धी सर्व भेद-प्रभेदोंके प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग–सभी बिलकुल एक समान हों तो वे जीव उत्तरवर्ती क्षणमें समान भाव करेंगे या भिन्न-भिन्न प्रकारके?' गुरुदेवने कहा : 'भिन्न-भिन्न प्रकारके।' पुनः प्रश्न किया : 'दोनों जीवोंकी शक्ति तो पूरी है और आवरण भी बिलकुल एक समान है, तो फिर भाव भिन्न-भिन्न प्रकारके कैसे कर सकते हैं?' गुरुदेवने तुरन्त ही दृढ़तासे उत्तर दिया : 'अकारण पारिणामिक द्रव्य है', अर्थात् जीव जिसका कोई कारण नहीं ऐसे भावसे स्वतंत्रतया परिणमन करनेवाला द्रव्य है, इसलिये उसे अपने भाव स्वाधीनतासे करनेमें वस्तुतः कौन रोक सकता है? वह स्वाधीनतासे अपना सब कुछ कर सकता है। स्वाधीनताका कैसा सुन्दर स्पष्टीकरण!

परमपूज्य गुरुदेवके उपदेशमें मुख्य वजन 'समझ' पर था। 'तुम समझो; समझे बिना सब व्यर्थ है' इस प्रकार वे बारम्बार कहते थे। 'कोई आत्मा—ज्ञानी या अज्ञानी—एक रजकणको भी हिलानेकी सामर्थ्य नहीं रखता, तो फिर देहादिकी क्रिया आत्माके हाथ कहाँसे हो? ज्ञानी व अज्ञानीमें प्रकाश और अंधकार जैसा महान अन्तर है, और वह यह है कि अज्ञानी परद्रव्य तथा रागद्वेषका–शुभाशुभ भावका—कर्ता होता है और ज्ञानी अपनेको शुद्ध अनुभव करता हुआ उनका कर्ता नहीं होता। उस कर्तृत्व बुद्धिको छोड़नेका महा पुरुषार्थ प्रत्येक जीवका कर्तव्य है। वह कर्तृत्वबुद्धि ज्ञान बिना नहीं छूटती। इसलिये तुम ज्ञान करो।'—यह उनके उपदेशका प्रधान स्वर था।

परम पूज्य गुरुदेवके ज्ञानको सम्यक्त्वकी छाप तो बहुत समयसे लगी थी। वह सुधास्यंदी सम्यग्ज्ञान सोनगढ़के विशेष निवृत्तिवाले स्थानमें अद्‌भुत सूक्ष्मताको प्राप्त हुआ; नई-नई ज्ञानकला खूब खिली। अमृतकलशमें जिस प्रकार अमृत घोला जाता हो उसीप्रकार गुरुदेवके परम पवित्र अमृतकलशस्वरूप आत्मामें तीर्थंकरदेवके वचनामृत खूब घोले गये—घोंटे गये। अन्दर घोंटा गया वह अमृत कृपालु गुरुदेव हजारों मुमुक्षुओंको प्रवचनमें परोसते थे व निहाल करते थे।

समयसार, प्रवचनसार, नियमसार आदि शास्त्रों पर प्रवचन देते समय गुरुदेवके शब्द-शब्दमें बहुत गहनता, सूक्ष्मता और नवीनता निकलती, जिससे श्रोताजन शास्त्रका मर्म सरलतासे समझ जाते। जिस अनन्त ज्ञान और आनन्दमय पूर्ण दशाको प्राप्त करके तीर्थंकरदेवने दिव्यध्वनि द्वारा वस्तुस्वरूपका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

निरूपण किया, उस परम पवित्र दशाका सुधास्यंदी स्वानुभूतिस्वरूप पवित्र अंश अपने आत्मामें प्रगट करके सद्‌गुरुदेवने अपनी विकसित ज्ञानपर्याय द्वारा शास्त्रोमें रहे हुए गूढ़ रहस्योंको समझाकर मुमुक्षुओं पर महान-महान उपकार किया है। गुरुदेवकी वाणी सुनकर सैकड़ों शास्त्रोंके अभ्यासी विद्वान भी आश्चर्यचकित हो जाते थे और उल्लासमें आकर कहते थे : 'गुरुदेव! आपके प्रवचन अपूर्व हैं; उनका श्रवण करते हमें तृप्ति ही नहीं होती। आप चाहे जिस बातको समझाओ हमको उसमेंसे नया-नया ही जाननेको मिलता है। नव तत्त्वका स्वरूप या उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यका स्वरूप, स्याद्वादका स्वरूप या सम्यक्त्वका स्वरूप, निश्चय-व्यवहारका स्वरूप या व्रत-तप-नियमका स्वरूप, उपादान-निमित्तका स्वरूप या साध्य-साधनका स्वरूप, द्रव्यानुयोगका स्वरूप या चरणानुयोगका स्वरूप, गुणस्थानका स्वरूप या बाधक-साधकभावका स्वरूप, मुनिदशाका स्वरूप या केवलज्ञानका स्वरूप—जिस-जिस विषयका स्पष्टीकरण आपके श्रीमुखसे सुनते हैं उसमें हमें अपूर्व भाव ही दृष्टिगोचर होते हैं। आपके शब्द-शब्दमें वीतरागदेवका हृदय प्रगट होता है।'

पूज्य गुरुदेवकी प्रवचनशैली भी अद्‌भुत थी। कठिन गिने जानेवाले अध्यात्म-विषयको भी खूब स्पष्टतासे, अनेक सरल दृष्टांतों द्वारा, शास्त्रीय शब्दोंका बहुत ही कम प्रयोग करके घरेलू भाषामें समझाते थे, कि जिससे कम पढ़े-लिखे सामान्य लोग भी सरलतासे समझ जायें। गुरुदेवश्री प्रवचन करते-करते अध्यात्ममें ऐसे मग्न हो जाते, परमात्मदशाके प्रति अगाध भक्ति उनके मुखारविंद पर ऐसी झलकती, कि श्रोताओं पर भी उसकी छाप पड़ती। अध्यात्मकी जीवंतमूर्ति गुरुदेवश्रीकी देहके अणु-अणुमेंसे मानों अध्यात्मरस झरता हो ऐसी चमत्कारभरी उनकी प्रतिभा थी। पूज्य गुरुदेवका प्रवचन सुननेवालोंको इतना तो स्पष्ट लगता था कि 'यह कोई विशिष्ट प्रकारका पुरुष है; जगतसे यह कुछ और ही कहता है, अपूर्व कहता है; इसके कथनके पीछे कोई अजब दृढ़ता और जोर है। ऐसा अन्यत्र कहीं भी सुननेमें नहीं आता।' अहा! इस कलिकालमें, अन्तरमें ऐसा अलौकिक पवित्र परिणमन—केवलज्ञानका अंश, और बाह्यमें ऐसा प्रबल प्रभावना-उदय—तीर्थंकरत्वका अंश, इन दोनोंका सुयोग देखकर मुमुक्षुओंका हृदय नाच उठता था।

अहो! परम प्रभावक अध्यात्ममूर्ति गुरुदेवकी उस मोहविनाशिनी वज्रवाणीकी तो क्या बात, उनके दर्शन भी महापुण्यके थोक उछलें तब प्राप्त होते! इस अध्यात्ममस्त महापुरुषके समीप संसारकी आधि-व्याधि-उपाधि फटक भी नहीं सकती थी। संसारतप्त प्राणियोंको उनके पवित्र समागममें परम विश्रांति मिलती थी। जो वृत्तियां महाप्रयत्नसे भी नहीं दबतीं वे पूज्य गुरुदेवके सान्निध्यमें अपने आप शांत हो जाती हैं—ऐसा अनुभव बहुतसे मुमुक्षुओंको होता था। आत्माका निवृत्तिमय स्वरूप, मोक्षका सुख आदि आध्यात्मिक भावोंकी जो श्रद्धा अनेक तर्कोंसे नहीं हो पाती वह गुरुदेवके दर्शन तथा समागमसे सहजमात्रमें हो जाती। इस प्रकार पूज्य गुरुदेवके स्वानुभवरस-झरते पवित्र ज्ञान और चारित्रने मुमुक्षुओं पर महा कल्याणकारी अनुपम उपकार किया है।

सनातन सत्य वीतराग दिगम्बर जैनमार्ग अंगीकृत करनेके बादके वर्षोंमें शासनप्रभावक पूज्य गुरुदेवश्रीके जीवनवृत्तांतके साथ संबंध रखनेवाले, मुमुक्षुओंको उपकारभूत हों ऐसे, प्रभावनाके अनेक सुयोग बन गये।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विक्रम संवत् १९९४की वैशाख कृष्णा अष्टमीके दिन प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनको आत्मध्यानमयी विमल अनुभूतिमेंसे उपयोग बाहर आनेपर, उपयोगकी स्वच्छतामें अनेक भवान्तर सम्बन्धी सहज स्पष्ट जातिस्मरणज्ञान हुआ। पूज्य गुरुदेवको अनेक वर्षोंसे अपने भूत-भविष्यके भवके साथ सम्बन्धवाला जो अस्पष्ट 'भास' होता था उसका स्पष्ट हल बहिनश्रीके जातिस्मरणज्ञान द्वरा मिलनेसे स्वयंके मनोमन्दिरमें एक प्रकारका उजाला हुआ और उनकी धर्मपरिणतिको एक असाधारण नवीन बल मिला। बहिनश्रीके जातिस्मरणज्ञानकी बातें आत्मार्थियोंको उपकारक हो ऐसी लगनेसे पूज्य गुरुदेवश्री उसके कितने ही तथ्य धीरे-धीरे मुमुक्षुओंके समक्ष अत्यन्त धर्मोल्लासपूर्वक रखने लगे थे, जिसे सुनकर आत्मार्थिजन अत्यन्त आह्लादित होते थे और उनके श्रद्धाजीवनमें, भक्तिजीवनमें तथा 'इस अल्पायुषी मनुष्यपर्यायमें निज कल्याण अवश्य कर लेना योग्य है'—ऐसे उद्यमजीवनमें नई चमक आ जाती थी।

जहाँ 'परिवर्तन' हुआ था वह मकान छोटा था इसलिये भक्तोंने संवत् १९९५में प्रवचन तथा पूज्य गुरुदेवके निवास हेतु एक मकान बनवाया और उसका नाम 'श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर' रखा। परम पूज्य अध्यात्मयोगी गुरुदेवको समयसार परमागमके प्रति अतिशय भक्ति होनेके कारण, स्वाध्यायमन्दिरमें उसके उद्घाटनके दिन—ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी, रविवारके दिन—प्रशममूर्ति भगवती पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके पवित्र करकमलोंसे श्री समयसार परमागमकी मंगल प्रतिष्ठा की गई। समयसार सर्वोत्तम शास्त्र है–ऐसा गुरुदेव बारम्बार कहते थे। समयसारकी बात करते ही उन्हें अति उल्लास आ जाता था। समयसारकी प्रत्येक गाथा मोक्ष दे ऐसी है—ऐसा गुरुदेवश्री कहते थे। भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवके सभी शास्त्रों पर उन्हें अत्यन्त प्रेम था। 'भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवका हमारे ऊपर अत्यन्त उपकार है, हम उनके दासानुदास हैं'—ऐसा वे अनेक बार भक्तिभीने हृदयसे कहते थे। भगवान कुंदकुंदाचार्यदेव महाविदेहक्षेत्रमें सर्वज्ञ वीतराग श्री सीमन्धर भगवानके समवसरणमें गये थे और वहाँ आठ दिन रहे थे, उस विषयमें पूज्य गुरुदेवको अंशमात्र भी शंका नहीं थी। वे कुंदकुंदाचार्यदेवके विदेहगमनके सम्बन्धमें अत्यन्त दृढ़तापूर्वक अनेक बार भक्तिभीने हृदयसे पुकार करके कहते थे कि—'कल्पना नहीं करना, इन्कार मत करना, यह बात ऐसी ही है; मानो तो भी ऐसी ही है, न मानो तो भी ऐसी ही है; यथातथ्य बात है, अक्षरशः सत्य है, प्रमाणसिद्ध है।' श्री सीमंधर भगवानके प्रति गुरुदेवश्रीको अतिशय भक्तिभाव था। कभी-कभी सीमंधर भगवानके विरहमें परम भक्तिवंत गुरुदेवश्रीके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगती थी।

पूज्य गुरुदेवश्रीने संवत् १९९५में माघ कृष्णा त्रयोदशीके दिन २०० मुमुक्षुओंके संघ सहित शत्रुंजय सिद्धक्षेत्रकी पावन यात्रा अति उत्साह और भक्तिपूर्वक की। उसी वर्ष चैत्र कृष्णा एकमके दिन स्वाध्यायमन्दिरमें भगवानकी दिव्यध्वनि 'ॐ'के शिलापट्टकी स्थापना की गई थी। तत्पश्चात् राजकोटके मुमुक्षुओंका अति आग्रह होनेसे चातुर्मास करनेके लिये पूज्य गुरुदेव राजकोट पधारे। वहाँ 'आनन्दकुंज'में दस महिने तक रहकर, समयसार, आत्मसिद्धि और पद्मनंदिपंचविंशतिका पर अपूर्व प्रवचन किये। पूज्य गुरुदेवकी नित्य-नई निर्मल ज्ञानपर्यायोंमेंसे सहज स्फुरित जड़-चेतनके विभागके, निश्चय-व्यवहारकी संधिके तथा अन्य अनेक आध्यात्मिक न्याय सुनकर राजकोटके हजारों लोग पावन हुए। वहाँ निशदिन आध्यात्मिक आनन्दका सुन्दर वातावरण गूँज उठा।

-3

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

राजकोटसे सोनगढ वापिस लौटते समय पूज्य गुरुदेवने ३०० भक्तोंके साथ, २२वें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ प्रभुके दीक्षा, केवल और निर्वाण—तीन कल्याणकोंसे पावन हुए गिरिराज गिरनारतीर्थकी अत्यन्त भक्ति तथा उल्लास सहित यात्रा की। पहली टूंक पर दिगंबर जिनमन्दिरमें एवं दीक्षाकल्याणक-धाम सहस्राम्रवनमें जमी हुई भक्तिकी धुन तथा निर्वाणस्थल पाँचवीं टूंक पर पूज्य गुरुदेव परम अध्यात्मरसमें तराबोर बनकर—

मैं एक, शुद्ध, सदा अरूपी, ज्ञानदृग हूँ यथार्थसे।
कुछ अन्य वो मेरा तनिक, परमाणुमात्र नहीं अरे!'

—आदि पद गाते हुए भक्ति कराते थे उस समय प्रसरित हुआ भक्तिभीना शांत आध्यात्मिक वातावरण—उन सबके पवित्र संस्मरण तो भक्तोंके स्मरणपट पर उत्कीर्ण हो गये हैं।

विहारके समय मार्गमें आनेवाले अनेक छोटे-बड़े गांवोंमें पूज्य गुरुदेव वीतराग सद्धर्मका डंका बजाते गये। लोगोंको गुरुदेवके प्रति भक्ति उमड़ पड़ती, भव्य स्वागत-समारोह होते और हजारोंकी संख्यामें प्रवचनसभा छलक उठती। गुरुदेवका प्रभावना–उदय देखकर, तीर्थंकरभगवान तथा समर्थ आचार्यभगवन्त जब विचरते होंगे उस समय धर्मका, भक्तिका व अध्यात्मका कैसा वातावरण फैल जाता होगा उसका तादृश चित्र कल्पनाचक्षु समक्ष खड़ा होता था।

संवत् १९९७ के वैशाख मासमें पूज्य गुरुदेवश्री विहार पूर्ण कर सोनगढ़ पधारे। उसके बाद तुरंत ही श्री नानालालभाई जसाणी तथा उनके भाइयोंने श्री सीमंधरभगवानके जिनमंदिरका निर्माणकार्य प्रारम्भ किया, जिसमें श्री सीमंधरस्वामी आदि जिनभगवंतोंकी वीतरागभाववाही प्रतिमाओंकी पंचकल्याणकविधिपुरस्सर मंगल प्रतिष्ठा संवत् १९९७ के फाल्गुन शुक्ला दूजके शुभ दिन हुई। प्रतिष्ठामहोत्सवके आठों दिन पूज्य गुरुदेवके मुखारविंदसे भक्तिरसभीनी अलौकिक वाणी छूटती थी। बिछुडे हुए सीमंधरभगवानका (भले स्थापना-अपेक्षासे) मिलन होनेसे पूज्य गुरुदेवश्रीको कोई अद्‌भुत आनन्दोत्साह था। प्रतिष्ठाके पूर्व श्री सीमंधरभगवानकी प्रतिमाके प्रथम दर्शनके समय पूज्य गुरुदेवश्रीकी आँखोंसे विरहवेदनाके आँसू बहने लगे थे। सीमंधरभगवान जब मंदिरमें प्रथम पधारे तब गुरुदेवश्रीको भक्तिरसकी मस्ती चढ़ गई और सारा देह भक्तिरसके मूर्त स्वरूप जैसा शांत–शांत दिखने लगा। गुरुदेवश्रीसे साष्टांग प्रणमन हो गया और भक्तिरसमें अत्यन्त एकाग्रताके कारण शरीर ज्योंका त्यों थोड़े समय तक निश्चेष्टरूपसे पड़ा रहा। भक्तिका यह अद्‌भुत पावन दृश्य, पासमें खड़े मुमुक्षुओंसे सहा नहीं जाता था; उनके नेत्रोंमें अश्रु भर आये और चित्तमें भक्ति उमड़ पड़ी। पूज्य गुरुदेवने प्रतिष्ठा भी अपने पवित्र हस्तसे, भक्तिभावमें मानों शरीरका भान भूल गये हों ऐसे अपूर्व भावसे की थी।

दोपहरके प्रवचन बाद पूज्य गुरुदेवश्रीकी मंगल उपस्थितिमें इस जिनमन्दिरमें प्रतिदिन पौनघंटा भक्ति होती थी। प्रवचन सुनते समय आत्माके सूक्ष्म स्वरूपके प्रणेता वीतराग जिनेन्द्रभगवन्तका माहात्म्य हृदयमें स्फुरित हुआ हो, जिससे तुरन्त ही जिनमन्दिरमें भक्ति करते हुए, वीतरागदेवके प्रति पात्र जीवोंको अद्‌भुत भक्तिभाव उल्लसित होता था। इस प्रकार जिनमन्दिर ज्ञान व भक्तिके सुन्दर सुमेलका निमित्त बना।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसके एक साल बाद श्री समवसरण-मन्दिर बना। उसमें श्री सीमन्धरभगवानकी अतिशय भाववाहि चतुर्मुख जिनप्रतिमा बिराजमान है। समवसरणकी सम्पूर्ण रचना अत्यन्त आकर्षक और शास्त्रोक्त विधि अनुसार है। मुनियोंकी सभामें श्री सीमंधरभगवानके सामने अत्यन्त भावपूर्वक हाथ जोड़कर खड़े हुए श्रीमद्‌भगवत्कुंदकुंदाचार्यदेवकी अति सौम्य मुद्रावन्त निर्ग्रंथ प्रतिमा है। प्रतिष्ठा महोत्सव सं. १९९९के ज्येष्ठ कृष्णा छठके दिन हुआ था। श्री समवसरणके दर्शन करते समय, श्रीमद्‌-भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव विदेहक्षेत्रके तीर्थंकर सर्वज्ञ वीतराग श्री सीमन्धर परमात्माके समवसरणमें पधारे थे वह, पूज्य गुरुदेवने पूर्वभवमें प्रत्यक्ष देखा हुआ भव्य प्रसंग उनकी आंखोंके समक्ष खड़ा हुआ और उसके साथ संकलित अनेक पवित्र भाव हृदयमें प्रस्फुरित होनेसे उनका हृदय भक्ति और उल्लाससे भर आया। समवसरणमें भक्तिके समय 'रे! रे! सीमन्धरनाथना विरहा पड्या आ भरतमां' यह पंक्ति आने पर, भगवानके विरह-वेदनसे पूज्य गुरुदेवका भक्तहृदय अत्यन्त द्रवीभूत हो गया था और नेत्रोंमेंसे अश्रुकी धारा बह निकली थी; उस विरहव्यथाका भक्तिभीना दृश्य अभी भी मुमुक्षुओंकी दृष्टि समक्ष घूमता है। श्री समवसरणमन्दिर बननेसे मुमुक्षुओंको समवसरणमें बिराजमान जिनेन्द्रभगवानके पावन दर्शनके साथ साथ सीमन्धर-कुन्दकुन्द मिलनका मधुर प्रसंग दृष्टिगोचर करनेका निमित्त प्राप्त हुआ।

वि. सं. १९९९ के श्रावण कृष्णा प्रतिपदाके रोज—श्री महावीरभगवानकी दिव्यध्वनि छूटनेके पावन दिन, वीरशासनजयंतीके मंगल दिन—सोनगढ़में पूज्य गुरुदेवने परमागम श्री प्रवचनसार पर व्याख्यान देना प्रारम्भ किया था। उसमें ज्ञेय अधिकार पर व्याख्यान देते समय, अनेक वर्षोंमें भक्तोंने जो सुना था उससे भी अधिक, कोई अचिंत्य, अद्‌भुत और अपूर्व ऐसे श्रुतका स्रोत पूज्य गुरुदेवश्रीके अन्तर आत्मामेंसे—उनकी निर्मल भावश्रुतज्ञानकी पर्यायमेंसे—बहने लगा। द्रव्यानुयोगके अश्रुतपूर्व अद्‌भुत न्यायोंसे भरा हुआ वह आश्चर्यकारी स्रोत जिन्होंने बराबर श्रवण किया होगा उनको उसकी महिमा अन्तरंगमें अंकित होगी। बाकी उसका वर्णन तो क्या हो सके? उस श्रुतामृतका पान करते समय ऐसा लगता था कि यह तो कोई सातिशय आश्चर्यकारी आत्मविभूति देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ! या कोई अचिंत्य श्रुतकी निर्मल श्रेणी देखनेका सुभाग्य संप्राप्त हुआ!

सं. १९९९ की भाद्रपद शुक्ला पंचमीको—दशलक्षण पर्युषणपर्वके प्रारम्भके दिन—सोनगढ़में कुमार जैन युवकोंके लिये, तत्त्वज्ञानका अभ्यास करानेके प्रयोजनसे, ब्रह्मचर्याश्रम स्थापित किया गया था। उसमें तीन वर्षका अभ्यासक्रम रखा गया था। उसमें शामिल होनेवाले ब्रह्मचारी भाई प्रतिदिन तीन घण्टे नियत की हुई धार्मिक पुस्तकोंका शिक्षण प्राप्त करते थे, प्राप्त किये हुए उस शिक्षणको एकांतमें स्वाध्याय और परस्पर चर्चा द्वारा दृढ़ करते थे व पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन, तत्त्वचर्चा, जिनेन्द्रभक्ति इत्यादि दैनिक क्रममें सम्मिलित होते थे; इसप्रकार सारा ही दिन धार्मिक प्रवृत्तिमें व्यतीत होता था।

ज्ञानध्यानरत गुरुदेवको अन्तरमें भावश्रुतकी लब्धि नये-नये न्यायोंसे जैसे-जैसे दिन-प्रतिदिन खिलती जा रही थी वैसे-वैसे उनका पुनीत प्रभावना-उदय भी प्रबलरूपसे वृद्धिंगत होता जा रहा था। सं. १९९९ की फाल्गुन शुक्ला पंचमीके दिन झालावाड़ होकर चातुर्मास हेतु राजकोट जानेके लिये पुनः विहार हुआ। पूज्य गुरुदेव, अमृत बरसते महामेघकी भाँति, मार्गमें आनेवाले हरेक ग्राममें अध्यात्म-अमृतकी झड़ी बरसाते थे और अनेकों—हजारों—तृषावन्त जीवोंकी तृषा शांत करते थे। जैनेतर भी पूज्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गुरुदेवका आध्यात्मिक उपदेश सुनकर आश्चर्यचकित रह जाते थे। जैनदर्शनमें मात्र बाह्य क्रियाकाण्ड ही नहीं हैं किन्तु उसमें तर्कशुद्ध सूक्ष्म अध्यात्मविज्ञान भरपूर भरा है ऐसा समझमें आने पर उन्हें जैनदर्शनके प्रति बहुमान प्रगटता था। पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रसारित आत्मविचारके प्रबल आन्दोलनोंसे प्रभावित होकर कितने ही अजैन तो वीतराग दिगम्बर जैनधर्मके श्रद्धालु हो गये थे। सचमुच गुरुदेवने आत्मसाधनाका अध्यात्म-पंथ दरशाकर भारतमें तथा विदेशमें हजारों जीवोंको जागृत किया है। सौराष्ट्रमें तो दिगम्बर जैनधर्मका नवसर्जन उन्हींने किया है। पूज्य गुरुदेवने अन्तरसे खोजा हुआ स्वानुभवप्रधान अध्यात्ममार्ग—दिगम्बर जैनधर्म ज्यों ज्यों प्रसिद्ध होता गया त्यों त्यों अधिकाधिक जिज्ञासु आकर्षित हुए; ग्राम-ग्राममें मुमुक्षुमण्डलोंकी स्थापना हुई। सम्प्रदायत्यागसे जगी विरोधकी आँधी शाँत हो गई। पूज्य गुरुदेवका प्रभावना उदय दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक विकसित होता गया।

मात्र बड़ी उम्रमें गृहस्थ ही नहीं किन्तु छोटी उम्रके बच्चे भी पूज्य गुरुदेवके तत्त्वज्ञानमें उत्साहपूर्वक भाग लेते थे। गुरुदेवके भक्त हजारोंकी संख्यामें बढ़ने लगे। संवत् १९९८ से प्रतिवर्ष विद्यार्थियोंको धार्मिक शिक्षा देने हेतु ग्रीष्मशिबिर खोला जाता था, विद्यार्थी उसमें उत्साहसे भाग लेते थे, लिखित परीक्षाएँ ली जातीं और पुरस्कार दिये जाते। सं. २००४ से श्रावण मासमें प्रौढ़ गृहस्थोंके लिये भी शिक्षणशिबिर चलता है।

पूज्य गुरुदेवके भक्त देश-विदेशमें जगह-जगह निवास करते हैं, उन्हें गुरुदेवके अध्यात्म-उपदेशका नियमित लाभ प्राप्त हो तदर्थ सं. २००० के मगसिर महीनेसे 'आत्मधर्म' गुजराती मासिक पत्रका प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। तत्पश्चात् करीब डेढ वर्ष बाद हिन्दी 'आत्मधर्म'का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। बीचमें कुछ वर्षो तक 'सद्गुरुप्रवचन-प्रसाद' नामका दैनिक प्रवचन-पत्र प्रकाशित होता था। तदुपरान्त समयसार, प्रवचनसारादि मूल शास्त्र तथा प्रवचन-ग्रन्थ इत्यादि अध्यात्मसाहित्यका विपुल मात्रामें—लाखोंकी संख्यामें–प्रकाशन हुआ, हजारों प्रवचन टेप-रिकार्ड किये गये, जिनसे पूज्य गुरुदेवका अध्यात्म-उपदेश घर–घरमें गूंजने लगा।

पूज्य गुरुदेवके मंगल प्रतापसे सोनगढ़ 'अध्यात्म-तीर्थधाम'के रूपमें बदल गया। सोनगढ़का शांत अध्यात्ममय वातावरण और वैविध्यपूर्ण धार्मिक कार्यक्रम देखकर बाहरसे आनेवाले जिज्ञासु मुग्ध हो जाते थे। सोनगढ़में उत्सव, मात्र रूढ़िगत शैलीसे नहीं किन्तु तदनुरूप भावभीने वातावरणमें एक विशिष्ट अनोखी शैलीसे मनाये जाते थे। कुछ दिन यहाँ रहनेवाले जिज्ञासुको फिर कहीं और जगह जाना अच्छा नहीं लगता था और उसे ऐसा लगता था कि—वास्तवमें आत्मार्थीकी अध्यात्म-साधनाका पोषक एवं प्रोत्साहक शांत धार्मिक वातावरण गुरुदेवके इस पवित्र धाम जैसा अन्यत्र कहीं नहीं है?

सं. २००२ की ज्येष्ठ कृष्णा छठके दिन दिगम्बर जैन समाजके सुप्रसिद्ध अग्रिम नेता, इन्दौरके श्री सेठ हुकमचन्दजी पूज्य गुरुदेवकी आध्यात्मिक ख्याति सुनकर, गुरुदेवके दर्शन तथा सत्संग हेतु सोनगढ़ आये। वे पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन सुनकर एवं भक्ति आदिका अध्यात्मरसयुक्त वातावरण देखकर अत्यन्त प्रभावित हुए। पूज्य गुरुदेवके श्रीमुखसे विशिष्ट बातें सुनकर तथा समवसरणकी रचना देखकर उन्हें अति प्रसन्नता हुई। श्री सेठ हुकमचन्दजीके आनेके बाद दिगम्बर समाजका प्रवाह सोनगढ़की ओर विशेष बढ़ने लगा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

धीरे-धीरे सोनगढ़ एक अध्यात्मविद्याका अनुपम केन्द्र—तीर्थधाम बन गया। बाहरसे हजारों मुमुक्षु भाई-बहिन, दूर-दूरसे अनेक दिगम्बर जैन, पण्डित, त्यागी, ब्रह्मचारी पूज्य गुरुदेवश्रीके उपदेशका लाभ लेने हेतु आने लगे।

पूज्य गुरुदेवका पावन प्रभावना-उदय बढता गया, जिज्ञासुओं की आमद बढ़ती हुई, उत्सवके दिनोंमें स्वाध्यायमन्दिर छोटा लगने लगा। इसलिये जिसमें ढाई हजार लोग अच्छी तरह बैठकर प्रवचन सुन सकें ऐसा विशाल, बीचमें खम्भे रहित, अनेक पौराणिक सुन्दर चित्रों एवं तत्त्वबोधक सुन्दर सैद्धांतिक सुवाक्योंसे सुशोभित 'श्री कुन्दकुन्द-प्रवचन-मंडप'का निर्माण हुआ। संवत् २००३ की फाल्गुन शुक्ला प्रतिपदाके दिन उसका उद्‌घाटन करते हुए श्री सेठ हुकमचन्दजी आनन्दविभोर होकर बोले कि—'मेरे हृदयमें ऐसा भाव आ जाता है कि अपनी सारी सम्पत्ति इस सद्धर्मकी प्रभावना हेतु न्योच्छावर कर दूँ तब भी कम है।'

तत्पश्चात् फाल्गुन शुक्ला तीजके दिन वींछिया ग्राममें, सोनगढ़के बाद सर्व प्रथम दिगम्बर जिनमन्दिरका श्री सेठ हुकमचंदजीके शुभ हस्तसे शिलारोपण हुआ।

संवत् २००३ की चैत्र-कृष्णा तीजको सोनगढ़में भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्‌परिषदका वार्षिक अधिवेशन पं. श्री कैलाशचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री (बनारस)की अध्यक्षतामें हुआ। उस अधिवेशनका प्रसंग अत्यन्त प्रभावशाली था। सोनगढ़का अध्यात्ममय वातावरण देखकर तथा पूज्य गुरुदेव द्वारा हो रही दिगम्बर जैनधर्मकी अध्यात्मतत्त्वप्रचार-प्रमुख अभिवृद्धिको देखकर सभी विद्वान खूब ही प्रभावित हुए थे।

पूज्य गुरुदेवका समग्र जीवन ब्रह्मचर्यके अद्‌भुत तेजसे अतिशय देदीप्यमान था। उनको पहलेसे ही ब्रह्मचर्यका असीम प्रेम था। दीक्षित पर्यायमें उन्हें मात्र शास्त्रस्वाध्याय एवं तत्त्वचिंतनकी ही धुन रहती थी। चारित्रका पालन भी वे सख्तीसे करते थे; स्त्रियोंके प्रति न तो वे कभी दृष्टि डालते और न ही कभी उनसे वार्तालाप करते थे। सम्प्रदायमें एक बार उनके गुरुने कहा : 'कानजी! इस बहिनको शास्त्रकी गाथा समझा दो।' पूज्य गुरुदेवने उनकी बातका अस्वीकार करते हुए सविनय कहा कि—'महाराज! स्त्रियोंके सम्पर्कमें आना पड़े ऐसा कोई कार्य मुझे कभी न सोंपे।' अहा! कैसा प्रबल वैराग्य! ब्रह्मचर्यका कैसा अद्‌भुत रंग! पूज्य गुरुदेव, स्त्रियोंके प्रति अत्यन्त उपेक्षावृत्तिसे, मात्र पुरुषोंकी सभा पर दृष्टि जाय इस प्रकार, प्रवचनमें कुछ टेढ़े पुरुषाभिमुख बैठते थे; स्त्रियोंको न तो कभी सम्बोधन करते और न उनके साथ कभी प्रश्नोत्तर। दो बारके प्रवचनोंके सिवा, तत्त्वचर्चा आदि पुरुषोंके कार्यक्रममें स्त्रियोंको आनेका सख्त प्रतिबन्ध था। पुरुषोंके धार्मिक शिबिरोंमें भी स्त्रियोंको बैठनेकी गुरुदेव सख्त मनाई करते थे। अकेली तो नहीं, किन्तु एकसे अधिक स्त्रियाँ भी, साथमें पुरुषकी उपस्थितिके बिना, उनके दर्शन करने नहीं आ सकती थीं। कोई स्त्रियाँ भूलसे भी यदि, दो प्रवचन तथा जिनेन्द्रभक्तिके सिवा, तत्त्वचर्चा आदि अन्य कार्यक्रमोंमें आजायँ, तो पूज्य गुरुदेव जोरसे निषेध करते और उन्हें स्थान छोड़कर चले जानेको बाध्य होना पड़ता।

स्वानुभवसमृद्ध-शुद्धात्मतत्त्वविज्ञानी ऐसे पूज्य गुरुदेवके ब्रह्मचर्यकी छाप समाज पर खूब पड़ती थी। उनके ब्रह्मचर्यमय आध्यात्मिक जीवनसे प्रभावित होकर निज हितार्थ कुछ कुमार भाइयोंने, अनेक कुमारिका बहिनोंने तथा अनेक दम्पतियोंने आजीवन ब्रह्मचर्यपालनकी प्रतिज्ञा ली थी।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सं. २००५, कार्तिक शुक्ला त्रयोदशीके दिन छह कुमारिका बहिनोंने पूज्य गुरुदेवके संमक्ष आजीवन ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा अंगीकार की। बादके वर्षोंमें क्रमशः ऐसी ही अन्य चौदह, आठ, नौ एवं ग्यारह कुमारिका बहिनोंने एक साथ, तथा अलग-अलग अन्य अनेक कुमारिका बहिनोंने भिन्न-भिन्न प्रसंगों पर, पूज्य गुरुदेवके समक्ष ब्रह्मचर्य-प्रतिज्ञा ली। अहा! वास्तवमें इस भौतिक विलास-प्रचुर युगमें वीतरागविज्ञानके अध्ययन हेतु प्रशममूर्ति स्वात्मज्ञ पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनकी कल्याणकारी शरणमें जीवनको वैराग्यमें ढालनेका यह अनुपम आदर्श पूज्य गुरुदेवके पुनीत प्रभावनायोगका एक विशिष्ट अंग है।

गुरुदेवका प्रभाव एवं अध्यात्मका प्रचार भारतमें शीघ्रतासे फैलने लगा। सौराष्ट्रमें जगह-जगह दिगम्बर जिनमन्दिरोंकी तैयारी होने लगी। लोगोंकी जिज्ञासा बढ़ती गई और अधिकाधिक जिज्ञासु सोनगढ आकर लाभ लेने लगे।

पूज्य गुरुदेवके पुनीत प्रभावसे सौराष्ट्र-गुजरातमें दिगम्बर वीतराग जैनधर्मके प्रचारका एक अद्‌भुत अमिट आन्दोलन फैल गया। जो मंगल कार्य भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवने गिरनार पर वादके समय किया था उसी प्रकारका दिगम्बर जैनधर्मकी सनातन सत्यताकी प्रसिद्धिका गौरवपूर्ण कार्य अहा! पूज्य गुरुदेवने श्वेताम्बर बहुल प्रदेशमें रहकर, अपने स्वानुभूतिमुद्रित सम्यक्त्वप्रधान सदुपदेश द्वारा हजारों स्थानकवासी-श्वेताम्बरोंमें श्रद्धाका परिवर्तन लाकर, सहजरूपसे तथापि चमत्कारिक ढंगसे किया। सौराष्ट्रमें नामशेष हो गये दिगम्बर जैनधर्मके—पूज्य गुरुदेवके प्रभावनायोगसे जगह-जगह निर्मित दिगम्बर मन्दिर, उनकी मंगल प्रतिष्ठाएँ तथा आध्यात्मिक प्रवचनों द्वारा हुए—पुनरुद्धारका युग आचार्यवर श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीके मन्दिरनिर्माण-युगका स्मरण कराता है। अहा! कैसा अद्‌भुत आचार्यतुल्य उत्तम प्रभावनायोग!

पूज्य गुरुदेवने दो-दो बार विशाल मुमुक्षु-संघ सहित की पूर्व, उत्तर एवं दक्षिण भारतके जैन तीर्थोंकी यात्रा तथा उस अरसेमें पूज्य गुरुदेवके श्रीमुखसे प्रवाहित सत्यतत्त्व-प्रकाशक प्रवचनों द्वारा हुई अभूतपूर्व प्रभावनाकी तो बात ही क्या! गाँव—गाँवमें भव्य स्वागत, चौराहे-चौराहे पर वधाई, उमड़ता हुआ मानवसमुदाय, श्रद्धा-भक्ति व्यक्त करते अभिनन्दन-समारोह;—जैन जनतामें धर्मोत्साहकी ऐसी लहर फैल जाती मानों तीर्थंकरभगवानका समवसरण आया हो! गुरुदेवकी अध्यात्मतत्त्व सम्बन्धी गर्जना सुनकर विरोधी काँप उठते, हजारों जिज्ञासुओंके हृदय प्रभावित होकर नाच उठते! अहा! तीर्थयात्राके दौरान हुई धर्म प्रभावनाका आनन्दोल्लासकारी चित्र प्रत्यक्षदर्शी मुमुक्षुओंके स्मृतिपट पर आज भी अंकित हैं।

अहो! उस अभूतपूर्व यात्राका क्या वर्णन हो सके! गुरुदेव जहाँ-जहाँ पधारते वहाँ ऐसा भव्य स्वागत होता कि वहाँकी अजैन जनता भी आश्चर्यमग्न हो जाती और प्रमोदमें बोल उठती कि—अहा कौन हैं यह सन्त पुरुष? अपनी नगरीमें हमने ऐसा भव्य और विशाल स्वागत नहीं देखा। इन्दौरमें हुआ असाधारण भव्य स्वागत तो विशिष्टरूपसे अविस्मरणीय है! पूज्य गुरुदेवके मंगल पदार्पणसे सर सेठ श्री हुकमचन्दजी तो अत्यन्त आनंदित हुए थे और उन्होंने अति आनन्दविभोर होकर हाथी-घोड़े तथा उनका सोने-मखमलका सारा कीमती साज-सामान पूज्य गुरुदेवकी स्वागतयात्राकी विशिष्ट शोभा हेतु निकालनेका अपने लोगोंको आदेश दिया था। इन्दोरमें हुए पूज्य गुरुदेवके प्रवचन भी कोई अद्‌भूत थे। पण्डित, त्यागी और समाज खूब प्रभावित हुए थे।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सं. २०१३, फाल्गुन शुक्ला सप्तमीके दिन पूज्य गुरुदेवने लगभग दो हजार भक्तों सहित श्री सम्मेदशिखरकी जीवनमें प्रथम बार यात्रा की। (दूसरी बार सं. २०२३ में की) अहा! पहली टोंक पर—श्री कुन्थुनाथ भगवानकी टोंक पर—पूज्य गुरुदेवने सम्मेदशिखर तीर्थकी, वहाँसे मोक्ष पधारे तीर्थंकरों तथा सामान्य केवलियोंकी, निर्वाणधामके रूपमें सम्मेदशिखरकी शाश्वतताकी एवं तीर्थयात्राकी, अध्यात्मसाधनाके साथ सुसंगत जो अद्भुत महिमा बतलायी थी उस मधुर प्रसंगका सुस्मरण आज भी भक्तोंको आनन्दित कर देता है। मधुवनमें पाँचेक हजार श्रोताओंकी सभामें जो अद्भुत प्रवचनधारा बहती उससे विद्वान तथा त्यागी भी प्रभावित होते थे। इन्दौरनिवासी पं. श्री बंशीधरजी न्यायाचार्यने अपने भावभीने भाषणमें गद्‌गद्‌भावसे साहसपूर्वक समाजसे स्पष्ट कहा था कि—अनन्त चौबीसीके तीर्थंकरों तथा आचार्योंने सत्य दिगम्बर जैनधर्मको अर्थात् मोक्षमार्गको प्रगट करनेवाला जो सन्देश दिया था वह इन कानजीस्वामीकी वाणीमें हमें सुनायी दे रहा है।

सं. २०१५में करीब सातसौ भक्तों सहित गुरुदेवने दक्षिण भारतके जैन तीर्थोंकी मंगल यात्रा हेतु प्रस्थान किया। कुन्दाद्रि, रत्नप्रतिमाओंका धाम मूडबिद्री, विश्वविख्यात बाहुबलिधाम—श्रवणबेलगोला, कुंदकुंदाचार्यदेवकी तपोभूमि पोन्नूर आदि दक्षिण भारतके तथा मध्य भारतके अनेक तीर्थधामोंकी अति आनन्दपूर्वक मंगल यात्रा की। प्रवासके मार्गमें आनेवाले अनेक छोटे-बड़े नगरोंमें अध्यात्मविद्याकी वर्षा की। गाँव-गाँवमें भव्य स्वागत एवं अभिनन्दन-समारोह हुए। पूज्य गुरुदेवके दक्षिण भारतमें पदार्पणसे वहाँका समाज अति आनन्दित हुआ था और लोग उल्लास व्यक्त करते थे कि—जिस प्रकार श्री भद्रबाहुस्वामी हजारों शिष्यों सहित उत्तर भारतसे पधारे थे, उसी प्रकार अहा! श्री कानजीस्वामी हजारों भक्तों सहित पश्चिम भारतसे दक्षिण भारतमें पधारे और धर्मका महान उद्योत किया। (वि. सं. २०२० में दक्षिण भारतकी दूसरी बार यात्रा की थी।)

अध्यात्ममूर्ति स्वानुभूतिसम्पन्न पवित्रात्मा पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रभावनागगनके धर्मोद्योतकारी अपार प्रसंगसितारोंको गिननेसे गिना नहीं जा सकता। एक घटना याद करो और दूसरी भूलो—ऐसी तो अनेक अद्भुत शासनप्रभावनापूर्ण घटनाओंसे पूज्य गुरुदेवका जीवन विभूषित है। सोनगढ पूज्य गुरुदेवके पावन सत्समागम तथा प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनकी पवित्र छायामें अध्यात्मतत्त्वाभ्यासपूर्वक जीवन जीने हेतु, गुरुदेवके समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा अंगीकार करके, रहनेवाली कुमारिका ब्रह्मचारिणी बहिनोंके लिये 'श्री गोगीदेवी दिगम्बर जैन श्राविकाब्रह्मचर्याश्रम'की स्थापना हुई; संगमरमरनिर्मित गगनचुम्बी भव्य मानस्तंभ, श्री महावीर भगवानके विशाल भव्य जिनबिम्बयुक्त तथा समयसारादि परमागमोंकी सुन्दर कारीगरीसे अत्यंत सुशोभित अनुपम एवं अद्भुत 'श्री महावीरकुन्दकुन्द दिगम्बर जैन परमागममन्दिर' आदिके निर्माणकार्य हुए तथा उनके प्रतिष्ठामहोत्सव मनाये गये; सौराष्ट्र, गुजरात और हिन्दीभाषी प्रदेशोंमें अनेक नगरों एवं ग्रामोंमें मुमुक्षुमण्डलोंकी स्थापना हुई, दिगम्बर जिनमन्दिर तथा समवसरण आदि रचे गये और उनकी भव्य प्रतिष्ठाएँ हुईं; तथा विदेश (नाइरोबी) प्रवास और वहाँ दिगम्बर जिनमन्दिरकी भव्य प्रतिष्ठा तथा अध्यात्मतत्त्वोपदेश द्वारा सनातन सत्य जैनधर्मका प्रचार हुआ।—इस प्रकार पूज्य गुरुदेवके पावन प्रभावना-उदययोगमें विविधरंगी धर्मोद्योत हुआ। अहा! पूज्य गुरुदेव द्वारा हुए धर्मप्रभावनाके उन पावन प्रसंगोंके संस्मरण आज भी भक्तोंके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तनको रोमांचित तथा मनको प्रफुल्लित कर देते हैं! वास्तवमें पूज्य गुरुदेवने इस युगमें एक प्रभावक आचार्य जैसा अद्‌भुत एवं अनुपम कार्य किया है।

पूज्य गुरुदेवके पुनित प्रतापसे सोनगढका जीवन ही जगतसे बिलकुल निराला था। प्रतिदिन प्रातः देव-गुरुके दर्शन, जिनेन्द्रपूजा, दो बार पूज्य गुरुदेवके अध्यात्मरस झरते प्रवचन, जिनेन्द्रभक्ति, भगवानकी आरती और तत्त्वचर्चा आदि कार्यक्रम नियमित चलते थे; तदुपरान्त सत्‌साहित्यकी—मूल शास्त्रों तथा प्रवचनोंकी—लाखों पुस्तकें और 'आत्मधर्म' पत्र प्रकाशित हुए। सोनगढमें तथा सौराष्ट्र, गुजरात और भारतके अन्य नगरोमें अनेक पंचकल्याणकपुरस्सर जिनबिम्ब–प्रतिष्ठाएँ, वेदी–प्रतिष्ठाएँ हुई। उस हेतु तथा तीर्थयात्राके निमित्तसे भारतवर्षमें अनेक बार गुरुदेवके जिनशासनप्रभावकारी मंगलविहार हुए, लाखों लोगोंने गुरुदेवकी अश्रुतपूर्व अध्यात्मदेशना श्रवण की और हजारों लोगोमें धार्मिक रुचि उत्पन्न हुई! इस तरह विविध प्रकारसे कल्पनातीत व्यापक धर्मोद्योत गुरुदेव द्वारा हुआ।

यह असाधारण धर्मोद्योत स्वयमेव बिना-प्रयत्नके साहजिक रीतिसे हुआ है। गुरुदेवने धर्मप्रभावनाके लिये कभी किसी योजनाका विचार नहीं किया था। मन्दिर बनवानेकी, प्रतिष्ठाएँ करानेकी, पुस्तकें छपवानेकी या धार्मिक शिक्षण–शिबिर चलानेकी–ऐसा किसी प्रकारकी प्रवृत्तियोंमें वे कभी नहीं पड़ते थे। वह उनकी प्रकृतिमें ही नहीं था। मुनिको कोई कर्मप्रक्रमके परिणाम नहीं होते अर्थात् मुनि किसी प्रवृत्तिका कार्यभार नहीं लेते–इस प्रवचनसारकी बातका विवरण करते हुए, मानों अपने हृदयकी बात शास्त्रमेंसे निकल आयी हो इस प्रकार, वे बड़े प्रफुल्लित हो उठते थे। उनका समग्र जीवन निजकल्याणसाधनाको समर्पित था! जगत जगतकी जाने, मुझे अपना करना है—यह उनका हृदय था। 'आप मूए सब डूब गई दुनिया' यह कबीरने गाया है परन्तु गुरुदेवको तो जीवित ही 'मेरे लिये कोई है नहि दुनिया' ऐसी परिणति जीवनमें ओतप्रोत हो गई थी। अहा! कैसी आश्चर्यकारी निस्पृह दशा!

जिन्होंने जो सुधाझरती आत्मानुभूति प्राप्त की थी, जिन कल्याणकारी तथ्योंको आत्मसात् किया था, उसकी अभिव्यक्ति 'वाह! ऐसी वस्तुस्थिति!' ऐसे विविध प्रकारसे सहजभावसे उल्लासपूर्वक उनसे हो जाती, जिसकी गहरी आत्मार्थप्रेरक छाप श्रोताओंके हृदयपट पर अंकित हो जाती। मुख्यतया इस प्रकार उनके द्वारा सहजरूपसे धर्मका उद्योत हो गया था।

पूज्य गुरुदेवके निमित्तसे ऐसी प्रबल बाह्य प्रभावना होने पर भी वह स्वयं सहजरूपसे हो गई थी। गुरुदेवको बाह्यमें किंचित् मात्र रस नहीं था। उनका जीवन तो आत्माभिमुख था। उनका दैनिक क्रम प्रायः निज ज्ञान, ध्यान एवं शास्त्रस्वाध्यायमें व्यतीत होता था। देवदर्शन, शास्त्रप्रवचन, जिनेन्द्रभक्ति और तत्त्वचर्चाके सिवा अन्य प्रवृत्तिके प्रति उपेक्षाभाव वर्तता था। न कभी किसीके साथ इधर–उधरकी बातें करते और न कभी पुस्तक प्रकाशनादि बाह्य कार्योंमें रुचि बतलाते। गुरुदेवकी परिणति ऐसी आत्मोन्मुख एवं वैराग्यपरिणत थी कि उन्हें सरस–नीरस आहारके प्रति लक्ष भी नहीं जाता था। वे हमेशा सादा आहार लेते थे। जो भी आहार आये उसे उपेक्षित एवं उदासन भावसे ग्रहण कर लेते थे। उनका जीवन मात्र आत्माभिमुख था। वे जगतसे बिलकुल उदास–उदास थे। गुरुदेवके परम पावन आदर्श जीवनसे, उनकी पवित्र आत्मसाधनासे, प्रभावित होनेके कारण जिज्ञासुओंके दल हजारोंकी संख्यामें पूज्य गुरुदेवकी अध्यात्मरसझरती वाणीके प्रति आकर्षित हुए। हजारों भक्तोंके श्रद्धाजीवन एवं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भक्तिजीवन गुरुदेवके पुनीत चरणोंमें अर्पित हुए। अहा! गुरुदेवके प्रतापसे, मरुस्थलमें मीठे कुएकी भाँति, पंचम कालके इस भौतिक विलासके विषमय युगमें चतुर्थ कालका अंश–धर्मकालका प्रवर्तन हुआ। वास्तवमे गुरुदेवने इस कालमें अनेकान्तसुसंगत शुद्धात्मविद्याके नवयुगका प्रवर्तन किया है।

सचमुच तो पूज्य गुरुदेव इन सब कार्योंके 'कर्त्ता' थे ही नहीं, वे तो अंतरसे केवल उनके 'ज्ञाता' ही थे। उनकी दृष्टि और जीवन आत्माभिमुख था। बाह्य कार्य तो 'अकर्ता'भावसे–ज्ञाताभावसे सहजरूपसे हो गये थे। स्वानुभूतिसमन्वित भेदज्ञानधारामेंसे प्रवाहित शुद्धात्मदृष्टिजनक अध्यात्मोपदेश द्वारा आत्मकल्याणका मार्ग बतलाया यही वास्तवमें उनका हमारे ऊपर असाधारण महान-महान मुख्य उपकार है। वे बारम्बार कहते थे—अल्पायुषी मनुष्यभवमें निज कल्याण साधना तथा उसके कारणभूत सम्यग्दर्शन प्राप्त करना ही परम कर्तव्य है। सम्यग्दर्शनका माहात्म्य अपार है।

श्रीमद्राजचंद्रजीने कहा है 'अनंत कालसे जो ज्ञान भवहेतु होता था उस ज्ञानको एक समयमात्रमें जात्यन्तर करके जिसने भवनिवृत्तिरूप किया उस कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शनको नमस्कार।' अरेरे! इस भवान्तकारी सम्यग्दर्शन—निजशुद्धात्मदर्शन—विना अनादिकालसे अनन्त-अनन्त जीव संसारपरिभ्रमणके दुःख भोग रहे हैं। जीव चाहे जितने व्रत-तपादि क्रियाकाण्ड करे या शास्त्रोंका ज्ञान कर ले, किन्तु जब तक रागको और परलक्षी ज्ञानकी दृष्टि तथा उसकी महिमा छोड़कर भीतर त्रैकालिक आत्मस्वभावकी महिमा न समझे, अन्तर्मुख दृष्टि न करे तब तक उसकी गति संसारकी ओर है। उसमेंसे जो कोई विरल जीव सुगुरुगमसे तत्त्वको समझकर अपूर्व पुरुषार्थपूर्वक अपनी परिणति अन्तर्मुख करके सम्यग्दर्शन—निज शुद्धात्मानुभूति—प्राप्त कर ले उसीने वास्तवमें, संसारमार्ग पर चले जानेवाले विशाल पान्थसमुदायसे अलग होकर, मोक्षमार्ग पर अपना प्रयाण प्रारंभ किया है। भले ही वह धीमी गतिसे चलता हो, असंयमदशा हो, अंतरमें साधनाका—स्थिर हो जानेका उग्र पुरुषार्थ न हो, तथापि उसकी दिशा मोक्षके ओरकी है, उसकी जाति मोक्षमार्गीकी है। सम्यग्दर्शनका ऐसा अद्‌भुत माहात्म्य कल्याणार्थीके हृदयमें उतर जाना चाहिये।

अहा! मात्र सम्यग्दृष्टि होनेका इतना माहात्म्य है, तो फिर भवसागर पार कर लेनेका अमोघ उपाय बतलानेवाले ऐसे प्रत्यक्ष–उपकारी सम्यग्दृष्टिके माहात्म्यकी तो बात ही क्या? ऐसे अपने परम-उपकारी सम्यग्दृष्टि सातिशयमाहात्म्यवन्त कृपालु कहानगुरुदेवके प्रति अपना सर्वस्व न्योच्छावर कर दें तो वह भी कम है।

पूज्य गुरुदेवने 'भगवान आत्मा....भगवान आत्मा....ज्ञायक' ऐसी ज्ञायकदेवकी मधुर ध्वनि सदैव जीवन्तपर्यन्त गुँजायी। भौतिक जगतमें जहाँ विशाल जनसमुदाय आत्माके अस्तित्व सम्बन्धमें भी शंकाशील है, वहाँ गुरुदेवने युक्ति तथा स्वानुभवके अत्यन्त बलपूर्वक भेरी बजाई कि—एक ज्ञायक आत्मा ही मैं हूं, मैं सर्वके उपर तैरता परम पदार्थ हूँ। वे आत्माकी मस्तीमें गाते थे कि—'परम निधान प्रगट मुख आगळे, जगत उलंघी हो जाय जिनेश्वर'। उन्हें आश्चर्य होता कि–यह, भीतर दृष्टिके समक्ष ही, परम निधान—समृद्धिसे भरपूर ज्ञायकतत्त्व—विद्यमान है उसका उल्लंघन करके–उसे लाँघकर–जगत क्यों चला जाता है? 'यह वस्तु सच्ची', 'यह वस्तु यहाँ यह दिख रही' इस प्रकार दृश्य वस्तुको वह देखता है, किन्तु उसके देखनेवालेको वह क्यों नहीं देखता? क्यों उसे लाँघकर चला जाता है?

T-4.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सर्व दृश्य वस्तुओंके द्रष्टाकी—परम–निधानकी—स्वानुभवयुक्त प्रतीति गुरुगमसे होती है। अहा! ऐसे उस पवित्र गुरुगमके दाता अपने परमोपकारी गुरुदेव अपनेको परम सौभाग्यसे प्राप्त हुए।

पूज्य गुरुदेव कहते थे कि—विश्वके सर्व द्रव्य परिपूर्ण स्वतंत्र हैं। सभी द्रव्योंके गुण-पर्याय अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भिन्न-भिन्न हैं। आत्मद्रव्यका शरीरादि पर द्रव्योंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्मा अन्य पदार्थोंसे बिलकुल भिन्न रहकर अपने शुभ, अशुभ या शुद्ध भावको स्वयं ही करता है। यहां स्वाभाविकरूपसे ही प्रश्न होता है कि "(श्री प्रवचनसार–शास्त्रमें कहे अनुसार) शुभ या अशुभ परिणमनमें 'शुभ या अशुभ' आत्मा बने"—ऐसा आप कहते हैं और साथ ही "आत्मा 'सदा शुद्ध' रहता है, जिस शुद्धताका आश्रय करना मोक्षमार्ग है"—ऐसा भी आपका कहना है; इन दोनों बातोंका मेल किस प्रकार है।

इस अत्यन्त–अत्यन्त महत्वकी बातका स्पष्टीकरण गुरुदेव इस प्रकार करते थेः–स्फटिकमणि लाल वस्त्रके संयोगसे लाल होता है तब भी उसकी निर्मलता सर्वथा नष्ट नहीं हो गई है, सामर्थ्य-अपेक्षासे—शक्ति-अपेक्षासे वह निर्मल रहा है; वह लालीरूप अवश्य परिणमित हुआ है, वह लाली स्फटिककी ही है, वस्त्रकी बिलकुल नहीं; परन्तु वह लाली लालरंगके चूरेकी, हिंगड़ेकी या कुकुंमकी लाली जैसी नहीं है; लाल दशाके समय भी सामर्थ्यरूप निर्मलता विद्यमान है। उसी प्रकार आत्मा कर्मके निमित्तसे शुभभावरूप या अशुभभावरूप होता है तब भी उसकी शुद्धता सर्वथा नष्ट नहीं हो गई है, सामर्थ्य-अपेक्षासे—शक्ति-अपेक्षासे वह शुद्ध रहा है; वह शुभाशुभभावरूप अवश्य परिणमित हुआ है, वह शुभाशुभपना आत्माका ही है, कर्मका बिलकुल नहीं; परन्तु शुभाशुभ दशाके समय भी सामर्थ्यरूप शुद्धता विद्यमान है। जिस प्रकार स्फटिकमणिको लाल हुआ देखकर कोई बालक रोने लगे कि 'अरेरे! मेरा स्फटिकमणि सर्वथा मैला हो गया', किन्तु जौहरी तो उस लालीके समय ही विद्यमान निर्मलताकी मुख्यतापूर्वक जानता होनेसे वह निर्भय रहता है; उसी प्रकार आत्माको शुभाशुभभावरूप परिणमता देखकर अज्ञानी उसे सर्वथा मलिन हुआ मानकर दुःखी-दुःखी हो जाता है, परन्तु ज्ञानी शुभाशुभपनेके समय ही विद्यमान शुद्धताको मुख्यतापूर्वक जानता होनेसे वह निर्भय रहता है।

सामर्थ्य कहो, शक्ति कहो, सामान्य कहो, ज्ञायक कहो, ध्रुवत्त्व कहो, द्रव्य कहो या परमपारिणामिक भाव कहो—यह सब एकार्थ हैं ऐसा गुरुदेव कहते थे।

आत्मा 'भविष्यमें' सर्वज्ञ होगा, सम्पूर्ण सुखी होगा, निर्विकारी होगा ऐसा नहीं, किन्तु 'वर्तमानमें ही' वह सामर्थ्य-अपेक्षासे सम्पूर्ण विज्ञानघन है, अनन्तानन्दका पिण्ड है, निर्विकारी है, जिसकी ज्ञानीको स्पष्ट अनुभवसहित प्रतीति होती है। गुरुदेव कहते कि—**'तेरो सरूप न दुंदकी दोहीमें, तोहीमें है तोही सूझत नाहीं'**। तेरा स्वरूप राग-द्वेषादि द्वन्द्वकी दुविधामें नहीं है, इसी समय राग–द्वेष रहित है; उसकी सुझसे ही मोक्षमार्ग प्रारम्भ होता है। उसकी सूझके बिना तू संसारमें परिभ्रमण करता है।

सामर्थ्यरूप (शक्तिरूप) शुद्धत्त्वके–ध्रुवत्त्वके भान बिना शुद्ध परिणति नहीं होती। ध्रुवत्व अर्थात् अन्वयका अर्थ मात्र 'वह....वह....वह' इतना ही नहीं, किन्तु केवलज्ञान सामर्थ्यसे भरपूर, अनन्तसुखसामर्थ्यसे भरपूर, अनन्तवीर्यादिसामर्थ्यसे भरपूर ऐसा 'वह..वह...वह'—ऐसा अन्वय, ऐसा सामान्य, ऐसा परमपारिणामिक भाव, ऐसा ज्ञायक। ऐसे शुद्धज्ञायकका गुरुदेव सतत अनुभव कर रहे थे इससे उनको

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

निरन्तर आंशिक शुद्धपरिणति वर्तती थी। उनके साथ वर्तनेवाला प्रयोजनभूत विषयोंका-द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, नव तत्त्व, निश्चय–व्यवहार, उपादान-निमित्त, मोक्षमार्ग इत्यादिका—ज्ञान भी उनको विशदतापूर्वक सम्यक्‌रूपसे परिणमता था जिससे शास्त्रोंके लुप्तप्राय हो गये सच्चे भाव उनके द्वारा खुले और जगतमें खूब प्रचलित हुए।

वे कहते थे कि—'अहो जीवों! अशुभ तथा शुभ दोनों भाव बन्धके कारण हैं, मोक्षके नहीं।' 'तो मोक्षका कारण कौन?' 'शुद्ध भाव।' 'कषाय कम करें उतना तो शुद्ध भाव होगा न?' दृढ़तासे उत्तर मिलता कि 'वह तो शुभ भाव है; निरन्तर शुद्ध ऐसे निज आत्मपदार्थको श्रद्धना–जानना और उसमें लीन होना वह शुद्ध भाव है'। 'अशुद्धभावके समय भी शुद्ध? अशुद्ध और शुद्ध एकसाथ कैसे हो सकते हैं?' 'हो सकते हैं। **यद्‌ विशेषेपि सामान्यं एकमात्रं प्रतीयते।** अशुद्ध विशेषोंके समय भी सामान्य तो एकरूप —शुद्धरूप रहता है।' शुभाशुभ पर्यायके समय भी भीतर स्वभावमें सामर्थ्यरूपसे परिपूर्ण भरपूर शुद्धता भरी पड़ी है वह बात, श्री पंचाध्यायीके **'सन्त्येनकेत्र दृष्टान्ता हेमपद्मजलाऽनलाः। आदर्शस्फटिकाश्मानौ बोधवारिधिसैन्धवाः॥'**—इस श्लोकमें कहे गये सुवर्ण, कमल, जल, अग्नि, दर्पण, स्फटिकमणि, ज्ञान, समुद्र एवं लवणके दृष्टांतो द्वारा गुरुदेव समझाते थे। विशेष-अपेक्षासे होनेवाली अशुद्धताके समय भी सामान्य अपेक्षासे रहनेवाली द्रव्यकी शुद्धता. समझाते हुए गुरुदेव कहते कि—द्रव्य-अपेक्षासे वर्तमानमें शुद्धता विद्यमान न हो तो किसीकाल पर्यायशुद्धता हो ही नहीं सकती। जहाँ अज्ञानी विशेषोंका आस्वादन करते हैं वहीं ज्ञानी सामान्यके आविर्भावपूर्वक स्वाद लेते हैं। यही संक्षेपमें बन्धमार्ग और मोक्षमार्गका मूलभूत रहस्य है।

पूज्य गुरुदेवने भारतवर्षमें सम्यग्दर्शन एवं स्वानुभूतिकी महिमाका पावन युगप्रवर्तन किया।

जिस प्रकार श्री प्रवचनसारमें आचार्यभगवानने जगतके समक्ष घोषित किया है कि 'श्रामण्यको अंगीकार करनेका जो यथानुभूत—हमने स्वयं अनुभव किया हुआ—मार्ग उसके प्रणेता हम यह खड़े हैं', उसी प्रकार अध्यात्मविद्या–युगस्रष्टा पूज्य गुरुदेवने भी स्वयं अनुभव करके अत्यन्त दृढ़तापूर्बक सिंहनाद किया कि 'अनुभव करके कहते हैं कि स्वानुभूतिका मार्ग ही मोक्षका उपाय है, तुम निर्भयरूपसे इस मार्ग पर चले आओ।'

स्वानुभूति होने पर जीवको कैसा साक्षात्कार होता है। उस सम्बन्धमें गुरुदेव कहते थे कि—स्वानुभूति होने पर, अनाकुल–आह्लादमय, एक, समस्त विश्व पर तैरता विज्ञानघन परमपदार्थ—परमात्मा अनुभवमें आता है। ऐसे अनुभव बिना आत्मा सम्यक्‌रूपसे देखनेमें—श्रद्धनेमें ही नहीं आता; इसलिये बिना स्वानुभूतिके सम्यग्दर्शनका—धर्मका प्रारम्भ ही नहीं होता।

ऐसी स्वानुभूति प्राप्त करनेके लिये जीवको क्या करना? स्वानुभूतिकी प्राप्तिके लिये ज्ञानस्वभावी आत्माका किसी भी प्रकार निर्णय करनेको गुरुदेव भारपूर्वक कहते थे। ज्ञानस्वभावी आत्माका निर्णय करनेमें सहायभूत तत्त्वज्ञानका—द्रव्योंका स्वयंसिद्ध सतपना और स्वतंत्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, नव तत्त्वोंका सच्चा स्वरूप, जीव और शरीरकी बिलकुल भिन्न भिन्न क्रियाएँ, पुण्य और धर्मके लक्षणभेद, निश्चय-व्यवहार इत्यादि अनेक विषयोंके सच्चे बोधका—गुरुदेवने भारतव्यापी प्रचार किया। तीर्थंकरदेवों द्वारा कहे गये ऐसे अनेक सत्य तो गुरुदेव द्वारा विविध माध्यमोंसे

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रकाशित हुए ही; साथ ही साथ सर्व तत्त्वज्ञानका सिरमौर—मुकुटमणि जो शुद्धद्रव्यसामान्य अर्थात् परमपारिमाणिक भाव अर्थात् ज्ञायकस्वभावी शुद्धात्मद्रव्यसामान्य—जो स्वानुभूतिका आधार है, सम्यग्दर्शनका आश्रय है, मोक्षमार्गका आलम्बन है, सर्व शुद्धभावोंका नाथ है—उसे बाहर लाकर पूज्य गुरुदेवने अथाह उपकार किया है।

जीव परद्रव्यकी क्रिया तो नहीं करता, किन्तु विकारकालमें भी स्वभाव-अपेक्षासे निर्विकार रहता है, अपूर्ण दशाके समय भी परिपूर्ण रहता है, सदाशुद्ध है, कृतकृत्य भगवान है। जिस प्रकार रंगित दशाके समय स्फटिकमणिके विद्यमान निर्मल स्वभावकी प्रतीति हो सकती है, उसीप्रकार विकारी, अपूर्ण दशाके समय भी जीवके विद्यमान निर्विकारी, परिपूर्ण स्वभावकी प्रतीति हो सकती है। ऐसे शुद्धस्वभावके अनुभव बिना मोक्षमार्गका प्रारम्भ भी नहीं होता, मुनिपनेका पालन भी नरकादिक दुःखोंके भयसे या अन्य किसी हेतुसे किया जाता है। 'मैं कृतकृत्य हूँ, परिपूर्ण हूँ, सहजानन्द हूँ, मुझे कुछ नहीं चाहिये' ऐसी परम उपेक्षारूप, सहज उदासीनतारूप, स्वाभाविक तटस्थतारूप मुनिपना द्रव्यस्वभावके अनुभव बिना कभी नहीं आता। ऐसे शुद्धद्रव्य–स्वभावके—ज्ञायकस्वभावके निर्णयके पुरुषार्थकी ओर, उसकी लगनकी और आत्मार्थियोंको मोड़कर, भवभ्रमणसे आकुलित मुमुक्षुओं पर गुरुदेवने अकथ्य उपकार किया है।

जिस प्रकार पूज्य गुरुदेवका तात्त्विक उपदेश हमें सत्य मार्गकी ओर उन्मुख करता है उसी प्रकार उनके ध्येयनिष्ठ जीवनका प्रत्यक्ष परिचय, उनका सत्संग हमारे समक्ष आत्मार्थीजीवनका आदर्श उपस्थित करके हमें पुरुषार्थकी प्रेरणा देता था। 'इस महँगे मनुष्यभवमें भवभ्रमणके अन्तका ही उपाय करना' यह एक ही जीवनध्येय गुरुदेवका पहलेसे ही था। उस ध्येयको उन्होंने समग्र जीवन समर्पित किया था। उसीके लिये अध्ययन, उसीका मंथन, उसीका प्रयत्न, वही उपदेश, वही बात, वही चर्चा, वही धुन, उसीके स्वप्न, उसीकी भनक,—उनका समस्त जीवन उसी हेतु था। गत अनेक वर्षोंमें जगतमें विविध आन्दोलन आये और गये, अनेक राजकीय, सामाजिक, धार्मिक झंझावात हुए, किन्तु मेरु समान अचल गुरुदेवके ध्येयनिष्ठ जीवनको वे लेशमात्र भी स्पर्श नहीं कर सके। 'इस एक भवके सुखाभासके हेतु कल्पित व्यर्थ प्रयत्नसे क्या लाभ? मुझे तो एक भवमें अनन्त भवोंका अन्त करना है' ऐसे भावपूर्वक, फिर जन्म न हो उसके उपायकी धुनमें वे निज अन्तर्मुख जीवनमें अत्यन्त लीन रहे।भवन्तके उपायके सिवाय अन्य सब उन्हें अत्यन्त तुच्छ लगता था।

पूज्य गुरुदेवका अंतर सदा 'ज्ञायक....ज्ञायक....ज्ञायक, ध्रुव....ध्रुव....ध्रुव, शुद्ध...शुद्ध...शुद्ध, परमपारिणामिकभाव'—इस प्रकार त्रैकालिक ज्ञायकके आलम्बनभावसे निरन्तर–जागृतिमें या निद्रामें—परिणमित हो रहा था। श्री समयसार, नियमसारादिके प्रवचन करते हुए या चर्चा–वार्तामें वे ज्ञायकके स्वरूपका और उसकी महिमाका मधुर संगीत गाते ही रहते थे। अहो! वे स्वतंत्रता और ज्ञायकके उपासक गुरुदेव! उन्होंने मोक्षार्थीयोंको सच्चा मुक्तिका मार्ग बतालाया!

ज्ञायक तणी वार्ता करे, ज्ञायक तणी दृष्टि धरे,
निजदेह–अणुअणुमां अहो! ज्ञातृत्वरस भाव भरे;

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

ज्ञायकमहीं तन्मय बनी ज्ञातृत्वने फेलावतो,
काया अने वाणी-हृदय ज्ञातृत्वमां रेलावतो।

—ऐसे ज्ञायकोपासक थे अपने गुरुदेव।

वे द्रव्य-अपेक्षासे 'सिद्धसमान सदा पद मेरो' ऐसा अनुभवते थे तथापि पर्याय-अपेक्षासे 'हम कब सिद्धपना प्रगट करेंगे!' इस प्रकार भावना भी भाते थे। सिद्धत्वकी तो क्या, किन्तु संयमकी भावनारूप भी वे परिणमते थे। 'कल्पवृक्ष सम संयम केरी अति शीतल जहँ छाया जी, चरणकरणगुणधार महामुनि मधुकर मन लोभायाजी' ऐसे अनेक बार भावविभोर ललकारसे तथा 'अपूर्व अवसर अेवो क्यारे आवशे? क्यारे थईशुं बाह्यान्तर निर्ग्रंथ जो?...' इस प्रकार हृदयकी गहराईसे दैनिक प्रवचनोमें तथा श्री जिनबिम्ब–प्रतिष्ठामें दीक्षाकल्याणकके प्रासंगिक प्रवचनमें विविध प्रकारसे संयमकी भावना भाते हुए गुरुदेवकी पावन मूर्ति भक्तोंकी दृष्टि समक्ष तैरती है।

'सिद्धसमान अपनेको पूर्ण शुद्ध देखें—मानें तथापि संयमकी भावना भायें?' हाँ; शक्ति-अपेक्षासे परिपूर्ण शुद्ध अपनेको देखते–मानते हुए भी व्यक्ति–अपेक्षासे शुद्ध होनेकी भावना ज्ञानीको अवश्य होती है। गुरुदेव ऐसी शास्त्रोक्त यथार्थ संधिबद्ध सम्यक् परिणतिरूप परिणमित हो रहे थे। वास्तवमें तो शुद्धस्वरूपके दृष्टा सम्यग्दृष्टि जीवको ही सच्ची संयमकी भावना होती है, क्योंकि वह संयमपरिणतिका सच्चा स्वरूप जानता है। मिथ्यादृष्टिको सच्ची संयमकी भावना होती ही नहीं, क्योंकि उसे सच्चे संयमकी खबर नहीं है।

'बहिनश्री केवचनामृत'के ३०८वें बोलमें कहा है कि :—'जिस प्रकार सुवर्णको जंग नहीं लगता, अग्निको दीमक नहीं लगती, उसी प्रकार ज्ञायकस्वभावमें आवरण, न्यूनता या अशुद्धि नहीं आती।' जिस प्रकार पूज्य गुरुदेव शक्ति-अपेक्षाके इस बोलका बारम्बार उल्लासपूर्वक स्मरण करते थे, उसी प्रकार व्यक्ति–अपेक्षाका सिद्धत्व प्राप्त करनेकी भावनाका ४०१ वाँ बोल भी अनेक बार उल्लसितभावसे याद करके प्रसन्नतापूर्वक कहते थे:—देखो! बहिन कैसी भावना भाती हैं? 'यह विभावभाव हमारा देश नहीं है। इस परदेशमें हम कहाँ आ पहुँचे? हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता। यहाँ हमारा कोई नहीं है।...अब हम स्वरूपस्वदेशकी ओर जा रहे हैं। हमें त्वरासे अपने मूल वतनमें जाकर आरामसे बसना है जहाँ सब हमारे हैं।

ऐसा अनेकान्तसुसंगत यथार्थ संधिवाला पूज्य गुरुदेवका जीवन हमें सच्चा मार्ग बतला रहा है। वह पवित्र जीवन हमें किन्हीं भी शुभ भावोंमें संतुष्ट न होकर ध्रुव तत्त्वके आलम्बनके पुरुषार्थकी प्रबल प्रेरणा दे रहा है; तथा 'मैं ध्रुव हूँ' ऐसी दृढताके साथ साथ 'हम अपने मूल वतनमें जानेके लिये तरस रहे हैं' ऐसी आर्द्रता भी रहना चाहिये, नहीं तो 'ध्रुव तत्त्व'की समझके प्रकारमें ही कुछ भूल है ऐसी चेतावनी देकर, दीपस्तम्भरूप रहकर, हमारी जीवननौकाको चट्टानी मार्गसे बचाकर, हमें सच्चे मार्ग पर लगाते हैं। श्री सद्‌गुरुदेवकी स्तुतिमें हम गाते हैं न—

भवजलधि पार उतारने जिनवाणी है नौका भली;
आत्मज्ञ नाविक योग बिन वह नाव भी तारे नहीं।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसकालमें शुद्धात्मविद नाविक महा दुष्प्राप्य हैं;
मम पुण्यराशी फलि अहो! गुरुकहान नाविक आ मिले॥

—अहा! इस प्रकार परमकृपालु परमपूज्य गुरुदेवका स्वानुभवविभूषित पवित्र जीवन तथा अध्यात्मोपदेश हमें अत्यन्त उपकारक हो रहे हैं।

वस्तुतः पूज्य गुरुदेवने स्वानुभूति प्रधानताके एक अद्‌भुत युगका प्रवर्तन किया है। **'मेरो धनी नहि दूर दिसंतर, मोहिमें है मोहि सूझत नीकै'** ऐसा प्रबल सिंहनाद करके गुरुदेवने सर्वज्ञ-वीतरागप्रणीत स्वानुभूतिप्रधान जिनशासनकी मन्द हुई ज्योतिमें नया तेल डालकर आत्मार्थी जीवों पर वास्तवमें महान अनहद उपकार किया है।

ऐसे चमत्कारपूर्ण आध्यात्मिक ज्ञान-भक्तिके नवयुगका सृजन करनेवाले महान-महान उपकारी परमकृपालु परमपूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीने जीवनके अन्तिम क्षण तक अपने स्वानुभवसमृद्ध ज्ञानभण्डारमेंसे भक्तोंको खूब–खूब दिया; भारतके सुपात्र जीवोंको निहाल कर दिया। ९१ वर्षकी उम्र तक अविरतरूपसे वीतराग–विज्ञानका वितरण किया। अन्तमें भक्तोंके भाग्य क्षीण हुए। वि. सं. २०३७ मगसिर कृष्णा सप्तमी, शुक्रवार (ता. २८–११–१९८०)के दिन भक्तोंके परमाधार गुरुदेवने भक्तोंको निराधार छोड़कर अंतर ज्ञायककी साधनायुक्त समाधिपरिणाममें स्वर्गकी ओर महाप्रयाण किया।

अहो! कृपालु गुरुदेवकी उपकारभरपूर महिमाका तो क्या वर्णन हो!

श्रीमद्‌राजचन्द्रजीने गुरुमहिमाका वर्णन करते हुए कहा है कि—

अहो! अहो! श्री सद्‌गुरु, करुणासिन्धु अपार;
आ पामर पर प्रभु कर्यो, अहो! अहो! उपकार।

शुं प्रभुचरण कने धरुं, आत्माथी सौ हीन;
ते तो प्रभुए आपियो, वर्तुं चरणाधीन।

आ देहादि आजथी, वर्तो प्रभु आधीन;
दास, दास, हुं दास छुं, तेह प्रभुनो दीन।

परम कृपालु पूज्य गुरुदेवकी अपार उपकारमहिमा, उनकी परम-भक्त प्रशममूर्ति धन्यावतार आत्मज्ञानी पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके विविध प्रसंगो पर बोले गये शब्दोंमें कहकर पूज्य गुरुदेवका 'संक्षिप्त जीवनवृत्त तथा उपकार-गुणकीर्तन' समाप्त करता हूँ :—

"पूज्य कहानगुरुदेवसे तो मुक्तिका मार्ग मिला है। उन्होंने चारों ओरसे मुतिका मार्ग प्रकाशित किया है। गुरुदेवका अपार उपकार है। यह उपकार कैसे भूला जाय?

गुरुदेका द्रव्य तो अलौकिक है। उनका श्रुतज्ञान और वाणी आश्चर्यकारी है।

परमउपकारी गुरुदेवका द्रव्य मंगल है, उनकी अमृतमयी वाणी मंगल है। वे मंगलमूर्ति हैं, भवोदधितारणहार हैं, महिमावन्त गुणोंसे भरपूर हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पूज्य गुरुदेवके चरणकमलकी भक्ति और उनका दासत्व निरन्तर हो।''

''तीर्थंकर भगवन्तो द्वारा प्रकाशित दिगम्बर जैन धर्म ही सत्य है ऐसा गुरुदेवने युक्ति-न्यायसे सर्व प्रकार स्पष्टरूपसे समझाया है। मार्गकी खूब छानवीन की है। द्रव्यकी स्वतंत्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, आत्माका शुद्ध स्वरूप, सम्यग्दर्शन, स्वानुभूति, मोक्षमार्ग इत्यादि सब कुछ उनके परम प्रतापसे इस काल सत्यरूपसे बाहर आया है। गुरुदेवकी श्रुतकी धारा कोई और ही है। उन्होंने हमें तरनेका मार्ग बतलाया है। प्रवचनमें कितना मथ-मथकर निकालते हैं! उनके प्रतापसे सारे भारतमें बहुत जीव मोक्षमार्गको समझनेका प्रयत्न कर रहें है। पंचम कालमें ऐसा सुयोग प्राप्त हुआ वह अपना परम सद्भाग्य है। जीवनमें सब उपकार गुरुदेवका ही है। गुरुदेव गुणोंसे भरपूर हैं, महिमावन्त हैं। उनके चरणकमलकी सेवा हृदयमें बसी रहे।''

''गुरुदेवने शास्त्रोंके गहन रहस्य सुलझाकर सत्य ढूँढ़ निकाला और हमारे सामने स्पष्टरूपसे रखा है! हमें कहीं सत्य ढूँढनेको जाना नहीं पड़ा। गुरुदेवका कोई अद्भुत प्रताप है। 'आत्मा' शब्द बोलना सीखे हों तो वह भी गुरुदेवके प्रतापसे। 'चैतन्य हूँ', 'ज्ञायक हूँ',—इत्यादि सब गुरुदेवके प्रतापसे ही जाना है....।''

''...(श्री कहानगुरुदेवने) अपने सातिशय ज्ञान एवं वाणी द्वारा तत्त्वका प्रकाशन करके भारतको जागृत किया है। गुरुदेवका अमाप उपकार है। इस काल ऐसे मार्ग समझानेवाले गुरुदेव मिले वह अहोभाग्य है। सातिशय गुणरत्नोंसे भरपूर गुरुदेवकी महिमा और उनके चरणकमलकी भक्ति अहोनिश अंतरमें रहो।''

—यह है प्रशममूपर्ति भगवती पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके श्रीमुखसे विभिन्न अवसरों पर प्रवाहित, आध्यात्मिक युगपुरुष परम-कृपालु परमपूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीकी उपकारगरिमायुक्त लोकोत्तर महिमा। ऐसे सातिशय महिमावन्त महापुरुषके पावन योगसे भारतवर्षका आध्यात्मिक क्षेत्र उज्ज्वल हुआ है। शुद्धात्मदृष्टिका सुधापान करानेवाले इन तिरते पुरुषके सत्समागमका लाभ लेनेवाले महान भाग्यशाली बने हैं।

परमपूज्य परमोपकारी गुरुदेवके चरणोंमें—उनकी मांगलिक पवित्रताको, पुरुषार्थप्रेरक ध्येयनिष्ठ जीवनको, स्वानुभूतिमूलक सन्मार्ग-दर्शक उपदेशोंको और अनेकानेक उपकारोंको दृष्टि समक्ष रखकर—अत्यन्त भक्तिपूर्वक भावभीनी वन्दना हो। उनके द्वारा प्रकाशित स्वानुभूतिका पावन पंथ जगतमें सदा जयवन्त वर्ते और हमें सत्पुरुषार्थकी प्रेरणाका अमृतपान निरन्तर कराता रहे।

सोनगढ़
सं. २०३६, भाद्रपद कृष्णा दूज —***ब्र० चन्दुलाल खीमचन्द झोबालिया***

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

मंगलकारी 'तेज' दुलारी

मंगलकारी 'तेज' दुलारी पावन मंगल मंगल है;
मंगल तव चरणोंसे मंडित अवनी आज सुमंगल है,.....मंगल०

फाल्गुन कृष्णा दशमी मंगल, वांकानेर सुमंगल है,
मंगल मातपिता, कुल मंगल, मंगल धाम रु आंगन है;
मंगल ज्ञानमहोत्सवका यह अवसर अनुपम मंगल है,.....मंगल०

मंगल शिशुलीला अति उज्जवल, मीठे बोल सुमंगल हैं,
शिशुवयका वैराग्य सुमंगल, आतम-मंथन मंगल है;
आतमलक्ष लगाकर पाया अनुभव श्रेष्ठ सुमंगल है,.....मंगल०

सागर सम गंभीर मति-श्रुत ज्ञान सुनिर्मल मंगल है,
समवसरणमें कुंदप्रभुका दर्शन मनहर मंगल है;
सीमंधर-गणधर-जिनधुनिका स्मरण मधुरतम मंगल है,.....मंगल०

शशि-शीतल मुद्रा अति मंगल, निर्मल नैन सुमंगल हैं,
आसन-गमनादिक कुछ भी हो, शांत सुधीर सुमंगल हैं;
प्रवचन मंगल, भक्ति सुमंगल, ध्यानदशा अति मंगल है,.....मंगल०

दिनदिन वृद्धिमती निज परिणति वचनातीत सुमंगल है,
मंगलमूरति-मंगलपदमें मंगल-अर्थ सुवंदन है;
आशिष मंगल याचत बालक, मंगल अनुग्रहदृष्टि रहे,
तव गुणको आदर्श बनाकर हम सब मंगलमाल लहें.....मंगल०

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ॐ

परमात्मने नमः।

श्री

वचनामृत-प्रवचन

[भाग पहला]

पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिनके वचनामृत पर
परम पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामीके प्रवचन

✽

प्रवचन-१

वचनामृत-१

हे जीव! तुझे कहीं न रुचता हो तो अपना उपयोग पलट दे और आत्मामें रुचि लगा। आत्मा में रुचे ऐसा है। आत्मामें आनन्द भरा है; वहाँ अवश्य रुचेगा। जगतमें कहीं रुचे ऐसा नहीं है परन्तु एक आत्मामें अवश्य रुचे ऐसा है। इसलिये तू आत्मामें रुचि लगा ॥ १ ॥

'हे जीव! तुझे कहीं न रुचता हो तो अपना उपयोग पलट दे और आत्मामें रुचि लगा।

यहाँ, पहलेसे प्रारम्भ करते हैं। भाषा सादी है किन्तु मर्म बहुत है। यह वचनामृत-पुस्तक अनेक लोगोंको प्रिय हो गई है। वेदान्तवाले पढ़ें तो उन्हें भी अतिप्रिय लगती है। उन्हें भी ऐसा लगता है कि–'यह क्या! सादी भाषा और बात अस्तिकी है।

पहला शब्द 'हे जीव!' वहाँसे लिया है। समयसारकी दूसरी गाथामें भी 'जीवो चरित्त-दंसण-णाणट्ठिउ' और समयसारके परिशिष्टमें—४७ शक्तियोंमें—पहली जीवत्वशक्तिसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जीवित रहनेवाला प्रभु है; अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख और अनंत वीर्य आदि अनंत शक्तियोंका पुंज भगवान आत्मा है। तुझे कहीं न रुचता हो—परमें, रागमें, एक समयकी पर्यायमें, क्योंकि पर्यायमें प्रगट आनन्द नहीं है—तो अपना उपयोग पलट दे, और आत्मामें रुचि लगा।

तेरी वर्तमान पर्याय–अवस्था–जो राग और शुभ-अशुभके–पुण्यपापके विकल्पोंमें रुकी है वहाँ उसे अच्छा नहीं लगेगा, क्योंकि वहाँ राग और दुःख है। वहाँसे अपना उपयोग पलट दे। वर्तमान दशामें जो राग है वह तो हो ही गया है, उसे कैसे पलटें? उसके बादकी दशाको–उपयोगको अन्तर्मुख कर, ऐसा उसका अर्थ है। तुझे बाहर कहीं संतोष न लगता हो, आकुलता लगती हो, तो अपनी दशाके व्यापारको—अपने उपयोगको कुलाँट लगाकर भीतर स्वभावोन्मुख कर। जीव शुद्ध चैतन्य एवं आनन्दस्वरूप प्रभु है, वहाँ उपयोगको ढाल—मोड़, और आत्मामें रुचि लगा।

'आत्मामें रुचे ऐसा है। आत्मामें आनन्द भरा है, वहाँ अवश्य रुचेगा।'

—क्योंकि वहाँ आनन्द है और रागमें दुःख है। इसलिये उपयोगको पलटकर भीतर आत्मामें रुचि लगा। वहाँ तुझे अच्छा लगेगा। रुचि लगा तो अच्छा लगेगा; आत्मामें अच्छा लगे ऐसा है। अहाहा! बड़ी सादी भाषा है! बहिन बोलीं वह ब्रह्मचारी लड़कियोंने लिख लिया, और हिम्मतभाईने उसे एकत्रित किया।

तेरी परोन्मुख वर्तमान दशा 'है', नहीं है ऐसा नहीं। वहाँ से पलटी मार; क्योंकि पर्याय है वह तो पलटेगी ही, ध्रुव हो वह नहीं पलटता। इसलिये परकी ओर—रागकी ओर—जो उपयोग है उसे इस ओर–आत्माकी ओर मोड़ दे। अहा! कथन बिलकुल संक्षिप्त। 'व्यवहारसे होता है' और 'व्यवहारसे नहीं होता है'—यह सब विवाद उड़ गया। आत्मामें रुचे ऐसा है, क्योंकि आत्मामें आनन्द भरा है; तुझे रुचेगा; रुचि करेगा तो रुचेगा।

यहाँ दो बातें ली हैं : (१) कहीं न रुचता हो तो, (२) अपना उपयोग पलट दे। उपयोगको पलट यह पुरुषार्थसे कहा है। कैसे पलटे? कर्म हटे तो पलटे ऐसा नहीं है। तू स्वयं ही उपयोगको परमें–रागमें–लगाता है वह तेरा ही अपराध है; उस उपयोगको तू ही अपने पुरुषार्थसे इसमें–आत्मामें–लगा दे, पलट दे। वहाँ आत्मामें रुचि लगा। आत्मामें रुचे–अच्छा लगे ऐसा है, अन्यत्र कहीं–रागमें या व्यवहाररत्नत्रयमें–रुचे ऐसा नहीं है। वस्तुस्वरूप ही ऐसा है।

अहा! इस शास्त्रका क्या कहना! बहुत ही सादी भाषा है। इसका तो प्रचार होना चाहिये; लोगों को सस्ते भावमें देना चाहिये; लोग पढ़ें तो सही। अहाहा! बहिनकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

अंतरंगदशाकी तो क्या बात कहें! बहिनको तो अनेक स्थानों पर अभिनन्दन-पत्र दिये गये हैं—राजकोट, बम्बई, भावनगर, सुरेन्द्रनगर, वढवाण, लींबड़ी, बोटाद, कुंडला, उमराला, जामनगर, मद्रास आदि अनेक नगरोंमें बहिनका यह शास्त्र प्रकाशित हुआ है! इसमें मात्र सिद्धान्तका मर्म भरा है! जो समझना चाहे उसे समझनेमें एकदम सरल है।

आत्मामें आनन्द भरा है। आनन्दवाला है ऐसा नहीं, किन्तु स्वयं आनन्दस्वरूप ही है। वहाँ तुझे अवश्य रुचेगा ही। यह तो मंगलाचरण है, प्रारम्भ है।

'जगतमें कहीं रुचे ऐसा नहीं है परन्तु एक आत्मामें अवश्य रुचे ऐसा है।'

आत्मामें आनन्द भरा है, वहाँ जरूर रुचेगा—अच्छा लगेगा, इसप्रकार पहले अस्तिसे कहा; और उसके बिना अन्यत्र कहीं—परके रागमें या दया-दानादिके भावमें—रुचे ऐसा नहीं है, ऐसा नास्तिसे कहा। एक ओर राम, दूसरी ओर ग्राम;—एक ओर आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा और दूसरी ओर राग, पर्याय आदि सारा जगत। आत्मा है ना? वस्तु है ना? वह विद्यमान वस्तु आनन्दसे भरपूर है। अहा! बड़ा धीमन्त हो वह भी इसे सुनकर ठिठक जायेगा; उसे ऐसा लगेगा कि अरे, यह तो बात कोई और ही है, यह सच्ची बात है; हम जो यह मानते हैं कि व्यवहार से होता है, निमित्तसे होता है, उसकी अपेक्षा यह कोई अलग ही बात है!

इस पुस्तकमें समस्त सार—बहुत आगया है।

'इसलिये तू आत्मामें रुचि लगा।'

एक आत्मामें ही रुचे ऐसा है क्योंकि वहाँ आनन्द भरा है। अन्यत्र कहीं रुचे ऐसा नहीं है, इसलिये वहाँ से हट जा और आत्मामें रुचि लगा।

एक बोल पूरा हुआ।

❀

वचनामृत-२

अंतरकी गहराईसे अपना हित साधनेको जो आत्मा जागृत हुआ और जिसे आत्माकी सच्ची लगनी लगी, उसकी आत्मलगन ही उसे मार्ग कर देगी। आत्माकी सच्ची लगन लगे और अंतरमें मार्ग न हो जाय ऐसा हो ही नहीं सकता। आत्माकी लगन लगनी चाहिये; उसके पीछे लगना चाहिये। आत्माको ध्येयरूप रखकर दिन-रात सतत प्रयत्न करना चाहिये। 'मेरा हित कैसे हो?'

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'मैं आत्माको कैसे जानूँ?' —इसप्रकार लगन बढ़ाकर प्रयत्न करे तो अवश्य मार्ग हाथ लगे ॥ २ ॥

'अंतरकी गहराईसे अपना हित साधनेको जो आत्मा जागृत हुआ और जिसे आत्माकी सच्ची लगन लगी, उसकी आत्मलगन ही उसे मार्ग कर देगी।'

क्या कहते हैं? कि अंतरकी गहराईसे—ऊपर-ऊपरसे या एकदम कल्पना करके ऐसा नहीं—ध्रुवकी ओर ढलनेके लिये गहराईसे अपना हित साधनेके लिये,—बाह्य किसी प्रकारसे 'हितसाधन' नहीं हो सकता—जो आत्मा अंतरसे जागृत हुआ और जिसे आत्माकी सच्ची लगन लगी,—किसीको दिखाने–बतानेके लिये नहीं—उसकी आत्मलगन ही उसे मार्ग कर देगी।

परका—दुनियाका—कोई कुछ भी हित नहीं कर सकता। अंतरमें भगवान आत्माको साधनेकी—आत्महित प्राप्त करनेकी—सच्ची लगन जिसे लगी है उसे, आत्माकी वह सच्ची लगन ही उसका मार्ग कर देगी। अन्य कोई विकल्प या कोई देव–शास्त्र–गुरु आदि निमित्त साधन हों, देव–गुरुकी कृपा हो जाये तो मिल जाये–ऐसा वस्तुस्वरूपमें ही नहीं। तेरी अंतरकी सच्ची लगन ही तुझे तेरा मार्ग देगी।

'आत्माकी सच्ची लगन लगे और अंतरमें मार्ग न हो जाय ऐसा हो ही नहीं सकता।'

भीतर आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा ध्रुव ज्ञायक है ना? उसकी ओर विश्वासपूर्वक जिसे लगन लगी है उसे अंतरमें मार्ग मिले बिना नहीं रहेगा।

'आत्माकी लगन लगनी चाहिये; उसके पीछे लगना चाहिये।'

व्यवहारके विकल्प नहीं, निमित्त नहीं, उनका बहुमान और महिमा नहीं, परन्तु आत्माकी ही लगन लगनी चाहिये; ज्ञायक, ज्ञायक, ज्ञायक शुद्ध, उसके पीछे लगना चाहिये। उसके समीप जाना चाहिये। अहा! कितनी संक्षिप्त भाषा है! आत्मा एक मात्र ज्ञायक ध्रुव पूर्णानंदसे भरपूर प्रभु है, उसके पीछे—उसके समीप, उसके सन्मुख—लगना चाहिये। कमाने की कैसी लगन लगती है? स्वप्न भी उसीके आते हैं! उसका पल्ला छोड़ना नहीं चाहिये। अंतरमें पूर्णानंदका नाथ प्रभु अस्तिरूप है, विद्यमान वस्तु है, उसके पीछे अर्थात् समीप जाना चाहिये; बाहरसे हटना चाहिये।

'आत्माको ध्येयरूप रखकर दिन-रात सतत प्रयत्न करना चाहिये।'

भगवान आत्माको ध्येयरूप रखकर, ध्रुवधामको ध्येय बनाकर, दिन और रात निरन्तर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पुरुषार्थ करना चाहिये। कठिन है वस्तु! ध्रुव ज्ञायकधामकी धुन लगनी चाहिये; उसकेपीछे पागल हो जाना चाहिये; उसके लिये सतत प्रयत्न करना चाहिये। अहा! यह तो केवल मक्खनके लौंदे हैं!.....आया कुछ समझमें?

'मेरा हित कैसे हो?' 'मैं आत्माको कैसे जानूँ?' —इसप्रकार लगन बढ़ाकर प्रयत्न करे तो अवश्य मार्ग हाथ लगे।'

मेरा हित किसप्रकार हो? परका हित तो आत्मा कर नहीं सकता। पर तो जहाँ होगा वहाँ रहेगा, परमें तेरी चिन्ता निरर्थक है। शरीर, वाणी, कर्म या पर जिस क्षेत्रमें, जिस स्थितिमें जैसे हैं वैसे रहेंगे; तेरी चिन्तासे, जो जहाँ हैं वहाँ से परिवर्तित होंगे ऐसा नहीं है। उन्हें करने–फेरनेकी तेरी चिन्ता व्यर्थ जायेगी। मेरा हित किस प्रकार हो? मैं आत्माको किस विधिसे जानूँ? ऐसी अंतरंग उत्कंठा बढ़कर प्रयत्न करे तो मार्ग अवश्य मिलेगा।

अहा! समयसारकी छठवीं गाथामें–वह शुद्ध आत्मा कौन है कि जिसका स्वरूप जानना चाहिये?–ऐसा शिष्यका प्रश्न अंतरकी उमंगसे है। शिष्यने दूसरी कोई बात नहीं पूछी है। छह द्रव्य, उनके गुण और पर्यायें, देव–शास्त्र–गुरु आदि कुछ नहीं, किन्तु शुद्ध आत्मा है वह कौन, कि जिसका स्वरूप जानना चाहिये? ऐसी उमंगवाले शिष्यको श्री अमृतचन्द्र-आचार्यदेव उत्तर देते हैं। सामान्य बेगार के रूपमें सुनने आये कि कुछ न कुछ सुनना चाहिये;–ऐसी बात यहाँ नहीं है। शिष्य जिज्ञासासे सुनने आया है; निकट आकर नम्रतापूर्वक पूछता है; उसका उत्तर दिया गया है।

समयसारकी एक-एक गाथा गजबकी बात है भाई! उसमेंसे फिर यह बहिनका निकाला हुआ मक्खन! यहाँ ऐसा प्रश्न किया कि–मेरा हित कैसे हो? और वहाँ छठवीं गाथामें उसका उत्तर है। अहा! वह शुद्धस्वरूप है कौन कि जिसका स्वरूप जानना चाहिये? ऐसी शुद्धके स्वरूपको समझनेकी जिज्ञासा और उमंग उठी है, गुरु कहते हैं कि उसके लिये हमारा उत्तर है। उसे इसप्रकार का विकल्प उठा है तो यहाँ भी उसी प्रकारका विकल्प उठा है। उसके लिये उत्तर कहा है कि ज्ञायक है वह शुद्ध है। मेरा हित क्या है? शुद्धको साधना वह हित है; बाकी सब बातें हैं।

विशेष कहना भी न आये, दुनियाको समझाना भी न आये, उससे कहीं वस्तु चली नहीं जाती। सिर्फ मेरा नाथ शुद्ध है तो उसका स्वरूप क्या है? बस, वह हमें जानना है। हमारा प्रभु अंतरमें शुद्ध—जो आप शुद्ध आत्माकी व्याख्या करते हैं वह एकत्व-विभक्त—कौन है प्रभु! कि जिसका स्वरूप जानना चाहिये? यहाँ कहते हैं कि–मेरा हित कैसे हो? मैं आत्माको किस प्रकार जानूँ? अहा! थोड़ेमें बहुत भरा है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

लोगोंकी माँग थी कि 'वचनामृत' पर प्रवचन हों। तब ऐसा लगा कि सबके हाथमें पुस्तक हो तो ठीक रहे। अब तो बहुत पुस्तकें छप गई हैं। वह एक पुस्तक प्रकाशित हुई है ना?–'अध्यात्म-पीयूष'; वह भी पाँच हजार छपी है। इस वचनामृत पुस्तकमेंसे थोड़ासा चुनकर छपायी है। नाम रखा है 'अध्यात्म-पीयूष'। अध्यात्म-पीयूष अर्थात् अध्यात्मका अमृत।

यहाँ तो बस, एक ही बात है कि मैं आत्माको—मेरा जो स्वरूप है उसे—कैसे जानूँ? शास्त्र आते हों या नहीं आते हों, बोलना आता हो या नहीं आता हो, समझना आता हो या नहीं आता हो–उसका मुझे कुछ काम नहीं है; सिर्फ मैं आत्माको किस प्रकार जानूँ? समझनेमें भी यदि ऐसा लक्ष रहे कि कुछ ग्रहण कर लूँ तो फिर मैं भी दुनिया के सामने कुछ रखूँ, अपनी बात अच्छी लगी तो लोग संतुष्ट होंगे, ऐसा हेतु नहीं है। यह बात मोक्षमार्ग प्रकाशकमें कही है। यहाँ तो कहते हैं कि मैं आत्मा को—मेरा नाथ जो शुद्धस्वरूप है उसे—किस प्रकार जानूँ? उसकी विधि क्या है?

समयसारकी ७३वीं गाथाके शीर्षकमें शिष्यका प्रश्न है कि–आस्रवसे निवृत्ति होनेकी विधि क्या है? पुण्य-पापके भावसे–आस्रवोंसे–लाभ हो वह तो प्रश्न है ही नहीं, परन्तु उससे निवर्तनकी विधि पूछी है। आस्रव करनेसे लाभ हो और वह करनेकी विधि क्या है?–यह प्रश्न तो उसके उड़ ही गया है। वर्तमानमें तो इसमें बड़ी आपत्तियाँ हो गई हैं। उन आस्रवोंसे निवर्तनकी विधि क्या है? ऐसा पूछा तब कहा कि—सर्वज्ञ परमेश्वरने आत्माको जैसा देखा है वैसा विकल्पसे निर्णय कर; फिर विकल्पको छोड़ दे।

सर्वज्ञ भगवानने आत्मा—जो असंख्यप्रदेशी है वह—देखा वैसा अन्य किसीने नहीं देखा। आत्माके असंख्यप्रदेशीपनेकी बात सर्वज्ञ भगवानके सिवा अन्य किसी जगह–कहीं नहीं आती। इसलिये सर्वज्ञ भगवानने देखा है ऐसा आत्मा प्राप्त करनेकी—आस्रवसे निवर्तनकी–विधि क्या है? तो कहा कि–पहले विकल्पसे निर्णय कर, दूसरे कहते हैं उससे भिन्न करनेके लिये। आत्मा असंख्यप्रदेशी द्रव्य है, उसके सर्व प्रदेशोंमें अनन्त गुण हैं, उसकी अनन्त पर्यायें हैं—ऐसी बात अन्यत्र कहीं नहीं है।

अपने हितके लिये प्रथम विकल्पसे निर्णय करने लगा कि–मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, ममत्वहीन हूँ तथा ज्ञान-दर्शनपूर्ण हूँ आदि। निर्णय होनेपर विकल्प तोड़कर वह भीतर प्रवेश करेगा। अहा! यह उपदेशकी शैली अन्य प्रकारकी है! पाँच इन्द्रियाँ आदि सब बाह्य विकल्प छोड़कर अन्तरसे निर्णय करता है कि—मैं शुद्ध हूँ, अखण्ड हूँ, अनादि-अनन्त हूँ, कर्त्ता-कर्म-करण आदि कारकोंके भेदसे रहित त्रिकाल अनुभूतिस्वरूप हूँ। वहाँ अनुभूति त्रैकालिक है, पर्यायकी बात नहीं है। अहा! अद्‌भुत कार्य किया है। सन्तोंने तो जगतको

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निहाल कर दिया है! आत्मा जैसे हथेली पर रखकर दिखाया है कि—यह देख, देख यह; जरा दृष्टि तो डाल। तेरी दृष्टि परमें है उसे स्वोन्मुख कर!

मैं आत्माको किसप्रकार जानूँ? इस प्रकार अंतरसे लगन लगाकर—भले वह है तो विकल्प—प्रयत्न कर। अवश्य मार्ग हाथ आयेगा।

प्रश्न :—विकल्पसे साध्य होता है?

उत्तर :—विकल्प है तथापि ऐसा करके छोड़ते हैं अंतरमें। वह विकल्प टूटकर अवश्य हाथ आयेगा। लगन लगे कि 'यह, यह, यह',–इतना भेद है ना? लगन आत्मामें लगाऊँ इतना भी अभी भेद–विकल्प है; उसे छोड़ने पर अंतरमें मार्ग अवश्य हाथ आयेगा। तुझे अवश्य मार्ग मिलेगा।

दूसरा बोल पूरा हुआ।

❃

वचनामृत-३

ज्ञानीकी परिणति सहज होती है। हर एक प्रसंगमें भेदज्ञानको याद करके उसे घोखना नहीं पड़ता, परन्तु उनके तो ऐसा सहज परिणमन ही हो जाता है–आत्मामें धारावाही परिणमन वर्तता ही रहता है ॥ ३ ॥

'ज्ञानीकी परिणति सहज होती है।'

–अर्थात्? रागसे भिन्न होकर अंतरमें चैतन्यका ज्ञान हुआ, भेदज्ञान हुआ, उसे अब पुनः नवीन भेदज्ञान करना नहीं रहता; ज्ञानकी परिणति—रागसे भिन्न धारा—सहज वर्तती है। अहा! धर्मी की दशा! ज्ञानीकी परिणति! परिणति अर्थात् उसकी पर्याय। वस्तुके स्वरूपको पकड़कर, रागसे छूटकर वह दशा हुई है, इसलिये सम्यक्त्वीकी परिणति–पर्याय सहज होती है। उसे रागसे पृथक् करना नहीं पड़ता, सहज हो गया है; प्रयत्न स्वभावसन्मुख होता ही रहता है।

'हर एक प्रसंगमें भेदज्ञानको याद करके उसे घोखना नहीं पड़ता, परन्तु उनके तो ऐसा सहज परिणमन ही हो जाता है–आत्मामें धारावाही परिणमन वर्तता ही रहता है।'

प्रयत्नका जोर—पुरुषार्थका जोर—स्वभावसन्मुख बना ही रहता है। हर घड़ी याद करके उन्हें घोखना नहीं पड़ता कि यह राग सो मैं नहीं हूँ, यह विभाव सो मैं नहीं हूँ। राग और भगवान आत्मा दोनों भिन्न हुए सो भिन्न ही रहते हैं; गाज गिरने से

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर्वतके दो टुकड़े हुए वे जोड़नेसे फिर नहीं जुड़ते। ज्ञानीको ऐसा सहज ही हो गया होता है—ऐसी स्वाभाविक दशा ही होती है।

ज्ञानीको ज्ञान एवं आनन्दकी दशा, अस्थिरताका राग होनेपर भी, वर्तती ही रहती है; उसे भेद नहीं करना पड़ता। रागसे विमुख होकर स्वभावोन्मुख हुआ है उसे इस ओरका—स्वभावकी ओरका—प्रयत्न चल ही रहा है, करना नहीं पड़ता; भेदज्ञानको याद करके घोखना नहीं पड़ता। उसे यहाँ यथार्थ भेदज्ञान कहा जाता है।

❀

ता. ६-६-७७

(बहिनश्रीके वचनामृत) पुस्तक समयपर प्रकाशित हो गई। बहिनको कहाँ बाहर आनेकी इच्छा है, किन्तु पुस्तकने बाहर ला दिया। भाषा सरल है परन्तु भाव बहुत गम्भीर हैं। मैंने पूरी पुस्तक पढ़ ली है। एकबार नहीं लेकिन पच्चीस बार पढ़े तब भी सन्तोष न हो ऐसी पुस्तक है। दस हजार पुस्तकें छपवाकर हिन्दी–गुजराती 'आत्मधर्म'के सब ग्राहकोंको भेट देना चाहिये ऐसा मुझे विचार आया।

—पूज्य गुरुदेव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-२

ता. ७-६-७८

वचनामृत-४

ज्ञान और वैराग्य एक-दूसरेको प्रोत्साहन देनेवाले हैं। ज्ञानरहित वैराग्य वह सचमुच वैराग्य नहीं है। किन्तु रुँधा हुआ कषाय है। परन्तु ज्ञान न होनेसे जीव कषायको पहिचान नहीं पाता। ज्ञान स्वयं मार्गको जानता है, और वैराग्य है वह ज्ञानको कहीं फँसने नहीं देता, किन्तु सबसे निःस्पृह एवं स्वकी मौजमें टिका रखता है। ज्ञान सहित जीवन नियमसे वैराग्यमय ही होता है ॥ ४ ॥

वचनामृतका यह चौथा बोल है। तीन बोल कल पूरे हुए थे, आज चौथा बोल है।

'ज्ञान और वैराग्य एक-दूसरेको प्रोत्साहन देनेवाले हैं।'

क्या कहा? कि–यह आत्मा शुद्ध चैतन्यवस्तु है, उसका ज्ञान, और रागका अभाव ऐसा जो वैराग्य–यह दोनों एक-दूसरेको प्रोत्साहन देनेवाले हैं। ऐसा अस्ति और नास्तिसे समझाया है। अस्ति अर्थात् पूर्ण शुद्ध चैतन्यवस्तुके स्वसन्मुख वर्तनरूप ज्ञान, और नास्ति अर्थात् परका–रागादिका–अभाव ऐसा जो वैराग्य; वे एक–दूसरेको प्रोत्साहन देनेवाले हैं। स्वभावकी ज्ञानकी—अस्ति है वहाँ रागकी नास्ति है–ऐसी पुष्टि करते हैं।

'ज्ञान' अर्थात् चैतन्यस्वरूप आत्माका–पूर्णानन्दका ज्ञान, और 'वैराग्य' अर्थात् शुभ-अशुभ भावमें जो रक्तपना उससे विरक्त होना। बाह्यमें स्त्री, कुटुम्ब, परिवार तथा दुकान छोड़ना, वह वैराग्य नहीं है। वीतरागमार्गमें वैराग्यकी ऐसी व्याख्या नहीं है। अहा! बात–बातमें फेर है।

समयसारके पुण्य-पाप अधिकारमें कहा है ना!–

जीव रागी बाँधे कर्मको, वैराग्यगत मुक्ती लहे,
—ये जिनप्रभू उपदेश है, नहि रक्त हो तू कर्मसे ॥१५०॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

—यह जो आगमवचन है वह, सामान्यरूपसे रागीपनेके निमित्तत्वके कारण शुभ और अशुभ दोनों कर्मको अविशेषरूपसे बंधके कारणरूप सिद्ध करता है और इसलिये दोनों कर्मका निषेध करता है।

धर्मीको ज्ञान और वैराग्य दोनों एकसाथ होते हैं—स्वरूपका ज्ञान और रागका अभाव दोनों एकसाथ ही होते हैं।

समयसारके निर्जरा अधिकारमें आता है ना! कि "सम्यग्दृष्टिको नियमसे ज्ञान और वैराग्यकी शक्ति होती है; क्योंकि वह (सम्यग्दृष्टि जीव) स्वरूपका ग्रहण और परका त्याग करनेकी विधि द्वारा अपने वस्तुत्वका (यथार्थ स्वरूपका) अभ्यास करनेके लिये, 'यह स्व है (अर्थात् आत्मस्वरूप है) और यह पर है' ऐसा भेद परमार्थतः जानकर स्वमें रहता है (-टिकता है) और परसे—रागके योगसे—सर्व प्रकारसे विरमता है। (यह रीति ज्ञान-वैराग्यकी शक्ति बिना नहीं हो सकती।)"

ज्ञान और वैराग्य सदा एकसाथ होते हैं।

अष्टपाहुड़में—शील अधिकारमें—कहा है कि : नरकमें भी शील है। शील अर्थात् मिथ्यात्व और अनन्तानुबंधी कषायका अभाव। आत्माकी प्रतीतिके बिना चाहे जितना राग मन्द करे और बाह्यमें सब छोड़ दे, तथापि उसे शील नहीं कहा जाता। वह तो स्वरूपसे भ्रष्ट है।

शील अर्थात् स्वभावकी दृष्टि और रागसे विरक्ति, वह भाव नारकीमें भी होता है। शीलके प्रतापसे वह वहाँसे निकलकर तीर्थंकर होता है। देखो ना! श्रेणिक राजा वर्तमानमें नरकमें हैं, चौरासी हजार वर्षकी स्थितिमें हैं। उनको ज्ञान और वैराग्य दोनों हैं। उनके प्रतापसे वे वहाँसे निकलकर तीर्थंकर होनेवाले हैं। यह तो दृष्टान्त है, किन्तु सिद्धान्त यह है कि नरकमें भी शील होता है।

नग्न दिगम्बर मुनि हुआ हो; हजारों रानियोंका त्याग, पंचमहाव्रत तथा शुक्ल लेश्या हो; तथापि वह, आत्मस्वरूपका ज्ञान—अनुभव नहीं होनेसे, अनन्त संसारमें भटकता है; क्योंकि मिथ्यात्व ही संसार है और सम्यक्त्व ही मोक्ष है। कलशमें आता है ना? 'स हि मुक्त एव।' अहा! जिस पर जोर देना चाहिये उस पर जोर नहीं दिया, और बाह्यमें जोर देकर अनन्त कालसे परिभ्रमण कर रहा है, दुःखी हो रहा है। चौरासीके अवतारमें कहीं सुख नहीं है, सुख तो एकमात्र अपने आत्मामें ही है।

आजकल तो ऐसी प्ररूपणा चलती है कि—शुभ उपयोगसे धर्म होता है; शुभ उपयोग करते-करते शुद्ध हुआ जाता है, वह अनेकान्त है, शुभसे शुद्ध नहीं होता वह एकान्त है। भाई! ऐसा है ही नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि—शुद्धस्वरूप वस्तु है उसका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उपयोग सो शुद्ध उपयोग; परोन्मुखताका भाव सो अशुद्ध उपयोग—वह शुभ हो या अशुभ हो परन्तु वे दोनों हैं अशुद्ध उपयोग। परद्रव्यके आश्रयसे होनेवाला उपयोग अशुद्ध है और स्वद्रव्यके आश्रयसे होनेवाला उपयोग शुद्ध है। शुद्ध भावसे धर्म होता है और अशुद्ध भावसे—शुभाशुभभावसे—धर्म कदापि नहीं होता यह सच्चा अनेकान्त है।

त्रैकालिक निज शुद्ध स्वभावकी सच्ची प्रतीति सो ज्ञान, और उस काल रागका अभाव सो वैराग्य। वे दोनों एक-दूसरेको सहायक, आधारभूत तथा प्रोत्साहन देनेवाले हैं।

प्रश्न :—सहायताका तो आप इनकार करते हैं ना?

उत्तर :—सहायता किसकी? अंतरमें एक गुण दूसरे गुणको सहायक होता है, ऐसा कहा वह निमित्तका कथन है। पर सहायता करे उसकी यहाँ बात नहीं है। अंतरमें आत्माका सच्चा ज्ञान हो वहाँ पुण्य-पापभावसे विरक्तस्वरूप सच्चा वैराग्य होता ही है, और सच्चा वैराग्य हो वहाँ सच्चा ज्ञान होता ही है।

'ज्ञानरहित वैराग्य वह सचमुच वैराग्य नहीं है किन्तु रुँधा हुआ कषाय है।'

शुद्ध चैतन्य अकषायस्वरूप—सर्वोत्कृष्ट परमात्मस्वरूप—निज आत्मस्वभावके ज्ञानसे रहित वैराग्य वह सच्चा वैराग्य नहीं है; क्योंकि जहाँ शुद्ध चैतन्य महाप्रभु ऐसे सर्वोत्कृष्ट निज परमात्मस्वरूपका ज्ञान नहीं है वहाँ वैराग्य नहीं होता, वहाँ परकी ओरके रागका अभाव नहीं होता। इसलिये कहते हैं कि—ज्ञानरहित वैराग्य वह सचमुच वैराग्य नहीं है।

स्त्रीका त्याग कर दे, कुटुम्ब—परिवारको छोड़ दे, जातिसे तथा व्यापारादिके बंधनसे भी छूट जाये, अशुभभाव छोड़ दे परन्तु वस्तुस्थितिकी प्रतीतिके बिना, अस्ति—विद्यमानता—स्वरूप जो पूर्ण वस्तु है उस पूर्ण स्वभावके ज्ञान बिना, उसको वैराग्य—रागका अभाव—सच्चा नहीं होता। वास्तवमें वह वैराग्य नहीं किन्तु रुँधा हुआ—रोका हुआ, दबाया हुआ—कषाय है; क्योंकि वह मिथ्यात्वसहित है ना? अज्ञानीको कषायकी मंदता दिखती है, मानों राग कम हुआ हो ऐसा लगता है, किन्तु चैतन्यके—पूर्ण स्वरूपके—सम्यक्ज्ञान बिना उसके राग—कषाय कम नहीं हुआ है, रुँधा हुआ—रुका हुआ है; वह अकषाय परिणाम नहीं है।

जिसप्रकार अग्निके निमित्तसे पानीमें या दूधमें उफान आता है, परन्तु वह उफान पोला है; ऊपर उठा उसमें सचमुच कुछ वृद्धि नहीं हुई है; उसीप्रकार ज्ञानस्वरूप भगवान आत्माकी सच्ची प्रतीति रहित वैराग्य वह पोला वैराग्य है, रुँधा हुआ—दबा हुआ कषाय है।

अरे! मिथ्यात्वके कारण पुनः तीव्र कषाय होगा। त्रैकालिक अकषायस्वरूप पूर्ण शुद्ध चैतन्यके ज्ञान बिना, सम्यक् अनुभव बिना, रागकी मन्दताका भाव वह रुँधा हुआ राग है, वास्तवमें वह मन्द नहीं हुआ है; क्योंकि जहाँ स्वरूपकी ही दृष्टि नहीं है,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

त्रैकालिक वैराग्यमूर्ति सर्वोत्कृष्ट प्रभु ऐसे निज आत्माका जहाँ सच्चा ज्ञान नहीं है, वहाँ रागका अभाव है ही नहीं, वहाँ रागको रोकता है–दबाता है इसलिये पुनः रागका विस्फोट होगा, शुभ बदलकर फिर अशुभ होगा। अरे, कठिन कार्य है।

ज्ञान एवं आनन्दस्वभावसे परिपूर्ण ऐसा जो निज आत्माका सर्वोत्कृष्ट चैतन्यमय परमात्मस्वरूप उसकी प्रतीति रहित कषायकी मन्दताको 'अशुभ गया इसलिये शुभ है' ऐसा नहीं कहा जाता; क्योंकि वास्तवमें किंचित् भी कषाय गया नहीं है। चैतन्य स्वरूपकी दृष्टि ज्ञान सम्यक् होनेके पश्चात् शुभ हो वहाँ, व्यवहारसे ऐसा कहा जाता है कि उससे अशुभ गया है। किन्तु इसे तो चैतन्यस्वरूप–जीवका मात्र वीतरागी स्वरूप–ही दृष्टिमें नहीं आया इसलिये उसके जो रागकी मन्दता है, शुभ है उसमें अशुभ गया है ऐसा नहीं कहा जाता।

अहा! ऐसी बातें हैं। भगवान आत्मा तो अकषायस्वरूप है, वीतराग शांतरससे भरपूर, उपशमरसका कन्द है; उसका जिसे ज्ञान नहीं है–वीतराग अकषाय स्वभावका ज्ञान नहीं है–उसकी रागकी मन्दताको 'अशुभ गया है' ऐसा नहीं कहा जाता। उसने रागको रूँधा है–दबाया है। व्यवहारके पक्षवालोंको कठिन लगेगा। वे तो शुभ उपयोगको ही धर्म मानते हैं। असंयमको गलाना इत्यादि शुभभाव साधन है ऐसा वे कहते हैं। भाई! असंयमको गलाना वस्तुस्वरूपकी दृष्टि और अनुभवके बिना सच्चा नहीं होता। वस्तुस्वभावकी दृष्टि और अनुभववाले क्षायिक सम्यक्त्वी भी, स्वरूपकी स्थिरताका विशेष पुरुषार्थ नहीं हो तो, असंयममें रहते हैं तथापि वे मोक्षमार्गमें हैं; परन्तु जिसे अकषायस्वरूप–शान्त शान्त रससे भरपूर–भगवान आत्माका ज्ञान नहीं है, उसके स्वभावकी विद्यमानताका–अस्तित्वका ज्ञान होकर सच्ची प्रतीति नहीं हुई है, उसकी कषायकी मंदताको रूँधा हुआ कषाय–रुका हुआ कषाय कहा जाता है; किंचित् भी कषाय कम हुआ है ऐसा नहीं कहा जाता।

'परन्तु ज्ञान न होनेसे जीव कषायको पहिचान नहीं पाता।'

पूर्ण 'अस्ति'स्वरूप शुद्ध चैतन्यप्रभुके–अनंत-अनंत परमात्मपर्यायोंकी शक्तिका पिण्ड ऐसी निज आत्मवस्तुके–ज्ञान बिना जीव कषायको पहचान नहीं सकता। दया-दान, व्रत-भक्ति, आदिके भाव वह राग-अंश, कषाय-अंश है; ऐसा वह चैतन्यस्वरूपके ज्ञान बिना पहिचान नहीं सकता; किन्तु कषायको ही अपना स्वरूप मानकर वहाँ अटक गया है।

राग तीव्र हो या मंद हो–तीव्र राग अशुभ कषाय है वह तो ठीक, किन्तु भीतर गुण-गुणीके भेदका सूक्ष्म विकल्प उठे वह भी कषाय है–अकषायी आत्माके ज्ञान बिना जीव कषायको नहीं पहिचान सकता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा तो अकषाय उपशमस्वरूप है; जिनस्वरूप ही प्रभु आत्मा है। कहा है ना!–

घट घट अंतर जिन बसै, घट घट अंतर जैन।
मति-मदिराके पान सौं, मतवाला समुझै न॥

–ऐसे जिनस्वरूपी, अकषायस्वरूपी, वीतरागस्वरूपी–जिसमें कषायका अंश नहीं है और वीतरागताकी परिपूर्णतासे युक्त है ऐसे–निज आत्मपदार्थके ज्ञान बिना जीव कषायको पहिचान नहीं पाता और रागकी मंदताको भी आत्माके खातेमें डाल देता है।

'ज्ञान स्वयं मार्गको जानता है, और वैराग्य है वह ज्ञानको कहीं फँसने नहीं देता किन्तु सबसे निःस्पृह एवं स्वकी मौजमें टिका रखता है।'

आत्मवस्तु ही सर्वोत्कृष्ट है, अनंतशक्तिका सागर है–ऐसा जो ज्ञान वह स्वयं ही मार्गको जानता है, उसे परकी अपेक्षा या सहायताकी आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न :—ज्ञानको वैराग्यकी आवश्यकता होती है?

उत्तर :—होता ही है; आवश्यकता नहीं, होता ही है। जहाँ ज्ञान हो वहाँ वैराग्य होता ही है।

मोक्षमार्ग शुद्ध चैतन्यके ज्ञान एवं आनन्दस्वरूप शुद्ध पर्याय है; उसे ज्ञान बराबर जानता है। जो त्रैकालिक वस्तु है उसे जाननेवाला ज्ञान वह पर्याय है, वह ज्ञानपर्याय–निर्मल पर्याय मोक्षमार्गको जानती है और जो वैराग्य है वह ज्ञानको कहीं फँसने नहीं देता।

नारियलमें जिस प्रकार ऊपर नरेली कठिन ज्योंकी त्यों होने पर भी गोला पृथक् पड़ा है, उसीप्रकार सम्यक्त्वीको, चारित्र प्रगट नहीं हुआ है तथापि, अंतरमें चैतन्य-गोला प्रतीतिमें रागकी नरेलीसे भिन्न पृथक् ही रहता है।

यहाँ कहते हैं कि–वैराग्य है वह ज्ञानको कहीं फँसने नहीं देता; तीर्थंकरदेवकी भक्तिमें भी नहीं। शक्रेन्द्र और उसकी इन्द्रानी शची–दोनों एकावतारी हैं। वे अष्टाह्निकापर्वमें नन्दीश्वरद्वीप जाकर वहाँके बावन शाश्वत जिनालयोंमें शाश्वत जिनबिम्बोंके समक्ष घुँघरू बाँधकर नाचते हैं–भक्ति करते हैं; तथापि वे उस क्रिया और उस ओरके रागसे भिन्न हैं। भिन्नता करनी नहीं पड़ती, परन्तु अंतर-परिणमन ही भिन्न हो गया है।

पूर्ण शुद्धस्वरूपके ज्ञानसे वर्तमान मोक्षमार्ग जाना उसको रागके अभावस्वरूप वैराग्य तो सदा वर्तता है, कि जो ज्ञानको सबसे निःस्पृह रखकर अपनी मौजमें टिका रखता है, कहीं फँसने नहीं देता। अहा! ऐसी वस्तु है।

'ज्ञानसहित जीवन नियमसे वैराग्यमय ही होता है।'

वस्तुरूपसे आत्मा तो पूर्ण प्रभु है–ऐसा ज्ञान जहाँ हो गया, भले ही वह आठ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वर्षकी बालिका हो, वहाँ वह ज्ञानयुक्त जीवन नियमसे रागके अभावस्वरूप होता है। राग धर्मी जीवका जीवन ही नहीं है; उसका ज्ञानयुक्त जीवन नियमसे–निश्चयसे वैराग्यमय ही होता है।

अहा! आत्मा पूर्णानन्दका नाथ है; उस पूर्णानन्दके नाथका पर्यायमें ज्ञान हुआ कि वस्तु तो वस्तु है; उस त्रैकालिक ज्ञानस्वभावी वस्तुका जो ज्ञान एवं श्रद्धा पर्यायमें हुई वह ज्ञान–श्रद्धायुक्त जीवन नियमसे रागके अभावस्वरूप–वैराग्यमय ही होता है। अहा! यह (वचनामृतके बोल) तो केवल अमृतके पिण्ड हैं! ज्ञानसहित जीवन वैराग्यमय ही होता है, क्योंकि ज्ञानानन्दका–परमानन्दस्वरूपका–जो ज्ञान हुआ वह ज्ञानपरिणमन रागके अभावस्वरूप ही होता है। इसलिये वह ज्ञान वैराग्यमय ही होता है। अहा! ऐसी बात है!

❃

वचनामृत–५

अहो! इस अशरण संसारमें जन्मके साथ मरण लगा हुआ है। आत्माकी सिद्धि न सधे तब तक जन्म-मरणका चक्र चलता ही रहेगा। ऐसे अशरण संसारमें देव–गुरु–धर्मका ही शरण है। पूज्य गुरुदेवके बताये हुए चैतन्य शरणको लक्षगत करके उसके दृढ़ संस्कार आत्मामें जम जायँ–यही जीवनमें करने योग्य है ॥ ५ ॥

'अहो! इस अशरण संसारमें जन्मके साथ मरण लगा हुआ है।'

यह आत्मा स्वयं प्रभु–शुद्ध चैतन्यवस्तु–होनेपर भी उसे अनादिसे पर्यायमें संसारकी अस्ति है, संसार नहीं है ऐसा नहीं है। इस अशरण संसारमें संयोग हुआ उसका वियोग होगा; जन्म–देहका संयोग–हुआ उसका मरण–देहका वियोग–होगा ही। वास्तवमें तो आत्मा कहीं जन्मता नहीं है, परन्तु अज्ञानके कारण अनादिसे पर्यायमें जन्म और मरणकी कतार लगी है। अनादि भूतकालमें कोई एक समय भी भवके बिना नहीं गया। जिस प्रकार कन्या पहले पीहरमें रहती है उसीप्रकार शास्त्रमें कहा है कि जीव अनन्तकाल तक निगोदमें रहा है।

'आत्माकी सिद्धि न सधे तब तक जन्म-मरणका चक्र चलता ही रहेगा।'

अहो! इस अशरण संसारमें जन्म और मरणका चक्र अनादिकालसे चलता ही रहता है;–जबतक आत्माकी सिद्धि नहीं करे तब तक। अहा! आत्मा स्वयं तो जन्म-मरण तथा जन्म-मरणके भावरहित वस्तु है। उसकी शरण नहीं लेगा तो आत्माकी सिद्धि नहीं सधेगी।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भगवान निज आत्माकी सिद्धि नहीं साधेगा तबतक इस अशरण संसारमें जन्म-मरणका चक्र चलता ही रहेगा। एक श्वासमात्र कालमें निगोदके अठारह भव! उसे, उसके योग्य मन्द-तीव्र भाव होते हैं तथापि वे सब हैं भव-भाव। अशुभकी आदत हो गई, शुभमें आया तो उसकी भी आदत पड़ गई, लेकिन है यह सब संसार। शुभ-अशुभ तथा उसके फलरूप भव—ऐसा चक्र चलता ही रहता है।

'ऐसे अशरण संसारमें देव-गुरु-धर्मका ही शरण है।'

सच्चे देव-गुरु-धर्मका शरण व्यवहारसे है; प्रथम वैसा निमित्त मिलता है इसलिये वह व्यवहारसे शरण है। पश्चात् बहिनने नाम देकर अपनी विनयसे कहा है कि—

'पूज्य गुरुदेवके बताये हुए चैतन्यशरणको लक्षगत करके उसके दृढ़ संस्कार आत्मामें जम जायँ—यही जीवनमें करने योग्य है।'

अहा! अंतरमें चैतन्यप्रकाशका पुंज प्रभु विद्यमान है, उसका लक्ष करके—पर्याय एवं रागकी एकत्वबुद्धि है उसे छोड़कर—चैतन्यस्वरूपमें भीतर आओ। मैं चैतन्य ज्ञायक....चैतन्य ज्ञायक, पर्याय नहीं और राग नहीं—इसप्रकार चैतन्यको लक्षमें लेकर, वर्तमान ध्यानपर्यायमें चैतन्यको ध्येय बनाकर, उसके दृढ़ संस्कार आत्मामें पड़ जायँ—बारम्बार अंतरोन्मुख हो और चैतन्यके संस्कार दृढ़ हों यही जीवनमें करने योग्य है। क्या व्यवहार करने योग्य नहीं है? पहले बतलाया कि देव-गुरु-धर्मका शरण निमित्तभूत है; लेकिन फिर बताते हैं चैतन्य-शरणको। देव-गुरु-धर्म बतलाते हैं चैतन्यको; मार्ग बतलाते हैं कि चैतन्यका लक्ष कर। पूर्णस्वरूप भगवान आत्माको दृष्टिगत—लक्षगत—करके उसके दृढ़ संस्कार आत्मामें डाल। अनादिसे रागके तथा पर्यायके दृढ़ संस्कार पड़े हैं, वहाँसे दृष्टि पलटकर चैतन्यमय निज प्रभुके दृढ़ संस्कार डाल; जिससे तुझे भविष्यमें आत्माकी प्राप्ति अवश्य होगी। चैतन्य-वस्तु भगवान आत्माको लक्षगत करके—उसके साथ डोर बाँधकर—उसके संस्कार भीतर डालना, यही जीवनमें करने योग्य है।

लोगोंको यह बात निश्चयकी लगती है; किन्तु भाई! पूजा करना, मन्दिर बनवाना, पंचकल्याणक मनाना तथा गजरथ चलाना, शिक्षण-शिबिर लगाना,—यह सब विकल्प बीचमें भले आयें, परन्तु चैतन्यको लक्षगत करके उसके खूब दृढ़ संस्कार पड़ जायँ—निज शुद्धआत्माकी अनुभवमें प्राप्ति हो—यही इस दुर्लभ मनुष्यभवमें करने योग्य है। किसीको यह बात नहीं जमे तो क्या किया जाये? अरे रे! मूल वस्तु दूर रह जाती है; जिसे जानना—देखना चाहिये वही रह जाता है। अंतरमें ज्ञाताको जानना चाहिये; वह जानना रह जाता है तबतक जीव बाह्यसे विमुख नहीं होगा।

आत्मा ज्ञाता...ज्ञाता...ज्ञाता जानने योग्य वस्तु है। उसे अंतर-अनुभवसे जानना ही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जीवनका कर्तव्य है। उसमें रस-रुचि न आये तबतक जीव बाह्यरस–रुचिसे नहीं छूटेगा। 'रुचि अनुयायी वीर्य;' जहाँ रुचि हो वहाँ अनन्तानन्तकाल यों ही व्यतीत कर दिया है। वहाँ कोई शरणभूत नहीं हुआ। अंतरमें जो शरण है उसे लक्षगत नहीं किया और जो शरणभूत नहीं हैं उन्हें लक्षगत करके परिभ्रमण–जन्म-मरणका चक्र–पैदा किया है। देखो ना! छोटी-छोटी-सी उम्रमें शरीर छूट जाता है; आयुका क्या भरोसा? इसलिये जीवनमें शीघ्र आत्महित कर लेने जैसा है।

❃

वचनामृत–६

अब यह छठवाँ बोल :

स्वभावकी बात सुनते ही सीधी हृदय पर चोट लग जाय, 'स्वभाव' शब्द सुनते ही शरीरको चीरता हुआ हृदयमें उतर जाय, रोम-रोम उल्लसित हो जाय–इतना हृदयमें हो और स्वभावको प्राप्त किये बिना चैन न पड़े, सुख न लगे, उसे लेकर ही छोड़े। यथार्थ भूमिकामें ऐसा होता है ॥ ६ ॥

'स्वभावकी बात सुनते ही सीधी हृदय पर चोट लग जाय।'

क्या कहते हैं? प्रभु–आत्मा स्वभावस्वरूप है, शुद्ध चैतन्यमूर्ति त्रैकालिक स्वभावरूप वस्तु है। जिसका अस्तित्व ज्ञान एवं आनन्दस्वभाववाला है ऐसे आत्मस्वभावकी बात सुनने पर निमित्त, राग और पर्यायमेंसे लक्ष हट जाय और भीतर महाप्रभु विराजमान है उसकी महिमा हृदयमें सीधी उतर जाय। जिसप्रकार बिजली ताँबेके तारमें झटसे उतर जाती है, उसीप्रकार पूर्णानन्द प्रभु चैतन्यस्वभावकी–जिसका नित्यस्वभाव ज्ञान एवं आनन्द है ऐसे नित्यानन्द प्रभुकी–बात सुनने पर हृदयपर सीधी चोट पड़ जाती है। बाहरसे हटकर अंतरमें चला जाता है। भीतर स्वभाव विद्यमान है ऐसा जानने पर सीधी हृदय पर चोट लग जाती है।

'स्वभाव' शब्द सुनते ही शरीरको चीरता हुआ हृदयमें उतर जाय,...'

बाहर नहीं किन्तु इस ओर अंतरमें उतर जाता है ऐसा कहते हैं। जिसका त्रैकालिक स्वभाव भगवत्स्वरूप है ऐसे ध्रुवकी–निज प्रभुकी–बात सुनते ही शरीरको चीरता हुआ हृदयमें उतर जाता है और शरीरसे भी पृथक् हो जाता है। शरीरको चीरता हुआ अर्थात् शरीरसे भिन्न, और हृदयमें अर्थात् ज्ञानमें। ज्ञानमें ऐसा लगता है कि अहो! ऐसा स्वभाव!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

लोगोंको अंतरकी ऐसी बातें कठिन लगती हैं, बाहरकी बातें सरल लगती हैं। 'परमार्थ वचनिका'में कहा है कि—मूढ़ जीव आगमपद्धतिको व्यवहार कहते हैं और अध्यात्मपद्धतिको निश्चय कहते हैं; इसलिये वे आगम-अंग को एकान्तरूपसे साधकर मोक्षमार्ग दर्शाते हैं; अध्यात्म-अंगको व्यवहारसे भी नहीं जानते।—यह मूढ़दृष्टि जीवका स्वभाव है। उसे इसप्रकार तो सूझेगा ही कहाँसे? क्योंकि आगम-अंग बाह्यक्रियारूप प्रत्यक्षप्रमाण है; उसका स्वरूप साधना उसे सुगम है। बाह्यक्रिया करता हुआ वह मूढ़ जीव अपनेको मोक्षमार्गका अधिकारी मानता है, परन्तु अंतर्गर्भित अध्यात्मरूप क्रिया—जो अंतर्दृष्टिग्राह्य है उस क्रियाको—मूढ़ जीव नहीं जानता।...वह मोक्षमार्ग साधनेमें असमर्थ है।

अज्ञानीको आगमका व्यवहार सरल लगता है, अनुकूल लगता है। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि आगमके व्यवहारमें—शुभपरिणामोंमें—उसकी रुचि होती है। प्रवचनसारकी ९४वीं गाथाकी टीकामें भी कहा है कि—अज्ञानी जीव अविचलित-चेतनाविलासमात्र आत्मव्यवहारसे च्युत होकर, जिसमें समस्त क्रियाकलापको छातीसे लगाया जाता है ऐसे मनुष्यव्यवहारका आश्रय करके रागी और द्वेषी होते हुए परद्रव्यरूप कर्मके साथ युक्त होनेके कारण वास्तवमें परसमयरूप—मिथ्यात्वरूप—परिणमता है।

मैं मनुष्य हूँ, दया-दानादिके विकल्प मेरा कर्तव्य है—ऐसी मानसिक कल्पनारूप मनुष्यव्यवहार लोगोंको सरल लगता है। अज्ञानी आगमके व्यवहारको सरल जानकर उसका कर्ता होता है और अध्यात्मके व्यवहारको—अंतरमें शुद्ध चैतन्यद्रव्यकी प्रतीति, ज्ञान और रमणतास्वरूप निर्विकल्प परिणमनको—नहीं जानता। आगमके व्यवहारको—असद्भूत राग आदिको—जानता है, परन्तु अध्यात्मके व्यवहारको—अंतरमें रागरहित निर्विकल्प मोक्षमार्गको—नहीं पहिचानता। अध्यात्ममें निश्चय तो त्रिकाल सत् द्रव्यस्वभाव है, और उसके आश्रयसे प्रगट होनेवाली वीतराग निर्विकल्प परिणति वह अध्यात्म-व्यवहार है।

अंतरकी ऐसी बातें लोगोंको असह्य लगती हैं। सर्वत्र बाहरी 'हो....हा....' पसन्द है। व्रत करो, उपवास करो, प्रतिमा ले लो....सर्वत्र धमाचौकड़ी मची है...अर्थात् आगमव्यवहार—मिथ्यात्वसहित शुभभाव—सरल लगता है। अंतरके आत्मशुद्धरूप अध्यात्मव्यवहारकी—शुद्ध पर्यायकी—उन्हें खबर नहीं है। है तो वह भी व्यवहार; क्योंकि उसका आश्रय लेनेसे, लक्ष करनेसे शुद्धि प्रगट नहीं होती। शुद्धि तो अंतरमें जो त्रैकालिक भगवान ध्रुव वस्तु है उसका स्वीकार करनेसे—उसकी निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान एवं रमणतासे होती है।

यहाँ कहते हैं कि आत्मवस्तु नित्य है, उसका स्वभाव शुद्ध एवं ध्रुव है—यह सुनते ही भीतर हृदयमें—ज्ञानमें उतर जाय और—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'रोम-रोम उल्लसित हो जाय—इतना हृदयमें हो, और स्वभावको प्राप्त किये बिना चैन न पड़े, सुख न लगे, उसे लेकर ही छोड़े। यथार्थ भूमिकामें ऐसा होता है।'

अहा! ऐसा स्वभाव मैंने कभी सुना नहीं है।

यह सब करना, किन्तु इसका साधन क्या? भाई! यही साधन है। रागसे भिन्न प्रज्ञाछैनी ही साधन है। यह साधन समझमें नहीं आता इसलिये लोग बाह्य साधनोंमें झंपापात करते हैं। तप करना, भक्ति करना, देव-शास्त्र-गुरुकी पूजा-बहुमान करना, किन्तु यह तो सब शुभ विकल्प हैं, वे कहीं स्वभावप्राप्तिके साधन नहीं हैं।

वस्तु ऐसी है। लोग इसे एकान्त निश्चय कहते हैं। भाई! निश्चय भी नय है ना? नयका विषय सम्यक्-एकान्त है। प्रमाणका विषय अनेकान्त अर्थात् द्रव्य-पर्याय दोनों हैं। नयका विषय वस्तुका एक अंश है; नयका विषय अंशी—सम्पूर्ण वस्तु—नहीं है। निश्चयनय भी अंशको ही ग्रहण करता है; वह अंश—निश्चयनयका विषय—सम्यक् एकान्त ऐसा त्रैकालिक ध्रुवद्रव्य है।

यह तो स्वभावका मार्ग है। उस अपरिमित स्वभावको सीमा कैसी? अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत आनन्द, अनंती ईश्वरता आदि जो अनंत स्वभाव है उसे सुनने पर हृदयपर चोट लगती है और शरीरके पार सीधा अंतरमें उतर जाता है और रोम-रोम उल्लसित हो जाते हैं।

पं. टोडरमलजीकी रहस्यपूर्ण चिट्ठीमें—सविकल्प द्वारसे निर्विकल्प परिणाम होनेका विधान कहा है वहाँ आता है कि—"....वहाँ निज स्वरूपमें अनेक प्रकारकी अहंबुद्धि धारण करता है, 'मैं चिदानन्द हूँ, शुद्ध हूँ, सिद्ध हूँ' इत्यादि विचार होनेपर सहज ही आनन्द तरंग उठती है, रोमांच (उल्लसित) होता है, तत्पश्चात् ऐसे विचार भी छूट जाते हैं और (अपना) स्वरूप केवल चिन्मात्र भासने लगता है...."

अहा! यह कैसी वस्तु है! इसप्रकार अंतरमें महिमा आनेसे रोंगटें खड़े हो जाते हैं, रोम-रोम उल्लसित होता है और पश्चात् विकल्प टूट जाता है। रानी परदेसे बाहर निकले तो लोग आश्चर्यसे देखनेके लिये एकत्रित होजाते हैं, परन्तु अनादिसे राग और पर्यायके परदेमें छिपा हुआ यह भगवान आत्मा क्या वस्तु है, उसे देखने—जाननेका जीवको कभी कौतूहल ही नहीं हुआ। अहा! सर्वोत्कृष्ट परमात्मा स्वयं ही है; वह प्रभु स्वयं अपरिचित रह गया। जिसकी आवश्यकता नहीं थी उसे जाननेमें समय बिताया।

इसलिये यहाँ कहते हैं कि 'स्वभाव' शब्द सुनने पर शरीरके पार हृदयमें उतर जाय, रोम-रोम उल्लसित हो जाय इतना हृदयमें हो, और स्वभाव प्राप्त किये बिना चैन न पड़े, कहीं सुख न लगे; अहा! लेकर ही रहूँगा। यथार्थ भूमिकामें ऐसा होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रथम भूमिकामें ऐसा होता है। स्वरूपप्राप्तिकी यथार्थ भूमिकारूप दशामें–बीचकी भूमिकामें–ऐसा होता है। स्वभाव....स्वभाव...स्वभाव ऐसी जिसे लगन लगी है, अन्य कोई बात न रुचे ऐसी जिसे अंतरमें तीव्र लालसा जागृत हुई है, उसे आत्मा प्राप्त हुए बिना रहता ही नहीं। वस्तु ऐसी है!

✽

ता. १-१०-७७

परिणमनमेंसे निकले हुए शब्द हैं। बहिनको तो निवृत्ति बहुत। निवृत्तिमेंसे आये हुए शब्द हैं। पुस्तकमें तो समयसारका सार आगया है–अनुभवका सार है; परम सत्य है। 'वचनामृत' तो ऐसी वस्तु प्रगट हो गई है कि भारतभरमें सब जगहसे उसका प्रकाशन करना चाहिये।

–पूज्य गुरुदेव।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-३

वचनामृत-७

ता. ८-६-७८

जगतमें जैसे कहते हैं कि कदम–कदम पर पैसेकी जरूरत पड़ती है, उसीप्रकार आत्मामें पग–पगपर अर्थात् पर्याय–पर्यायमें पुरुषार्थ ही आवश्यक है। पुरुषार्थके बिना एक भी पर्याय प्रगट नहीं होती। अर्थात् रुचिसे लेकर ठेठ केवलज्ञान तक पुरुषार्थ ही आवश्यक है ॥ ७ ॥

'जगतमें जैसे कहते हैं कि कदम-कदम पर पैसेकी जरूरत पड़ती है, उसीप्रकार आत्मामें पग-पगपर अर्थात् पर्याय-पर्यायमें पुरुषार्थ ही आवश्यक है।'

आत्मोन्मुख होनेका पुरुषार्थ पर्याय-पर्यायमें होना चाहिये। जो पुरुषार्थ परोन्मुख है वह तो अनादिसे है। अब पुरुषार्थकी गति, रागसे भेदज्ञान करनेके लिये, पर्याय-पर्यायमें स्वभावसन्मुख करना है। रागसे भेदज्ञान होनेके पश्चात् भी पर्याय-पर्यायमें स्वसन्मुखताका पुरुषार्थ चलता ही रहता है। रुचि अनुयायी वीर्य। अंतरमें स्वभावकी रुचि होने पर वीर्य सदा अन्तर्मुख ढलता रहता है।

'पुरुषार्थके बिना एक भी पर्याय प्रगट नहीं होती।'

अहा! अंतरमें वीर्य उल्लसित हुए बिना–वीर्यगुण बिना–एक भी पर्याय प्रगट नहीं होती।

'अर्थात् रुचिसे लेकर ठेठ केवलज्ञान तक पुरुषार्थ ही आवश्यक है।'

स्वरूपकी—शुद्ध चैतन्य, आनन्दघन तथा ज्ञानपिण्ड ऐसे निजआत्माकी—रुचिसे लेकर ठेठ केवलज्ञान तक पुरुषार्थ ही आवश्यक है। अंतरमें झुकावका नाम ही पुरुषार्थ है। स्वभावकी रुचिसे लेकर पूर्णता तक पुरुषार्थ ही आवश्यक है।

पुरुषार्थकी आवश्यकताका अर्थ क्या? कि–आत्मा रागादि विभावका परमार्थसे अकर्ता है; और स्वभावसे ज्ञाता है। उसी ज्ञायकस्वभावकी रुचि आदि अंतरोन्मुखताको

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नास्तिसे विभावके अकर्तापनेका और अस्तिसे ज्ञातापनेका पुरुषार्थ कहा जाता है। अहा! अंतरमें ज्ञाता....ज्ञाता....ज्ञातारूपसे जागृत हुआ, वह ज्ञाता ज्ञातारूप ही पुरुषार्थ करता है। चाहे तो उदय हो उसे जानता है, निर्जरा हो उसे जानता है, बंध हो उसे जानता है और मोक्ष हो उसे भी जानता है—मात्र ज्ञातारूप रहता है। उसका ज्ञातृत्वका पुरुषार्थ अंतरमें ज्ञातामें ढलता ही रहता है। सर्व शुद्धियोंके लिये प्रत्येक पर्यायमें भीतर पुरुषार्थ ही कार्य करता है।

❃

वचनामृत-८

आजकल पूज्य गुरुदेवकी बात ग्रहण करनेके लिये अनेक जीव तैयार हो गये हैं। गुरुदेवको वाणीका योग प्रबल है; श्रुतकी धारा ऐसी है कि लोगोंको प्रभावित करती है और 'सुनते ही रहें' ऐसा लगता है। गुरुदेवने मुक्तिका मार्ग दरशाया और स्पष्ट किया है। उन्हें श्रुतकी लब्धि है ॥ ८ ॥

इस आठवें बोलमें बहिनने जरा यहाँका (-गुरुदेवका) लिया है कि—आजकल (गुरुदेवकी) जो यह वाणी निकलती है उसे सुनने-समझने के लिये अनेक जीव तैयार हो गये हैं। सुननेको तथा समझनेको हजारों लोग तैयार हो गये हैं। बहिन कहती हैं कि यहाँ (गुरुदेवको) वाणीका प्रबल योग है। वाणीका योग तो, भगवानकी ॐकारवाणी—दिव्यध्वनि—सुनकर आये हैं इसके कारण है। इसलिये श्रुतकी धारा ऐसी है कि लोंगोंको प्रभावित करे और 'सुनते ही रहें' ऐसा लगे—यह तो बहिनकी अपनी विनय की बात है। यहाँसे (गुरुदेवसे) मुक्तिका मार्ग प्रकाशित एवं स्पष्ट हुआ है। यहाँ (गुरुदेवको) श्रुतकी लब्धि है, श्रुतके विकासका काल है;—ऐसा कहकर बहिन स्वयं अपनी विनय प्रगट करती हैं।

❃

वचनामृत-९

पुरुषार्थ करनेकी युक्ति सूझ जाय तो मार्गकी उलझन टल जाय। फिर युक्तिसे कमाये। पैसा पैसाको खींचता है—धन कमाये तो ढेर हो जाये, तदनुसार आत्मामें पुरुषार्थ करनेकी युक्ति आगई, कभी तो अंतरमें ढेरके ढेर लग जाते हैं, और कभी सहज जैसा हो वैसा रहता है ॥ ९ ॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'पुरुषार्थ करनेकी युक्ति सूझ जाय तो मार्गकी उलझन टल जाय।'

चैतन्य-अमृतका सागर प्रभु आत्मा अंतरमें भरा है, उस ओर की रुचि होने पर पुरुषार्थकी युक्ति सूझ जाती है। जिसे पुरुषार्थ रुचिमें–हाथमें आगया, 'मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूँ, ऐसी रुचि जिसे हुई उसे रुचिके पुरुषार्थकी कलाकी युक्ति हाथ लग गई। आत्माके स्वभावकी ओर ही जिसका पुरुषार्थ मुड़ गया है वही उसकी युक्ति है। कला अर्थात् उस जातिकी दशा। करना तो यह है भाई! शुभविकल्प आदि साथमें होते हैं, परन्तु उसके साथ इस अंतरंगतत्त्वको समझनेका प्रयत्न अंतरमें होना चाहिये।

मैं तो ज्ञानस्वरूप ही हूँ। ज्ञान क्या करेगा? ज्ञान करेगा क्या? राग करेगा? ज्ञानमें 'राग करे' यह कैसे हो सकता है? ज्ञानका ज्ञान करेगा। अहा! ऐसी पुरुषार्थकी युक्ति सूझ जाय तो मार्गकी उलझन मिट जाये। बड़ी सादी भाषा है! स्वरूपमें–अस्तित्वस्वरूप ध्रुवमें–अनंत शान्ति और अनंत आनन्द है ऐसी अन्तर्मुख होनेकी सूझ पड़े, अंतरमें पुरुषार्थ करनेकी कला हाथ आजाय तो उस ओर ढलता ही रहे। जिसका प्रेम हो उस ओर पुरुषार्थ ढले बिना नहीं रहता।

'फिर युक्तिसे कमाये। पैसा पैसेको खींचता है–धन कमाये तो ढेर हो जाये तदनुसार आत्मामें पुरुषार्थ करनेकी युक्ति आगई, तो कभी तो अंतरमें ढेरके ढेर लग जाते हैं और कभी सहज जैसा हो वैसा रहता है।'

अंतर्मुख होनेकी कला हाथमें आनेके पश्चात् शुद्धि बढ़ती जाती है। कहावत है ना कि–'धन कमाये तो ढेर हो और खुद कमाये तो पेट भरे'। पैसा कमाना वह बुद्धिका काम नहीं है; पुण्यका योग हो तो बाह्यमें लक्ष्मी के ढेर लग जाते हैं। पाँच-पच्चीस लाख हों तो दो–पाँच–दस लाखकी वृद्धि होती रहती है। यहाँ तो यह सब आत्मामें उतारना है। इस उदाहरणकी भाँति जिसे आत्मामें आत्मा–महाप्रभु–दृष्टिमें आगया, भीतर पुरुषार्थ करनेकी युक्ति मिल गई, उसे शुद्धिके तथा आनन्दके ढेर लग जाते हैं।

'नमः समयसाराय' में सर्वोत्कृष्ट परमात्माको, भगवानस्वरूप निज आत्माको, नमस्कार किया है। वास्तवमें तो यह आत्मा, स्वयं ही शुद्ध चैतन्य समयसार है उसे नमता है, उसमें ढलता है, उससे परमात्मदशा प्रगट होगी। यहाँ भी ऐसा ही कहते हैं कि–अन्तरमें पुरुषार्थ करनेकी कला हाथ आगई, परकी मिठास—अंतरमेंसे पुण्यकी, पापकी, पुण्यके फलरूप सामग्रीकी मिठास–गई और स्वरूपकी मिठास प्रगट हुई, इसलिये कभी-कभी तो अंतरमें ढेरके ढेर लग जाते हैं। इसका अर्थ क्या? कि–यदि पुरुषार्थ अंतरमें एकदम कार्य करे तो भीतर आनन्दकी उग्रता बढ़ जाती है। जो जागृतदशा हुई है उसमें उग्रता बढ़ जाये तो आनन्दके ढेर लग जाते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहा! यह स्वरूपका धन जिसकी दृष्टिमें–रुचिमें आया है उसे कभी तो—अंतर्मुखताका पुरुषार्थ एकदम बढ़ जाय, अंतरमें सहज स्वाभाविक जागृतदशा खूब जम जाय तो—आनन्दके ढेर लग जाते हैं अर्थात् अतीन्द्रिय ज्ञान एवं अतीन्द्रिय आनन्दकी धारा वेगवान होजाती है।

....और कभी जैसा है वैसा रहता है। अंतरमें स्वभावसन्मुख रुचि है, इसलिये परिणमन जितना हुआ उतना तो रहता ही है किन्तु किसी बार उग्र पुरुषार्थ करे तो ढेर भी लग जाते हैं। दो बातें हैं–अंतरमें एकदम उग्रता हो, साहसपूर्ण सहज पुरुषार्थ हो तो उससे शुद्धि और आनन्दके एकदम ढेर लग जाते हैं; वैसे सहजरूपसे शुद्धचैतन्यकी दृष्टिका परिणमन है वैसा बना ही रहता है। यह सब तो अंतरकी बातें हैं, बाहरके साथ इनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

*

वचनामृत-१०

हम सबको सिद्धस्वरूप ही देखते हैं, हम तो सबको चैतन्य ही देख रहे हैं। हम किन्हींको रागद्वेषवाले देखते ही नहीं। वे अपनेको भले ही चाहे जैसा मानते हों, परन्तु जिसे चैतन्य—आत्मा प्रकाशित हुआ उसे सब चैतन्यमय ही भासित होता है ॥१०॥

'हम सबको सिद्धस्वरूप ही देखते हैं...'

क्या बात है! जिसकी रागके साथ एकता टूट गई है और स्वभावकी एकता हुई है उसे तो एकत्व-विभक्त स्वभाव ही ज्ञात होता है। दृष्टिमें शुद्धचैतन्य भगवान जो कि एकमात्र दृष्टि का विषय है वही ज्ञात होता है; आत्मामें–पर्यायमें–अशुद्धता पड़ी है किन्तु वह दृष्टिका विषय नहीं है। अशुद्धता आदिका ज्ञान होता है, परन्तु उसका आश्रय नहीं होता। पवित्र और पूर्ण ऐसा भगवान शुद्ध चैतन्य–अपरिमितज्ञान एवं आनन्दादि अनंत शक्तियोंका पिण्ड–दृष्टिमें, प्रतीतिमें, ज्ञानकी पर्यायमें ज्ञेय होकर, ज्ञात हुआ उस निज अस्तित्वको देखनेवाला धर्मी कहता है कि–'हम सबको सिद्धरूप ही देखते हैं'। सबका मूलस्वरूप शुद्ध है इसलिये जिसप्रकार हम सिद्धरूप हैं उसी प्रकार सर्व जीव स्वभावसे सिद्धरूप ही हैं। पर्यायमें अशुद्धता होने पर भी वस्तु तो शुद्ध ही है। उसकी दशाके पुण्य-पाप विकारमें जाते हैं, वे कहीं आत्माके मूल स्वभावमें नहीं जाते-आते। वस्तु तो सिद्धस्वरूपी है। 'वही आत्मा है' ऐसा देखनेवाला सर्व आत्माओंको सिद्धरूप ही देखता है। सम्यग्दर्शन अर्थात् सत्यका दर्शन जहाँ हुआ, पूर्ण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सत्य, पूर्ण अस्तित्व, भूतार्थ–सत्यार्थ वस्तुका अनुभव हुआ वह 'सर्व आत्मा ऐसे ही हैं' ऐसा देखता है। पर्यायबुद्धि टल गई है वह दूसरोंको पर्यायबुद्धिसे नहीं देखता, किन्तु द्रव्यबुद्धिसे देखता है। ऐसी बात है!

'हम तो सबको चैतन्य ही देख रहे हैं।'

जीव तो 'यह करना, वह करना,' इसीमें रुक गया है। परन्तु 'करना' जिसमें है ही नहीं ऐसे ज्ञायकपिण्ड प्रभुको—कि जो रागके तथा उदयभावके अकर्तास्वभाव स्वरूप अर्थात् ज्ञाताद्रष्टास्वरूप अपनी त्रैकालिक वस्तु है उसे—जिसने देखा–अनुभव किया है वह 'सर्व आत्मा ऐसे ही हैं' ऐसा देखता है।

स्वयं चैतन्य ही है ऐसा अनुभव हुआ—ज्ञानमूर्ति है, ज्ञानके प्रकाशका पुंज है, वही मैं हूँ ऐसा अनुभवमें आया–वह, सब आत्मा ऐसे ही हैं, 'सर्वजीव हैं सिद्धसम'—ऐसा देखता है। पर्यायदृष्टि हटा दी और द्रव्यदृष्टि हुई वह दूसरोंको भी द्रव्यदृष्टिसे ऐसे पूर्ण भगवान ही देखता है। पर्यायका ज्ञान करता है, परन्तु आदरणीयरूप—दृष्टिके आश्रयरूप—तो उसे त्रैकालिक ध्रुव शुद्ध द्रव्य ही है। जिसकी पर्यायबुद्धि मिट गई वह पर्यायका आश्रय नहीं लेता, त्रिकालशुद्ध ज्ञायक भगवानका आश्रय लेता है।

यहाँ तो कहते हैं कि–स्वयं ही शुद्ध चैतन्यघन अस्तिरूपसे था, उसे जिसने 'राग और पुण्य मेरे' मानकर नास्तिरूप माना था, किन्तु अब 'राग और पुण्य मैं नहीं, मैं तो पूर्ण आनन्द हूँ' ऐसा जाना और माना उसे अस्तिरूप अपनी दृष्टि हुई, और सर्व आत्मा भी ऐसे ही अस्तिरूप हैं ऐसा वह देखता है।

'हम किन्हीं को रागद्वेषवाले देखते ही नहीं।'

–वस्तुदृष्टिसे; पर्यायसे है वह तो जानने योग्य है। यहाँ तो आदरणीय वस्तुस्वभावकी बात है।

यह वचनामृत पुस्तक पढ़कर वर्तमानके मुनि भी विचार करेंगे कि–अहा! मुनिपनेका स्वरूप कैसा सिद्ध किया है। मुनिकी अस्तिसे बात की है कि–मुनि ऐसे होते हैं। भाई! यहाँ पक्षकी बात कहाँ है? मुनि तो आत्माके आनन्दमें लीन होते हैं। बाहर आयें तो श्रुत-चिन्तवनके विकल्प उठते हैं, किन्तु फिर तुरन्त अंतरमें चले जाते हैं। बाहर आये—न आये कि भीतर उतर जाते हैं। ऐसी मुनिकी स्थिति है। वस्तुका स्वरूप ऐसा है। यहाँ तो अभी चौथे गुणस्थानकी बात ली है; मुनिकी तो बात ही क्या करें? सच्चे सन्तोंने—आत्माने—तो त्रिकाल एक ज्ञायकपनेका ही वेश परमार्थसे धारण किया है; संवर, निर्जरा और मोक्ष–यह भी उनका परमार्थ वेश नहीं है। अहा! ऐसी बात है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

किसीको हम रागद्वेषवाले देखते ही नहीं। यहाँ 'ही' पर जोर दिया है। वस्तु है वह रागद्वेषवाली है ही कहाँ? अहा! जगतमें कोई सर्वोत्कृष्ट वस्तु हो तो प्रभु आत्मा ही है। वह वस्तु है ना? वस्तु है तो उसमें वस्तुस्थितिसे ज्ञान आदि अनन्त गुणोंका वास है। जिसप्रकार वस्तु त्रिकाल है उसीप्रकार उसकी शक्तियाँ–स्वभाव–गुण भी त्रिकाल हैं। वस्तु–निज आत्मा–शुद्ध एवं पवित्र है वैसे ही सर्व आत्मा भी वस्तुरूपसे शुद्ध और पवित्र हैं।

'वे अपनेको भले ही चाहे जैसा मानते हों, परन्तु जिसे चैतन्य–आत्मा प्रकाशित हुआ है उसे सब चैतन्यमय ही भासित होता है।'

शक्तिरूप त्रैकालिक आत्मा अकेला विद्यमान है–ऐसा नहीं, परन्तु व्यक्तिमें –सम्यग्दर्शन-ज्ञानरूप व्यक्त पर्यायमें–उसकी प्रतीति हुई है। स्वभाव तो त्रिकाल है, किन्तु पर्यायमें विकसित हुआ है। चैतन्य आत्मा जिसे प्रकाशित हुआ उसे सब चैतन्यमय ही भासित होता है। चैतन्यके प्रकाशका पुंज है प्रभु आत्मा; उसी प्रकार सर्व आत्मा भी चैतन्यप्रकाशके पुंज है। अन्य वस्तुएँ हैं परन्तु वे तो पृथक्‌रूप से मात्र ज्ञेय हैं, वे उसका स्वरूप नहीं हैं; उसका स्वरूप तो ज्ञानमय—चैतन्यमय भगवान आत्मा है।

अहा! यह पुस्तक तो भाग्यसे ऐसी प्रगट हो गई है कि जो मध्यस्थ होगा उसे 'वस्तुस्थिति तो यह है' ऐसा थोड़ा ख्याल आयगा।

भले ही व्यवहार बीचमें ही आता है किन्तु वह तो सब हेय है। वहाँ व्यवहार पक्षवाले टीका करते हैं कि क्या देव-शास्त्र-गुरु हेय हैं? फिर तो लोग हेय मानकर उनकी पूजा नहीं करेंगे!

अरे, भाई! उसे—शुभभावको—छोड़कर पाप करो ऐसा कहना नहीं है। मात्र यह बतलाना है कि वह शुभभाव धर्म नहीं है, इसलिये उसकी रुचि छोड़ो। अशुभसे बचनेके लिये वह भाव आता अवश्य है, परन्तु वह स्वयं धर्म नहीं है, धर्मका कारण नहीं है। चैतन्यदृष्टिवानको जबतक पूर्ण वीतरागता न हो तबतक व्यवहार आता है, परन्तु वह हेयरूपसे ज्ञेय है और भगवान आत्मा उपादेयरूप से ज्ञेय है।–दोनोंमें इतना अन्तर है।

अहा! चैतन्यप्रभु आत्मा अंतरमें प्रकाशित हुआ उसे सब चैतन्यमय ही भासता है।

❈

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत-११

मुमुक्षुओंके तथा ज्ञानियोंको अपवादमार्ग या उत्सर्गमार्गका आग्रह नहीं होता, परन्तु जिससे अपने परिणाममें आगे बढ़ा जा सके उस मार्गको ग्रहण करते हैं। किन्तु यदि एकान्त उत्सर्ग या एकान्त अपवादकी हठ करे तो उसे वस्तुके यथार्थ स्वरूपकी खबर नहीं है ॥११॥

'मुमुक्षुओंको तथा ज्ञानियोंको अपवादमार्ग या उत्सर्गमार्गका आग्रह नहीं होता, परन्तु जिससे अपने परिणाममें आगे बढ़ा जा सके उस मार्गको ग्रहण करते हैं।'

अर्थात् क्या? कि—स्वरूपमें स्थिर होना ही मूल उत्सर्गमार्ग है; किन्तु स्थिर नहीं हुआ जा सकता इसलिये बीचमें शुभ विकल्प आते हैं; वे नहीं आयें ऐसा आग्रह नहीं रखता। स्वरूपमें स्थिर नहीं हो सकता इसलिये अपवादमार्ग आये बिना नहीं रहता। मात्र उत्सर्गका आग्रह करके अपवाद न लाये तो वह हठ है।

उत्सर्गमार्गमें—स्वरूपमें—अधिक नहीं टिक सकता इसलिये बीचमें फिर अपवादमार्ग—व्रतादिका शुभराग—आता है, परन्तु उसका आग्रह नहीं रखता कि यही सच्चा मार्ग है। उसे जाना तो है उत्सर्गमें, परन्तु शुद्धोपयोगमें अधिक नहीं रह सकता इसलिये अपवादमार्ग—शुभराग—आये बिना नहीं रहता। जिसकाल जिसप्रकारका अपवाद आये उसे जानता है; किन्तु यही मार्ग है, यही बराबर है, ऐसा आग्रह रखकर वहाँ रुक नहीं जाता; उसका भी विकल्प तोड़कर भीतर उत्सर्गमें जाता है—शुद्धोपयोगमें रमता है। मार्ग ऐसा है।

मुमुक्षुओंको अर्थात् धर्मके पिपासुओंको तथा धर्मीको अपवाद—शुभरागभाव—अस्थिरताके कारण आता है परन्तु उसका आग्रह नहीं होता कि—यही हो तो ठीक है। वास्तवमें तो उत्सर्गमार्ग—उपयोगका भीतर स्वरूपमें स्थिर होना—यही वस्तु है। ज्ञानीको प्रतीति है कि—मैं शुद्ध चैतन्य हूँ, आनन्द हूँ, शुभरागका व्यवहार—अपवादमार्ग—मेरा स्वरूप नहीं है। परन्तु उपयोग स्वरूपमें स्थिर नहीं हो सकता। वहाँ उसे आग्रह नहीं होता कि शुभराग तो लाना ही नहीं। शुभ आये वह अच्छा नहीं, उससे मैं भ्रष्ट होजाता हूँ—इसप्रकार उत्सर्गका एकान्त आग्रह नहीं करता।

प्रवचनसारकी चरणानुयोगसूचक चूलिका-अधिकारमें उत्सर्ग और अपवादकी गाथा आती है; वही यह बात है। वहाँ चरणानुयोगका व्याख्यान है। वहाँ भी मार्ग प्रगट हुआ उनकी बात है। अंतरमें शुद्ध चैतन्यवस्तुकी प्रतीति—सम्यग्दर्शन हुआ है, ज्ञान हुआ है और स्वरूपस्थिरता—चारित्र भी हुआ है; किन्तु विशेष स्वरूपस्थिरता—विशेष शुद्धोपयोग—न

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हो तो उसकाल आग्रह नहीं करना चाहिये कि–अरे! शुभ आयेगा और मैं भ्रष्ट हो जाऊँगा। बीचमें शुभभाव आये वह अपवादमार्ग है। अपवाद आया इसलिये शुद्धसे भ्रष्ट हो गया ऐसा नहीं मानता–जानता। शुद्धमें विशेष स्थिर नहीं रह सकता इसलिये अपवाद आये बिना नहीं रहता ऐसा भी वह जानता है। अपवाद आये, तथापि उसकाल भी उत्सर्गमें जानेकी भावना होती है; अपवादमें ही रहना ऐसा उसका आग्रह नहीं होता। अहा! ऐसा मार्ग है।

'....अपवादमार्गका या उत्सर्गमार्गका आग्रह नहीं होता, किन्तु जिससे अपने परिणामोंमें आगे बढ़ा जासके उस मार्गको ग्रहण करता है।' स्वरूपमें स्थिर रह सके तो उत्सर्गमें जाता है, न रह सके तो शुभमें–अपवादमें–आता है। ज्ञानी जानता है कि शुभराग बन्धका कारण है, किन्तु शुद्धमें स्थिर नहीं रह सकता इसलिये वह बीचमें आता है; तथापि वह अपवाद उत्सर्गका कारण है–ऐसा नहीं है; शुभ आया इसलिये उसके कारण शुद्ध होगा–ऐसा नहीं है। ऐसी बात है! इसमें वादविवाद कहाँ है भाई! वस्तुस्थिति ही ऐसी है।

सिद्ध—सर्वज्ञपरमात्मा—पूर्ण होगये हैं, उन्हें अब बाधकपना नहीं है; किन्तु नीचे अपूर्ण साधकदशामें साधक–बाधकपना दोनों हैं। शुद्ध चैतन्यकी दृष्टि है, शुद्ध उपयोग हुआ है, तथापि उस शुद्ध-उपयोगमें अधिक स्थिर न रह सकें तब शुभरागमें आना ही पड़ता है। वह हठ करे कि मुझे तो शुद्धमें ही रहना है, शुभमें नहीं आना है–तो ऐसा नहीं हो सकता। शुभको अपवादमार्ग कहा है। अपवादका अर्थ निंद्य है ना? वह आता अवश्य है, किन्तु उस समय भी 'मुझे अंतरमें ही रहना है–स्वरूपमें स्थिर हो जाना है' ऐसी उत्सर्गकी भावना बनी रहती है। मुझे तो भीतर स्वरूपमें ही रहना है ऐसा एकान्त उत्सर्गका आग्रह करने जाय तब भी भ्रष्ट हो जायगा, और शुभमें आकर वहीं मुझे रहना है ऐसा अपवादका आग्रह रखेगा तब भी भ्रष्ट हो जायेगा। अहा, ऐसा वस्तुस्वरूप है!

वचनामृतकी हिन्दी पुस्तक प्रकाशित होगी, लोग पढ़ेंगे, धीरे-धीरे सबके हाथमें पहुँचेगी। पढ़ेंगे तो विरोधी भी जरा ढीले पड़ जायँगे। भाई! बात तो सरस है। जिन्हें आग्रह है वे भी ढीले पड़ जायँगे। हमें तो मध्यस्थतासे कहना है। तत्त्व तो इसप्रकार है। यह तो सर्वज्ञकी वाणी है, किसीके घरकी बात नहीं है। सर्वज्ञ-अनुसारी कथन है, उसमें पक्षपातका अवकाश नहीं है।

अंतरात्मा धर्मी जीवको—मुनिको—भी अपवादमार्ग आता है। मुनि छठवें-सातवें गुणस्थानमें झूलते ही होते हैं। छठवेंमें नहीं आना–ऐसा आग्रह मुनिको नहीं होता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विकल्प आये बिना नहीं रहता, तथापि वह है हेय। साधक जीव हैं, अंतरमें पूर्ण स्थिरता नहीं हो सकती, पूर्ण वीतराग नहीं हुए हैं, इसलिये अपवाद—शुभ बीचमें आता है—होता है; परन्तु ध्येय तो अन्तरंग स्थिरताका ही है। अहा! मुनिदशा कैसी होती है उसका विचार तो करो! छठवें-सातवें गुणस्थानमें झूलते हुए वे मुनि स्वरूपमें गुप्त हो गये होते हैं। प्रचुर स्वसंवेदन वही मुनिका भावलिंग है और शरीरकी नग्नता–वस्त्रपात्र रहित निर्ग्रन्थदशा–वह उनका द्रव्यलिंग है। उनको भी अपवाद–व्रतादिका शुभराग आता है, परन्तु वस्त्र ग्रहण करने या अपने लिये चौका लगाकर बनाया हुआ अधःकर्म आहार लेनेका भाव उनको नहीं होता। अहा! ऋषभदेव भगवानको मुनिदशामें प्रथम छह महीनेके उपवास थे। पश्चात् आहारका विकल्प उठता था, किन्तु मुनिकी विधिपूर्वक आहार नहीं मिलने से विकल्प तोड़कर अंतरके आनन्दमें रहते थे। आनन्दमें रहना ही आत्माका स्वरूप है।

भूखा रहना वह तो जड़की दशा है। मुनि तो अतीन्द्रिय आनन्दमें कल्लोल मौज करते हैं। उनके तो अतीन्द्रिय आनन्दकी उमड़ आती है। अहा! ऐसा मार्ग है भाई! उसे अन्य प्रकारसे मानोंगे तो अहित हो जायेगा। हितके बिना आत्मा जागृत कहाँसे होगा? शुभ आता है, इसलिये शुभ करते-करते शुद्ध होगा ऐसी हठ करेगा तो उसमें हित कहाँ आया? उलटा अहित ही हुआ।

प्रवचनसारकी ७७वीं गाथामें आचार्यदेव कहते हैं :–

ण हि मण्णदि जो एवं णत्थि विसेसो त्ति पुण्णपावाणं।
हिंडदि घोरमपारं संसारं मोहसंछण्णो ॥

इस प्रकार पुण्य और पापमें अन्तर नहीं है ऐसा जो नहीं मानता, वह मोहाच्छादित होता हुआ 'हिंडदि घोरमपारं संसारं'–घोर अपार संसारमें परिभ्रमण करता है।

व्यवहारसे ऐसा कथन आता है कि अशुभकी अपेक्षा शुभ कुछ ठीक है, परन्तु निश्चयसे शुभ अच्छा है और अशुभ बुरा है–ऐसा उन दोनोंमें अंतर माने तो हिंडदि घोरं अपारं संसारं–घोर अपार संसारमें भटकता है। अरेरे! तुझे ऐसा आग्रह है प्रभु! भीतर तो प्रभु शांत अविकारी अकषायस्वरूप है। उसकी प्रतीति एवं अनुभव हो तो अंतरसे अलौकिक शान्ति प्राप्त हो। सर्वार्थसिद्धिके देवकी अपेक्षा पंचम गुणस्थानवर्तीको आत्मामें से प्रगट हुई वह अतीन्द्रिय शान्ति अधिक है। छठवें गुणस्थानवर्तीको उससे भी अत्यधिक है। अंतरसे शान्तिका भाव आया नहीं है और जीव मानता है कि शुभराग से शान्ति होती है। भाई! राग तो अशान्ति है। अशान्तिमेंसे शान्ति आती है? राग आता अवश्य है, मुनिको भी अपवादमार्ग आता है; परन्तु अपवाद–राग

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अशान्ति है। तो फिर किसलिये आता है? भाई! वह अभी साधक है, मात्र उत्सर्गमें नहीं रह सकता, आत्मामें पूर्ण स्थिर नहीं हो सकता, इसलिये बीचमें विकल्प–शुभराग–आये बिना नहीं रहता। यदि अंतरमें स्थिरता करके श्रेणी मांडे तो फिर पूछना ही क्या....पूर्ण वीतराग हो जाय; किन्तु श्रेणी न मांडे तब तक स्थिरताकी धारा प्रवाहित नहीं होती; और इसलिये बीचमें विकल्प–शुभराग आता रहता है। जिससे अपने परिणाममें आगे बढ़ा जाय वह मार्ग ग्रहण करता है।

'किन्तु यदि एकान्त उत्सर्ग या एकान्त अपवादकी हठ करे तो उसे वस्तुके यथार्थ स्वरूपकी ही खबर नहीं है।'

मुझे तो शुद्ध-उपयोगमें ही रहना है ऐसी हठ करे उसे वस्तुके स्वरूपकी खबर नहीं है। निचली दशामें शुद्ध-उपयोग अधिक काल नहीं रह सकता। शुद्ध-उपयोग वह वस्तु है किन्तु उसका आग्रह–हठ–इतना नहीं होता कि मुझे तो बस, इसीमें रहना है। वहाँ वह अधिक नहीं रह सकेगा, शुभराग आयगा ही। तथा शुभराग आये तो उसकी भी हठ नहीं कि शुभभाव आया इसलिये अब मुझे इसीमें रहना है। शुद्ध-उपयोग आये बिना शुभ-उपयोगको व्यंवहारसे निमित्त भी नहीं कहा जायगा। अपवादकी हठ करे तो उसे भी वस्तुके यथार्थ स्वरूपकी खबर नहीं है। अहा! ऐसा मार्ग है।

✻

वचनामृत-१२

जिसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई उसकी दृष्टि अब चैतन्यके तल पर ही लगी है। उसमें परिणति एकमेक हो गई है। चैतन्य–तलमें ही सहज दृष्टि है। स्वानुभूतिके कालमें या बाहर उपयोग हो तब भी तल परसे दृष्टि नहीं हटती, दृष्टि बाहर जाती ही नहीं। ज्ञानी चैतन्यके पातालमें पहुँच गये हैं; गहरी-गहरी गुफामें, बहुत गहराई तक पहुँच गये हैं; साधनाकी सहजदशा साधी हुई है॥ १२ ॥

'जिसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई उसकी दृष्टि अब चैतन्यके तलपर ही लगी है।'

क्या कहा? कि–आत्मा जैसी वस्तु है वैसी दृष्टि वह सम्यग्दर्शन है। द्रव्यदृष्टि हुई इसलिये पर्यायदृष्टि नष्ट हो गई। द्रव्य तो त्रैकालिक ध्रुव है; वह तो पर्यायसे आगे–पातालमें–ध्रुव विद्यमान है। संपूर्ण आत्माके ऊपर पर्याय है, परन्तु उस पर्यायके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भीतर—पातालमें—ध्रुव है। पर्यायका धरातल ध्रुव है, पर्याय ऊपर-ऊपर है। अहा! ऐसी भाषा भी कहीं नहीं मिलेगी! आत्मामें दो पक्ष हैं—एक ध्रुवता और दूसरा पर्याय—परिणमन। अरे! पर्यायका धरातल तो ध्रुव है; उस तलमें पहुँचे बिना द्रव्यकी दृष्टि नहीं हो सकेगी। वह द्रव्यदृष्टि जिसे प्रगट हुई उसकी अब आत्माके धरातल पर ही दृष्टि है। देखा? क्या देखा? कि ध्रुवके ऊपर ही दृष्टि हुई है।

अहा! जगतके भाग्य हैं कि ऐसी भाषा बाहर आयी। भाषा देखो! एकदम सादी, संक्षिप्त और गुजराती।

द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई—द्रव्यकी, पूर्ण आनन्द एवं पूर्णज्ञानस्वरूप ध्रुव वस्तु है उसकी, दृष्टि प्रगट हुई—उसकी दृष्टि चैतन्यके धरातल पर ही है। पर्याय ऊपर-ऊपर है; वह ध्रुव धरातलमें प्रविष्ट नहीं हो सकती; तेलकी बूँदें पानीके भीतर प्रवेश नहीं कर करतीं, ऊपर-ऊपर ही रहती हैं तदनुसार। दृष्टि स्वयं पर्याय है, उसका विषय ध्रुव धरातल है।

'उसमें परिणति एकमेक हो गई है।'

दृष्टि तल पर है इसलिये दृष्टिरूप पर्याय—परिणति तलके साथ एकमेक—अभेद होगई है ऐसा कहा जाता है। वास्तवमें पर्याय एकमेक अर्थात् द्रव्य नहीं हो जाती; परन्तु दृष्टि पहले ध्रुव धरातल पर नहीं थी वह अब वहाँ एकाग्र है, इसलिये उसे धरातलमें एकमेक हुई कहा जाता है।

❀

बेनकी गम्भीरता तो देखो! बेनके बोल (वचनामृत) बहुत गम्भीर हैं। बेनको कहाँ बाहर आना है? मुश्किलसे बेनकी पुस्तक प्रकाशित हुई। बेनकी पुस्तक तो बड़ी सरस! बड़ी सरस! अध्यात्मकी रुचि हो उनके लिये तो बड़ी सरस। ऐसा प्रकाशन कब होता है! बेनका तो विचार नहीं था और प्रगट होगया। जगतके भाग्य हैं! *—पूज्य गुरुदेव।*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन-४

ता. ६-६-७८

वचनामृत-१२ (आगे)

१२वाँ बोल चलता है। द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई, उसकी अब चैतन्यके तलपर ही दृष्टि है। क्या कहते हैं? कि—करना यही है। वस्तु भीतर ध्रुवधरातल है, और जो पर्याय है वह ऊपर-ऊपर है। वस्तु अर्थात् द्रव्य; वह त्रिकाल ध्रुव, परिपूर्ण, अशुद्धता रहित, पर्याय रहित वस्तु है; उसपर दृष्टि जाने से सम्यग्दर्शन होता है। ऐसी तत्त्वकी एकदम गहरी बात है ना! करना क्या? तो कहते हैं यह करना :—पर्यायभेदका लक्ष छोड़कर भीतर त्रैकालिक धरातल—ध्रुव विद्यमान है उसे दृष्टिमें लेना। त्रैकालिक द्रव्य स्वभावपर जिसकी दृष्टि है उसका उपयोग कहीं भी—बाह्यमें—जाय परन्तु उसे अंतरमें आश्रय तो धरातलका ही है, रुचिका जोर परिपूर्ण वस्तु पर ही है। ध्रुवकी दृष्टि कहो, द्रव्यकी दृष्टि कहो या सामान्यका जोर कहो—सबका ध्येय त्रैकालिक अखण्ड शुद्ध चैतन्य है। उस ध्रुव धरातलमें जानेके लिये किसी व्यवहारकी अपेक्षा नहीं है।

'उसमें परिणति एकमेक हो गई है।'

वर्तमान पर्यायको ध्रुव धरातलकी ओर मोड़कर ध्रुवके साथ एकमेक हुई—अभेद हुई ऐसा कहा जाता है। ध्रुवका लक्ष चूककर पर्याय रागादिमें—बाह्यमें—भटकती थी उसे ध्रुवस्वभावकी ओर मोड़ दिया—यह पर्याय एकमेक होनेका अर्थ है। पर्याय—पलटनेवाला अंश कहीं ध्रुव नहीं हो जाता, परन्तु पर्याय त्रैकालिक ध्रुवका आश्रय करती है इसलिये अभेद हुई ऐसा कहा। अहा! यह तो कितनी सादी भाषा है! आत्मा वस्तु है, उसमें दो अंश हैं। एक पर्याय-अंश—पलटनेवाला अंश है और दूसरा एकरूप धरातल ध्रुव-अंश है। यहाँ कोई परवस्तुकी बात नहीं है। पर्यायमें ध्रुव नहीं आता अर्थात् ध्रुव पर्यायरूप नहीं होजाता; इसलिये ध्रुवको त्रैकालिक तल—द्रव्यसामान्य कहा जाता है। वर्तमान पर्याय ध्रुवके ऊपरगई—दृष्टि द्रव्यके ऊपर गई—तलके ऊपर दृष्टि हुई इसलिये वह पर्याय उसमें अभेद—एकाकार हुई ऐसा कहा जाता है।

त्रैकालिक ध्रुव धरातल है वही भूतार्थ है, सत्यार्थ है। जिसे धर्म करना है

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसे भूतार्थ द्रव्यपर दृष्टि करना चाहिये। दृष्टि प्रगट होने से द्रव्य कहीं नवीन प्रगट नहीं होता। द्रव्य है वह वस्तुरूप तो है ही; उसकी ओर दृष्टि हुई, श्रद्धामें उसका स्वीकार हुआ, इसलिये उसकी पर्यायमें द्रव्य प्रगट हुआ ऐसा कहा जाता है। त्रैकालिक द्रव्यमें जैसा सामर्थ्य है वैसा पर्यायमें प्रगट हुआ इसलिये द्रव्य प्रगट हुआ ऐसा कहा जाता है।

प्रभु! तू वस्तु है या नहीं? क्या सम्पूर्ण वस्तु एक समयकी पर्यायमें आ जाती है?—पलटती हुई पर्यायमें आजाती है? एकरूप विद्यमान वस्तु पलटनेवाली पर्यायमें कैसे आजायगी? परिणमित होती पर्यायमें तो उसका श्रद्धान और ज्ञान आयगा। बराबर है ना? उसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई उस अपेक्षासे ऐसा कहा जाता है कि द्रव्य प्रगट हुआ। पर्यायमें द्रव्यको मान्य नहीं किया था इसलिये उसके द्रव्य नहीं था। द्रव्य है तो अवश्य, किन्तु उसके कहाँ था? वह पर्याय जितना ही द्रव्य मानता था। अहा! कठिन बात है प्रभु! जैनमार्ग बहुत कठिन है! वीतराग मार्गको तो लोगोंने इस समय छिन्नभिन्न कर दिया है। सर्वत्र यही चल रहा है; तथापि आज हजारों लोग सुनने तथा विचारनेके लिये तैयार होगये हैं कि यह कोई अलग वस्तु है!

सर्वज्ञ जिनेन्द्रके सिवा जितने मत हैं इनमें सर्वज्ञस्वभावी जीवतत्त्वकी भी सच्ची प्रतीति नहीं है। सर्वज्ञस्वभाव वस्तुका धरातल है; उसकी दृष्टि होने पर पर्याय तलके साथ–ध्रुवके साथ–एकाकार हुई ऐसा कहा जाता है; इसलिये कहीं द्रव्य और पर्याय एक नहीं होजाते। पर्याय रागमें तथा गुणभेदमें रुकती थी, वह अब द्रव्यस्वभावमें रुकने लगी इसलिये द्रव्यके साथ एकरूप होगई–ऐसा कहा जाता है।

अहा! वचनामृत पुस्तक अभी तक हिन्दीमें प्रकाशित नहीं हुई!

'चैतन्य-तलमें ही सहज दृष्टि है।'

वस्तु जिसप्रकार सहज है उसीप्रकार उसकी दृष्टि भी सहज है। चैतन्यस्वरूप जो ध्रुव है उसमें स्वाभाविक दृष्टि है, सहज दृष्टि है; कृत्रिम कुछ करना है–ऐसा नहीं है। लोग यहाँके लिये बातें उड़ाते हैं कि व्यवहार की तो कोई बात नहीं करते। भाई! व्यवहारकी क्या बात करें? व्यवहार होता है, किन्तु उसका विषय संसार है। पर्यायमें अशुद्धता है, भेद है, गुण अनेक है;–यह तो जानने योग्य विषय है। व्यवहारनयका विषय नहीं है ऐसा कहे वह एकान्त है, और व्यवहारनयसे ध्रुव ज्ञात होता है–प्राप्त होता है यह भी मिथ्या एकान्त है।

अहा! ऐसी बात है भाई! व्यवहार और निमित्तसे लाभ मानने जायगा तो वस्तुस्वरूप हाथ नहीं आयगा। वस्तुके परिणमनको परकी अपेक्षा नहीं है, क्योंकि वस्तुमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अकार्य-कारणत्व नामक शक्ति त्रिकाल है। इसलिये आत्माको धर्मरूप कार्य हेतु राग तथा व्यवहारकी अपेक्षा नहीं है; और वस्तुका जो मूलस्वभाव है वह राग तथा व्यवहारका कारण नहीं है। अहा! ऐसी वस्तु है! चैतन्य-धरातलमें ही सहज दृष्टि है।

'स्वानुभूतिके कालमें या बाहर उपयोग हो तब भी तलपरसे दृष्टि नहीं हटती, दृष्टि बाहर जाती ही नहीं।'

यहाँ कहते हैं कि उपयोग जब आनन्दकी अनुभूतिमें हो या बाहर हो—विकल्पमें आ जाय, शुभ या अशुभ किसी रागमें भी आ जाय—तब भी तलके ऊपर से दृष्टि नहीं हटती, ध्रुव परसे दृष्टि नहीं फिसलती। सम्पूर्ण ध्रुवपर ही उसका परिणमन हो गया है। ज्ञानीको शुभ या अशुभ राग आये, तथापि ध्रुवपरसे उसकी दृष्टि कभी नहीं हटती। ध्रुवको जो दृष्टिमें लिया है, वहाँ वह अंतरमें रह गया है।

दृष्टि बाहर जाती ही नहीं। उपयोग भले ही शुभ-अशुभमें जाये, किन्तु दृष्टि कभी बाहर नहीं जाती। दृष्टिका विषय जो ध्रुव भगवान, उसका जो आश्रय लिया सो लिया।

'ज्ञानी चैतन्यके पातालमें पहुँच गये हैं; गहरी-गहरी गुफामें, बहुत गहराई तक पहुँच गये हैं; साधनाकी सहज दशा साधी हुई है।'

अनादिसे जो पर्यायमें पहुँचा है वह तो अंशमें पहुँचा है; वह तो अज्ञानी है। धर्मी जीव ध्रुव पातालमें पहुँच गये हैं। असंख्य प्रदेशोंके ऊपरकी जो पर्याय वह अंतरके पातालमें गई है। अहा! जिससे जन्म-मरणका अंत आ जाय, तथा केवलज्ञान हो जाय ऐसी यह बातें हैं! चैतन्यके धरातलको पकड़ने पर अंतरमें श्रद्धा-अपेक्षासे केवलज्ञान प्रगट हुआ, अर्थात् स्वभावसे सर्वज्ञता नहीं मानी थी वह मान ली। वह अंतरमें जाकर, एकाग्रताकी धुन लगाकर केवलज्ञान प्रगट करेगा–अवश्य प्रगट करेगा। चैतन्यका तल जिसने देख लिया उसकी पर्यायमें चैतन्यकी पूर्णदशा प्रगट होगी ही। अहा! पातालमें जिसने पानी देख लिया उसे पानीका फव्वारा फूटेगा ही–अवश्य फूटेगा।

ऐसा मार्ग है। ध्रुव गुफा है असंख्यप्रदेशी, और उसकी पर्याय भी असंख्यप्रदेशी है; उस असंख्यप्रदेशी पर्यायके पीछे वहीं ध्रुव है; वहाँ—चैतन्यभगवान आत्माके ध्रुव पातालमें—ज्ञानी पहुँच गये हैं। ज्ञानी आनन्दमूर्ति ध्रुव ज्ञायककी गहरी-गहरी गुफामें गहरे-गहरे पहुँच गये हैं। साधनाकी सहज दशा साधी हुई है। साधनाकी सहजदशा स्वरूपकी पूर्णताका—केवलज्ञानकी प्राप्तिका—साधन है। स्वरूप साधनाकी वह सहजदशा ज्ञानीने ही साधी है। अहा! बारहवाँ बोल! प्रत्येक शब्दमें सिर्फ मक्खन ही भरा है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत-१३

'मैं ज्ञायक और यह पर,' बाकी सब जाननेके प्रकार हैं। 'मैं ज्ञायक हूँ, बाकी सब पर'—ऐसी एक धारा प्रवाहित हो तो उसमें सब आ जाता है, परन्तु स्वयं गहरा उतरता ही नहीं, करनेकी ठानता ही नहीं, इसलिये कठिन लगता है ॥१३॥

'मैं ज्ञायक और यह पर,' बाकी सब जाननेके प्रकार हैं।

एकमात्र प्रभु ज्ञायक, ध्रुव, पूर्ण अस्तिवान तत्त्व—पूर्ण सत्तावान, पूर्ण विद्यमानता युक्त ज्ञायकतत्त्व—सो मैं हूँ, और यह पर—रागसे लेकर शरीरादि सब पर—हैं; यह दो जाने उसने सब जान लिया। वस्तुस्थिति ऐसी है। एक ओर राम–प्रभु ज्ञायक, एक ओर ग्राम–रागसे लेकर सब पर। राग, शरीर, इन्द्रियाँ और उनके विषय, अनन्त सिद्ध और अनन्त निगोद यह सब पर हैं, और अंतरमें जाननेवाला ज्ञायक भगवान आत्मा वह स्व है। इसमें सब आ जाता है; बाकी दूसरे सब जाननेके पक्ष हैं।

समयसारकी छठवीं गाथाकी टीकामें कहा है कि आत्मा—ज्ञायकभाव पुण्य-पापको उत्पन्न करनेवाले जो समस्त अनेकरूप शुभ-अशुभभाव उनके स्वभावरूप नहीं परिणमता (ज्ञायकभावसे जड़भावरूप नहीं होता) इसलिये प्रमत्त भी नहीं है और अप्रमत्त भी नहीं है; वही समस्त अन्यद्रव्योंके भावोंसे भिन्नरूप उपासित 'शुद्ध' कहा जाता है। आत्मा वास्तवमें वस्तुरूपसे प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं हैं, क्योंकि वह शुभ-अशुभभावरूप नहीं हुआ है। पर्यायमें तो शुभ-अशुभरूप होता है; परन्तु त्रैकालिक ज्ञायकभाव यदि शुभ-अशुभ भावोंरूप हो तो वह जड़ हो जाय; क्योंकि ज्ञायक तो ज्ञातास्वभावी चैतन्यप्रकाशका पुंज है और शुभाशुभ भाव तो, जिसमें चैतन्यके अंशका अभाव है ऐसा विभाव है, अज्ञान-अंधकाररूप है अर्थात् चैतन्यके विरुद्ध स्वभाववाले होनेसे जड़ हैं। ज्ञायक उसरूप हो तो जड़ होजाय, किन्तु उसरूप होता नहीं है; इसलिये वह परभावोंसे भिन्न 'शुद्ध' कहा जाता है। आया कुछ समझमें? ऐसी सूक्ष्म बातें बाहर नहीं चल सकतीं, बाहर तो कभी-कभी जाते हैं। यहाँ सोनगढ़में तो सब चलता है।

नैरोबी (अफ्रीका)में पन्द्रह लाख रुपयेकी लागतसे मन्दिर तैयार हो रहा है, उसकी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा होनेवाली है। करोड़ों रुपयेके मन्दिर बने, करोड़ों यहाँ (सोनगढ़में) लग गये, करोड़ोंकी पुस्तकें छप गईं, करोड़ों रुपये मेहमानोंकी भोजनादि व्यवस्थामें खर्च हुए और दो-दो बार उत्तर तथा दक्षिण भारतकी तीर्थयात्राओं पर अनेक लाखों खर्च हो चुके हैं लेकिन यह सब तो बाहरकी बातें हैं। जाय कौन और दे कौन? यह तो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जड़की क्रिया होना हो तो होती है; उसप्रकार का शुभराग आता है, तथापि अंतरमें त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायककी दृष्टि नहीं हटती। अंतरमें स्वभावकी दृष्टि हो—शुद्धि हो—तो वे यात्रादिके भाव व्यवहार कहे जाते हैं। किन्तु यात्रा धर्म है, व्रत धर्म है, इसप्रकार शुभरागको धर्म माने तब तो वह मिथ्यादृष्टि है। यह बात लोगोंको असह्य लगती है, लेकिन मार्ग तो ऐसा है भाई!

भाई जन्म-मरण और उसके दुःखोंसे रहित होनेका मार्ग अंतरमें भिन्न है। बाहरमें अरबों रुपये पड़े हों, किन्तु शरीरमें कोई महान रोग आ जाय तो इधर-उधर छटपटाता है, न्युमोनिया हो तो श्वास ऊपर लेनेमें पीड़ा होती है वहाँ रोता—बिलखता है.....अरे! यह सब किसी दिन आयगा। शरीर और सम्पदाको छोड़कर परलोकमें चला जायगा। 'एक दिवस ऐसा आयगा मानों जन्मे ही नहीं थे....' एक ऐसा समय आयेगा कि तेरा किया हुआ सब यहीं पड़ा रहेगा। जहाँ जो है वह वहीं पड़ा रहेगा और तू वहाँसे चला जायगा। ध्रुव ज्ञायक स्वभावकी साधना साधी होगी तो वह साथ आयगी।

यहाँ तो कहते हैं कि—एक ओर मैं ज्ञायक और एक ओर पर्याय से लेकर सब पर; एक ओर राम और एक ओर ग्राम। एक ओर सर्वोत्कृष्ट वस्तु ज्ञायक....ज्ञायक....ज्ञायक, ज्ञातास्वभावी प्रभु भगवान आत्मा, और एक ओर राग, अधूरी दशा, शरीर-मन-वचन-काय—आदि सब पर। इन दोमें सब आगया; बाकी तो सब जाननेके पक्ष हैं।

'मैं ज्ञायक हूँ, बाकी सब पर'—ऐसी एक धारा प्रवाहित हो तो उसमें सब आजाता है,....'

जाननेके पक्षोंमें अनेक प्रकार आते हैं—व्यवहार ऐसा होता है, निमित्त ऐसे होता है, फलाना ऐसा होता है, ढिकाना ऐसा होता है,—यह सब जाननेके प्रकार हैं। जाननेवाला ज्ञायक सो मैं बाकी सब पर—ऐसा बराबर समझकर मैं ज्ञायकस्वरूप, पूर्णस्वभावी, ध्रुवद्रव्य—जिसमें ज्ञानादि अपार शक्तियाँ हैं ऐसा अनुपम तत्त्व—हूँ और अन्य सब पर हैं—इसप्रकार एक धारासे चले तो उसमें सब आ गया। उसमें निश्चय और व्यवहार आदि सब आ गया। अहा! यह तो गुजराती भाषा है, बड़ी सादी भाषा है।

बहुत दिनोंसे लोगोंकी माँग थी कि—वचनामृत पर प्रवचन करो; किन्तु भाई! सबके हाथोंमें पुस्तक हो तो ठीक रहे। फिर भी अभी हिन्दी पुस्तक तो आयी नहीं है।—सवा तीन महीने से बाहर (बिहारमें) थे तब भी तैयार नहीं हुई है। बहुत कहा रामजी भाईसे, लेकिन वह बननेका योग नहीं था।

यह ज्ञायकपना सो मैं और उसके सिवा सब पर, इस प्रकार एक धारासे—एक ही प्रकार से—अंतरमें चले तो उसमें सब आ जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वह ऊपर-ऊपर पर्यायका ही खेल खेल रहा है, एक समयकी पर्यायके ही खेलमें लगा है।

पर्यायरहित जो परिपूर्ण ध्रुव द्रव्य वह परदेमें रह गया। जिसे अंतरमें प्रत्यक्ष देखनेकी आवश्यकता थी वही छुपकर रह गया।

'परन्तु स्वयं गहरा उतरता ही नहीं, करनेकी ठानता ही नहीं, इसलिये कठिन लगता है।'

पर्यायसे हटकर अंतरमें जाता ही नहीं है, और करना ही नहीं चाहता। करना चाहे तो हुए बिना रहे ही नहीं। यह तो सारी दिशा बदलनेकी बात है। पर्यायके ऊपर जो दृष्टि है वह मिथ्यादृष्टि है, वह संसारदृष्टि है; उस दृष्टिको भीतर ध्रुवकी ओर ले जाना। अहा! ज्ञायकतत्त्व—चैतन्यतेज—वही मैं हूँ; पूर्ण स्वभावसे भरा हुआ सत्त्व वही मैं हूँ—इसप्रकार गहराईमें उतरता ही नहीं है—भीतर जाना ही नहीं चाहता, इसलिये कठिन—मुश्कल लगता है।

*

वचनामृत-१४

'मैं हूँ' इसप्रकार स्वयंसे अपने अस्तित्वका जोर आता है, स्वयं अपनेको पहिचानता है। पहले ऊपर-ऊपरसे अस्तित्वका जोर आता है, फिर अस्तित्वका गहराईसे जोर आता है; वह विकल्परूप होता है परन्तु भावना जोरदार होनेसे सहजरूपसे जोर आता है। भावनाकी उग्रता हो तो सच्चा आनेका अवकाश है ॥ १४ ॥

'मैं हूँ' इसप्रकार स्वयंसे अपने अस्तित्वका जोर आता है, स्वयं अपनेको पहिचानता है।'

मैं हूँ, 'अस्ति' हूँ विद्यमान वस्तु हूँ, अस्तित्व रखनेवाली सत्ता हूँ, नित्यस्थायी एक वस्तु हूँ, इसप्रकार अपनेसे अपनेको—रागसे नहीं, निमित्तसे नहीं, किन्तु अपनेसे अपनेको—अस्तित्वका जोर आता है, 'मैं हूँ' ऐसा निज अस्तित्वका जोर आता है अर्थात् नित्य स्थायी 'मैं हूँ' ऐसा जोर अंतरमें आता है, स्वयं अपनेको पहिचानता है। अहा! बड़ी सादी भाषा!

स्वयं अपनेको जाने तो सम्यग्दर्शन हो। परको अपना बनाना हो तो नहीं बनाया जा सकता। वास्तवमें रागको अपना बनाना हो तो नहीं बनाया जा सकता; क्योंकि एक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

समयकी पर्याय कृत्रिम है। स्वयं अपने स्वरूप है, उसकी गहराईमें पहुँचा जा सकता है। स्वयं अपनेको पहिचान सकता है।

पहले ऊपर-ऊपरसे अस्तित्वका जोर आता है, फिर अस्तित्वका गहराईसे जोर आता है; वह विकल्परूप होता है परन्तु भावना जोरदार होनेसे सहजरूपसे जोर आता है।'

पहले उसके ख्यालमें 'यह है....है...है, वस्तु है' ऐसा ऊपर-ऊपरसे अर्थात् विकल्पसे बाह्य ज्ञानकी पर्यायमें भी आता है। क्या कहा? अंतरमें मैं वस्तु हूँ ऐसा अपनेसे अपनेको अस्तित्त्वका, सत्ताका, विद्यमानताका जोर आये और जाने कि अरे! यह जो मूल वस्तु है उसे समझना रह ही गया! सब ऊपरकी बातें कर-करके जीवन समाप्त कर दिया, व्रत पाले, सामायिक की, परन्तु भीतर जो वस्तु पूर्ण परमात्मास्वरूप है उसके अस्तित्वका पर्यायमें जोर नहीं आया तब तक अंतरमें कहाँसे जा सकेगा? अंतरमें गये बिना उसका तल हाथ नहीं आयगा; और हाथ आनेके पश्चात् भी अंतरमें—आनन्दमें—रमने लगे उसे चारित्र कहा जाता है। लोग तो बाह्य व्रतादि क्रियाओंमें तथा वस्त्र छोड़ देनेको चारित्र कहते हैं। भाई! उसमें धूल भी चारित्र नहीं है, किन्तु जीव अनादिसे ठगा गया है।

अपनी सत्ता त्रिकाल है—ऐसा अस्तित्वका जोर पहले ऊपर-ऊपर आता है, फिर गहराईमें-से—अंतरमें से आता है। निर्णय करनेका विकल्प पहले अवश्य आता है। समयसारकी ७३वीं गाथाकी टीकामें कहा है कि :.....अपने अज्ञान द्वारा आत्मामें उत्पन्न होनेवाले जो यह क्रोधादिक भाव उन सर्वको क्षय करता हूँ—ऐसा आत्मामें निश्चय करके, बहुत समयसे पकड़ा हुआ जो जहाज उसे जिसने छोड़ दिया है ऐसे समुद्रके भँवरकी भाँति जिसने सर्व विकल्पोंका जल्दी वमन कर दिया है ऐसे, निर्विकल्प अचलित निर्मल आत्माका अवलम्बन करता हुआ, विज्ञानघन होता हुआ, यह आत्मा आस्रवोंसे निवर्तता है।

प्रथम विकल्प द्वारा निर्णय करना। मैं एक, अनादि-अनन्त, अनन्त चैतन्य जिसका चिह्न है ऐसी वस्तु हूँ। जिसका आदि और अन्त नहीं है, वर्तमान नित्य स्वभावसे रिक्त नहीं है, प्रगटरूप है जिसका निजस्वभाव, ऐसा मैं एक परम पदार्थ हूँ—ऐसा ऊपर-ऊपरसे अर्थात् विकल्प से पहले निर्णय करना। पाँचों इन्द्रियोंके विषयको लक्षमेंसे छोड़कर पहले अकेला मानसिक विकल्पसे निर्णय करना। अभी तो उसमें भी कितने धैर्य और निवृत्तिकी आवश्यकता है! वह विकल्परूप होता है किन्तु भावना जोरदार होनेके कारण सहजरूपसे जोर आता है। अंतरमें जानेकी पुरुषार्थकी उग्रता हो, तो विकल्प टूटकर अंतरमें जानेका सहजरूपसे जोर आता है। अंतरमें जानेका भाव हो तो विकल्प टूटकर अंतरका स्वाभाविक जोर आता है। अहा! अकेला अमृत उँडेला है! भाषा सादी अमृत जैसी है। यदि मध्यस्थता हो तो एकबार गर्वको चूर-चूर कर दे ऐसी बात है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'मेरा तत्त्व अस्तिरूपसे है' ऐसा प्रथम विकल्पसे जोर आता है, फिर विकल्प टूटकर अंतरमें भावना जोरदार होनेसे सहज जोर आता है। अहा! ऐसा उपदेश और ऐसी वाणी!

'भावनाकी उग्रता हो तो सच्चा आनेका अवकाश है।'

निश्चय अर्थात् सत्य; व्यवहार अर्थात् आरोपित बातें। भावनाकी उग्रता अर्थात् क्या? कि—वस्तु पूर्णस्वरूप है—इसप्रकार उसके अस्तिपनेका सहज जोर आने पर अंतरमें भावनाकी उग्रतासे—भाव तो त्रिकाल वस्तु है परन्तु उसकी वर्तमान दशामें, विकल्पसे नहीं, निर्विकल्प भावनाके जोरसे—सच्चा आनेका अवकाश है। उग्रता हो, अंतरकी थाह लेनेका—धरातल खोजनेका—भाव जोरदार हो, तो वहाँ सच्चा आनेका–सत्यस्वरूप प्रगट होनेका–अवकाश है।

अहा! ऐसी सादी गुजराती भाषामें कैसी पुस्तक प्रकाशित हो गई! गुजराती और हिन्दी दो भाषाओंमें हुई है; अभी तो दूसरी कई भाषाओंमें प्रकाशित होगी। सारे हिन्दुस्तानमें ढिंढोरा पिटेगा ऐसी यह बात है भाई! यह बात ऐसे ही किसी कालमें आगई है! वचनामृत पुस्तक हाथ आयी तब मैंने कहा था कि–यह पुस्तक तो एकलाख छपना चाहिये। रामजीभाईने कहा कि सवालाख छपेंगी। अहा! वस्तु तो देखो! वीतरागताके भावका कैसा रटन और मंथन है! दुनिया दुनियाकी जाने।

१३वें बोलमें आया ना! कि 'मैं ज्ञायक और यह पर।' वहाँ ज्ञायकका अर्थ ऐसा कि परको–चाहे जो स्थिति, अवस्था आदि हो उसे–पररूपसे जाननेवाला हूँ। परको पररूप जानता हूँ वह भी व्यवहार है, क्योंकि परको जाननेरूप पर्याय भी अपनेमें अपनेसे होती है। समयसारकी छठवीं गाथाके चौथे चरणमें आया है ना!–'णाओ जो सो उसो चेव।' ज्ञायकस्वरूपसे जाननेमें आया वह तो वही (ज्ञायक ही) है। वास्तवमें तो ज्ञायक है ऐसा जो जाना—उसमें पर है वह मुझमें नहीं है, तथापि पर है ऐसा जो ज्ञान हुआ—वह ज्ञान ही आत्माका कार्य है और आत्मा ही उस ज्ञानका कर्त्ता है। जानने योग्य वस्तु है उसे जानता है, परन्तु ज्ञातारूप भावका कर्त्ता परवस्तु नहीं है। परका जो ज्ञान होता है वह भी ज्ञानकी अपनी शक्तिके सामर्थ्यके कारण होता है, कर्त्ता-कर्म-करण आदि अपने षट्कारकसे होता है; वह ज्ञानपर्याय ज्ञेयकी—परकी—अपेक्षा नहीं रखती।

अहा! ऐसी वस्तु है! तीन लोकके नाथ जिनेन्द्रदेवकी यह घोषणा है नाथ! आत्मा नाथ है ना!

यहाँ कहते हैं कि—भावनाकी उग्रता हो तो सच्चा आनेका—सत्यस्वरूप प्रगट होनेका—अवकाश है।

१४वाँ बोल पूरा हुआ।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-५

ता. १०-६-७८

वचनामृत-१५

तीर्थंकरदेवकी दिव्यध्वनि जो कि जड़ है उसे भी कैसी उपमा दी है! अमृतवाणीकी मिठास देखकर द्राक्षें शरमाकर वनवासमें चली गईं और इक्षु अभिमान छोड़कर कोल्हूमें पिल गया! ऐसी तो जिनेन्द्रवाणीकी महिमा गायी है; फिर जिनेन्द्रदेवके चैतन्यकी महिमाका तो क्या कहना! ॥ १५ ॥

'तीर्थंकरदेवकी दिव्यध्वनि जो कि जड़ है उसे भी कैसी उपमा दी है!'

इस १५वें बोलमें वाणीकी बात है। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर श्री तीर्थंकरदेवको दिव्यध्वनि—प्रधानवाणी—खिरती है वह जड़ है, उसमें कहीं चैतन्यके भाव नहीं भरे हैं।

प्रश्न :—परन्तु निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध तो है ना?

उत्तर :—निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धका अर्थ क्या? वाणीमें कहीं सर्वज्ञके गुण—अमूर्तिकभाव—नहीं भरे हैं। वाणीमें तो स्व-परका कथन करनेकी शक्तिके भाव भरे हैं, परन्तु है वह जड़रूप। तथापि श्रीमद् राजचन्द्र कहते हैं कि :—

'वचनामृत वीतरागके परम शांतरस मूल,'

परम शांतरसस्वरूप, प्रभु अमृतस्वरूप, भगवान शुद्ध ज्ञानसिन्धु, सुखसिन्धु वह तो जीवका भाव है, परन्तु वीतरागकी वाणीमें निमित्तरूपसे सुखसिन्धुका कथन करनेके भाव हैं। परम शांतरसस्वरूप सुखसिन्धुका कथन करनेके भाव हैं। परम शांतरसस्वरूप सुखसिन्धुका कोई अंश वाणीमें नहीं है, किन्तु वाणीमें सुखसिन्धुका—स्व-परका—कथन करनेकी शक्ति है।

अहा! तीर्थंकरकी वाणी जो कि जड़ है उसे भी कैसी उपमा दी है! दिव्यध्वनि है तो जड़की—भाषावर्गणाकी पर्याय, तथापि उसे तीर्थंकरकी कहना वह निमित्तका कथन है। आत्मा सुखसिन्धु, चैतन्यसिन्धु, अनन्तगुणोंका सागर है, प्रभु! उसके भावका धरातल बहुत गहरा है! उन गहरे—अगाध भावोंको बतलानेवाली जिनेश्वरी वाणी है। 'वाचकवाच्य-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नियोग'—वाचक है वे शब्द हैं, और वाच्य है वह भाव है। इतना निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। तीर्थंकर भगवान जब सर्वज्ञ परमात्मा होते हैं तब वाणीमें निज शक्तिसे स्व-परकी कथा कहनेकी शक्तिवाली पर्यायें प्रगट होती हैं। भगवान स्वयं तो अलौकिक वस्तु हैं ही, परन्तु उनकी वाणीको भी ऐसी उपमा दी है कि—

'अमृतवाणीकी मिठास देखकर द्राक्षें शरमाकर वनवासमें चली गईं और इक्षु अभिमान छोड़कर कोल्हूमें पिल गया!'

भगवान आत्मा अंतरमें है तो चैतन्यस्वरूप; उसे बतलानेवाली वाणी जड़ है, उसमें ज्ञान या सुखकी गंध नहीं है, तथापि उसे अमृतवाणी कहा है। निमित्तरूपसे ज्ञानामृतको बतानेवाली है ना! देह-देवलमें विराजमान यह भगवान आत्मा—चाहे बालक हो, वृद्ध हो, पुरुष हो या स्त्री हो—वह तो अतीन्द्रिय आनन्दका सागर है। अरे! अपनी ऐसी महानताकी प्रतीति उसे कैसे हो? अनादिसे पामरता मान रखी है ना! प्रभु आत्माको बतलानेवाली वह अमृतवाणी है तो जड़; परन्तु उसे सुननेके लिये भगवानके समवसरणमें सिंह, वाघ, नाग, इन्द्र और गणधर तरसते हैं। उस वाणीकी मिठास देखकर द्राक्षें शरमाकर वनवासमें चली गईं। भगवानकी वाणीकी अचिन्त्य मिठास देखकर द्राक्षें जंगलमें चली गईं। अहा! कैसी उपमा दी है!

प्रश्न :—पहले ग्राममें थीं तो चली गई ना?

उत्तर :—यह तो उपमा दी है। तीन लोकके नाथ श्री जिनेश्वरदेव कि जिनके ओंठ हिले बिना, कण्ठमें कम्पन बिना 'ॐ' ऐसी निरक्षरी ध्वनि खिरती है—उपदेशामृतकी धारा बहती है; उनकी उस वाणीकी मिठास देखकर द्राक्षें—अहा! कहाँ इस वाणीकी अद्‌भुत मधुरता और कहाँ हमारी तुच्छ मिठास! इसप्रकार शरमाकर—वनवासमें चली गईं।

और भगवानकी वाणीकी मधुरताके समक्ष इक्षु भी अभिमान छोड़कर कोल्हूमें पिल गया। वह वाणी वस्तुस्वरूप समझनेमें निमित्त है। वह वाणी भगवानके ही होती है, दूसरोंके—अज्ञानियोंके—नहीं होती। शांतरससे भरपूर, वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा अंतरमें विद्यमान है, उसे बतलानेवाली भगवानकी वाणी है।

श्रीमद् राजचन्द्रने कहा है कि :—

वचनामृत वीतरागके, परम शांतरस मूल;
औषधि जो भवरोगकी, कायर को प्रतिकूल।

वीतरागके वचनामृत परम शांतरसका कारण हैं और भवरोग नाश करने की औषधि हैं—यह कथन निमित्तसे है। चौरासी लाख योनियोंमें अवतरित हो-होकर अनादिकालसे तू

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दु:खी हो रहा है भाई! तुझे उसकी खबर नहीं है। बाह्य सुविधाओंको—साफ-सुथरा गाँव, सुन्दर मकान, कान्तिमान शरीर, अच्छे कपड़े, कीमती गहने, प्रतिष्ठित परिवार, धन–धान्य यह सब स्मशानकी शोभा—देखकर उसकी महिमामें तू अपनी महिमा भूल गया है कि मैं कौन हूँ! उस आत्मस्वरूपको बतलानेवाली भगवानकी वाणीकी मधुरताके समक्ष इक्षु अभिमान छोड़कर कोल्हूमें पिल गया।

जिनका शरीर परम औदारिक है, जिनके ज्ञान-आनन्दादि समस्त शक्तियाँ पूर्ण विकसित होगई हैं, ऐसे त्रिलोकीनाथ जिनेश्वरदेव परमात्माके शरीरसे वाणी भी परम-अमृत समान निकलती है।

प्रश्न :—जैनोंके दूसरे सम्प्रदायोंमें तो भगवानको अन्य रीतिसे मानते हैं?

उत्तर :—उन लोगोंने फेरफार कर दिया है। तीर्थंकर भगवानको तो जन्मसे ही शरीर परम औदारिक होता है। जन्म लें तभी से रोग नहीं होता, मल-मूत्र नहीं होते। तीर्थंकर किसे कहते हैं भाई! वह वस्तु ही कोई अलग है। लोगोंने उन्हें सामान्य मनुष्य मान लिया है। लोग गाते भी हैं ना!—'मानवने प्रभु तुझे मनाया मानव जैसा....'

देहमें विराजमान होने पर भी देहादिसे भिन्न आत्मा प्रभुरूपमें विराजमान है। वह आनन्दका–अमृतका–सागर है, स्वयंभू सुखसिन्धु है। तू इतना महान है–यह तुझे खबर नहीं है। ऐसे अमृतके सागरको बतलानेवाली वाणीको भी अमृत कह दिया। जिनेश्वरदेवकी वह वाणी कोई अलौकिक है।

.....'ऐसी तो जिनेन्द्रवाणीकी महिमा गायी है; फिर जिनेन्द्रदेवके चैतन्यकी महिमाका तो क्या कहना!'

तीनलोकके नाथ जिनेन्द्रदेव श्री सीमंधर परमात्मा वर्तमानमें महाविदेह क्षेत्रमें विराज रहे हैं। महावीर आदि तो सिद्ध हो गये—'णमो सिद्धाणं' पद प्राप्त कर लिया है। महाविदेहमें बीस तीर्थंकर विराज रहे हैं वे 'णमो अरिहंताणं' पदमें हैं। उनके आत्माकी क्या बात कहें! यहाँ वाणीयुक्त अरिहंत भगवानको लिया है; सिद्धको—अशरीरी परमात्माको—वाणी नहीं होती।

भीतर भगवान आत्मा कौन है? शरीरके रजकण तो मिट्टी हैं और भगवान आत्मा तो चैतन्य, आनन्द और शान्तिके रससे भरपूर है। सर्व आत्मा ऐसे ही हैं। अरे! इसे कब अपनी महानताकी खबर पड़ेगी! ऐसे भगवान आत्माको बतलानेवाली जिनेन्द्रवाणीकी मधुरता देखकर द्राक्ष वनमें चली गई और इक्षु अभिमान छोड़कर कोल्हूमें पिल गया। भगवानकी वाणीकी ऐसी महिमा है, तब उनके आत्माकी महिमाकी तो क्या बात की जाय! प्रभुको आत्मा परमात्मास्वरूपमें प्रगट हो गया है। उनका ऐसा आत्मा उनकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वाणीके कारण नहीं है, परन्तु अपने स्वरूपके कारण है। स्वरूप ऐसा प्रगट हुआ है इसलिये वाणी ऐसी है ऐसा भी नहीं है। स्वरूप स्वरूपके कारण है और वाणी वाणीके कारण निकलती है भाई!

मैं तो आत्मा हूँ, ज्ञान और आनन्दसे परिपूर्ण स्वयंभू सिन्धु हूँ। अहा! मेरी थाह लेनेवाले को सम्यक् आनन्दका स्वाद आये ऐसा मैं भगवान हूँ। अंतरमें जिसे ध्रुवतत्त्वका स्पर्श हुआ है उसे अतीन्द्रिय आनन्दके स्वादमें—अनुभवमें—प्रमाण, नय और निक्षेप लागू नहीं होते। वे तो वस्तुको सिद्ध करनेके लिये बाह्य ज्ञानके निमित्तरूप हैं। भगवान आत्मा जब अंतरके उपयोगमें जाता है तब वहाँ अनुभवमें प्रमाण, नय तथा निक्षेपकी गंध तक नहीं होती। रागादि उदय की तो गंध नहीं है किन्तु प्रमाण आदिके व्यवहारकी भी गंध नहीं होती। पूर्णानन्दका नाथ आत्माके अनुभव-कालमें वे विकल्प नहीं होते, तो जहाँ पूर्णानन्दका नाथ पूर्ण परमात्मारूपसे प्रगट हुआ उसकी महिमाकी तो क्या बात करें! अरे! अपने स्वरूपका माहात्म्य कितना है वह नहीं सुना—नहीं समझा और बाह्यमें रुक गया! दो–पाँच लाख खर्च करे, वर्षी तप करे, यात्रा संघ निकाले, उपधानमें माला पहिनाए—यह सब मैंने किया ऐसा मानता और जानता है। अरे, भाई! तूने यह कुछ नहीं किया; यह सब तो रागकी क्रियाएँ हैं।

अहा! जब भगवानकी वाणीकी महिमा ऐसी है, तो उनके आत्माकी आन्तरिक महिमाका तो क्या कहना! वह महिमा तो कोई अद्‌भुत है, अलौकिक है।

❃

वचनामृत-१६

ज्ञान-वैराग्यरूपी पानी अंतरमें सींचने से अमृत मिलेगा, तेरे सुखका फव्वारा छूटेगा; राग सींचने से दुःख मिलेगा। इसलिये ज्ञान-वैराग्यरूपी जलका सिंचन करके मुक्तिसुखरूपी अमृत प्राप्त कर ॥१६॥

यहाँ कहते हैं कि—

'ज्ञान-वैराग्यरूपी पानी अंतरमें सींचनेसे अमृत मिलेगा, तेरे सुखका फव्वारा छूटेगा;'

अरे नाथ! तू कितना महान है प्रभु! यह तुझे खबर नहीं है। तेरा स्वरूप भीतर पूर्ण आनन्द और ज्ञानसे भरपूर है; उसका ज्ञान और परके रागका अभाव–ऐसे ज्ञान एवं वैराग्यका अंतरमें सिंचन करनेसे, जिसप्रकार वृक्षको पानी सींचने पर फल प्राप्त होते हैं उसीप्रकार, अतीन्द्रिय-आनन्दरूपी अमृत मिलेगा। तू पूर्ण आनन्दका सागर, उसे अरेरे! इतने शरीरमें और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रागमें रोक रखा है। तू दया, दान, पूजा और भक्ति तथा विषय-वासनाके विकल्पोंकी मिठासमें रुक गया है। अहा! सर्वोत्कृष्ट ऐसे निज- परमात्मस्वरूपका ज्ञान और वैराग्य—परकी ओरसे उदास; स्वभावमें रक्त और रागसे विरक्त; इसप्रकार अंतरमें सींचनेसे अमृत प्राप्त होगा। यहाँ अस्तिपनेसे ज्ञान और नास्तिपनेसे वैराग्य—इसप्रकार दोनोंकी मैत्री कही है।

समयसारकी टीकामें—कलशमें—ज्ञान और वैराग्यकी (ज्ञाननय और क्रियानयकी) मैत्री कही है ना! जो पुरुष अनेकान्तमय आत्माको जानता है (-अनुभवता है) तथा सुनिश्चल संयममें वर्तता है (-रागादि अशुद्ध परिणतिका त्याग करता है), इसप्रकार जिसने ज्ञाननय और क्रियानयकी परस्पर तीव्र मैत्री साधी है, वही पुरुष इस ज्ञानमात्र निजभावमयी भूमिकाका आश्रय करनेवाला है।

जिसके अतीन्द्रिय आनन्द-रसके एक अंशके स्वादके समक्ष इन्द्रके—इन्द्रानी सम्बन्धी तथा करोड़ों अप्सराओं सम्बन्धी—भोग सड़े हुए गधों तथा बिल्लियों जैसे लगें ऐसे इस चैतन्यस्वरूप भगवान आत्माका अंतरमें ज्ञान और वैराग्य करनेसे उस आनन्दामृतकी प्राप्ति होती है। ऐसी बात है भाई! ऐसी बात लाये कहाँसे? अभी तक तो ऐसा सुनते थे कि—प्रतिक्रमण करो, सामायिक करो, 'तस्सुत्तरी' करो; जाओ, धर्म होगया! अष्टमी–चतुर्दशी को प्रोषध करो। यह सब तो भाई रागकी क्रिया है। भगवान आत्मा तो रागकी क्रियासे भिन्न अंतरमें विराजमान है। उसका ज्ञान और वैराग्य करनेसे अमृत मिलेगा। क्रियाके परिणामसे तो राग–ज़हरकी उत्पत्ति होगी। मुश्किल काम है भाई!

भले ही दुकान और स्त्री–वच्चोंको छोड़कर जंगलमें रहता हो; पंचमहाव्रतके परिणाम हों, परन्तु वह सब ज़हर है—दुःख है; उसका फल भी दुःख है। चैतन्यस्वरूप आत्माका ज्ञान और वैराग्य करनेसे अन्तरमें—तेरी पर्यायमें अमृतकी उत्पत्ति होगी। शक्तिमें अमृत है वह पर्यायमें उत्पन्न होगा। तुझे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानमें अतीन्द्रिय आनन्द प्राप्त होगा। ऐसा आनन्द तीनलोकमें अन्यत्र कहीं—खीर, बासुन्दी आदि इन्द्रिय-विषयोंमें—नहीं है। तुझे खबर नहीं है प्रभु! तू काहेका वेदन करता है? तू दुःख और ज़हरका वेदन करता है। पागल हो गया है भाई! जो दुःखका वेदन है उसे तू सुखका वेदन मान रहा है। वह मिथ्या, भ्रम–अज्ञान है।

अहा! ज्ञान और वैराग्यरूपी जल सींचनेसे अमृत प्राप्त होगा, तेरे सुखका फव्वारा छूटेगा। आमके वृक्षको गोड़कर पानी सींचते हैं, उसीप्रकार यहाँ सुखसिन्धु भगवान आत्माका ज्ञान, और परका–रागका अभाव, ऐसा पानी सींचनेसे प्रभु! तुझे अमृतरूप फल मिलेंगे। शुभाशुभभाव तो सब विष हैं। अशुभभाव तो विष हैं ही, किन्तु अमृतस्वरूपके समक्ष शुभभावोंको भी विष कहा है, विषकुम्भ कहा है। समयसारके मोक्ष अधिकारमें शुभको

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विषका घड़ा कहा है। भगवान आत्मा अमृतका सागर जबकि पुण्य-पाप विषका–ज़हरका कुम्भ। ऐसी बात है भाई! दूसरा कुछ आये या न आये उसके साथ सम्बन्ध नहीं है।

प्रभु! तू ज्ञान और वैराग्य प्रगट कर, तेरे सुखका फव्वारा छूटेगा। पातालमें पानी भरा हो और पत्थरकी आखिरी परत फूटने पर पानी उछलता है–फव्वारा छूटता है, उसी प्रकार अंतरमें चैतन्य-पाताल फूटनेसे अतीन्द्रिय आनन्दका फव्वारा उमड़ेगा। मुनिराज कहते हैं—हमारा आत्मा तो अनंत गुणोंसे परिपूर्ण, अनन्त अमृतरससे भरपूर, अक्षय घट है। उस घटमेंसे पतली धारासे अल्प अमृत पिया जाय ऐसे स्वसंवेदनसे हमें सन्तोष नहीं होता। हमें तो प्रतिसमय पूर्ण अमृतका पान हो ऐसी पूर्ण दशा चाहिये। पूर्ण आनन्दकी प्राप्ति कैसे हो ऐसा उनका प्रयत्न ध्रुवस्वभावके लक्षपूर्वक चलता ही रहता है। भाई! मुनिदशा किसे कहते हैं? वह समझना भी कठिन है!

अहा! ज्ञान और वैराग्यकी एकतासे स्वभावमें से ज्ञान एवं आनन्दकी धारा फूटेगी, अमृतका फव्वारा छूटेगा, सुखामृतकी धारा बहेगी। देखो, यह अनुभव! इसका नाम है साधक स्वभाव। इसका नाम है परमात्माका धर्म। तीन लोकके नाथ श्री जिनेन्द्रदेवका कहना है कि–प्रभु! तू अमृतका भण्डार है; उसका ज्ञान और रागका अभाव–ऐसी स्थिति होने पर अंतरसे अमृतका—आनन्दका—फव्वारा छूटेगा।

ऐसी बात कभी सुनी न हो उसे तो ऐसा लगता है कि यह क्या?—क्या ऐसा जैनका—वीतरागका—मार्ग होगा? लोगोंने बाह्य क्रियामें, प्रवृत्तिमें और रागमें जैनधर्म मान लिया है। धर्म तो वीतरागमार्ग है भाई! अंतरमें भगवान आत्मा ज्ञान एवं आनन्दका सागर है, सुखका पाताल है, उसका ज्ञान और रागका अभाव—वैराग्य होनेसे तुझे अंतरमें आनन्दका फव्वारा छूटेगा। उसका नाम वीतराग धर्म और उसीका नाम मोक्षका मार्ग है।

'राग सींचने से दुःख मिलेगा।'

चाहे तो दयाका, व्रतका, पूजा-भक्तिका अथवा प्रमाण-नय-निक्षेपका विकल्प हो, किन्तु है वह सब रागभाव; उस रागका सिंचन करनेसे तो दुःख होगा भाई! वहाँ सुखकी उत्पत्ति नहीं होगी। भाषा एकदम सादी, लेकिन भाव तो बहुत ऊँचे हैं। जगतके भाग्यसे ही यह पुस्तक बाहर आगई है! सरल.....सरल....एकदम सरल।

राग सींचने से दुःख मिलेगा। यहाँ अस्ति–नास्तिसे बात की है। स्वरूपका ज्ञान और परसे–रागसे उदासीनता; उससे अमृतकी उत्पत्ति होगी और शुभाशुभ रागसे तो दुःख पैदा होगा।

'इसलिये ज्ञान-वैराग्यरूपी जलका सिंचन करके मुक्तिसुखरूपी अमृत प्राप्त कर।'

कद्दूकी बेलमें आधे-आधे मनके कद्दू पैदा होते हैं जिनसे कद्दूपाक बनता है;

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसीप्रकार तू शरीरप्रमाण आनन्द और ज्ञानकी बेल है; उसमें ज्ञान-वैराग्यका जल सींचनेसे अंतरमें आनन्दके—अमृतके फल पैदा होंगे। अहा! ऐसी बात है; सुन तो सही भाई! यह तो तेरे अपने घरमें जानेकी रीति है। वीतरागका मार्ग सारे जगतसे भिन्न प्रकारका है भाई! उसके बिना तुझे कहीं सुखकी प्राप्ति नहीं होगी। पूर्ण अपरिमित आनन्दादि स्वभावमें—ज्ञानमें—एकाग्र होना वह ज्ञान, और रागसे छूटना वह वैराग्य—ऐसी अंतरमें साधना कर; तो तुझे मुक्तिरूपी अमृत मिलेगा; तू पूर्णतया दुःखसे छूट जायगा और पूर्ण आनन्दकी प्राप्ति होगी। उसका नाम परमानन्दका लाभ अर्थात् मोक्ष है। ऐसी बात है!

*

वचनामृत-१७

जैसे वृक्षका मूल पकड़ने से सब हाथ आता है, वैसे ज्ञायकभाव पकड़नेसे सब हाथ आयगा। शुभपरिणाम करनेसे कुछ हाथ नहीं आयगा। यदि मूल स्वभावको पकड़ा होगा तो चाहे जो प्रसंग आयें उस समय शान्ति–समाधान रहेगा, ज्ञाता–द्रष्टारूपसे रहा जा सकेगा॥ १७॥

'जैसे वृक्षका मूल पकड़नेसे सब हाथ आता है, वैसे ज्ञायकभाव पकड़नेसे सब हाथ आयगा।'

आमका मूल पकड़ने से उसकी डालियाँ, पत्ते, फूल और फल–सब हाथ आते हैं, उसीप्रकार ज्ञायकभावको—मूलको—पकड़नेसे उसका सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, शुक्लध्यान और केवलज्ञान—सब हाथ आयगा, अंतरमें सब प्रगट होगा। रागको तो नहीं, किन्तु पर्यायको भी पकड़नेकी बात नहीं ली। ज्ञायकको पकड़नेवाली पर्याय है, उस पर्यायको भी नहीं पकड़ना। अंतरमें पूर्ण अभेद ज्ञायकभावको पकड़नेसे सब हाथ आयगा।

समयसारकी छठवीं गाथामें 'मैं एक ज्ञायकभाव हूँ'—कहा है। त्रैकालिक ज्ञायकभाव एकसमयकी पर्याय जितना नहीं है; वह तो सहज, स्वाभाविक, अकृत, अकृत्रिम, पूर्ण, स्वभावसे भरपूर वस्तु है;–ऐसे ज्ञायकभावको पकड़। पकड़ती तो पर्याय है, किन्तु ज्ञायकभावको पकड़े। ज्ञायकभावके ऊपर दृष्टि डालनेसे, ध्रुवको ध्येय बनाने पर सब हाथ आयगा, केवलज्ञान प्रगट होगा। इतना ज्ञान हो, ग्यारह अंगका ज्ञान हो, उसे यह होता है—ऐसा नहीं है। भगवान आत्मा वस्तु तो स्वयं ज्ञायकताका पुंज है, उसके सन्मुख होनेसे अर्थात् उसे पकड़नेसे सम्यग्दर्शन, आत्मानुभूति आदि सब तुझे प्राप्त होगा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनादिसे राग और पर्यायको पकड़कर बैठा है वही संसार है। उसमें, चौरासी लाख योनियोंमें अवतरित होनेका बीज है। अपनेको राग और पर्याय जितना मानने से संसार फलित होगा। व्यवहारकी रुचिसे भव फलेंगे। वहाँ नरक—निगोदकी प्राप्ति होगी। प्रभु! ज्ञायकको पकड़नेसे ज्ञान–वैराग्य, अनुभूति, मुनिपना और केवलज्ञान—सब हाथ आयगा।

'शुभपरिणाम करनेसे कुछ हाथ नहीं आयगा।'

अशुभसे बचनेके लिये शुभ आता है; किन्तु उससे आत्माकी शान्ति या ज्ञान कुछ हाथ नहीं आयगा। इसमें—शुभके विषयमें—सब आपत्तियाँ उठाते हैं कि–अशुभ कम होता है इतना तो शुभ साधन है ना? अन्तमें तो शुभ होता है ना? इसलिये शुभ साधन है। भाई! आगे–अंतमें शुभ भले हो, परन्तु वह साधन नहीं है। उसका अभाव करना अर्थात् राग और स्वभावकी भिन्नता प्रज्ञाछैनी द्वारा करना वह साधन होता है। राग करनेसे साधन हो ऐसा कदापि नहीं हो सकता। शुभपरिणाम—शुभराग करनेसे भवभ्रमणके सिवा कुछ हाथ नहीं आयगा।

दो बातें की हैं—(१) वृक्षके मूलको पकड़नेकी भाँति ज्ञायकभावको पकड़नेसे सब हाथ आयगा; और (२) शुभको पकड़नेसे कुछ भी हाथ नहीं आयगा। तेरे दया और दान, व्रत और पूजा, भक्ति और भगवानका स्मरण—यह सब शुभभाव हैं; शुभपरिणाम करनेसे कुछ हाथ नहीं आयगा। भाई! सच्चा जैनदर्शन क्या है वह तूने सुना ही नहीं। तू रागके पक्षमें बैठ गया है; अब पक्ष नहीं बदला तो उस शुभरागमें कुछ हाथ नहीं आयगा। उसमें कहाँ है ज्ञान, आनन्द और शान्ति? शुभसे कुछ हाथ नहीं आता, वहाँ अशुभकी तो बात ही क्या करें?

'यदि मूलस्वभावको पकड़ा होगा तो चाहे जो प्रसंग आयें उस समय शान्ति–समाधान रहेगा, ज्ञाता-द्रष्टारूपसे रहा जा सकेगा।'

मूलस्वभाव अर्थात् ज्ञायकभाव, स्वभावभाव, ध्रुवभाव परमपारिणामिकभाव, सहज एकरूप रहनेवाला भाव, सदृश रहनेवाला भाव। अहा! ऐसा मूल स्वभाव पकड़ा होगा तो चाहे जो प्रसंग आयें—रोग आये, निन्दा आये, प्रतिकूलता आये—उस समय शान्ति और समाधान रहेगा।

ज्ञायकभाव, शुद्धभाव, स्वाभाविकभाव वह तो सुख-शांतिका विशाल समुद्र है; उसकी मर्यादा कैसी? निज आत्माका सत्य स्वरूप बतलाते हुए पं. बनारसीदासजी कहते हैं :–

कहै विचच्छन पुरुष सदा मैं एक हौं।
अपने रससौं भर्यो आपनी टेक हौं ॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मोहकर्म मम नाहिं नाहिं भ्रमकूप है।
सुद्ध चेतना सिन्धु हमारौ रूप है॥

—शुद्ध चेतनाका विशाल सिन्धु–समुद्र लहरा रहा है; उसे कहीं क्षेत्रकी विशालताकी आवश्यकता नहीं है, किन्तु स्वभावसामर्थ्यकी महानताकी आवश्यकता है, ऐसे महान ज्ञायकभावको ग्रहण करनेसे, चाहे जो प्रसंग आये उस समय शान्ति और समाधान रहेगा, ज्ञाता-द्रष्टारूपसे रहा जा सकेगा। 'मै केवल ज्ञाता ही हूँ'—इसमें परका और रागका अकर्तृत्व सिद्ध होता है। चाहे जो उदय आओ या जाओ—उसका ज्ञाता-द्रष्टा अर्थात् अकर्त्ता है। जिसे ज्ञाता स्वभावका निर्णय नहीं है वह कर्त्ता होकर रागमें पिस जाता है—दब जाता है। भाई! ऐसा वस्तुस्वरूप। दो–चार दिन मध्यस्थ होकर सुने तो खबर पड़े।

जैनधर्म कोई फिरका नहीं है, कोई पक्ष नहीं है; जैनधर्म वह वणिकोंका धर्म है–ऐसा भी नहीं है। अरे भाई! जैनधर्म तो वस्तुका स्वरूप है। वीतरागस्वरूप-चेतना-महासिन्धु ऐसे भगवान आत्माकी श्रद्धा, ज्ञान और अनुभव करना वह जैनधर्म है।

❃

वचनामृत-१८

दृष्टि द्रव्यपर रखना है। विकल्प आयें परन्तु दृष्टि एक द्रव्यपर है। जिस प्रकार पतंग आकाशमें उड़ती है परन्तु डोर हाथमें होती है, उसी प्रकार 'चैतन्य हूँ' यह डोर हाथमें रखना। विकल्प आयें, परन्तु चैतन्यतत्त्व सो मैं हूँ—ऐसा बारम्बार अभ्यास करनेसे दृढ़ता होती है॥ १८ ॥

'दृष्टि द्रव्यपर रखना है।'

द्रव्य अर्थात् नित्य रहनेवाली वस्तु। द्रव्यके ऊपर दृष्टि रखनेसे, ध्येय वहाँ है, ध्रुव वहाँ है, सामान्यपना वहाँ है, ध्रुवका धाम उतना है वह तेरा धाम है, वह तेरा महान क्षेत्र है—इस प्रकार उसकी महिमा जागृत होकर उसकी प्रतीति होगी। बात तो बहुत थोड़ी है, थोड़ेसे शब्दोंमें कही गई है, किन्तु भाव बहुत ऊँचे हैं। इसमें वाद–विवादका प्रसंग कहाँ है? विवादकी ओटमें जीवको निज द्रव्यस्वभावकी महिमा दृष्टिमें नहीं आती। यह तो आत्माकी रुचि जागृत हो ऐसी बातें हैं। भाई! जो परके रंगमें रंग गया उस पर निज वीतरागस्वभावका रंग नहीं चढ़ेगा, और जिसे वीतराग-स्वभावका रस और रंग लगा उसे रागका रस-रंग नहीं रुचेगा।

'विकल्प आयें परन्तु दृष्टि एक द्रव्यपर है।'

भूमिकानुसार राग आये परन्तु दृष्टि द्रव्यपर—सुखसिन्धु ऐसी ज्ञायकवस्तु पर—रखना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। विकल्प आयें किन्तु दृष्टि—श्रद्धाका जोर—एक निज ज्ञायकद्रव्य पर ही है। ध्येय द्रव्यसामान्यरूप–ध्रुवस्वरूप वस्तु है, उस परसे लक्ष नहीं हटता। चाहे जैसे प्रसंगोंमें भूमिकानुसार शुभ-अशुभ विकल्प आते हैं; क्योंकि राग है ना! इसलिये आते हैं ऐसा यहाँ लिया है। तथापि साधककी दृष्टि एक द्रव्यपर ही है।

'जिस प्रकार पतंग आकाशमें उड़ती है परन्तु डोर हाथमें होती है, उसी प्रकार 'चैतन्य हूँ' यह डोर हाथमें रखना।'

पतंग आकाशमें कहीं भी जाय परन्तु डोर हाथमें होती है, उसी प्रकार 'चैतन्यसिन्धु हूँ' यह डोर हाथमें रखना चाहिये। चैतन्यमय नित्य वस्तु, स्थायी वस्तु वह मैं हूँ, त्रिकालस्थायी तत्त्व—ज्ञायक चैतन्य सो मैं हूँ, यह डोर हाथमें रखकर भूमिकानुसार भले चाहे जैसे विकल्प आयें तथापि दृष्टि द्रव्यके ऊपरसे जरा भी नहीं हटती।

'विकल्प आयें, परन्तु चैतन्यतत्त्व सो मैं हूँ—ऐसा बारम्बार अभ्यास करने से दृढ़ता होती है।'

शुभाशुभ विकल्प आये, परन्तु चैतन्य शुद्धतत्त्व वह मैं हूँ—यह डोर–लक्षमेंसे छूटना नहीं चाहिये। 'मैं चैतन्य हूँ' ऐसा बारम्बार अभ्यास करनेसे अंतरमें दृढ़ता होती है। शुभभाव करनेसे चैतन्यकी दृढता नहीं होती, किन्तु अंतरमें स्वभावकी दृष्टिका अभ्यास रखनेसे दृढ़ता होती है।

❀

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-६

ता. ११-६-७८

वचनामृत-१६

ज्ञानीके अभिप्रायमें राग है वह जहर है, काला साँप है। अभी आसक्तिके कारण ज्ञानी थोड़े बाहर खड़े हैं, राग है, परन्तु अभिप्रायमें काला साँप लगता है। ज्ञानी विभावके बीच खड़े होनेपर भी विभावसे पृथक् हैं— न्यारे हैं।१६।

वचनामृत का ८वाँ पृष्ठ, बोल १६वाँ है।

'ज्ञानीके अभिप्रायमें राग है वह जहर है, काला साँप है।'

—अर्थात् भगवान आत्मा स्वयं शुद्ध चैतन्य एवं आनन्दस्वरूप है; शुभभाव उससे विरुद्ध हैं। शुभभाव आते हैं; परन्तु उन्हें विषकुम्भ कहा है ना! ....वे जहर हैं। ज्ञानीको अभिप्रायमें राग है वह—शुभ या अशुभ दोनों—ज़हर हैं, काला नाग है। शुभराग भी स्वरूपका साधन नहीं है, बाधक है। जिसे अंतरमें चैतन्यवस्तुकी—ज्ञायकद्रव्यकी—दृष्टि हुई है उसे अशुभ दूर होकर बीचमें शुभ आता है इतनी अपेक्षासे शुभको व्यवहारसे साधक कहा जाता है, परन्तु निश्चयसे तो जहर और हेय है। शुभभावको उपादेय माने वह अभिप्राय तो मिथ्यात्व है। अहा! ऐसी बात है!

आजकल इस सम्बन्धमें बड़ा विवाद चल रहा है। पण्डित कहते हैं कि शुभभाव बीचमें आता है, इसलिये वह शुद्धताका साधन है। भाई, वह साधन नहीं है। तुम्हें मार्गकी खबर नहीं है। यह आत्मा चैतन्यस्वरूप त्रैकालिक वस्तु है; वह ज्ञान एवं आनन्दादि स्वभावकी अमृत-बेल है। उसका अनुभवमें स्वीकार—आश्रय करनेसे तो अमृतके—अतीन्द्रिय आनन्दके—फल उत्पन्न होते हैं; कहीं ज़हर पैदा नहीं होता। कद्दूकी बेलमें कद्दू लगते हैं, करेले नहीं लगते। उसीप्रकार भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द एवं पूर्ण अमृतका पिण्ड है; वह त्रैकालिक अमृतकी बेल है। अहा! उसके स्वीकार तथा सत्कारसे—उसके अनुभवसे—अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दके कद्दू पैदा होते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'अभी आसक्तिके कारण ज्ञानी थोड़े बाहर खड़े हैं, राग है, परन्तु अभिप्रायमें काला साँप लगता है।'

ज्ञानीको अभी पूर्ण वीतरागदशा नहीं हुई है इसलिये आसक्तिरूप, अस्थिरतारूप शुभभाव आता है, परन्तु अभिप्रायमें तो वह काला नाग है, विष है। पर्यायमें राग है अवश्य; नहीं है ऐसा नहीं; परन्तु त्रैकालिक शुद्ध ज्ञायक आत्माका अनुभव करनेवाले ज्ञानीके अभिप्रायमें तो वह शुभराग भी विष है।

समयसारके मोक्ष-अधिकारमें प्रतिक्रमणादि शुभभावोंको व्यवहारसे अमृत कहा है। वास्तवमें वह अमृत नहीं है तथापि अमृत कहना—उसका नाम व्यवहार है। अंतरमें त्रैकालिक अमृतस्वरूप ज्ञायकस्वभावकी जिसे प्रतीति, ज्ञान एवं अनुभूति—पर्यायमें अमृतदशा—प्रगट हुई है उसके, वीतराग देव-शास्त्र-गुरुके प्रति शुभरागको आरोपसे व्यवहारसम्यक्त्व कहा गया है। वह है तो राग, किन्तु निश्चयसम्यक्त्वका सहचारी देखकर उपचारसे उसे व्यवहार कहा गया है। अहा! ऐसी बात है!

मोक्षमार्ग प्रकाशकके सातवें अध्यायमें भी आता है कि—ज्ञानी धर्मात्माको भी अभी आसक्तिके कारण पूर्ण वीतराग नहीं हुए हैं तबतक, राग तो आता है। अंतरमें विशेष स्थिर नहीं रह सकते इसलिये थोड़े रागमें स्थित हैं, परन्तु रुचिमें उसका आदर नहीं है। अभी तो राग किसे कहना इस बातमें भी बहुत उलझन है। अशुभ रागको तो राग कहते हैं, किन्तु यहाँ तो गुण-गुणीके भेदको लक्षमें ले वह भी शुभराग है। ज्ञायक वस्तु अभेद पूर्ण वस्तु है, जिसमें गुण-गुणीके भेद भी नहीं है, अभेदका विषय अभेद ज्ञायक है। जहाँ गुण-गुणीका भेद दृष्टि स्वीकार नहीं करती, वहाँ शुभभावको आदरणीय माने या उसका स्वीकार करे यह तो हो ही कैसे सकता है? कदापि नहीं हो सकता। उथल-पुथलका मार्ग है भाई! वर्तमानमें तो लोग ऐसा मानते हैं कि—शुभरागकी क्रिया करो, व्रत करो, उपवास करो, देशसेवा करो और शास्त्रोंकी अच्छी भाषा बनाओ तो वह सब धर्म है। ऐसा मानते हैं, ठहराते हैं।

प्रश्न :—लोग ही नहीं, उपदेशक भी शुभमें धर्म कहते हैं?

उत्तर :—ऐसे उपदेशक भी लोगोंमें ही आ जाते हैं, धर्ममें नहीं। शुभभावसे आत्माको किंचित् भी लाभ हो—धर्म हो, ऐसी प्ररूपणा और मान्यता मिथ्यादृष्टिकी है। अरे! यह तो चौरासीके जन्म-मरणकी पंक्ति लाँघ जाने की बात है। जिसने अंतरमें अनादिनिधन नित्यानन्द प्रभुको ग्रहण किया उसे बीचमें शुभभाव आये, वहाँ ठहरे भी, अटकता भी है;—ज्ञानीको चौथे गुणस्थानमें तीन कषायका, पाँचवेंमें दोका और छठवेंमें एकका सद्भाव है, इसलिये उसे थोड़ा राग है; अस्थिरताके कारण वे अभी थोड़े बाहर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

खड़े हैं;—परन्तु अतीन्द्रिय समताके आनन्दके समक्ष वह राग अभिप्रायमें काला नाग लगता है। छहढालामें कहा है कि—'यह राग आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये।' समतारससे भरपूर भगवान आत्माकी समतारस झरती अमृतदशाका सेवन करो। राग तो आग है; भले शुभराग हो तो वह भी आग है, कषाय है; वह कषायाग्नि आत्माकी शान्तिको जलाती है। उस शुभरागसे भी रहित अंतरमें समतारूपी अमृतसे भरपूर प्रभु है उसकी सेवा करो, उसमें से शान्ति और आनन्दकी उत्पत्ति होगी।

आत्मवस्तु पूर्ण शुद्ध एवं पवित्र है; तथापि पर्यायमें अशुद्धता आती है। अशुद्धता पर्यायमें भी नहीं है ऐसा नहीं है। श्री अमृतचन्द्र आचार्य कहते हैं कि—वस्तुरूपसे तो मैं पूर्ण शुद्ध चिन्मूर्ति हूँ परन्तु पर्यायमें, मोहकर्म जिसमें निमित्त है ऐसी अपनी अनुभाव्य दशामें कल्माषित परिणामरूपसे मैं परिणमता हूँ। मुनिको अशुभभाव तो होता नहीं है किन्तु शुभभाव आये वह भी कलुषितता है। श्री मोक्षमार्ग प्रकाशकमें कहा है—मुनिको अशुभराग तो होता नहीं है; धर्मके लोभी देखकर अपनी कमजोरीसे उपदेशका शुभराग आता है, परन्तु है वह दुःखका वेदन; वह धर्म नहीं है।

दृष्टिका विषय द्रव्यस्वभाव है, उसमें तो अशुद्धताकी उत्पत्ति है ही नहीं। सम्यक्त्वीको एक भी अपेक्षासे अनन्त संसारका कारण ऐसे मिथ्यात्व और अनन्तानुबंधी कषायका बंध नहीं है; परन्तु उस परसे कोई ऐसा मान ले कि उसे किंचित् भी विभाव तथा बंध नहीं है, तो वह एकान्त है। अंतरमें शुद्धस्वरूपकी दृष्टि एवं अनुभव होनेपर भी आसक्ति है वह दुःखरूप लगती है। रुचि और दृष्टिकी अपेक्षासे भगवान आत्मा तो अमृतस्वरूप आनन्दका सागर है, उसके अंशतः वेदनके समक्ष शुभ और अशुभ दोनों राग दुःखरूप लगते हैं, अभिप्रायमें विष और काले नाग जैसे लगते हैं।

ऐसी बात सुननेको मिलना दुर्लभ है। सांसारिक झंझटोंसे जैसे-तैसे थोड़ा समय मिले और सुनने जाय तो वहाँ कुगुरु लूट लेते हैं। शुभमें—व्रत-तपमें धर्म मनाकर वहाँ रोक रखते हैं, मिथ्यात्वके बंधनमें जकड़ रखते हैं। जीवन सफल करनेके बदले निष्फल बना देते हैं। उनके धन्य भाग्य हैं जिन्हें यह बात सुननेको मिली है! प्रभुका मार्ग तो यही है! अंतरमें वीतराग निर्मलानन्द प्रभु है उसकी रुचि, दृष्टि और श्रद्धा होना वह भी धन्य भाग्य है! वह जीव आगे बढ़कर, अनुभव करके, चारित्र लेकर केवलज्ञान प्राप्त करेगा।

समयसारकी पहली गाथा **'वंदित्तु सव्व सिद्धे'** में भावस्तुति और द्रव्यस्तुति द्वारा आचार्यदेवने अपनेमें और श्रोताओंमें अनंत सिद्धोंकी स्थापना की है, अर्थात् स्वयं तो सिद्धपदको प्राप्त करेंगे ही, किन्तु श्रोता भी साधक होकर—सिद्धपर्यायकी ओर उन्मुख

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होकर—सिद्धपद प्राप्त करेंगे। अहा! धन्य अवतार! श्रोता अभी वर्तमानमें तो अल्पज्ञ हैं, परन्तु पात्र होकर सुनने आये हैं। सिद्धपदको स्वीकार करें ऐसी शैलीवाले जीवों को लिया है।

समयसारकी पाँचवीं गाथामें भी ऐसा कहा है : **'जदि दाएज्ज पमाणं'**; मैं स्वभावसे एकत्वरूप और रागसे भिन्न ऐसा प्रभु हूँ—उसकी बात करूँगा; तेरा भगवान आत्मा भी ऐसा ही है;—इसप्रकार श्रोताओंको मेरे अपने ज्ञान और आनन्दके वैभवसे कहूँगा उस एकत्व-विभक्त आत्माको दरशाऊँ तो प्रमाण करना। यों ही स्वीकार कर लेना ऐसा नहीं किन्तु स्वानुभव-प्रत्यक्ष द्वारा स्वभावोन्मुख होकर प्रमाण करना; क्योंकि हमारा हेतु अंतरमें आनन्दके नाथका अनुभव करानेका है। ऐसे श्रोता—पंचमकालके जीव—लिये हैं! प्रवचनसार में कहा है कि—'जो जाणदि अरहंतं.....' जो अरिहंतको द्रव्यरूप, गुणरूप और पर्यायरूप बराबर जानता है वह अपने आत्मा को जानता है, और इसलिये उसके मोहका नाश होता है। जहाँ एक सर्वज्ञको जाननेसे अपने आत्माको जानकर मोहका क्षय होता है, तो अनंत सिद्धोंको जिसने अपनेमें स्थापित किया उनका विश्वास किया, उसने तो शपथ ले ली कि वह स्वकी ओर जायगा ही और सिद्धपदरूप पूर्णता प्राप्त करेगा ही। ऐसे श्रोता यहाँ लिये हैं।

अहा! अद्‌भुत शैली है समयसारकी! केवली परमात्मा जिनेन्द्रदेवका हृदय खोलकर रख दिया है। लेकिन जीवोंको बाह्यका माहात्म्य नहीं जाता। भाई! एकबार भूल जा बाहर का सब। यहाँ तो आचार्यदेवने अनन्त सर्वज्ञ और सिद्धभगवन्तोंको प्रस्थानमें रखा है। लोकमें अच्छा चौघड़िया न हो तो पहले प्रस्थानकी विधि कर देते हैं। भाई! वर्तमान पंचमकाल अच्छा समय नहीं है; केवलज्ञान होनेके लिये कुदिन है, इसलिये तेरी पर्यायमें—श्रद्धामें अनंत सिद्धोंका प्रस्थान रखकर तुझसे भगवान आत्माकी बात कहते हैं। उसे अंतरमें विश्वास लाकर स्वानुभवप्रत्यक्ष द्वारा स्वीकार कर। यह बात लोगोंको असह्य लगती है, परन्तु वस्तुस्थिति ही ऐसी है। यह कोई कृत्रिम पंथ या पक्ष है? यह तो वस्तुस्वभाव है। यहाँ अपनी यह बात चल रही है कि ज्ञानी, आसक्तिके कारण थोड़े बाहर खड़े हैं, राग है, परन्तु अभिप्रायमें वह राग—शुभाशुभभाव—उन्हें काले साँप जैसा लगता है।

'ज्ञानी विभावके बीच खड़े होनेपर भी विभावसे पृथक् हैं—न्यारे हैं।'

ज्ञानीको अभिप्रायमेंसे राग छूट गया है किन्तु आसक्तिकी स्थितिमें वर्तते होनेके कारण स्थिरताकी अपेक्षा अभी राग नहीं छूटा है। इसप्रकार विभावके बीच खड़े होनेसे विकल्प आते हैं, शुभभाव आता है, तथापि वे विभावसे भिन्न हैं, न्यारे हैं। धर्मी जीवको, स्वरूपकी दृष्टिके जोरसे रागको जहर तथा काला सर्प जानते हुए भी वह आता है; तथापि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

धर्मी उस रागसे न्यारे हैं, उस पर उनकी दृष्टि नहीं है। जिसके उदरमें नौ महिने तक रहा वह जननी स्नान करके कपड़े बदलती हो तब उसके लावण्यकी ओर कुलीन पुत्रकी कदाचित् दृष्टि पड़ जाय, परन्तु दृष्टि पड़ी वह पड़ी ही नहीं; उसीप्रकार धर्मात्माको शुभराग आये किन्तु वहाँ उसकी दृष्टि नहीं है। अहा, ऐसा मार्ग है भाई!

✻

वचनामृत-२०

मुझे कुछ नहीं चाहिये, किसी पर पदार्थकी लालसा नहीं है, आत्मा ही चाहिये—ऐसी तीव्र उत्सुकता जिसे हो उसे मार्ग मिलता ही है। अंतरमें चैतन्यऋद्धि है तत्सम्बन्धी विकल्पमें भी वह नहीं रुकता। ऐसा निस्पृह हो जाता है कि मुझे अपना अस्तित्व ही चाहिये।–ऐसी अंतरमें जानेकी तीव्र उत्सुकता जागे तो आत्मा प्रगट हो, प्राप्त हो ॥ २० ॥

'मुझे कुछ नहीं चाहिये,'

मुझे मेरा अपना अस्तित्व ही चाहिये, शुद्ध चैतन्यस्वरूप अस्तित्ववान वस्तु–हितस्वभावी निज वस्तुकी ही आवश्यकता है, जिज्ञासामें मात्र निज शुद्ध सत्ता—अस्तित्वकी ही आवश्यकता है; अपने पूर्णानंदसे भरपूर प्रभुके सिवा दूसरा कुछ आवश्यक नहीं है; मेरा अस्तित्व जो पूर्णवस्तु–अपना भगवान आत्मा ही मुझे प्राप्त करना है, उसके सिवा दुनियाकी प्रशंसा या शुभराग आदि अन्य कुछ नहीं चाहिये;–आत्माकी यथार्थ रुचिवानको दृष्टिमें ऐसा जोर आ जाता है।

'.....किसी परपदार्थकी लालसा नहीं है, आत्मा ही चाहिये'......

विकल्पसे लेकर किसी भी पर पदार्थकी लालसा–तृष्णा नहीं है। 'यह हो तो अच्छा'–ऐसे किसी पर पदार्थकी—परमें तो देव-शास्त्र-गुरु और शुभभाव भी आ गये—लालसा नहीं है।

भाई! आत्माका यह मार्ग ही अलग है! दृष्टिके विषयस्वरूप उसकी प्रभुता कैसी है! उसका स्वरूप कितना है? अहा! प्रभुकी वह पूर्ण प्रभुता! प्रभुके प्रभुत्वकी बात सुनकर रोम-रोम पुलकित हो जाता है, परमात्मस्वरूप निज प्रभुताको प्राप्त किये बिना अन्यत्र कहीं चैन नहीं पड़ता, सुहाता नहीं है, सुख नहीं लगता, प्राप्त करके ही रहूँगा! मुझे तो अपना प्रभु आत्मा ही चाहिये; पर पदार्थ की मुझे लालसा नहीं है। प्रभु! यही यहाँ बतलाते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'—ऐसी तीव्र उत्सुकता जिसे हो उसे मार्ग मिलता ही है।'

जिसे स्वरूप प्राप्त करनेकी तीव्र आकांक्षा जागृत हो उसे मार्ग मिलता ही है। तीव्र अभिलाषा अर्थात् एकाग्रता प्रगट करनेकी उग्र भावना हो उसे भीतर मार्ग अवश्य मिलता ही है।

'अंतरमें चैतन्यऋद्धि है तत्सम्बन्धी विकल्पमें भी वह नहीं रुकता।'

अहा! भगवान आत्माकी चैतन्य-सम्पदा! अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त श्रद्धा, अनन्त शान्ति आदि अपार गुणोंका समुद्र है। अपार गुणों और शक्तियोंका सागर ऐसे प्रभुकी—निज आत्माकी—ऋद्धि सम्बन्धी विकल्पमें भी वह नहीं रुकता। समयसारकी १४२वीं गाथाके शीर्षकमें कहा है–'ततः किम्?' अर्थात् मैं अबद्ध हूँ, पूर्ण हूँ, शुद्ध हूँ—ऐसे विकल्प आयें किन्तु उससे क्या? वहाँ रुके उससे क्या? यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि यह वस्तु है और इसमें अनन्त अपरिमित शक्तियोंका भण्डार है—ऐसी अनन्त ऋद्धियोंकी ज्ञानमें प्रतीति हो; परन्तु उस ऋद्धि और सम्पदाके विकल्पमें भी नहीं रुकता। दूसरी जगह तो कहीं रुकना नहीं है, किन्तु यहाँ विकल्पमें भी नहीं रुकता। ऐसी बात है भाई! आया कुछ समझमें?

'ऐसा निस्पृह हो जाता है कि मुझे अपना अस्तित्व ही चाहिये।'

ऐसा निस्पृह, इतना निष्कांक्ष हो जाता है कि मुझे तो अपना एक पूर्णानन्दका नाथ ही चाहिये। उसकी सम्पदाकी इतनी महिमा लगती है कि उसके विकल्पमें भी नहीं रुकना है—ऐसा निस्पृह हो जाता है। मुझे तो अपना अस्तित्व ही चाहिये; मेरे अपने द्रव्यका जितना, जैसा अस्तित्व है वही मुझे चाहिये। मेरी वस्तु और उसकी ज्ञानादि अनन्त गुणसम्पदा अनादि-अनन्त अस्तित्ववान वस्तु है; उसमें कहीं किंचित् भी न्यूनता नहीं आयी है।–ऐसा जो निज प्रभु द्रव्यस्वभाव उसकी अपार ऋद्धि लक्षमें आती होने पर भी, अपरिमित वस्तुका लक्ष होने पर भी, उसके विकल्पमें नहीं रुकता। उसकी सम्पदाकी महिमाके रागमें भी न रुककर उसकी अपनी जो पूर्ण वस्तु है वही उसे चाहिये।

'—ऐसी अंतरमें जानेकी तीव्र उत्सुकता जागे तो आत्मा प्रगट हो, प्राप्त हो।'

अंतरमें जानेके लिये, ध्रुव स्वभावके धरातलमें जानेके लिये, अस्तित्ववान जो नित्य ज्ञायकवस्तु है उसमें पहुँचनेकी, ऐसी तीव्र लालसा जगे तो आत्मा प्रगट हो! प्रभु पर्यायमें प्रगट हो; भगवान आत्मा अवश्य प्राप्त हो, पर्यायमें अवश्य ज्ञात हो जाय। अहा, ऐसी शर्त है!

यह वचनामृत पुस्तक अब तो सबके हाथमें आ गई है। समयसार तो था; उस

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर सादी गुजराती भषामें यह सरल वाणी आयी! लोग निहाल हो जायेंगे! भाग्य है जगतका! गुजराती सादी भाषा होनेपर भी भाव बहुत ऊँचे हैं, गहरे हैं; जो कोई पढ़ता है वह प्रशंसा करते नहीं थकता! पुस्तक पढ़कर समझमें न आया हो तो इन प्रवचनोंमें उसका विस्तार है।

✻

वचनामृत-२१

चैतन्यको चैतन्यमेंसे परिणमित भावना अर्थात् राग-द्वेषमेंसे नहीं उदित हुई भावना—ऐसी यथार्थ भावना हो तो वह भावना फलती ही है। यदि नहीं फले तो जगतको—चौदह ब्रह्माण्डको शून्य होना पड़े अथवा तो इस द्रव्यका नाश हो जाय। परन्तु ऐसा होता ही नहीं। चैतन्यके परिणामके साथ कुदरत बँधी हुई है—ऐसा ही वस्तुका स्वभाव है। यह अनन्त तीर्थंकरोंकी कही हुई बात है ॥ २१ ॥

'चैतन्यको चैतन्यमेंसे परिणमित भावना अर्थात् राग-द्वेषमेंसे नहीं उदित हुई भावना—ऐसी यथार्थ भावना हो तो वह भावना फलती ही है।'

यह बेनके वचनामृतका २१वाँ बोल है। जिन्हें थोड़ा विचार करनेका अवकाश हो उनके समझनेके लिये यह बात है भाई! जिनको अभी लौकिक नीतिका भी ठिकाना नहीं हो उन्हें बात समझमें नहीं आयगी। सुननेको मिले तब भी उन्हें रुचेगी नहीं।

जो ज्ञान एवं आनन्दका कन्द है, जिसमें अनन्त गुणोंका वास है, ऐसी जो वस्तु उसे यहाँ 'चैतन्य' कहा है।

इस आनन्दस्वरूप चैतन्य भगवानको चैतन्यमेंसे परिणमित—अंतरसे उत्पन्न—दशा अर्थात् राग-द्वेषरूप संसारके परिणाममेंसे नहीं उत्पन्न हुई भावना—ऐसी यथार्थ भावना हो तो वह भावना फलित होती ही है। उसको सांसारिक पाप-परिणामोंकी रुचि तो नहीं होती, परन्तु पुण्यके परिणामोंकी रुचि भी अंतरमें नहीं होती जिसे पापके तीव्र परिणाम हैं उसे तो यह बात सुनना भी अच्छा नहीं लगेगा।

प्रश्न :—छूटनेका कोई मार्ग तो होना चाहिये?

उत्तर :—यह छूटनेका रास्ता है। चैतन्य आत्माको आत्मामेंसे परिणमित—रागादिकमेंसे नहीं जन्मी हुई—भावना ही छूटनेका मार्ग है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहा! सरल शब्दोंमें यह बेनकी अनुभववाणी है। उन्हें असंख्य अरब वर्षोंका जातिस्मरण ज्ञान है। बेनको असंख्य अरब वर्षोंका स्पष्ट ज्ञान है, क्योंकि स्वयं पूर्वकालमें तीसरे सनत्कुमार स्वर्गमें थीं वह स्मरण होता है तथा उसके पूर्वके भव भी याद आते हैं। जैसे कलकी बातका स्मरण होता है वैसे ही असंख्य अरब वर्षोंकी बातका स्मरण हुआ है।

चैतन्यको चैतन्यमेंसे परिणमित भावना अर्थात् आत्मामेंसे हुई दशा हो तो वह फलती ही है। यह बात नयी नहीं है; जैन परमेश्वर, तीर्थंकर, त्रिलोकनाथ परमात्मा कह रहे हैं वही यह बात है। समझनेमें उसे अपनेको नयी लगे, परन्तु सर्वज्ञ परमात्माकी वाणी तो प्रवाहरूपसे अनादिसे चली आ रही है। यहाँ भरत तथा ऐरावत क्षेत्रोंमें तीर्थंकरका विरह पड़ता है, किन्तु महाविदेह क्षेत्रमें कभी तीर्थंकरका विरह नहीं होता। अहा! तूने भी वहाँ अनंतवार जन्म लिया है और समवसरणमें भी गया है, परन्तु अंतरमें आघात नहीं लगा। वहाँ भी बाह्य रुचि तथा प्रेममे उलझा रहा।

थोड़ी सूक्ष्म बात है। बेन बोल गई हैं; उस समय वहाँ ब्रह्मचारी पुत्रियाँ बैठी होंगी; उन्होंने थोड़ा लिख लिया इसलिये प्रगट हो गई; नहीं तो प्रगट नहीं होती। बेनकी छायामें ६४ बालब्रह्मचारी पुत्रियाँ हैं; उनमें कुछ तो 'ग्रेज्युएट' और लखपतियोंकी लड़कियाँ हैं।

बेन बाह्यसे तो मृतक समान हैं।

उनके तो अतीन्द्रिय आनन्द इतना उल्लसित हुआ है कि जिसके समक्ष कौन सामने देखता है और कौन चरण छूता है उसकी कोई परवाह नहीं है।

उनकी रात्रि-वचनिकामें यह वचन निकल गये हैं।

आत्माको आत्मामेंसे परिणमित....भावना अवश्य फलती है।

प्रश्न :—'परिणमित' क्यों लिया?

उत्तर :—मात्र कल्पना या ज्ञातृत्वकी धारणा कर रखी है ऐसा नहीं, किन्तु अपने अंतरमें उस प्रकारका परिणमन हुआ है। आत्मा ज्ञानानन्द है वैसी दशा हुई है, ज्ञातृत्व या धारणा रखकर बात नहीं की है।

'चैतन्यको चैतन्यमेंसे परिणमित भावना,'—शब्द थोड़े हैं किन्तु भाव बहुत ऊँचे हैं। चैतन्य किसे कहना? तो कहते हैं कि परमानन्द एवं परम ज्ञानके पिण्डको—जो स्वभावसे अनादि-अनन्त है, अतीन्द्रिय सच्चिदानन्दमय द्रव्य है उस त्रैकालिक वस्तु को। अंतरमें जो आवरण रहित वस्तु है उसकी दृष्टिपूर्वक उसमेंसे परिणमित दशा अर्थात् सम्यग्दर्शन प्रगट करनेकी भावना यथार्थ हो तो वह अवश्य फलती ही है। असली बात

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तो यह है; बाकी तो बहुत कुछ देखा है। पालेजमें पाँच वर्ष दुकान चलायी; वहाँ भी मैं तो शास्त्र ही पढ़ता था। पूर्वके संस्कार थे ना!

राग-द्वेष नहीं, पुण्य-पाप नहीं, जिसका नैतिक जीवन उच्च होता है उस ओर भी लक्ष नहीं, किन्तु अंतरमें जो चैतन्यवस्तु है उसकी दृष्टि होनेसे उसमेंसे उत्पन्न—परिणमित दशा, चैतन्यसमुद्रमेंसे—जिसप्रकार कुएँमेंसे हौदीमें आये, प्राप्तकी प्राप्ति हो तदनुसार—परिणमित होकर प्रवाह आया ऐसी जो दशा अर्थात् राग-द्वेषमेंसे नहीं उत्पन्न हुई भावना—ऐसी यथार्थ भावना हो तो वह फलती ही है।

प्रभु! तेरी प्रभुताकी बातें सूक्ष्म हैं। भगवान भी उन्हें पूरा नहीं कह सके।

"जो पद श्री सर्वज्ञने देखा ज्ञानमें,
कह न सके लेकिन उसको भगवान भी;
उस स्वरूपको अन्य वाणी तो क्या कहे?
अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान भी।
–अपूर्व अवसर...."

भगवान आत्मा अंतरमें चैतन्यतेजका प्रवाह है। उसमेंसे उत्पन्न हुई भावना यथार्थ होती है और वह फलती है। यहाँ 'यथार्थ' पर जोर है, कल्पना पर नहीं। जैसी वस्तु है वैसी यथार्थ भावना हो तो वह फलती ही है; उस भावनामेंसे केवलज्ञान उत्पन्न होता ही है। दूज उगी और पूर्णिमा न हो ऐसा तीनकालमें नहीं हो सकता, पूर्णिमा होती ही है। उसीप्रकार जिसके अंतरात्मामें दूजका उदय हुआ, राग-द्वेषसे रहित चैतन्यरूपी दूज उगी—परिणमित दशाका उदय हुआ वह दूज है,—उस दूजमेंसे पूर्णिमा होगी ही। सम्यग्दर्शनकी परिणति हुई इसलिये केवलज्ञानकी प्राप्ति होगी ही। दूजके तेरह दिन बाद पूर्णिमा होती है, तदनुसार सम्यग्दर्शन होनेके पश्चात् एक-दो अथवा थोड़े भवोंमें केवलज्ञान प्रगट हुए बिना नहीं रहता।

बेन विचारकर अनुभवमेंसे बोलती थीं। बेनके वचन हैं; अनुभूतिमेंसे निकले हैं; अंतर आनन्दके अनुभवमेंसे आयी हुई बात है। सूक्ष्म बात है भाई! बहुत सादी भाषा!

चैतन्यको चैतन्यमेंसे यथार्थ भावना, जहाँ किसी बाह्य वर्तन या विकल्पकी अपेक्षा नहीं ऐसी सच्ची भावना हो वह तो फलती ही है। 'यही करना है' –ऐसी जो चैतन्यकी भावना परिणमित हुई वह पूर्णतया फलेगी ही–उसका फल पूर्ण आयगा ही।

'यदि नहीं फले तो जगतको—चौदह ब्रह्माण्डको शून्य होना पड़े अथवा तो इस द्रव्यका नाश हो जाय, परन्तु ऐसा हो नहीं सकता।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यहाँ कहते हैं कि—नित्यानन्दका नाथ आत्मा भीतर विराजमान है; उसकी राग-द्वेषरहित भावना यदि न फले तो आत्मद्रव्य ही न रहे; यदि द्रव्य न रहे तो जगत् शून्य हो जाय; परन्तु ऐसा कभी होता ही नहीं। 'भावना फलती ही है' इसप्रकार पहले अस्तिसे बात की और 'नहीं फले तो जगतको शून्य हो जाना पड़े अथवा तो इस आत्मद्रव्यका ही नाश हो जाये' इस प्रकार नास्तिसे बात करते हैं।

राग-द्वेषसे रहित होकर चैतन्यकी भावना हो तो केवलज्ञान होकर ही रहेगा। यदि एक भावनाका फल न आये तो प्रत्येक–सभी–भावनाका फल नहीं आयगा; ऐसा होनेसे विकारी भावना का फल ऐसा यह जगत—चार गतियाँ और चौरासी लाख योनियाँ आदि सब—शून्य हो जायगा। पापपरिणामोंका फल नरक निगोदादि नहीं आयगा, पुण्यपरिणामोंका फल स्वर्ग–मनुष्यपना भी नहीं आयगा। चैतन्यकी एकाग्रताके परिणामका फल केवलज्ञान भी नहीं आयेगा। इस प्रकार संसार–मोक्षका अभाव होनेसे जगतको शून्य होना पड़ेगा। परन्तु ऐसा तीनकालमें नहीं होता।

मनुष्य किसे कहते हैं? 'मन्यते–मनुते जानाति इति मनुष्यः।' आत्माका स्वरूप जाने वह वास्तवमें मनुष्य है, शेष सबको पशु कहते हैं। चैतन्यस्वरूप आत्माको जाने, उसका मनन और ध्यान करे, वह मनुष्य। जिनको चैतन्यकी भावना–सम्यग्दर्शन नहीं है वे चलते मुरदे हैं। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव भावप्राभृतमें कहते हैं :–

जीवमुक्त शब कहेवाय, 'चल शब' जाण दर्शनमुक्तने;
शब लोकमांहि अपूज्य, चल शब होय लोकोत्तर विषे।१४३।

—जिन्हें आत्माकी रुचि नहीं है, उस ओर उन्मुखता नहीं है, उसके प्रति अंतरंग प्रेम नहीं है, वे सब चलते शब हैं।

जिसे आत्माकी भावना हो उसे उसका फल—सर्वज्ञता—यदि प्राप्त न हो तो जगतको शून्य होना पड़े। भावना यदि फलित न हो तो पुण्यका फल जो स्वर्ग–मनुष्य और पापका फल जो नरक-निगोदादि उनका नाश हो जाये; ऐसा होनेसे जगत शून्य हो जायगा। परन्तु ऐसा कभी होता ही नहीं। उन शब्दोंमें यह अर्थ भरा है। अहा! बोल बड़ा ऊँचा है। चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े उसका ऐसा अर्थ है।

जगत है, पुण्य-पापके फलस्वरूप स्वर्ग-नरक हैं और आत्माकी भावनाके फलरूप सिद्धपद भी है। यदि भावना नहीं फले तो भावना के फलरूप यह वस्तु ही नहीं रहती।

यथार्थ भावना हो तो वह भावना फलित होती ही है। कोई भावना निष्फल नहीं होती। पापभावनाएँ नरकादिरूपसे फलती हैं, शुभभावनाएँ स्वर्गादिरूपसे फलती हैं और चैतन्यको चैतन्यमेंसे परिणमित भावना मार्गफलरूपसे–मोक्षरूपसे–फलती है। यदि भावनाएँ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निष्फल जाएँ तो उन भावनाओंके फलरूप स्वर्ग, नरक तथा मोक्षादिका अभाव होनेसे जगतको—चौदह ब्रह्माण्ड को—शून्यता आ जायगी। फलस्थानरूप चौदह ब्रह्माण्ड शून्य होनेसे उनके कारणरूप भावनाओंका तथा उन भावनाओंरूप परिणित इस आत्माका—द्रव्यका—नाश हो जायगा; परन्तु ऐसा कभी होता ही नहीं।

अंतरमें भगवान आत्मामें चैतन्यके जो बीज बोये वे उगकर केवलज्ञान न हों तो वह आत्मा ही नहीं रह सकेगा अर्थात् इस द्रव्यका ही—आत्माका ही नाश हो जाय। जो पर्याय है, उसका फल न आये तो वह पर्याय ही न रहे और यदि पर्याय न रहे तो जिसकी वह पर्याय उस द्रव्यका ही अभाव हो जाय—नाश हो जाय।

जैसे परिणाम किये हों वैसा फल आये बिना रहता ही नहीं। चार गतियाँ और सिद्धदशा वह परिणामका फल है। यदि परिणामका फल न आये तो चार गतियाँ और सिद्धदशा कहाँ रहेगी? ऐसा होनेसे पर्यायके बिना द्रव्यका नाश हो जायगा। द्रव्यका नाश होनेसे जगतका भी नाश हो जायगा। परन्तु ऐसा कभी होता ही नहीं।

अहा! यह बात पंचमकालके जीवोंसे कही है। वस्तु है उसे कहीं पंचमकाल आड़े नहीं आता, क्योंकि शास्त्रमें जो कहा है वह पंचमकालके साधुओंने पंचमकालके जीवोंके लिये कहा है, चौथे कालके जीवोंसे नहीं।

पहले 'जगतको शून्य होना पड़े' ऐसी समुच्चय बात की। अब कहते हैं कि यदि भावना नहीं फले तो इस द्रव्यका नाश हो जायगा अर्थात् भावनाका फल जो द्रव्यकी पूर्ण अवस्था वह यदि न हो तो वह द्रव्य ही नहीं रह सकेगा, उसका नाश हो जायगा।

प्रश्न :—अपनी भावना अपनेको फल न दे, उसमें जगतको शून्य होना पड़ेगा?

उत्तर :—जगत चैतन्यपरिणाके साथ कुदरती बँधा है, सम्बन्धित है। कुदरत अर्थात् द्रव्यका स्वभाव चैतन्य वह स्वतंत्र द्रव्य है। उसकी भावना यदि निष्फल हो तो भावनाके फलभूत यह जो उत्पन्न होनेके स्थानरूप चार गतिमय जगत, वह सिद्ध नहीं होगा। ऐसा होने से भावना, भावनाका फल, और भावना करनेवाला द्रव्य–कुछ भी नहीं रहेगा, सब नष्ट हो जायगा। परन्तु ऐसा कभी नहीं होता।

बेन रात्रिको थोड़ा बोली होंगी। बहिनों–बेटियोंने वह लिख लिया होगा। अहा! आत्माके सम्यग्दर्शन एवं अनुभूतिमेंसे यह वाणी आयी है; अनुभूतिमेंसे यह लिखा गया है।

अहा! अंतरमें अप्रतिहत भावनाका जोर है। यदि चैतन्यको चैतन्यमेंसे परिणमित भावना हुई तो आत्मा पूर्ण होकर ही रहेगा। उसमें कोई विघ्न-बाधा नहीं आयगी। यह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तो अंतरके जोरकी बात है। अहा! सर्व आत्मा एक समयकी वर्तमान पर्यायके सिवा अंतरमें भगवान स्वरूप ही हैं। निगोदसे लेकर सिद्ध तक द्रव्य तो त्रिकाल निरावरण है, आनन्दकन्द है, अविनाशी है। ऐसी वस्तुकी अंतरदृष्टि हुई, ऐसी वस्तुकी अंतर्भावना हुई और वह वस्तु—आत्मा—प्राप्त न हो ऐसा तीनकालमें नहीं हो सकता।

प्रश्न :–प्राप्त नहीं होता उसका क्या कारण?

उत्तर :–आत्माको पकड़नेके लिये जितना चाहिये उतने पुरुषार्थका अभाव है, इसलिये प्राप्त नहीं होता। अहा! भगवान आत्मा—सच्चिदानन्द प्रभु—वह तो अनंत गुणोंका सागर है–समुद्र है। वह वस्तु पकड़में आये, सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो, भावना हो और केवलज्ञान न हो तथा द्रव्य पूर्ण पर्यायरूप न परिणमे ऐसा तीन कालमें नहीं हो सकता।

समयसारकी ३८वीं गाथाकी टीकामें कहा है कि–अप्रतिबुद्ध जब सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ तब वह कहता है कि—मेरा सम्यक्त्व नहीं गिरेगा। साधकभाव है तो आत्माका साध्यभाव प्रगट होगा ही।—ऐसा ही भाव लिया है; गिर जाय उसकी बात ही नहीं ली है।

'चैतन्यपरिणामके साथ कुदरत बँधी हुई है—ऐसा ही वस्तुका स्वभाव है।'

पाप किये हों तो नरक-निगोद, पुण्य किये हों तो स्वर्गादि और चैतन्यके परिणाम किये हों तो मोक्ष;–ऐसा कुदरतका फल आये बिना रहता ही नहीं। दूज उदित हुई वह पूर्णिमा हुए बिना रहेगी ही नहीं, उसी प्रकार जिसे चैतन्यकी भावना प्रगट हुई उसे मोक्ष हुए बिना रहेगा ही नहीं। यह बेनके शब्द हैं।

जैसे पुण्य, पाप और धर्मके परिणाम करे उनके प्रमाणमें उनका फल जगतमें आता है—इसप्रकार आत्माके परिणामके साथ कुदरत बँधी हुई है–चौदह ब्रह्माण्ड सम्बन्धित हैं। मांसादि खानेके पापपरिणाम करे और नरकमें न जाय तो नरक ही नहीं रह सकेगा; पुण्यके परिणाम किये और स्वर्ग न मिले तो स्वर्ग ही नहीं रह सकता और आत्माके शुद्ध परिणाम किये हों और मुक्ति प्राप्त न हो तो वह सिद्धगति नहीं रह सकती—इस प्रकार जगतको शून्य हो जाना पड़े। परन्तु ऐसा होता ही नहीं। आत्माके परिणामोंके साथ कुदरतका मेल है—ऐसा ही वस्तुका स्वभाव है।

'यह अनन्त तीर्थंकरोंकी कही हुई बात है।'

परिणामेंका फल न आये तो अनंत तीर्थंकरों द्वारा कही गई बात मिथ्या हो जाय। पापपरिणाम करे तो नरक–निगोद मिलते हैं, पुण्यपरिणाम करे तो स्वर्ग–मनुष्यपना प्राप्त होता है—फिर भले ही भटके चार गतियोंमें,—और आत्माके शुद्धपरिणाम करे तो मुक्ति प्राप्त होती है;—यह अनंत तीर्थंकरोंकी कही हुई बात है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बेन तो तीर्थंकरके पास थीं। महाविदेहमें (सीमंधर) भगवान बिराजते हैं उनके पास थीं। वहाँ (पुरुष-मित्रके रूपमें) हमारे साथ थीं। हम कहाँसे आये हैं और कहाँ जाना है वह अंतरसे निर्णय हो गया है। महाविदेहसे आये हैं। वहाँ सीमंधर प्रभु समवसरणमें विराजमान हैं। वहाँ मैं राजकुमारके रूपमें था। हाथी, घोड़े और अरबोंकी आमदनी थी। विक्रम संवत् ४९में श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव यहाँसे महाविदेहमें गये थे तब मैं भी हाथी पर हौदेमें बैठकर दर्शन करने आया था। सूक्ष्म बात है।

बेन वहाँ सेठके पुत्र थीं। वहाँसे हम आये हैं। हमारी बातें सूक्ष्म हैं, अपने मुँहसे अपनी बात कहना शोभा नहीं देता। यहाँसे स्वर्गमें जानेवाले हैं–देव होने वाले हैं। (उसके बाद) दूसरे भवमें तीर्थंकरके पुत्ररूपमें (मेरा) जन्म है। तीसरे भवमें (अहमिन्द्रका) स्वर्ग है। चौथे भवमें (धातकी खण्डके विदेहक्षेत्रमें) तीर्थंकर होकर मोक्ष जानेवाला हूँ।

ऐसी बात कभी नहीं आयी। यह तो बेनने इसमें थोड़ा कहा इसलिये कहते हैं। इससे सूक्ष्म बातें दूरकी हैं। वह सब हमें प्रत्यक्ष हो गया है।

यहाँ कहते हैं कि–चैतन्यके परिणाममें चैतन्यकी परिपूर्णता आये ऐसा अनंत तीर्थंकरोंने कहा है। भगवान चैतन्यस्वरूपका पुण्य और पापके विकल्पोंसे रहित अंतरमें अनुभव हो, दृष्टि हो, भावना हो, निर्विकल्प निर्मलदशा हो, और परमात्मपद–साध्य–प्राप्त न हो ऐसा त्रिकालमें नहीं हो सकता। यह तो अनंत तीर्थंकरों द्वारा कहा हुआ परम सत्य है।

✾

साधकोंकी दशा जगतसे निराली होती है। कोई कोई बार स्वरूपमें सहजरूपसे—निर्विकल्परूपसे स्थिर हो जाते हैं; और फिर बाहर आते हैं तब भी भेदज्ञानकी–ज्ञाताधाराकी–सहज समाधि परिणमती रहती है। स्वरूपमें लीन होते हैं तब आत्माके अचिंत्य अनन्त गुणपरिणमनकी तरंगोंको वेदते हैं। ऐसा होते होते, साधकधारा बढ़ते बढ़ते मुनिपनेकी दशा प्रगटने पर, मुनिपना आता है, और क्रमसे श्रेणी चढ़कर केवलज्ञान प्रगटाते हैं, स्वपरप्रकाशक-स्वभाववाला ज्ञान पूर्णरूपसे परिणमता है, आनन्द आदि अनन्त गुण पूर्णरूपसे परिणमते हैं। उस दशाको धन्य है, बारम्बार धन्य है।

सुख और आनन्द स्वरूपमें है, विभाव सब दुःखरूप और उपाधिरूप है।

–पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-७

ता. १२-६-७८

वचनामृत-२२

गुरुदेवको मानों तीर्थंकर जैसा उदय वर्तता है। वाणीका प्रभाव ऐसा है कि हजारों जीव समझ जाते हैं। तीर्थंकरकी वाणी जैसा योग है। वाणी जोरदार है। चाहे जितनी बार सुनने पर भी अरुचि नहीं आती। स्वयं इतनी सरसता से बोलते हैं कि जिससे सुननेवालेका रस भी जमा रहता है, रसभरपूर वाणी है ।। २२ ।।

यह तो बेनके विनय और नम्रताके वचन हैं। यह सबको अपने आप पढ़ लेना चाहिये। बेन तो एक जगह यहाँ तक बोली हैं कि–'आत्मा' शब्द बोलना सीखे हों तो वह भी यहाँ से (गुरुदेवके प्रतापसे)। गजब है उनकी विनय और नम्रता!

✽

वचनामृत-२३

ऊपर-ऊपरके वांचन-विचार आदिसे कुछ नहीं होता, हृदयसे भावना उठे तो मार्ग सरल होता है। अंतस्तलमेंसे ज्ञायककी खूब महिमा आनी चाहिये ।। २३ ।।

'ऊपर-ऊपरके वांचन-विचार आदिसे कुछ नहीं होता, हृदयसे भावना उठे तो मार्ग सरल होता है।'

क्या कहते हैं? कि—दृष्टिमें द्रव्यपर जोर न हो और ऊपर-ऊपरसे ऐसा पढ़ूँ तथा ऐसा विचार करूँ आदि करता रहे तो उससे कहीं लाभ नहीं होगा। अहा! सादी वस्तु परमात्मस्वरूप ही है; पर्यायमें व्यक्तरूप हो ऐसा कारणपरमात्मा स्वयं ही है। अंतरमें उसके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

लक्षसहित वाँचन-विचार हो तो कार्य होनेका अवकाश है। परन्तु अंतर्स्वभावके लक्ष बिना ऊपरी पठन-मनन आदिसे कुछ नहीं होगा।

अंतरकी गहराईसे—अंतरके भावोंसे भावना उठे तो मार्ग सरल हो। आत्मा शुद्ध चैतन्य है। उसकी अंतरंगरुचिपूर्वक भावना उठे और वस्तुके लक्षपूर्वक पठन-मनन करे तो मार्ग प्राप्त हो। श्री मोक्षमार्गप्रकाशकमें आता है कि—पढ़ाई सच्ची हो तथापि जो मान एवं पूजाके लिये पढ़ता है उसका ज्ञान मिथ्या है। उसका हेतु जगतको संतुष्ट रखना और अपनी विशेषता—बड़प्पन—बतलाना हो तो उसका सब पढ़ना-विचारना अज्ञान है।

अंतरकी गहराईसे भावना उठे....; गहराईसे अर्थात् अंतस्तलमेंसे भावना जागृत हो, तो मार्ग सरल बने।

'अंतस्तलमेंसे ज्ञायककी खूब महिमा आनी चाहिये।'

अहा! ज्ञायक अर्थात् वस्तु, मात्र ज्ञान ज्ञान और ज्ञानका पिण्ड। वह ध्रुव, सत्, त्रिकाल एकरूप वस्तु है; उसका अंतस्तल—अंतरका स्थान—एक ज्ञायकभाव है। उसकी खूब महिमा आनी चाहिये; तब उसे आत्माकी प्राप्ति होगी। ग्यारह अंग और नव पूर्वका ज्ञान हो, तथापि अंतरसे उसकी महिमा उड़ जाना चाहिये, और पूर्णानन्दका नाथ, पूर्णवस्तु 'अस्ति' है, उसकी अंतरमें खूब महिमा—महानता, विशेषता, सर्वोत्कृष्टता आना चाहिये। यह ज्ञायकवस्तु अस्तिरूपसे है, वह कोई वस्तु ही अलौकिक है, उसकी अंतरमें खूब महिमा आनी चाहिये। अहा! सूक्ष्म बात है भाई! यह तो अभी सम्यग्दर्शन—धर्मका प्रारम्भ—कैसे हो उसकी बात है।

❃

वचनामृत -२४

आत्मार्थीको स्वाध्याय करना चाहिये, विचार-मनन करना चाहिये; यही आत्मार्थीकी खुराक है ।। २४ ।।

आत्मा ही जिसके प्रयोजनमें है, जिसका प्रयोजन शुद्ध आत्माको साधना है, स्व-परको जाने ऐसा ज्ञायकतत्त्व जिसका प्रयोजन है ऐसे आत्मार्थीको स्वाध्याय करना चाहिये। वह विकल्प है, किन्तु आता है। विचार-मनन करना ही व्यवहारसे आत्मार्थीकी खुराक है। जिस प्रकार दोनों समय भोजन लिये बिना नहीं चलता, उसीप्रकार समय पर वांचन-मनन करना चाहिये। वह आत्मार्थीकी खुराक है।

लोगोंको बाह्य क्रियाकाण्डमें रुचि हो गई है और यह अंतरकी वस्तु रह गई

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। वस्तु क्या है? उसका स्वरूप कैसा है? आदि प्रकारसे उसका अंतर्मंथन होना चाहिये। वस्तुस्वरूप समझे बिना जीवको सीधा धर्म करना है! क्या किया जाये? प्रतिमा ले लेना, अधिक हुआ तो साधु बन गया; बस, होगया धर्म। किन्तु भाई! सम्यग्दर्शनके बिना प्रतिमा या साधुपना कैसा? आत्मार्थीका श्रवण–पठन-मनन सब मूल आत्माके लिये है, सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेके लिये है।

❀

वचनामृत -२५

प्रथम भूमिकामें शास्त्रपठन-श्रवण-मनन आदि सब होता है, परन्तु अंतरमें उस शुभभावसे संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिये। इस कार्यके साथ ही ऐसा खटका रहना चाहिये कि यह सब है किन्तु मार्ग तो कोई अलग ही है। शुभाशुभ भावसे रहित मार्ग भीतर है–ऐसा खटका तो साथ ही लगा रहना चाहिये॥ २५॥

'प्रथम भूमिकामें शास्त्रपठन-श्रवण-मनन आदि सब होता है, परन्तु अंतरमें उस शुभभावसे संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिये।'

यही बात इस २५वें बोलमें ली है। प्रथम भूमिकामें प्रारम्भमें तो शास्त्र-पठन–श्रवण–मनन आदि होते हैं।

प्रश्न :—शास्त्र तो सभी सम्प्रदायोंमें होते हैं?

उत्तर :—वे शास्त्र नहीं, यहाँ तो सर्वज्ञदेवकी वाणीके अनुसार—सर्वज्ञकी आम्नायानुसार—हों वैसे शास्त्रोंकी, दिगम्बर जैनधर्मके शास्त्रोंकी बात है। वही सच्चे शास्त्र हैं। उनकी वाणी तो देखो! एक 'वंदित्तु सव्वसिद्धे' पदमें कैसे भाव भरे हैं। अलौकिक वाणी है उन दिगम्बर सन्तों की! दिगम्बर शास्त्रोंके सिवा अन्य कोई सच्चे हैं ही नहीं।

प्रश्न :—दिगम्बर समाजको अपने शास्त्रोंकी खबर नहीं है?

उत्तर :—उसके शास्त्रोंमें है उस बातकी उसे खबर नहीं है। चार हजार श्लोकप्रमाण आत्मख्याति टीका है, उसमें पूर्णानन्दके नाथ आत्माकी प्रसिद्धिके भाव भरे हैं। समयसारकी टीका श्री अमृतचन्द्राचार्यदेवने और नियमसारकी तात्पर्यवृत्ति टीका श्री पद्मप्रभमलधारीदेवने लिखी है। एक आचार्य हैं और दूसरे मुनिराज हैं; पदवीकी पर्यायमें फेर है किन्तु वस्तुकी दृष्टिमें कोई फेर नहीं है। अहा! अतीन्द्रिय आनन्दके वेदनका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिन्हें स्वाद आता है, उफान आता है ऐसे, अंतर आनन्दस्वरूपमें डुबकी लगाते मुनि कि जिनके क्षण क्षणमें अप्रमत्तदशा आती है उन्हें भी विकल्प उठता है तब शास्त्र-पठनादि होते हैं। यहाँ तो प्रथम भूमिका की बात कही है। और शास्त्र कैसे? भगवानके कहे हुए। समयसारकी पहली गाथामें कहा है : **'वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवलीभणिदं।'**

'ध्रुव अचल ने अनुपम गति पामेल सर्वे सिद्धने,
वंदी कहुं श्रुतकेवळीभाषित समयप्राभृत अहो!'

'श्रुतकेवळी' शब्दमेंसे केवली और श्रुतकेवली, ऐसे दो अर्थ टीकाकारने निकाले हैं। उन केवली श्रुतकेवलीके तथा आचार्यादिके कहे हुए शास्त्रों—समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड़, द्रव्यसंग्रह, इष्टोपदेश, कार्तिकेयानुप्रेक्षा, समाधिशतक और तत्त्वार्थसूत्र आदि सर्व शास्त्रोंके पठन-मनन प्रथम भूमिकामें आते हैं। इन शास्त्रोंके सिवा दूसरे संप्रदायके शास्त्र लेने जायेगा तो कुछ भी हाथ नहीं आयेगा। दूसरे भी ऐसा कहते हैं कि हमारे शास्त्र जिनवरकथित हैं, किन्तु स्वयं परीक्षा करना चाहिये। मोक्षमार्गप्रकाशकमें यह बात लिखी है कि कैसे शास्त्र पढ़ना चाहिये, सुनना चाहिये। मात्र पठन-श्रवण करे ऐसा नहीं परन्तु गहरा मनन करना चाहिये। 'पढ़े किन्तु नहिं करे विचार, वह नहिं समझे पूरा सार।' पठन-मननके शुभ विकल्प आते अवश्य हैं, परन्तु उनमें सन्तुष्ट नहीं हो जाना। मैंने बहुत शास्त्र पढ़े हैं, मनन किया है ऐसा मानता है, परन्तु उससे क्या? वह तो शुभभाव है; वह सम्यग्दर्शन या धर्म नहीं है। ऐसी बात है भाई!

यह आत्मा शरीरके रजकणोंसे पृथक् वस्तु है, सर्वज्ञस्वरूपी वस्तु है। वस्तुमें ज्ञानस्वभाव है या नहीं? ऐसा स्वभाव अन्यत्र कहाँ है? इस शरीरमें—मिट्टीमें या वाणीमें कहीं है? ज्ञाता....ज्ञाता...., जिसकी भूमिकाके तलमें 'ज्ञातृत्व' भरा है ऐसे ज्ञातास्वभावी आत्माका पठन-श्रवण-मनन होनेपर भी उससे सन्तुष्ट नहीं हो जाना; वह तो शुभभाव है, पुण्य है।

'इस कार्यके साथ ही ऐसा खटका रहना चाहिये कि यह सब है किन्तु मार्ग तो कोई अलग ही है।'

आत्मा तो ज्ञाता वस्तु है। ज्ञाता किसे नहीं जानेगा? ज्ञाताको मर्यादा कैसी? किस काल और किस भावको नहीं जानेगा? सर्वज्ञस्वभावसे भरपूर आत्मा है; वह आत्मा जिनके सर्वज्ञदशारूप प्रगट हुआ है उनके कहे हुए शास्त्र पढ़ना, उसका नाम यहाँ शास्त्र-पठन है। शास्त्र पठन-मननमें साथ ही ऐसा लगना चाहिये कि—अंतरकी वस्तु इससे भिन्न है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'शुभाशुभ भावसे रहित मार्ग भीतर है—ऐसा खटका तो साथ ही लगा रहना चाहिये।'

आत्मा वस्तु है, अस्ति है, विद्यमान वस्तु है, स्वयंसे परिपूर्ण है। वस्तु हो वह अपूर्ण और विपरीत नहीं होती। ऐसे भावका भीतर खटका रहना चाहिये। श्रवण-पठनादि सब होता है, किन्तु मार्ग तो अंतरमें कोई अलग ही है। दया-दान, व्रत-भक्तिके तथा पठन-मननके भाव शुभ हैं और हिंसादि के भाव अशुभ हैं,—यह दोनों विकृतभाव हैं, कृत्रिम हैं, संयोगी हैं, और ज्ञायकस्वभावी भगवान आत्मा इनसे भिन्न है, यह खटका साथ रहना चाहिये। शुभभावके कालमें भी, भीतर यह शुद्ध चैतन्यवस्तु भिन्न है, वह वस्तु मुझे प्राप्त करना है, ऐसा खटका निरन्तर रहना चाहिये। शास्त्रपठन-मननके शुभभावमें सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिये।

*

वचनामृत-२६

भीतर आत्मदेव विराजमान है उसकी संभाल कर। अब अंतरमें जा और तृप्त हो। अनन्त गुणस्वरूप आत्माको देख, उसकी संभाल कर। वीतराग आनन्द से भरपूर स्वभावमें क्रीड़ा कर, उस आनन्दरूप सरोवरमें केलि कर—उसमें रमण कर॥ २६॥

'भीतर आत्मदेव विराजमान है उसकी संभाल कर। अब अंतरमें जा और तृप्त हो।'

जो तत्त्व है, जगतमें जिसका अस्तित्व है, वह ज्ञानादि शक्तियोंका भण्डार भगवान आत्मा है। आत्मदेव भीतर विराजमान है। जानना....जानना....और जानना जिसके अस्तित्वमें होता है वह आनन्द और ईश्वरताके स्वभावसे भरपूर चैतन्यचमत्कार–आत्मदेव भिन्न विराजता है। वह पुण्य-पाप एवं संयोगकी क्रियासे भिन्न है। अहा! अंतरमें आत्मदेव विराज रहा है उसकी सँभाल कर, और अब अंतरमें जा कर तृप्त हो।

यहाँ 'अब' शब्द है; शास्त्रोंमें 'अथ' शब्द आता है। 'अथ' अर्थात् मंगल प्रारम्भ। 'अथ' अर्थात् अब। अब बाधकपना छोड़कर साधकमें जा, मंगल प्रारम्भ कर।

भगवान आत्मा भीतर वस्तु है या नहीं? यदि है तो उसमें भरपूर भरा हुआ स्वभाव है या नहीं? स्वभाव हो तो परिपूर्ण होगा या अपूर्ण? तुलना—विचार ही कब किया है?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यह शरीर और रागादि, तथा दया-दानादि पुण्यभाव सब बाह्य हैं। उन्हें अपना मानना वह बहिरात्मपना है; और उन रागादिसे भिन्न आत्मा है उसे जैसा है वैसा पूर्ण मानना वह अंतरात्मपना है। अंतरात्मदशा द्वारा पूर्ण साध्यदशा प्रगट करना वह परमात्मपना है। —यह आत्माकी तीन दशाएँ हैं।

अंतरमें ज्ञायक—आत्मा विराजमान है उसकी सँभाल कर। अब अंतरमें जा। पुण्य-पापके विकल्प तो ठीक, वे तो आते हैं, परन्तु भीतर 'यह पुण्य है, यह पाप है' आदि जो जानता है उस ज्ञानकी वर्तमान प्रगट दशाको अंतरमें ले जा। जहाँ धरातलमें ध्रुव पड़ा है, जिसके पातालकी गहराईमें सारा तत्त्व भरा पड़ा है, वहाँ जा और तृप्त हो। वहाँ तुझे आनन्द होगा; वहाँ तुझे रुचेगा। बेनने कहा है ना? कि—हे जीव! तुझे कहीं न रुचता हो तो अपना उपयोग पलट दे और आत्मामें रुचि लगा। आत्मामें रुचे ऐसा है। आत्मामें आनन्द भरा है; वहाँ तुझे अवश्य रुचेगा। वहाँसे आनन्द प्राप्त होगा। लोगोंको लगेगा कि हमें तो बाहर अच्छा लगता है; पैसा कमाना, खाना—पीना, कोई प्रशंसा करे तो उसमें आनन्द आना; और आप कहते हो कि भीतर आत्मामें रुचे ऐसा है। तो हम करें क्या? हमें तो सर्वत्र रुचता है—अच्छा लगता है, तो हम आत्मामें क्यों जायें?

अज्ञानके पागलपनमें होश ही कहाँ है? कहाँ अच्छा लगेगा इसकी उन्हें खबर ही कहाँ है? बाहर सब जगह अच्छा लगता है ऐसी उनकी मान्यता है। यहाँ कहते हैं कि बाहर जगतमें कहीं रुचे ऐसा नहीं है, किन्तु एक आत्मामें अवश्य रुचे ऐसा है, इसलिये तू अंतरमें जा, और तृप्त हो, वहाँ तुझे तृप्ति मिलेगी, वहाँ शान्ति मिलेगी और भवका अभाव हो जायगा भाई!

जिस प्रकार अग्निके चूहे बाहर निकलें तो मर जायें; वे उसीमें आनन्द मानते हैं; उसी प्रकार अज्ञानीको बाह्य राग-द्वेषमें आनन्द लगता है; वे अग्निके चूहे जैसे हैं। वे अनादिसे अपनी जातिको भूलकर परमें आनन्द मान रहे हैं वह तो वास्तवमें दुःख है। भाई! तू प्रभु है, अंतरमें महान—सर्वोत्कृष्ट—तत्त्व है। तेरी पूर्णताकी प्रशंसा तो सर्वज्ञकी वाणीमें भी पूरी न हो ऐसा, सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी, सर्व-आनन्द, सर्व शान्ति, सर्व प्रभुता ऐसे सर्वगुणोंसे परिपूर्ण तेरा स्वरूप है भाई! परन्तु उसका विश्वासमें आना बड़ा कठिन है; क्योंकि उसका सारा खेल व्यक्त पर्याय और विकसित ज्ञानमें ही है। परंन्तु यह अंश किसका है? वह अंश किसके आधारसे बदलता है? अंतरमें त्रिकाल नित्य ध्रुवतत्त्वके आधार से बदलता है। तरंगें पानीके अथाह भण्डारमेंसे उठती हैं, उसी प्रकार पलटता अंश नित्य तत्त्वके—पिण्डके आधार से बदलता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रभु! तू कितना है! तुझे अपनी महानता और महिमाकी खबर नहीं है, क्योंकि पर्यायके—अंशके, एक गुणकी एक पर्यायके-प्रेममें, भीतर जो सम्पूर्ण भगवान है उसे तू भूल जाता है। जिसप्रकार करोड़पतिका लड़का कुमार्गगामी—व्यभिचारी—होगया हो, उसका पिता कहे कि—भाई, घरका स्वादिष्ट मिष्टान्न छोड़कर–पद्मिनी जैसी कुलीन पत्नीको छोड़कर—तू जूठन चाटने कहाँ जाता है? बेटा! अब तू यह सब छोड़ दे; उसी प्रकार यहाँ धर्मपिता सर्वज्ञ त्रिलोकीनाथ कहते हैं कि—भाई! अपने चैतन्यगृहको छोड़कर तुझे रागादिका प्रेम अच्छा लगता है, तू कुमार्गगामी हो गया है प्रभु! भीतर कुलीन वस्तु अनादिकालसे विद्यमान है उसके समक्ष नहीं देखता। उसे जरा देख तो सही! अंतरमें जा तो सही! तुझे कोई अपूर्व तृप्ति होगी, अतीन्द्रिय आनन्द प्राप्त होगा।

'अनंतगुणस्वरूप आत्माको देख, उसकी सँभाल कर।'

भगवान आत्मा मात्र एक शक्तिरूप नहीं है; वस्तु हो वह एक शक्तिरूप नहीं होती; उसीमें अनन्त शक्तियाँ हैं। परमाणु भी अनन्त शक्तिसम्पन्न है। वह अपने स्पर्श, रस, गंध तथा वर्णगुण बदलकर कभी अरूपी होता है? उसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञान, दर्शन, एवं आनन्दादि अनन्त गुणोंका भण्डार प्रभु है, वह बदलकर कभी रंगरूप होगा? ज्ञाता पदार्थ पलटकर कभी अजान पदार्थ होगा? और अजानतत्त्व कभी ज्ञातारूप होगा? अहा! तत्त्वकी न्यायसंगतता तो देखो! तू अंतरमें ज्ञानादि अनन्तगुणोंका भण्डार प्रभु है! अनन्त गुणयुक्त नहीं, किन्तु अनन्त गुणस्वरूप है। स्वके सिवा अन्य अनन्त पर पदार्थोंरूप तू नहीं है—ऐसे 'नास्ति' के अनन्तधर्म तो हैं ही; परन्तु ज्ञान, दर्शन, सुख आदि 'अस्तिरूप–भावरूप गुण भी अनन्त हैं। निजतत्त्व क्या है उसे भूलकर बाहरकी—जगतकी सब बातें की हैं किन्तु अतंरके भगवान आत्माकी खबर नहीं ली। उसके अपार स्वभावकी—ज्ञान अपार, दर्शन अपार, आनन्द अपार, ईश्वरशक्ति अपार आदि अनन्तानन्त शक्तियाँ भरी हैं ऐसे निज सहज अस्तित्वकी कभी संभाल नहीं की है, उसे कभी देखा नहीं है। वह पूर्ण स्वभाव वर्तमानदशामें—पर्यायमें भले मर्यादित हो गया है, तथापि उसका मूल स्वरूप कभी मर्यादित नहीं हुआ है, सदा अपार है।

शुभ और अशुभ भाव वह तो विकार है। उस विकारसे रहित अंतरंग वस्तु तो परम शांत–शांत है। एक क्रोधका–विकारका अंश निकाल दे और अंशतः जो शान्ति दिखायी देगी, उस शान्तिका भरपूर स्वरूप ही उसका अपना है। ऐसे अनन्त, अपार गुणोंका भण्डार तू है प्रभु! उसे देख ना! उसे सँभाल ना! अनन्तकालसे बाहरकी सँभाल कर-करके मर गया, सुबह शाम खानापीना इत्यादि शरीरकी संभाल कर-करके मर गया, फिर शरीर छोड़कर जाना कहीं चौरासीके अवतारमें–अजान क्षेत्रमें, अजान कालमें, अजान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भावमें और अजान संगमें; क्योंकि ज्ञाता चमत्कारिक वस्तुको–निज चैतन्यप्रभुको नहीं जाना इसलिये अजान क्षेत्रमें, कालमें, भावमें तथा संगमें उपजता है। इसलिये यहाँ कहते हैं कि भाई! तू उसकी सँभाल कर। राग और पुण्य-पापकी संभाल रखता है, शरीरादि पदार्थोंको ऐसा रहना चाहिये तथा ऐसा रखना चाहिये,—ऐसे अन्य मार्गमें भटक गया है; अब अपनी सँभाल कर ना प्रभु! कि तू कितना है? कैसा है? अंतरमें तू है ना? यदि है तो तेरा स्वरूप कितना–कैसा है? जो स्वतंत्र वस्तु है, और जो आदि-अन्तरहित, अनन्त गुणोंसे भरपूर ध्रुववस्तु है उस ध्रुववस्तुके स्वभावका अपरिमित स्वरूप कैसा होगा? उसकी सँभाल तो कर! ऐसा उपदेश है। मार्ग तो ऐसा है।

'वीतरागी आनन्दसे भरपूर स्वभावमें क्रीड़ा कर, उस आनन्दरूप सरोवरमें केलि कर—उसमें रमण कर।'

बाह्य वस्तुओंमें तुझे प्रतिक्षण भिन्न-भिन्न रागके आनन्दकी कल्पना होती है उसके बदले तेरा वीतरागी स्वरूप जो कि आनन्दसे परिपूर्ण है उसकी सँभाल करके उसमें क्रीड़ा कर ना! अंतरमें वीतरागी आनन्दसे परिपूर्ण वस्तु कैसी है? वस्तु हो वह स्वयं दुःखरूप नहीं हो सकती–स्वतः विकृत नहीं हो सकती। वस्तु स्वतः हो वह स्वभावसे अपूर्ण नहीं हो सकती, अशुद्ध नहीं हो सकती। स्वतःसिद्ध आत्मप्रभु अनन्त शक्ति एवं वीतरागी पूर्णानन्दसे भरा है। ऐसे वीतरागी आनन्दमें जा—वीतरागी आनन्दसे भरपूर स्वभावमें क्रीड़ा कर।

भाषा तो बहुत सादी–सरल है! अरे, पुस्तक बाहर जायगी तो लोग पढ़ेंगे तो सही! पढ़ेंगे और विचारेंगे।

वीतरागी आनन्दसे भरपूर वस्तु स्वतः अस्तिरूप है। उसकी दशामें पुण्य और पापके भाव कृत्रिम नये-नये आते और जाते हैं। 'आयें और जायें' ऐसे शुभाशुभभाव रहित वस्तु जो है.....है.....और है वह वीतरागी आनन्द स्वरूप है। अहा! यह बात कैसे बैठे? गुड़–परमाणुओंका पिण्ड जड़ पदार्थ–मिठासके स्वादसे भरा है, उसी प्रकार यह आत्मा अंतरमें चैतन्यके आनन्दसे भरा हुआ भगवान है। तेरी वर्तमान पर्याय बाहर जाती हैं उसे भीतर आनन्द स्वरूपमें ले जा, वहाँ क्रीड़ा कर।

उस आनन्दरूप सरोवरमें केलि कर—उसमें रमण कर। लोग केलि करने—क्रीड़ा करने बागीचोंमें उद्यानोंमें जाते हैं ना? उसी प्रकार तू अपने आत्म-उद्यानमें जा, वहाँ आनन्द आयगा। आनन्दका नाथ तो भीतर है भाई! वहाँ देख; वह क्रीड़ा करनेका स्थान है। वहाँ उस आनन्दरूप सरोवरमें केलि कर। अंतरमें आनन्दरूपी सरोवर लहरा रहा है; राग और द्वेष तो नये-नये कृत्रिम होते हैं और यह अन्तरका तत्त्व तो पुरातन–अनादिका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। ऐसे ज्ञान और आनन्दरूपी सरोवरमें केलि कर, अर्थात् उसमें रमणता कर। उसमें तुझे आनन्द आयगा और तेरे जन्म-मरणका अन्त आ जायगा; दुःख दूर हो जायेगा और आनन्दकी प्राप्ति होगी; ऐसा यह भगवान आत्मा आनन्दका सरोवर है। उसमें केलि करने—अंतरमें जाने—से आनन्द प्राप्त होगा।

✽

मैं कहता हूँ कि (वचनामृत) पुस्तक सर्वोत्कृष्ट है—सम्पूर्ण समयसारका सार आ गया है इसलिये सर्वोत्कृष्ट है। यह पुस्तक बाहर लोगोंके हाथमें पहुँचेगी तो डंका बजेगा। यह पुस्तक पढ़कर तो विरोधी भी मध्यस्थ हो जायें—ऐसी बात है.....जगत को लाभका कारण है। मान छोड़कर एकबार मुनि (भी) पढ़ें तो उनको लाभका कारण है। *–पूज्य गुरुदेव.*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन-८

ता. १३-६-७८

वचनामृत-२७

ऐसे कालमें परम पूज्य गुरुदेवश्रीने आत्मा प्राप्त किया इसलिये परमपूज्य गुरुदेव एक 'अचम्भा' हैं। इस काल दुष्करमें दुष्कर प्राप्त किया; स्वयं अंतरसे मार्ग प्राप्त किया और दूसरोंको मार्ग बतलाया। उनकी महिमा आज तो गायी जा रही है परन्तु हजारों वर्ष तक भी गायी जायगी॥२७॥

वचनामृतके इस २७वें बोलमें तो उनकी (बेनकी) भक्तिके वचन हैं।

✻

वचनामृत-२८

भविष्यका चित्रण कैसा करना है वह तेरे हाथकी बात है। इसलिये कहा है कि—'बंध समय जीव चेतो रे, उदय समय क्या चिंत!'॥२८॥

'भविष्यका चित्रण कैसा करना है वह तेरे हाथकी बात है।'

भविष्यका भव ऐसा होगा, कि जैसा तेरा वर्तमान भाव। तेरा वह भाव वर्तमानमें तेरे हाथमें है।

इसलिये कहा है कि—'बंध समय जीव चेतो रे, उदय समय क्या चिंत!'

उदयके कालमें कैसी चिन्ता? बंधके समय, भाव करते समय, चेतो ना! फिर तो जो बंध हुआ उसका उदय आयगा सो आयगा। उस बंधके कालमें चेतना अर्थात् स्वोन्मुख होकर दर्शन, ज्ञान और चारित्रकी दशा प्रगट करना। बंधके समय चेतना कि जिससे उसके फलरूप उदयमें चिन्ता न हो। फिर तो उसका जो फल आना है वह आयगा। भविष्यका वह चित्रण अपने हाथमें है—ऐसा कहते हैं।

✻

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत-२६

ज्ञानको धीर-गंभीर करके सूक्ष्मतासे भीतर देख तो आत्मा पकड़में आ सकता है। एकबार विकल्पका जाल तोड़कर भीतरसे अलग हो जा, फिर जाल चिपकेगा नहीं॥ २६॥

'ज्ञानको धीर-गंभीर करके सूक्ष्मतासे भीतर देख तो आत्मा पकड़में आ सकता है।'

अब कहते हैं कि—आत्मा जो वस्तु है वह ज्ञानस्वभावी नित्य यथार्थ स्वरूपसे एक है। वस्तु है वह तो वस्तु ही है; उसे धैर्यपूर्वक सूक्ष्मतासे अंतरमें देख तो तेरी पकड़में आयगी। कुछ भी करना, शुभभावकी क्रिया, —वह कोई साधन नहीं है। परकी अपेक्षा रहित अपना प्रभु—अपना पूर्ण स्वरूप धीर है, शाश्वत है। क्या कहा? कि वस्तु है वह निर्विकल्प शान्तिस्वरूप है;—शांत, शांत, शांतस्वरूप स्वयं ही धीर है, शाश्वत है; उसे वर्तमान दशामें धीर बनाकर—वह दशा शाश्वतकी ओर उन्मुख हो ऐसा करके, सूक्ष्मतासे अंतरमें देख, तो आत्मा पर्यायमें पकड़में आये ऐसा है।

अनित्य ऐसे पुण्य-पापके भावकी अपेक्षा छोड़कर, जो स्वभावसे धीर, शाश्वत और शांत है उसे उस रूपमें—वर्तमान पर्यायमें—धीर, शांत करके सूक्ष्मतासे अंतरमें देख, तो वह (आत्मा) पकड़में आये ऐसा है—अनुभवमें आये ऐसा है। अहा! ऐसी बात है।

प्रश्नः—आगमसे और शुभभावसे होता है—पकड़में आता है ना?

उत्तरः—यह तो सब बातें हैं; वह तो निमित्त कैसा होता है, वहाँ कैसा विकल्प निमित्तरूपसे होता है—उसका ज्ञान कराया है। आगममें ही नहीं किन्तु अध्यात्मशास्त्रमें भी कहा है। पंचास्तिकायकी १७२वीं गाथाकी टीकामें भिन्न साध्य-साधनकी बात कही है। वह कहनेकी अपेक्षा क्या है? उस काल विकल्प होता है पहले; उसका ज्ञान करानेके लिये उसे साधन कहा है। वास्तवमें 'जो साधन है नहीं' उसे साधन कहा है। है न दूसरी वस्तु? निमित्त वस्तु नहीं है? उचित निमित्त कहाँ नहीं है? निमित्त है, परन्तु कार्य निमित्तसे नहीं होता। अपने परिणामस्वभावके कारण प्रत्येक द्रव्यको पर्यायकी उत्पत्ति होती है, उस काल उसे उचित निमित्त कहाँ नहीं है? प्रति समय उचित निमित्त होता ही है; तथापि उस निमित्तसे होता है—ऐसा वस्तुस्वरूपमें नहीं है। विकल्प साधन नहीं है, अंतरमें विकल्पसे भी पृथक्त्वका भेदज्ञान किया है। उस समय जो उचित विकल्प होता है उसे साधनकी उपमा दी जाती है। वास्तवमें विकल्प साधन है ही नहीं, वह तो उसे बाधक है। तो फिर साधन यह एक ही है कि ज्ञानको धीर करके सूक्ष्मतासे अंतरमें देखना—भीतर आत्माको पकड़ना।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शास्त्रमें भी कथन आता है कि व्रतादि शुभ करनेसे शुद्ध होगा। लेकिन क्या शुभ करनेसे होता है? शुभको छोड़कर शुद्ध करे तो शुभसे हुआ ऐसा व्यवहारसे कहा जाता है। शुभ तो निमित्त है; निमित्तका अभाव करे तब स्वभावकी प्रतीति होती है; उसमें निमित्तने किया क्या? निमित्त है इतना ज्ञान करने जैसा है। परकी अपेक्षारहित तथा रागके विकल्पसे भिन्न—ऐसा भेदज्ञान करने पर भीतर अभेदस्वरूपका अनुभव हुआ; उसमें वह भेदज्ञान साधन है, तथापि वहाँ जो रागका भाग साथ रहा है उसे व्यवहारका आरोप देकर, सहचर देखकर उपचारसे साधन कहा गया है। इसके सिवा अन्य प्रकारसे माने तो कहीं मेल नहीं बैठेगा।

'एकबार विकल्पका जाल तोड़कर भीतरसे अलग हो जा, फिर जाल चिपकेगा नहीं॥ २६॥

रागका विकल्प वह एक समयका कृत्रिम विभावभाव है, और भगवान स्वभावभाव त्रिकाल है। दोनों एकरूप नहीं हुए हैं; दोनोंके बीचमें साँध है, दोनों भिन्न हैं। खानमेंसे सुवर्ण और पत्थर एकसाथ निकलते हैं, किन्तु दोनों एक नहीं हैं। अग्निके प्रयोगसे दोनों भिन्न हो जाते हैं। उसी प्रकार भगवान आत्मा विकल्पसे बिलकुल भिन्न ही है; परन्तु अज्ञानके कारण उसे अपने साथ एकत्वरूप माना है। वह मान्यता तोड़कर स्वरूपके ओरकी एकाग्रताका प्रयोग करे तो दोनों भिन्न हो जाते हैं।—दोनों भिन्न थे इसलिये भिन्न हो जाते हैं। अहा! ऐसी बातें हैं।

एकबार विकल्पका जाल तोड़कर भीतरसे भिन्न हो जा। एकबार जाल टूट गया तो फिर अलग ही रहेगा, फिर कभी चिपकेगा नहीं। गाज गिरी और पर्वतके दो भाग हो गये, वे अब जोड़नेसे जुड़ेंगे नहीं। यहाँ अप्रतिहत भावकी बात है। रागसे पृथक् हुआ सो हुआ, जाल तोड़ा वह तोड़ा; अब विकल्पका जाल उससे एकाकार कभी नहीं होगा।

श्री अमृतचन्द्राचार्यदेवने समयसारकी ३८वीं गाथा और प्रवचनसारकी ९२वीं गाथाकी टीकामें ऐसा कहा है कि—आगमज्ञानसे और अनुभवज्ञानसे निर्विकल्पज्ञान होकर हमें भीतर ज्ञानप्रकाश हुआ है और जो हमारे मिथ्यात्वका नाश हुआ है, वह मिथ्यात्व फिर होनेवाला नहीं है। अहा! पंचमकालके संत भी इस प्रकार अंतरके जोरकी बात अपनी भाषामें करते हैं।

अहा! ऐसे पंचमकालमें प्राप्त हुई ऐसी दुर्लभ वस्तु; उसे लक्षमें लेकर, विकल्पका जाल तोड़कर, निर्विकल्प दृष्टि करके उसका अनुभव प्रगट कर। फिर अब तुझे विकल्पका जाल स्पर्श नहीं करेगा, विभावमें एकत्वपना अब नहीं होगा; विकल्प आयगा परन्तु वह परज्ञेयरूप ज्ञात होगा। अहा! यह वीतराग जैनदर्शन है। बहुत गहन है।

✻

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत-३०

जब बीज बोते हैं तब प्रगट रूपसे कुछ नहीं दिखता, तथापि विश्वास है कि 'इस बीजमेंसे वृक्ष उगेगा; उसमेंसे डालें–पत्ते–फलादि आयेंगे,' पश्चात् उसका विचार नहीं आता; उसीप्रकार मूल शक्तिरूप द्रव्यको यथार्थ विश्वासपूर्वक ग्रहण करनेसे निर्मल पर्याय प्रगट होती है; द्रव्यमें प्रगट रूपसे कुछ दिखाई नहीं देता इसलिये विश्वास बिना 'क्या प्रगट होगा' ऐसा लगता है, परन्तु द्रव्यस्वभावका विश्वास करनेसे निर्मलता प्रगट होने लगती है ॥ ३० ॥

'जब बीज बोते हैं तब प्रगट रूपसे कुछ नहीं दिखता, तथापि विश्वास है कि 'इस बीजमेंसे वृक्ष उगेगा; उसमेंसे डालें–पत्ते–फलादि आयेंगे,' पश्चात् उसका विचार नहीं आता;'

बीजमें सम्पूर्ण वृक्ष होनेकी शक्ति है। वर्तमानमें डालियाँ–पत्ते–फल दिखायी नहीं देते, तथापि विश्वास है कि इस बीजमें वृक्ष होनेकी शक्ति भरी है। आमका बीज बोनेपर विश्वास है कि उसमेंसे आम्रवृक्ष होगा और हजारों आम्रफल लगेंगे, फिर उसका विचार नहीं आता; बोया है वह होगा ही। इस वृक्षके दृष्टान्तानुसार अनन्त केवलज्ञान, अनन्त दर्शन और अनन्त आनन्दादि प्रगट करे—अनन्त विभूतिरूप फलित हो—ऐसा मूल शक्तिवान बीज यह आत्मद्रव्य है। जिस प्रकार वड़के बीजमेंसे अनेक वटवृक्ष होते हैं, उसकी जटाएँ फिर धरतीमें जाकर अन्य अनेक वड़ पैदा होते हैं; उसीप्रकार मूलशक्तिरूप आत्मद्रव्यको यथार्थ विश्वासपूर्वक ग्रहण करनेसे निर्मल पर्यायें प्रगट होती हैं। आत्मवस्तु त्रैकालिक है, निरावरण है, उसमें न्यूनता नहीं है, अशुद्धता नहीं है, वह पूर्ण है और शुद्ध है; मूल शक्तिरूप ऐसे द्रव्यका विश्वासपूर्वक आश्रय करनेसे, उसका ग्रहण करनेसे, उसे पकड़नेसे पर्यायमें शुद्धता प्रगट होती है। वह फलित होकर केवलज्ञान होगा ही।

...'उसी प्रकार मूल शक्तिरूप द्रव्यको यथार्थ विश्वासपूर्वक ग्रहण करनेसे निर्मल पर्याय प्रगट होती है;'

यथार्थ विश्वासपूर्वक ग्रहण करनेसे अर्थात् यथार्थ श्रद्धा सहित जाननेसे। आत्मपदार्थ वस्तु है ना? पूर्णरूप है ना? जो अनन्त पूर्ण स्वभावोंसे–शक्तियोंसे भी परिपूर्ण है ऐसे उसके पूर्ण रूपका विश्वासपूर्वक—श्रद्धापूर्वक यथार्थ ग्रहण करनेसे पर्यायमें निर्मलता प्रगट होती है। मैं एक समयकी पर्यायमें स्थित हूँ इसलिये कहीं 'मैं—वस्तु—पर्यायमात्र नहीं हूँ। उसके समीप—जहाँ पर्याय है वहीं—भीतर गहराईमें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनन्त आनन्द ऐसे पूर्ण स्वभावोंके भारसे–समूहसे भरा हुआ परिपूर्ण भगवान आत्मा है। उसे विश्वासपूर्वक ग्रहण करनेसे—ऐसा कहा, किन्तु बाहरकी जानकारीसे, शास्त्रज्ञान–धारणासे, निर्मल दशा प्रगट होती है ऐसा नहीं कहा है। शास्त्रमें ज्ञातृत्वकी बात तो आती है कि 'आत्मा ऐसा है, आत्मा वैसा है,' ऐसी शास्त्रानुसार उसकी धारणा कर ले, किन्तु उससे कुछ होता नहीं है। अंतरमें जैसी–जितनी वस्तु है उसका विश्वास करके, जितना उसका अस्तित्व है उतनेकी प्रतीति करके, 'विश्वाससे नौका तिरती है'—इस प्रकार अंतरके उस पूर्णानन्दके नाथको विश्वासपूर्वक जाननेसे निर्मल पर्यायरूपी नौका तिरेगी, निर्मल पर्यायकी धारा चलेगी। अहा! वस्तु तो है, परन्तु उसे विश्वासपूर्वक जाननेसे परम आनन्दकी तथा अतीन्द्रिय ज्ञानकी पर्याय प्रगट होती है।

प्रश्न :—विश्वास करनेसे प्रगट होता है?

उत्तर :—हाँ; यह आत्मा—वस्तु ज्ञान एवं आनन्दादि स्वभावसे भरपूर सर्वोत्कृष्ट प्रभु परमात्मा है, ऐसा विश्वास करनेसे पर्यायमें आनन्द और ज्ञानादि अनन्तगुणोंकी, सर्व शक्तियोंकी, अंशतः व्यक्तता होगी।

प्रश्न :—पहले क्या करना?

उत्तर :—पहले क्या करना—वही तो यहाँ कहा है। संख्यासे अनन्त गुणोंको धारण करनेवाला जो निज आत्मद्रव्य, उसके पुरुषार्थसे, समझपूर्वक विश्वास करनेसे जितने गुण हैं उन सबकी शक्तिमेंसे व्यक्तता एक अंशमें प्रगट होगी। यही प्रथम कर्त्तव्य है।

प्रश्न :—पुरुषार्थ किस गुणकी पर्याय है?

उत्तर :—पुरुषार्थ वीर्यगुणकी पर्याय है। अहा! किस पर्यायमें पुरुषार्थ नहीं है? विपरीत पर्यायमें भी पुरुषार्थ तो है, किन्तु विपरीत; इसप्रकार इस स्वभावोन्मुख तथा अंतरकी समझपूर्वक विश्वासकी पर्यायमें अनन्त सीधा पुरुषार्थ है। अनंत-अनंत शक्तियोंके सागरका विश्वास—अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्दके सागरका, अतीन्द्रिय प्रभुता एवं स्वच्छताके स्वामीका विश्वास—आनेपर पुरुषार्थपूर्वक निर्मलदशा प्रगट होती है। शुभरागसे यह विश्वास आये ऐसा नहीं है। मार्ग तो ऐसा है। उसे निर्बलतामें—पुरुषार्थहीनतामें—लगा दिया है! वह तो कलंक है। शुभभावसे—रागसे आत्माकी निर्मल वीतरागी दशा प्रगट होगी—यह मान्यता तो कलंक है।

'द्रव्यमें प्रगटरूपसे कुछ दिखायी नहीं देता इसलिये विश्वास बिना 'क्या प्रगट होगा' ऐसा लगता है,'....

द्रव्यमें प्रगटरूपसे कुछ दिखायी नहीं देता; दिखे किस प्रकार? जैसे वह बीज बोया वहाँ उसकी डालियाँ–पत्ते दिखायी नहीं देते, किन्तु विश्वास है कि इसमेंसे होगें ही;

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसीप्रकार भगवान आत्मा वस्तु है, द्रव्य है, पदार्थ है, 'अस्ति' है, अनादि-अनन्त नित्य ध्रुव धातु है; उसी चैतन्यधातुरूप द्रव्यमें प्रगटरूपसे कुछ नहीं दिखता, इसलिये विश्वासके बिना 'क्या प्रगट होगा? कैसे होगा? पर्याय कहाँसे आयगी?'—ऐसा लगता है क्योंकि विश्वास तो है नहीं कि इसमें सब कुछ विद्यमान है। खबर नहीं है कि अतीन्द्रिय ज्ञान और सुख प्रगट हो ऐसा मेरा सब कुछ मुझमें है; रागमें, पुण्यमें—दया-दानमें, निमित्तमें मेरा कुछ नहीं है, उसके द्वारा कहीं आत्माकी प्राप्ति नहीं होगी।

अहा! बीजका विश्वास है कि उसमेंसे वृक्ष—डालियाँ, पत्ते, फूल, फल—होगा, लेकिन यहाँ अंतरमें आत्मद्रव्यका विश्वास नहीं है! इसलिये विश्वासके बिना 'क्या प्रगट होगा' ऐसा लगता है।

'परन्तु द्रव्यस्वभावका विश्वास करनेसे निर्मलता प्रगट होने लगती है।'

देव-शास्त्र-गुरुका विश्वास तो एक ओर रह गया; पुण्य और पापके परिणामोंका भी विश्वास नहीं—वे अलग रह गये; परन्तु एक समयकी पर्यायके प्रति जो लक्ष उसका भी विश्वास नहीं करना। विश्वास तो एक त्रैकालिकका होना चाहिये।

प्रश्न :—'त्रैकालिक' तो हमने कभी सुना ही नहीं था?

उत्तर :—बात सच है, नहीं सुना था। आत्मा वस्तु है वह कहाँ है, कैसी है, उसका त्रैकालिक स्वरूप कैसा है—उसका सच्चा स्वरूप सत्समागमसे कभी नहीं सुना। यों तो बातें करते हैं कि—आत्मा अविनाशी है, परन्तु उसका सच्चा त्रैकालिक स्वरूप क्या है वह कभी विश्वासमें नहीं लिया। बाहर माथापच्ची करके मर गया। अरे! सामायिक की, प्रोषध किये, प्रतिक्रमण किया; लेकिन उससे क्या हुआ? वह तो रागकी क्रिया है। भाई, रागकी तथा शरीरकी क्रिया तो जड़ है; उन दोनोंसे आत्माकी निर्मलता प्रगट नहीं होती।

समयसारके निर्जरा अधिकारमें तो ऐसा कहा है कि—कोई जीव तो अति दुष्कर और मोक्षसे पराङ्मुख ऐसे कर्मों द्वारा स्वयमेव (जिनाज्ञा बिना) क्लेश पाते हैं तो पाओ और दूसरे कोई जीव महाव्रत तथा तपके भारसे बहुत काल तक टूट मरते हुए क्लेश पाते हैं तो पाओ; वे शुभ क्रियाका क्लेश करते हैं तो करो, उसमें आत्मा हाथ नहीं आयगा।

यह वाणी सर्वज्ञदेवप्रणीत है; निकटवर्ती गणधरोंने साक्षात् श्रवण की हुई यह वाणी है। ऐसी बात अन्यत्र कहाँ है भाई! यहाँ तो कहते हैं कि द्रव्यस्वभावका विश्वास करनेसे निर्मलता प्रगट होगी। बीजका विश्वास करनेसे डालियाँ, पत्ते और फल होगें ही; उसीप्रकार भगवान आत्मामें, अल्पज्ञ पर्यायमें होनेपर भी पूर्णका विश्वास आनेसे,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अल्पज्ञदशामें पूर्णानन्दका अंशतः स्वाद और आनन्द आनेसे—जिस आनन्दके स्वादके समक्ष दुनियाके विषय और भोग, इन्द्र और इन्द्रानीके भोग सड़े हुए कुत्ते जैसे लगते हैं—निर्मलता प्रगट होने लगती है। अहा! द्रव्यस्वभावकी महिमा समझनेसे तुझे बाहरकी महिमा उड़ जायगी, तुझे बाह्यमें बड़प्पन नहीं लगेगा, बाह्यमें कोई अधिक है ऐसा भासित नहीं होगा; क्योंकि अंतरमें द्रव्यस्वभावका विश्वास आनेसे तुझे अपनी अधिकताकी प्रतीति हुई है ना? **'णाणसहावाधियं मुणदि आदं'** वहाँ 'अधिक' शब्दमें भिन्नता है। रागसे और अपूर्ण पर्यायसे भिन्नता तुझे भासित होगी।—इस प्रकार अंतरमें स्वभावसे भरपूर ऐसे आत्माका विश्वास लानेसे निर्मलता प्रगट होने लगती है।

✾

श्री कुंदकुंद-आचार्यदेव विदेहमें गये थे उसका कौन साक्षी है? साक्षी यह चम्पाबेन बैठी हैं वे हैं। *—पूज्य गुरुदेव*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन-६

ता. १४-६-७८

वचनामृत-३१

सम्यग्दृष्टिको ज्ञान-वैराग्यकी ऐसी शक्ति प्रगट हुई है कि गृहस्थाश्रममें होनेपर भी, सभी कार्योंमें स्थिति होनेपर भी, लेप नहीं लगता, निर्लेप रहते हैं; ज्ञानधारा एवं उदयधारा दोनों भिन्न परिणमती हैं; अल्प अस्थिरता है वह अपने पुरुषार्थकी कमजोरी से होती है, उसके भी ज्ञाता रहते हैं।। ३१।।

'सम्यग्दृष्टिको ज्ञान-वैराग्यकी ऐसी शक्ति प्रगट हुई है कि गृहस्थाश्रममें होनेपर भी, सभी कार्योंमें स्थित होनेपर भी, लेप नहीं लगता, निर्लेप रहते हैं;'

क्या कहते हैं? सम्यग्दृष्टि अर्थात् जिसे आत्माके पूर्ण स्वभावका अंतरंग विश्वासपूर्वक सच्चा श्रद्धान—सम्यक्दर्शन—हुआ है। मैं ज्ञान-आनन्दादि अनन्त शक्तियोंसे भरपूर पदार्थ हूँ—ऐसा पहले विश्वास आया तब अंतरमें आत्माका अनुभव हुआ है। पूर्ण स्वभावको ग्रहण करनेसे अंतरमें विश्वास होता है। अनादिसे जीवका विश्वास वर्तमान पर्यायमें है; परन्तु जहाँ वह पर्याय है वहीं उसके पीछे गहराईमें, उसके तलमें पूरी सम्पूर्ण वस्तु है; वह अनंत-अनंत अपरिमित शक्तियोंका सागर है। उसकी जिसे अंतरमें श्रद्धा–विश्वास आये और अंतर्-अनुभवमें लीन हो जाय उसे सम्यग्दृष्टि कहा जाता है।

जीवने अनादिसे कभी अपनी शक्तिको नहीं संभाला, क्योंकि उसकी दृष्टि एक समयकी पर्याय एवं राग पर ही है। इसलिये उसकी दृष्टिमें भगवान आत्मा—जो भीतर पूर्णस्वरूप द्रव्य है, शक्तिसे भरपूर तत्त्व है वह—नहीं आता। पर्याय तो एक समयका अंश है; त्रैकालिक ध्रुवतत्त्व नहीं है। पर्याय भी ध्रुव वस्तुके आधारसे होती है। ऐसे वस्तु स्वभावका—पूर्णस्वभावका अंतरमें विश्वास लाकर वहाँ जाय और आत्माको जिस निर्मल अतीन्द्रिय आनन्दका अनुभव हो उसे सम्यग्दर्शन तथा सत्‌दर्शन कहते हैं।

वह सम्यग्दर्शन होनेपर ज्ञान एवं वैराग्यकी ऐसी शक्ति प्रगट हुई है कि चाहे जिस प्रसंगमें उसे विभावका लेप नहीं लगता। ज्ञान अर्थात् अपने पूर्ण स्वरूपका ज्ञान, और

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वैराग्य अर्थात् पर सम्बन्धी रागका अभाव। पूर्णतत्त्वका ज्ञान और प्रतीति यह कथन अस्तिसे है, और पर सम्बन्धी विकल्पोंसे लेकर शरीरादि सर्व वस्तुओंके रागका जिसमें अभाव है उसका नाम वैराग्य, वह कथन नास्तिसे है।

समयसारके निर्जरा अधिकारमें आता है कि–'सम्यग्दृष्टिको नियमसे ज्ञान और वैराग्यकी शक्ति होती है।' ज्ञायक निज वस्तुस्वरूपके सन्मुख होकर तथा निमित्त, राग और पर्यायसे भी विमुख होकर जिसे पूर्ण स्वभावकी अंतर्प्रतीति हुई है ऐसे सम्यग्दृष्टिको ज्ञान और वैराग्यकी दो शक्तियाँ होती हैं। अंतरमें ऐसी शक्ति प्रगट हुई है कि गृहस्थाश्रममें हो, मुनिपना न हो समस्त बाह्य कार्योंमें संलग्न हो, तथापि लेप नहीं लगता। समस्त कार्य अर्थात् सम्यग्दृष्टिके योग्य हों वे कार्य। ऐसा राग ज्ञानीको आता अवश्य है किन्तु वह उस रागधाराको अपनेमें नहीं लेता। सम्यंग्दृष्टि चक्रवर्ती हो, ९६ हजार रानियाँ हों, तथापि उस रागका नास्तिपना और साथ सहज ज्ञातास्वभावका अस्तिपना वह मैं हूँ—ऐसी दशामें रागके साथ एकताबुद्धि नहीं होती; इसलिये रागसे निर्लिप्त रहता है। अहा! ऐसा सिद्धान्त है! ज्ञानी अपने योग्य समस्त कार्योंमें संलग्न होने पर भी लेप नहीं लगता; क्योंकि अपने पूर्ण स्वभावकी प्रतीति तथा ज्ञान वर्तता है और परके–रागके अभाव स्वभावरूप वैराग्य वर्तता है। इसलिये ज्ञानीको अंतरमें लेप नहीं लगता, निर्लिप्त रहते हैं। 'लेप नहीं लगता' इसप्रकार पहले नास्तिसे बात करके फिर, राग होनेपरभी रागमें एकत्वबुद्धि नहीं करता अर्थात् 'निर्लिप्त रहता है' इसप्रकार अस्तिसे बात की है। राग होता है इतना तो लेप है, किन्तु 'वह राग मेरा नहीं है' इसप्रकार अभिप्रायमें एकत्व नहीं करता; इसलिये वह निर्लिप्त रहता है। श्री ऋषभदेव भगवान ८३ लाख पूर्व तक गृहस्थाश्रममें थे, सम्यक्त्व तथा तीन ज्ञान थे। गृहस्थाश्रममें थे यह तो समझानेके लिये कहा; सचमुच तो सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रमकी पर्यायमें भी नहीं है। वह तो पूर्ण स्वभावका ज्ञान और विकल्प से लेकर परपदार्थके रागके अभावरूप जो वैराग्य उसके अस्तित्वमें है। अहा! ऐसी बातें (शर्तें) हैं!

'ज्ञानधारा एवं उदयधारा दोनों भिन्न परिणमती हैं'

—ऐसा शास्त्रमें आता है। राग है तो अवश्य, परन्तु रागकी धारा ज्ञानमें परज्ञेयरूप जाननेमें रहती है। ज्ञानधारा अर्थात् वस्तुके स्वरूपका जो ज्ञान हुआ वह। अहा! पर्यायमें वह ज्ञानधारा ज्ञानीको निरंतर वर्तती है। जिस प्रकार भीतर त्रैकालिक ध्रुवधारा वर्तती है, उसीप्रकार ध्रुवस्वभावका जो ज्ञान हुआ, अनुभव हुआ वह ज्ञानधारा भी अब निरंतर वर्तती ही है। ज्ञातृत्वधारा और शुभाशुभ विकल्पधारा–उदयधारा दोनों भिन्न ही परिणमिती हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'अल्प अस्थिरता है वह अपने पुरुषार्थकी कमज़ोरीसे होती है, उसके भी ज्ञाता रहते हैं।'

राग कर्मसे होता है यह बात ही नहीं है। परद्रव्यका और स्वद्रव्यका क्या सम्बन्ध है? निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध अर्थात् पृथकता। कर्मसे आत्मामें हो और आत्मासे कर्ममें हो—ऐसा कहीं है नहीं। प्रत्येक द्रव्य अपनी पर्यायमें वर्तता है। कर्म उसकी उदय पर्यायमें वर्तता है और अल्प अस्थिरता वह अपने पुरुषार्थकी कमज़ोरीसे होती है। ज्ञानी उसका भी ज्ञाता रहता है। राग मेरा है ऐसी मान्यतावाला नहीं रहता। अहा! सम्यग्दर्शन और ज्ञानका ऐसा स्वरूप है।

✽

वचनामृत-३२

सम्यग्दृष्टिको आत्माके सिवा बाहर कहीं अच्छा नहीं लगता, जगतकी कोई वस्तु सुन्दर नहीं लगती। जिसे चैतन्यकी महिमा एवं रस लगा है उसको बाह्य विषयोंका रस टूट गया है, कोई पदार्थ सुन्दर या अच्छा नहीं लगता। अनादि अभ्यासके कारण, अस्थिरताके कारण अन्दर स्वरूपमें नहीं रहा जा सकता इसलिये उपयोग बाहर आता है परन्तु रसके बिना—सब निःस्सार, छिलकोंके समान, रस-कस शून्य हो ऐसे भावसे—बाहर खड़े हैं॥ ३२॥

'सम्यग्दृष्टिको आत्माके सिवा बाहर कहीं अच्छा नहीं लगता, जगतकी कोई वस्तु सुन्दर नहीं लगती।'

आत्मामें अपरिमित आनन्द है; पर्यायमें जिसे उसका स्वाद आया उसे, कहते हैं कि, बाहर कहीं अच्छा नहीं लगता। बाह्य अनुकूलता है इसलिये अच्छा है ऐसा भी नहीं है; आत्मानन्द के सिवा ज्ञानीको कहीं अच्छा नहीं लगता, रुचता नहीं है। अरे! शुभभावमें भी ज्ञानीको अच्छा नहीं लगता। सम्यग्दृष्टिको स्वात्माकी सर्वोत्कृष्टताके समक्ष—निजात्मामें अतीन्द्रिय अतीन्द्रिय अतीन्द्रिय आनन्द है कि जो चौरासीके अवतारोंमें कहीं देखा नहीं था, जाना नहीं था ऐसे आनन्दका जिसे अनुभव है उसे अपने आनन्दके सिवा—अन्यत्र कहीं अच्छा नहीं लगता, कहीं रुचता नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यग्दृष्टि चक्रवर्ती विवाह करने गये हों, तथापि उसमें उन्हें अच्छा नहीं लगता। ज्ञानी रागको पररूप जानता है, अपना रूप जानता ही नहीं; चाहे तो शुभराग हो या अशुभराग हो परन्तु वह भाव है तो व्यभिचार और विषकुम्भ। मैं शुद्ध चैतन्य आनन्दघन हूँ—ऐसी अनुभूतिरूप परिणमनके कारण अंतरमें ही आनन्दकी अपेक्षा ज्ञानीको बाह्यमें कहीं अच्छा नहीं लगता, रुचता नहीं है।

धर्मात्माको जगतकी कोई वस्तु सुन्दर नहीं लगती; क्योंकि अंतरमें भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दका नाथ–प्रभु ही सुन्दर है। उसके प्रेमके समक्ष अन्यत्र कहीं प्रेम होता ही नहीं है। आसक्तिका किंचित् प्रेम है, किन्तु अपनत्वका प्रेम किंचित् भी नहीं है।

'जिसे चैतन्यकी महिमा एवं रस लगा है उसको बाह्य विषयोंका रस टूट गया है, कोई पदार्थ सुन्दर या अच्छा नहीं लगता।'

जिसने खीरका स्वाद चखा हो उसे सड़ी हुई लाल जुआरकी रोटी अच्छी नहीं लगेगी, उसी प्रकार जिसने आनन्दस्वरूप निज प्रभुके अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद लिया उसे जगतकी किसी वस्तुमें प्रेम नहीं आता। चैतन्यकी महिमा एवं रसके कारण उसे बाह्य विषयोंका रस छूट गया है, बाह्यमें कहीं रस नहीं है। रस नहीं है अर्थात् विषयोंमें कहीं एकाकारपना नहीं है। 'अनुभवप्रकाश'में रसका अर्थ किया है तथा समयसारके प्रथम जीव-अधिकारमें—पूर्वरंगमें—भी रसका अर्थ किया है :...'सामान्यरूपसे रसका यह स्वरूप है कि ज्ञानमें जो ज्ञेय आया और उसमें ज्ञान तदाकार हुआ, उसमें पुरुषका भाव लीन हो जाय और अन्य ज्ञेयकी इच्छा न रहे वह रस है।' ज्ञानीको ज्ञानमें एकाकार हो जाना वह रस है और अज्ञानीको ज्ञेयमें एकाकार हो जाना वह रस है। राग और परमें एकाकार होकर रस लेना ज्ञानीको नहीं होता।

सम्यक्त्वी चक्रवर्तीको विषयकी वासना आये उस समय भी उसे अंतरमें उसकी मिठास या रस नहीं है; वह तो दूसरे ही क्षण ध्यानमें लग जाता है और आनन्दका रस आता है, विशेष आनन्द आता है। विशेष अर्थात् विकल्प परमें था उस समय भी जितनी अंतरशुद्धि परिणमी है उतना आनन्द तो निरंतर है, परन्तु विकल्पसे छूटकर अंतरमें जाता है तब ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय एक होकर विशेष आनन्द आता है। आनन्दकी धारा बढ़ती है; वह उसे अन्यत्र कहीं प्रेम नहीं आने देती; उसे कोई पदार्थ सुन्दर या अच्छे नहीं लगते। सुन्दर रूपवान शरीर हो अथवा जगतकी अन्य कोई भी वस्तु हो वह सब जड़का अस्तित्व है। चैतन्यके अस्तित्वमें रस आया उसे जड़के किसी भी अस्तित्वकी सुन्दरतामें रस नहीं आता। अहा! शुद्ध मक्खन है! वस्तु ऐसी है! वस्तुका स्वरूप ऐसा है!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'अनादि अभ्यासके कारण अस्थिरताके कारण अन्दर स्वरूपमें नहीं रहा जा सकता इसलिये उपयोग बाहर आता है परन्तु रसके बिना—सब निःस्सार, छिलकोंके समान, रस-कसशून्य हो ऐसे भावसे—बाहर खड़े हैं।'

अनादिकालीन अभ्यासके कारण किंचित् अस्थिरताके भाव आते हैं, भीतर स्वरूपमें विशेष स्थिर नहीं रहा जा सकता। स्वरूपके ध्यानमें तो स्वयं ही ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय—ऐसी एकरूप दशाका अनुभव होता है। उस दशामें विशेष स्थिर नहीं रह सकता इसलिये ज्ञानीको राग आता है, उपयोग बाहर जाता है, परन्तु वह सब बिना रसके होता है। बाहरसे ऐसा लगे कि भगवानकी भक्ति करते हैं, स्तुति करते हैं, तथापि उस भावमें रस नहीं है। यह बात समझनेके लिये बहुत ही धैर्य तथा बड़ा पुरुषार्थ चाहिये। पुरुषार्थकी दिशा जो परकी ओर–रागकी ओर–है उसे पलटकर अन्तर्मुख करना है। पुरुषार्थ कहीं बाहरी पढ़ाई से नहीं आ जाता।

अनादिसे परका और विभावका जो अभ्यास है, उसमेंसे छूटकर भीतर अभ्यासमें आना। पश्चात् अस्थिरताके कारण उपयोग किंचित् बाहर आता है, किन्तु वह बिना रसके–सब निःस्सार छिलकों जैसा, रस-कस रहित हो ऐसे भावसे—बाह्य प्रवृत्तिमें लगता है। जो रस-कस है वह तो मेरा स्वरूप है; आनन्द, ज्ञान एवं प्रभुता वह तो मैं हूं; यह शुभाशुभराग छिलकोंके समान निःस्सार है। शकरकन्दमें भीतर जो मिठासका पिण्ड है वह उसका कस है, ऊपरका छिलका तो कसरहित निःस्सार है; उसीप्रकार धर्मी जीवको निजात्मामें पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान एवं बाह्य ध्रुवस्वभावरूप कसके सामने रागादि तथा बाह्य संयोग–वह सब छिलके समान रस-कसरहित लगता है। उसे बाह्यमें रस नहीं है और कस तो उसमें दिखता नहीं है; रस-कस तो भीतर आत्मामें है। सब रस-कसरहित हो ऐसे भावसे ज्ञानी बाह्यमें खड़े हैं।

एक म्यानमें दो तलवारें नहीं रह सकतीं उसीप्रकार जिसे आत्माका रस है उसे रागादिका रस उड़ जाता है, और जिसे रागादिका राग है उसे आत्माका रस नहीं आ सकता। भले ही दया पालनेका भाव हो–वह भी राग है। वास्तवमें तो रागकी उत्पत्ति ही नहीं होना वह सच्ची स्व-दया है। उसका नाम 'अहिंसा परमो धर्मः' है। व्यवहारमें तो कहा जाता है कि जीवोंकी दया पालो, व्रतोंका पालन करो, दूसरोंकी रक्षा करो, देखकर चलो, परन्तु यह सब विकल्प हैं, शुभराग है। ज्ञानीको उसका रस नहीं है; बाह्यमें सब रस-कसरहित हो ऐसे भावमें वे खड़े हैं। जहाँ अंतरकी दृष्टि है वहाँ बाह्यरस सब उड़ जाता है, और जिसे बाह्य–शुभरागका–रस है उसे चैतन्यका रस नहीं होता। रागके रसवाला जीव चैतन्यका अनादर करता है और चैतन्यके रसवाला जीव रागका किंचित् आदर नहीं करता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत-३३

'जिसे लगी है उसीको लगी है'....परन्तु अधिक खेद नहीं करना। वस्तु परिणमनशील है, कूटस्थ नहीं है; शुभाशुभ परिणाम तो होंगे। उन्हें छोड़ने जायगा तो शून्य अथवा शुष्क हो जायगा। इसलिये एकदम जल्दबाजी नहीं करना। मुमुक्षुजीव उल्लासके कार्योंमें भी लगता है; साथ ही साथ अन्दरसे गहराईमें खटका लगा ही रहता है, संतोष नहीं होता। अभी मुझे जो करना है वह बाकी रह जाता है—ऐसा गहरा खटका निरन्तर लगा ही रहता है, इसलिये बाहर कहीं उसे संतोष नहीं होता; और अन्दर ज्ञायकवस्तु हाथ नहीं आती, इसलिये उलझन तो होती है; परन्तु इधर-उधर न जाकर वह उलझनमेंसे मार्ग ढूँढ़ निकालता है॥ ३३॥

'जिसे लगी है उसीको लगी है'....परन्तु अधिक खेद नहीं करना।'

जिसे भगवान आत्माके पूर्ण स्वभावकी रुचि लगी है, जिसे पूर्ण स्वभाव प्राप्त करना है, उसीको लगी है; परन्तु अधिक खेद नहीं करना। यहाँ जरा अपेक्षासे बात करते हैं।

'वस्तु परिणमनशील है, कूटस्थ नहीं है; शुभाशुभ परिणाम तो होंगे। उन्हें छोड़ने जायगा तो शून्य अथवा शुष्क हो जायगा।'

दृष्टि अभी स्वभाव सन्मुख तो हुई नहीं है, और शुभाशुभभाव आयें उन्हें छोड़ दूँ ऐसे भाव करे, वहाँ दृष्टि तो राग पर पड़ी है; उन शुभाशुभ भावोंको छोड़ने जायगा तो शून्य अथवा शुष्क हो जायगा। अभी अंतरमें स्वभावकी ओर तो आया नहीं है और शुभाशुभ परिणतिको छोड़ना चाहता है, लेकिन वह छूटेगी नहीं; क्योंकि वस्तु परिणमनशील है, कूटस्थ नहीं हैं; पर्वतके उच्च कूट–शिखरकी भाँति एकरूप रहे ऐसी नहीं है, परिणमती है। स्वभावरूप परिणाम नहीं हैं इसलिये, शुभाशुभ परिणाम तो होंगे।

पूर्ण स्वभावपरिणमनको, क्योंकि वह ज्योंका त्यों अनंतकाल तक धारावाही चलता है इसलिये, कथंचित् कूटस्थ कहा है। केवलज्ञान सदा एकरूप रहता है इसलिये उसे पंचास्तिकायमें कथंचित् कूटस्थ कहा है। श्री समयसारकी पहली गाथामें 'ध्रुव, अचल ने अनुपम गति पामेल सर्वे सिद्धने...' ऐसा कहकर सिद्धगतिको ध्रुवपना कहा है। केवलज्ञान, सिद्धगति आदि हैं तो पर्याय, तथापि अनादि-अनन्त ज्योंकी त्यों रहनेवाली है इसलिये उसे ध्रुवत्वको प्राप्त कहा गया है। यहाँ तो उस अपेक्षासे भी शुभाशुभ परिणाम कूटस्थ नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं। अहा! महान, गहन और गम्भीर तत्त्व है प्रभु! उसके अनेक पक्ष और प्रकार हैं। उसके ज्ञानका तल अथाह है। पर्यायको द्रव्यमें एकाकार करने पर, अवस्थाको द्रव्यस्वभावकी ओर ले जाने पर....अहा! उसकी गहराई और गम्भीरता अपार है। इसके सिवा जब तक पर्यायके ऊपर दृष्टि है तब तक जीव अज्ञानमें रुका है।

दया–दानादिका राग आता है किन्तु वह आत्माका अंश भी नहीं और वंश भी नहीं है। वह आता है, परन्तु रुचिमें उसका आदर नहीं है। अंतरमें प्रभु आनन्द स्वरूप है वह उसका वंश है। उस स्वरूपकी दृष्टि प्रगट नहीं हुई है और शुभाशुभभावको छोड़ने जायगा वहाँ रुक जायगा तो ज्ञान शून्य अथवा शुष्क हो जायगा, सच्चा ज्ञान नहीं होगा। प्रभु! सूक्ष्म बात है।

'इसलिये एकदम जल्दबाजी नहीं करना।'

एकदम जल्दबाजी करके रागको जल्दी छोड़ दूँ—ऐसा करने जायगा तो स्वभावकी दृष्टि हुए बिना, राग छूटेगा नहीं और तू उलझनमें पड़ जायगा। रागको छोड़नेका पुरुषार्थ तो नास्तिरूप है और भीतर स्वभावमें जाना वह अस्तिरूप पुरुषार्थ है। अस्तिपनेका पुरुषार्थ सूझे बिना रागको तोड़ने जायगा तो वह टूटेगा नहीं और तू उलझ जायगा। इसलिये धैर्यसे काम लेना।

'मुमुक्षुजीव उल्लासके कार्योंमें भी लगता है; साथ ही साथ अन्दर गहराईमें खटका लगा ही रहता है, संतोष नहीं होता।'

मुमुक्षुजीव बाहर उल्लासके कार्योंमें लगता है, और वह प्रत्यक्ष दिखता भी है; वह शुभाशुभभावमें भी युक्त होता है; परन्तु साथ ही अन्दरसे गहराईमें खटका बना रहता है कि 'यह नहीं, यह मेरा स्वरूप नहीं है।' भगवानकी भक्तिका शुभभाव आता है, सत्‌श्रवणका उल्लास होता है, सत्य बात कहनेका भी उल्लास आता है, परन्तु गहराईमें तो खटका लगा ही रहता है कि यह श्रवण करने तथा उपदेश देनेका विकल्प भी राग है, और वस्तु तो वीतरागस्वरूप चैतन्यबिम्ब है।

उस शुभभावमें उसे संतोष नहीं होता। भले ही भक्ति, स्वाध्याय, श्रवणादि भावोंमें उल्लास आये, तथापि वहाँ सन्तुष्ट नहीं हो जाता। प्रतिदिन आठ–दस घण्टे तक पढ़ते हैं इसलिये अपनेको ज्ञान हो गया—इसप्रकार सन्तुष्ट नहीं हो जाता।

'अभी मुझे जो करना है वह बाकी रह जाता है—ऐसा गहरा खटका निरन्तर लगा ही रहता है, इसलिये बाहर कहीं उसे संतोष नहीं होता;'

मुमुक्षु जीवको पठन-श्रवण-भक्ति आदिका उल्लास आता है परन्तु उसमें वह संतुष्ट

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं हो जाता कि मैंने बहुत कर लिया; परन्तु मुझे जो करना है वह तो दूसरा ही है—रागके विकल्पसे भिन्न निर्विकल्प प्रभु अंतरमें विराजमान है वहाँ जाना है।

पाँच-पच्चीस उपवास कर लिये इसलिये तपस्या हो गई—ऐसी मान्यतामें सन्तुष्ट नहीं हो जाना भाई! वह भी राग है। अहा! वीतरागमार्ग बड़ा सूक्ष्म है! उस रागसे भिन्न होकर अंतरमें आनन्दका अनुभव होना उसे जिनेश्वरदेवने धर्म कहा है, अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद आना वह धर्म है; शुभरागरूप तप और लँघन कोई धर्म नहीं है। प्रभु! उस शुभरागके विकल्पसे भिन्न होना वही करने योग्य है, निर्विकल्प अनुभव प्राप्त करना ही कर्त्तव्य है और वही धर्म है।

यहाँ कहते हैं कि ऐसे शुभभाव आते हैं, परन्तु मुमुक्षु हो, सत्‌का जिज्ञासु हो, तो वह उसमें सन्तुष्ट नहीं हो जाता कि—हम इतना स्वाध्याय करते हैं, पढ़ते हैं, तप करते हैं, भक्ति करते हैं, इतने जिनमन्दिर बनवा दिये इसलिये हमें धर्म हो गया। वह तीनकालमें धर्म नहीं है। उसमें यदि रागकी मन्दता हो तो शुभभाव है। मुझे अभी बहुत करना शेष है—ऐसा गहरा खटका मुमुक्षुको लगा ही रहता है; इसलिये उसे बाहर कहीं भी संतोष नहीं लगता। बाह्यमें संतुष्ट हो जाय वह तो मिथ्यात्व है। यह तो अंतरंग वीतराग मार्ग है।

....'और अन्दर ज्ञायकवस्तु हाथ नहीं आती, इसलिये उलझन तो होती है; परन्तु इधर-उधर न जाकर वह उलझनमेंसे मार्ग ढूँढ़ निकालता है।'

जागता जीव खड़ा है वह कहाँ जायगा? तथापि ज्ञायक वस्तु हाथ नहीं आती, इसलिये उलझन तो होती है, परन्तु इधर-उधर न जाकर धैर्य रखना। धैर्य रखकर अंतरमें जानेका प्रयत्न करना। सच्चा जिज्ञासु इधर-उधर न जाकर उलझनमेंसे मार्ग ढूँढ़ निकालता है। ऐसी उलझनमें भी वस्तुकी ओर ढलकर, अन्तरमें जानेका प्रयत्न करके मार्ग ढूँढ़ लेता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-१०

ता. १५-६-७८

वचनामृत-३४

मुमुक्षुको प्रथम भूमिकामें थोड़ी उलझन भी होती है, परन्तु वह ऐसा नहीं उलझता कि जिससे मूढ़ता हो जाय। उसे सुखका वेदन चाहिये है वह मिलता नहीं और बाहर रहना पोसाता नहीं है, इसलिये उलझन होती है, परन्तु उलझनमेंसे वह मार्ग ढूँढ़ लेता है। जितना पुरुषार्थ उठाये उतना वीर्य अंदर काम करता है। आत्मार्थी हठ नहीं करता कि मुझे झटपट करना है। स्वभावमें हठ काम नहीं आती। मार्ग सहज है, व्यर्थकी जल्दबाजीसे प्राप्त नहीं होता॥ ३४॥

'मुमुक्षुको प्रथम भूमिकामें थोड़ी उलझन भी होती है, परन्तु वह ऐसा नहीं उलझता कि जिससे मूढ़ता हो जाय।'

इस पुस्तकका नाम 'वचनामृत' है। इसका ३४वाँ बोल चल रहा है। आत्मा क्या है? उसका स्वरूप पूर्ण शुद्ध और पूर्ण आनन्द वह क्या है? जिसमें विकारका अंश नहीं है वह वस्तु क्या है? यह सत्य जानने तथा समझनेकी जिसे जिज्ञासा हो वह मुमुक्षु कहलाता है। ऐसे मुमुक्षु जीवको प्रथम भूमिकामें थोड़ी उलझन भी होती है। आत्मा चैतन्यस्वरूप है, अनन्त आनन्दसे भरपूर समुद्र है; वह जल्दी पकड़में नहीं आता इसलिये थोड़ी उलझन होती है, परन्तु वह ऐसी उलझनमें नहीं पड़ जाता कि जिससे मूढ़ता हो जाय। उलझन हो तो उसे धैर्यपूर्वक स्वरूपको समझनेका प्रयत्न करना चाहिये। उलझनमें पड़कर आकुलित हो जाना और वस्तु- स्वरूपको समझनेका प्रयत्न छोड़ देना—ऐसा नहीं है। अरे, भगवान! अनादिकालसे समझमें नहीं आया इसलिये थोड़ी देर तो लगेगी, परन्तु उसमें अकुलाना नहीं। समयसारके कलशमें कहा है कि तू एकबार छह महीने तक एक चैतन्यमात्र वस्तुको स्वयं निश्चल लीन होकर देखनेका अभ्यास कर। यों तो अन्तर्मुहूर्त्तमात्रमें ही हो सकता है, परन्तु शिष्यको बहुत

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कठिन लगता हो तो उसका निषेध किया है। यदि समझनेमें अधिक काल लगे तो छह महीनेसे अधिक नहीं लगेगा—ऐसा उससे धैर्यवान होकर झूठी जल्दबाजी न करनेके लिये कहा है।

'उसे सुखका वेदन चाहिये है वह मिलता नहीं और बाहर रहना पोसाता नहीं है, इसलिये उलझन होती है, परन्तु उलझनमेंसे वह मार्ग ढूँढ़ लेता है।'

उसने सुना है कि आत्मा अतीन्द्रिय सुखस्वरूप है। इतना-इतना धर्मोपदेश सुनता हूँ तथापि अंतरमें सुखका वेदन तो नहीं होता! मुझे तो सुखका—आनन्दका वेदन चाहिये। राग एवं पुण्य-पापके भाव—शुभाशुभ भाव—दुःखरूप हैं ऐसा सुना है, ध्यानमें लिया है, और उसके बदले उसे तो अतीन्द्रिय सुखकी इच्छा है, किन्तु सुखका वेदन प्रगट नहीं होता और बाहर रहना पोसाता नहीं है इसलिये वह उलझनमें पड़ जाता है कि क्या किया जाये। किन्तु वह धैर्यपूर्वक मार्ग ढूँढ़ लेता है, मार्गको छोड़ नहीं देता। धीरज रखकर अंतरमें जानेका प्रयत्न करता है। दुनियाको सन्तुष्ट करूँ और दुनियासे सन्तुष्ट होऊँ—इसप्रकार जो बाह्यवृत्ति थी उससे हटकर अंतरमें जानेका मार्ग धैर्यपूर्वक अंतर्प्रयत्नसे ढूँढ़ लेता है, अकुलाता नहीं है।

'जितना पुरुषार्थ उठाये उतना वीर्य अंदर काम करता है।'

जितना स्वभावसन्मुख पुरुषार्थ बढ़ायेगा, उतना अंतरमें कार्य होगा। पुरुषार्थ कम करे और कार्य अधिक चाहे तो नहीं मिल सकता। रागका पुरुषार्थ रुचता है, उसका वेदन है, आत्माका वेदन नहीं है, उससे अकुलाता नहीं है। अंतरमें मार्ग न मिले तो उससे पुरुषार्थ छोड़ नहीं देता। वह समझता है कि मेरे पुरुषार्थकी कमी है। स्वरूपको समझनेके लिये जितना आवश्यक है उतना पुरुषार्थ करे—कारण दे—तो कार्य हुए बिना न रहे। ऐसी बात है! वस्तुस्वभाव ऐसा है!

'आत्मार्थी हठ नहीं करता कि मुझे झटपट करना है। स्वभावमें हठ काम नहीं आती।'

झटपट अर्थात् सहजरूपसे जो होना चाहिये उसके बदले विकल्पसे या हठसे ऐसा ही करना है, यही होना चाहिये—ऐसी हठ स्वभावमें काम नहीं आती। बात तो बड़ी अच्छी है, समझने जैसी है। साधारण मनुष्य भी समझ सकता है कि स्वयं किस स्थितिमें है और कार्य कैसे किया जाये।

जितना होना चाहिये उतना पुरुषार्थ न हो और कहे कि मुझे झटपट करना है तो वह जल्दबाजी स्वभावमें काम नहीं आती। आत्मा चिदानन्द प्रभु तो सहजस्वरूप है, उसमें हठ काम नहीं आती।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यहाँ मुमुक्षुकी बात है; ग्यारह अंग पढ़ जाये उसकी बात नहीं है। जिसे सत्य चाहिये उसकी बात है; वह आगमज्ञानसे संतोष नहीं मानता क्योंकि उसे सत्यकी अभिलाषा वर्तती है। आगमज्ञान तो बहिर्लक्षी है, वह कहीं अंतरका ज्ञान नहीं है; अंतरमें जानेके लिये वहाँ रुकना नहीं चाहिये। धीरे-धीरे अंतरमें जानेका पुरुषार्थ करना चाहिये। स्वभावमें हठ काम नहीं आती।

अहो! यह कैसी वस्तु है! ऐसी शुद्ध चैतन्यस्वभावकी महिमा विकल्पसे आयी उसे—एक समयकी पर्यायकी ओटमें पूर्णस्वरूप भगवानके दर्शन नहीं होते, उसका आनन्द नहीं आता इसलिये—जिज्ञासा है कि सहजस्वभाव क्या है? वह मुझे प्राप्त करना है। परन्तु उसमें हठ नहीं करना प्रभु! स्वभावकी ओरका प्रयत्न रखना; स्वभावमें हठ काम नहीं आयगी।

'मार्ग सहज है, व्यर्थकी जल्दबाजीसे प्राप्त नहीं होता।'

जल्दबाजी तो सही, किन्तु व्यर्थकी जल्दबाजीसे काम नहीं होगा। अंतरमें जानेके लिये जितना पुरुषार्थ चाहिये उतना न करे और झूठी जल्दबाजी करे तो मार्ग प्राप्त नहीं होता। वस्तु तो सहज है, व्यर्थकी जल्दबाजीसे सहजकी प्राप्ति नहीं होती। बात समझने जैसी है भाई! अंतरमें ऐसा विचार रखना कि—मेरे प्रयत्नमें कहीं कचास है, वीर्य कहीं और अटक गया है, इसलिये मुझे अंतरोन्मुख होकर अंत तक पुरुषार्थकी जागृति रखना है; परन्तु हठपूर्वक 'नहीं, ऐसा ही करना है'—ऐसा करेगा तो हठ काम नहीं आयगी। वस्तु तो सहजस्वभावी है।

ऋषभदेव भगवान ८३ लाख पूर्व तक गृहस्थाश्रममें रहे, उन्हें खबर थी कि स्वयं इसी भवमें केवलज्ञान प्राप्त करके सिद्धपद प्राप्त करनेवाले हैं, तथापि सहजरूपसे पुरुषार्थ हो तदनुसार कार्य करते हैं। हम तीर्थंकर हैं, इसी भवमें केवलज्ञान प्राप्त करनेवाले हैं, तो झटपट अंतर्मुहूर्तमें चारित्र क्यों नहीं आता? इस प्रकार वहाँ हठ काम नहीं देती। भरत चक्रवर्ती ७७ लाख पूर्व तक चक्रवर्तीपदके बिना रहे, ६ लाख पूर्व चक्रवर्तीपदमें सम्यक्त्वसहित रहे, परन्तु चारित्र नहीं आया! अंतरमें मेरे पुरुषार्थकी कमी है, अंतस्तलमें डुबकी लगाकर जितना पुरुषार्थ होना चाहिये उतना नहीं होता, पुरुषार्थकी न्यूनता है,—ऐसा समझकर शान्ति रखना चाहिये। वहाँ हठ करे कि क्यों नहीं होता? मुझे तो बस, अन्तर्मुहूर्त्तमें केवलज्ञान प्राप्त करना है, तो ऐसा नहीं चल सकता।

कुछ लोग कहते हैं कि सम्यक्दर्शन हुआ और अभी चारित्र नहीं हुआ तो क्या किया? नहीं होता; करोड़ों अरबों वर्ष तक सम्यक्त्वीरूपसे रहते हैं और चारित्र नहीं होता। ऋषभदेव भगवानने छह महीनेके उपवास किये और महावीर भगवानने छठ की!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वह तो सहजरूपसे पुरुषार्थमें आये तदनुसार जानते हैं। ऋषभदेव भगवानने छह महीनेके उपवास किये, इसलिये मैं भी उतने ही करूँ—ऐसा नहीं होता, सहजरूपसे जो विकल्प उठा हो तदनुसार पुरुषार्थसे कार्य करते हैं।

अंतरमें सच्चा पुरुषार्थ करे तो मार्ग प्राप्त होता है। सच्चा पुरुषार्थ न हो उसे व्यर्थकी जल्दबाजी कहते हैं। रागसे या हठपूर्वक मुझे चारित्र लेना है–ऐसी झूठी जल्दबाजी नहीं चल सकती। अंतरमें सच्चा पुरुषार्थ हो तो कार्य सहज होता है। बात बड़ी सरस है, समझने जैसी है।

❀

वचनामृत-३५

अनन्तकालसे जीवको अशुभभावकी आदत पड़ गई है, इसलिये उसे अशुभभाव सहज है। और शुभको बारम्बार करनेसे शुभभाव भी सहज हो जाता है। परन्तु अपना स्वभाव जो कि सचमुच सहज है उसका ख्याल जीवको नहीं आता, खबर नहीं पड़ती। उपयोगको सूक्ष्म करके सहज स्वभाव पकड़ना चाहिये॥ ३५॥

'अनन्तकालसे जीवको अशुभभावकी आदत पड़ गई है, इसलिये उसे अशुभभाव सहज है।'

मिथ्याश्रद्धा, क्रोध-मान-माया-लोभ तथा विषयवासना आदि अशुभभावकी आदत तो अनादिसे पड़ी हुई है। समयसारकी चौथी गाथामें 'श्रुतपरिचितानुभूता'....सर्व जीवलोकको काम-भोग-बंधकी—इच्छा और उसे भोगना ऐसी—कथा सुननेमें आयी है, परिचयमें आयी है और अनुभवमें आयी है ऐसा कहा है। इसलिये अशुभभावकी आदत अनादिसे है। अशुभभाव मानों अपनी वस्तु हो ऐसा विषय-वासनाका रस उसे सहज हो गया है, उसका वह अभ्यस्त हो गया है।

'और शुभको बारम्बार करनेसे शुभभाव भी सहज हो जाता है।'

जीवको शुभभाव भी बारम्बार करनेके कारण सहज हो जाता है। निगोदादि एकेन्द्रियके जीवोंको भी कषायकी मन्दता-तीव्रता क्षण-क्षण होती ही रहती है। वे मन्द–तीव्रभाव अथवा शुभ-अशुभ भाव होते ही रहते हैं इसलिये वह जीवका सहजस्वभाव है ऐसा नहीं है; परन्तु आदत पड़ जानेसे उसे सहज हो गया है।

१२

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'परन्तु अपना स्वभाव जो कि सचमुच सहज है उसका ख्याल जीवको नहीं आता, खबर नहीं पड़ती।'

दस-बीस लाख रुपये हो जायँ तो लगता है कि अब ऐसा करूँ, उनकी कुछ व्यवस्था कर दूँ, कुछ नौकर-चाकर रख लूँ—इसप्रकार बाह्य समाग्रीमें अधिकपना दिखायी देता है इसलिये वहाँ रुका रहता है। उस अशुभभावकी उसे आदत पड़ गई है। बाह्यमें वह कुछ कर नहीं सकता। 'मैं करूँ, मैं करूँ यही अज्ञानता, शकटका भार ज्यों श्वान खींचे।' गाड़ीके नीचे चलनेवाला कुत्ता जैसे मानता है कि यह गाड़ी मुझसे चल रही है, मैं इसे खींच रहा हूँ; उसी प्रकार यह जीव मानता है कि परका कार्य मैं करता हूँ, ऐसी अनादिसे कर्तृत्वबुद्धि हो गई है, अशुभभावकी आदत पड़ गई है।

इसीप्रकार मन्दिर बनवाना, पूजा करना, भक्ति करना, शास्त्र लिखना आदि शुभभाव भी, बारंबार करनेके कारण उनकी आदत पड़ गई है–सहज हो गये हैं। परन्तु शुभाशुभ दोनों आत्माका सहज स्वभाव नहीं है, विभाव हैं। अपना स्वभाव जो वास्तवमें सहज है उसकी जीवको प्रतीति नहीं है। शुभभाव कृत्रिम हैं, मूल स्वभावमें नहीं हैं परन्तु नये-नये होते हैं। उनकी सहज परम्परा चले ऐसी कोई वस्तु नहीं है, तथापि आदतके कारण सहज हो गये हैं।

प्रश्न :—सोनगढ़ एक छोटा-सा गाँव है; यहाँ जो मन्दिर, तथा शास्त्रोंका प्रकाशन आदि हुए वह सब तो आपका प्रताप है ना?

उत्तर :—भाई, यह सब कौन करता है? हम तो किसीसे कुछ करनेको कहते ही नहीं; यह तो सब हो गया है, हो रहा है; इसे करेगा कौन? एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कुछ नहीं कर सकता। जाननेवालेको—ज्ञाताको एकको जानना चाहिये; शेष सब बाह्यमें जो होना हो वह होता है, कोई दूसरा उसमें कुछ कर नहीं सकता।

यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि अपना स्वभाव सहज है; उसमें नया कुछ करना नहीं पड़ता, तथा उसमें कोई कमी भी नहीं है जो पूरी करना पड़े; वह तो न्यूनाधिकतारहित ज्योंका त्यों है। ऐसा त्रैकालिक आनन्दका कन्द स्वयं सहजस्वभावसे प्रभु है उसका उसे ख्याल नहीं आता। जो वस्तु यथार्थ है, अस्तिरूप है, जिसकी उत्पत्ति या व्यय नहीं है—उत्पत्ति और व्यय तो पर्यायमें है—ऐसा स्वयं अतीन्द्रिय आनन्दसे भरपूर पूर्ण अमृतसे परिपूर्ण, त्रैकालिक सहजस्वभावी भगवान है; उसका शुभाशुभभावोंकी आदतके कारण सच्चा ख्याल नहीं आता–प्रतीति नहीं होती। आदतके कारण शुभ-अशुभ सहज लगते हैं, परन्तु भीतर जो सहजस्वरूप है—जिसमें कुछ करना नहीं है, जो नवीन उत्पन्न नहीं होता और जिसका मूलसे व्यय नहीं होता—उसे बराबर लक्षमें लेकर उसकी आदत डाले तो वह सहज वस्तु हाथ आ जाये। अहा! ऐसी बात है भाई!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वास्तवमें अपना स्वभाव सहज ज्ञायकता है। ज्ञायकस्वभावमें आवरण नहीं है, अशुद्धि या न्यूनता नहीं है; वह तो निरावरण पूर्ण शुद्ध है। ऐसे सहज स्वभावका ख्याल नहीं आता इसलिये वह उछल-उछलकर शुभ-अशुभ कृत्रिम भावोंमें जाता है। उसे अपनी–अंतरंग सहज स्वभावकी–महिमाकी खबर नहीं पड़ती।

भाषा सरल है, किन्तु भाव बहुत गंभीर हैं। मध्यस्थ व्यक्ति हो और सुने तो उसे अपने आत्मामें ऐसा लग जाय कि—अहो! ऐसी बात है! ऐसी बात तो मैंने कभी सुनी नहीं है!

'उपयोगको सूक्ष्म करके सहजस्वभाव पकड़ना चाहिये।'

प्रश्न :—उसे सहज स्वभावकी खबर नहीं पड़ती तो अब कैसे खबर पड़ेगी?

उत्तर :—वर्तमान ज्ञानकी पर्यायमें परके लक्षसे स्थूलपनेका व्यापार है उसे छोड़कर, स्वके ज्ञातृत्वमें पर्यायको सूक्ष्म करके उसे पकड़ना चाहिये। शुभ-अशुभ उपयोग है वह तो अत्यन्त स्थूल उपयोग है, और त्रैकालिक आनन्दके नाथका अनुभव—शुद्धोपयोग—वह सूक्ष्म उपयोग है। समयसारके पुण्य-पाप अधिकारमें आता है कि—शुभभाव वह अत्यन्त स्थूल है; अत्यन्त स्थूल ऐसे अशुभभावको छोड़ा परन्तु अत्यन्त स्थूल ऐसे शुभभावको नहीं छोड़ता, इसलिये उसे, अत्यन्त सूक्ष्म ऐसे आत्मानुभवरूप सामायिककी प्रतिज्ञा लेने पर भी, सामायिक नहीं होती। उपयोगको सूक्ष्म करके अर्थात् शुद्ध करके सहज स्वभाव अनुभवना चाहिये, उसे पकड़ना चाहिये; क्योंकि स्वयं सूक्ष्म वस्तु है, वर्ण-गंध-रस-स्पर्शवाली अथवा रागके तथा पुण्य-पापके भाववाली नहीं है। उपयोगको सूक्ष्म करके वह सहज स्वभाव पकड़ना चाहिये, उसे अनुभवमें लेना चाहिये। अहा! सरल गुजराती भाषामें यह पुस्तक आ गई है। इसमें तो सार भरा है।

❃

वचनामृत-३६

जो प्रथम उपयोगको पलटना चाहता है परन्तु अंतरंग रुचिको नहीं पलटता, उसे मार्गका ख्याल नहीं है। प्रथम रुचिको पलटे तो उपयोग सहज ही पलट जायगा। मार्गकी यथार्थ विधिका यह क्रम है॥ ३६॥

'जो प्रथम उपयोगको पलटना चाहता है परन्तु अंतरंग रुचिको नहीं पलटता, उसे मार्गका ख्याल नहीं है।'

जो कोई पहले उपयोग अर्थात् ज्ञानके व्यापारको पलटना चाहता है परन्तु अंतरमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रुचि को नहीं बदलता उसे मार्गकी खबर नहीं है। रुचिको न बदले तो उपयोग भी नहीं बदलेगा। कैसे बदले? परकी रुचि छोड़कर स्वभावकी रुचि करे तो उसका उपयोग स्वोन्मुख हो। जहाँ अभी रुचि ही परमें और शुभमें पड़ी है वहाँ उपयोगको स्वभावके ज्ञानमें तथा ध्यानमें युक्त करना कैसे हो सकता है? वस्तुकी–ध्येयकी रुचिके बिना उपयोग उस ओर कैसे जायगा? इसमें कोई वाद–विवादकी बात नहीं है, वस्तुस्थिति ही ऐसी है।

रुचि अनुयायी वीर्य। जिस ओर रुचि हो उस ओर वीर्य ढले बिना नहीं रहता। यदि स्वभावकी रुचि नहीं है तो उस ओर उपयोग कैसे ढलेगा?–कैसे पलटेगा?

यह पुस्तक प्रकाशित हो जानेसे लोगोंको बड़ा लाभ होगा। लोग पढ़ेंगे और शक्ति अनुसार समझेंगें। भाषा गुजराती है परन्तु भाव गूढ़–गम्भीर हैं। सादी भाषामें मात्र सिद्धान्त भरे हैं।

स्वभावके सिवा बाहर कहीं भी—किसी स्थानमें, मान-प्रतिष्ठामें, रागमें, द्वेषमें या किसी कौतूहलमें रुचि हो—प्रेम हो और उपयोगको बदलना चाहे तो रुचि बदले बिना उपयोग नहीं बदल सकता। अंतरमें प्रभु पूर्ण वस्तु है, उसकी प्रतीति करे, रुचि करे, उसका पोषण हो तो उपयोग बदले। अंतरमें पोषण हुये बिना उपयोग कैसे अंतर्मुख होगा भाई!

शास्त्रका ज्ञान करे, पढ़े–मनन करे, किन्तु अभी रुचि अंतर्मुख नहीं हुई है; स्वभावको छोड़कर अन्य किन्हीं वस्तुओंमें, ज्ञानके विकासमें, धारणामें अधिकता भासती है; तो वह उपयोग अंतर्मुख कैसे होगा? नहीं हो सकता। रुचि बदले बिना ज्ञानका उपयोग नहीं बदल सकता। कितनी सरल भाषा है!

संसारमें तो सब कहते हैं कि यह करो, व्रत करो, तप करो, पंचकल्याणक करो और गजरथ चलाओ। यह सब क्या है? सब धमाल है! अरे, जयपुरकी रथयात्रामें इक्कीस तो हाथी थे। घोड़े, ऊँट गाड़ियाँ अलग! सारा नगर मानों उमड़ पड़ा था। रास्ते, बाजार और गलियाँ खचाखच भरी हुई थीं, आदमी कहीं समाते नहीं थे। बेन्ड बाजे तो कितने थे। लोग कहते थे कि कानजीस्वामी भगवानके रथमें सारथी हैं....दृष्टि पहुँचे वहाँ तक मानव मेदनी!....यह सब तो बाहरी ठाट हैं; इसमें आत्माको कहीं किंचित् लाभ नहीं है प्रभु! जहाँ रुचि हो वहाँ उपयोग कार्य करता है। बाहरके वे रथ, हाथी, घोड़े आदि कहाँ तेरी वस्तु है? बाहरी ठाटवाट या तड़क-भड़कमें कुछ भी अधिकता–विशेषता भाये तो वहाँ रुचि रह गई है, इसलिये तेरा उपयोग अन्तर्मुख नहीं हो सकेगा। यदि रुचि पलटे तो उपयोग भी अन्तर्मुख होनेका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कार्य करे। यद्यपि उसे उपदेश सुनने, भगवानके दर्शनादि करनेका प्रेम होता है, किन्तु वह सब उपयोग परोन्मुख है; वास्तवमें तो वह अशुद्ध उपयोग है। रुचि पलटे तभी उपयोग पलट सकता है। उपयोगको बदलनेका यह एक ही उपाय है।

✽

ता. १६-६-७५

बेन (बहिनश्री चंपाबहिन) तो आराधनाकी देवी हैं। पवित्रतामें सारे भारतमें अजोड़ हैं। उनकी छत्र-छाया सारे सोनगढमें है। ओहो! बेन तो भगवतीस्वरूप हैं। तुझे और कहाँ ढूँढ़ने जाना है? उनके दर्शन कर ना! एकबार भावपूर्वक जो उनके दर्शन करेगा उसके अनंत कर्मबंधन ढीले हो जायँगे। जो उनके चरणोंमें लिपटकर रहेंगे उन्हें सम्यदर्शन न हो, तत्त्वका अभ्यास न हो, तब भी उनका बेड़ा पार है।

—पूज्य गुरुदेव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-११

ता. १६-६-७८

वचनामृत-३६

यह छत्तीसवाँ बोल चलता है। जरा फिरसे लेते हैं।

'जो प्रथम उपयोगको पलटना चाहता है परन्तु अंतरंग रुचिको नहीं पलटता, उसे मार्गका ख्याल नहीं है।'

क्या कहना चाहते हैं? उपयोगको आत्मोन्मुख करनेके लिये कहते हैं कि—शरीर-वाणी-मनमें और स्त्री-पुत्र-परिवार-धन्धेमें तथा दया-दान-व्रत-भक्ति आदि बाह्य कार्योंमें रुचिपूर्वक उपयोग है वह मिथ्या उपयोग है। आत्माके सिवा बाह्य वस्तुओंमें जबतक रुचि है तबतक उपयोग अंतरोन्मुख नहीं हो सकेगा। सारी दुनियाकी ओरसे उपयोगको पलटकर अंतरमें जो निज सहजस्वरूप है उस ओर उपयोगको ले जाना है ना? परन्तु प्रथम आत्माके प्रति रुचि ही न हो तो उपयोग अंतरमें कैसे जा सकेगा? नहीं जा सकता।

एक ओर राम और एक ओर ग्राम। अन्य सबकी रुचि छूटकर जबतक पूर्ण आनन्द एवं ज्ञानस्वरूप ऐसे भगवान आत्माकी रुचि न हो तबतक उपयोग अंतर्मुख नहीं हो सकेगा। व्यापार-धन्धा आदिके विकल्प पाप हैं और दया-दान-व्रत-तपके विकल्प पुण्य हैं; उनमें जो रचापचा रहता है उसे धर्म नहीं है। जिसने अंतरमें ज्ञायकतत्त्वकी रुचि नहीं की और उपयोगको परसे हटाना चाहता है उसे मार्गकी खबर नहीं है।

वस्तु पूर्णानन्दसे भरपूर है। अहा! वस्तु तो अद्भुत है, पूर्ण है। इस आत्मामें गुणोंकी संख्या अनंत है। उन अनंतमें यह गुण अन्तिम—ऐसा जिसमें है नहीं ऐसे अमाप गुणोंके निधानस्वरूप निज आत्माकी रुचि किये बिना उपयोग परसे पलट नहीं सकता, निजघरमें आ नहीं सकता।

'हम तो कबहुँ न निज घर आये...
पर घर फिरत बहुत दिन बीते, नाम अनेक धराये...हम तो०'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

—अंतरंग रुचिको नहीं पलटता उसे मार्गकी खबर नहीं है। साधु हुआ, बाह्यत्याग किया, परन्तु अंतरंग रुचि–दृष्टि नहीं बदली इसलिये उसके जन्म-मरणका अन्त नहीं हुआ।

'प्रथम रुचिको पलटे तो उपयोग सहज ही पलट जायगा।'

अनंत-अनंत अपार, जिनकी संख्याका पार नहीं है ऐसे ज्ञानादि गुणोंसे निर्मित द्रव्य है उसकी रुचि करे तो उपयोग सहज ही पलट जायगा। अहा! कितनी सरल भाषा किन्तु भाव कितने ऊँचे हैं!

यह आत्मा अनन्तानन्त शक्तियोंका संग्रहालय है प्रभु! उसकी रुचि करे तो तुरन्त परिवर्तन हो जाय। रुचिके बिना व्रत-तपादि अन्य लाख प्रयत्न करे वह सब मिथ्यात्व है; क्योंकि मूल वस्तुका विश्वास और रुचि नहीं हुई है।

अहा! अंतरमें वस्तुका स्वभाव अमाप है; भले ही ज्ञानमें माप आ जाये; अनन्तका माप ज्ञानमें अनन्तरूपसे आ जाये; किन्तु उसकी शक्तियोंकी गिनती करते-करते अब यह अन्तिम शक्ति है, अब अनन्तका अन्त आ गया–ऐसा जहाँ नहीं है उस अनंतानंत सहज गुणोंके स्वामी ऐसे आत्माकी रुचि करे अर्थात् प्रथम रुचिको बदले तो उपयोग भी सहज ही पलट जायगा। ज्ञानका जो व्यापार परज्ञेयकी ओर झुका है वह रुचि पलटनेसे स्वोन्मुख हो जायगा। ऐसी बात है! ऐसा सुननेको नहीं मिलेगा। यह तो बेनके शब्द सरल, किन्तु गम्भीरता बहुत है।

'मार्गकी यथार्थ विधिका यह क्रम है।'

मार्गकी यथार्थ विधि यह है कि–प्रथम रुचिको पलटनेसे उपयोग अंतरमें सहजरूपसे जाता है। जबतक अभी वर्तमानदशामें व्रत-तप-प्रतिमा आदिके शुभ रागकी और उसके फलरूप अनुकूल सामग्रीकी रसपूर्वक रुचि है तबतक उसका उपयोग अंतर्‌चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मामें नहीं जा सकेगा। जहाँ रुचि होगी वहीं उसका वीर्य काम करेगा। यह मार्गकी यथार्थ विधि है।

आत्मा अनन्त गुणका पिण्ड प्रभु है; क्षेत्रसे वह भले असंख्यप्रदेशी हो, कालसे भले एकसमयमें हो—एक समयमें परिपूर्ण वस्तु है ना? वह तो त्रिकाल रहनेकी अपेक्षासे त्रैकालिक कही है, वैसे तो एकसमयमें परिपूर्ण—अनन्तगुणका पिण्ड—वस्तु है। उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य एक समयमें ही हैं ना? त्रैकालिक ध्रौव्य वह तो अपेक्षित बात हो गई। वास्तवमें तो वर्तमानमें ही वह वस्तु उत्पाद-व्ययुक्त तथापि ध्रुवतावाली है। उस ध्रौव्यके गुणोंकी संख्याका पार नहीं है। तथा जीवने अनादिकालकी अपेक्षासे स्वर्ग–नरकादि भवके अनन्त परावर्तन किये हैं। उस अनन्त द्रव्य–क्षेत्र–काल–भव–भावके परावर्तनकी भी हद

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आ गई; परन्तु इस प्रभु आत्मामें जो जो अनन्तान्त गुणोंका वैभव है उसका कोई पार नहीं है। वह तो जिसका कोई पार ही न मिले ऐसा अपार चैतन्यसिन्धु है।

अन्तिम स्वयंभूरमण समुद्रके बिन्दुओंका तो पार है; असंख्य हैं अनन्त नहीं हैं; अनन्त बिन्दुओंके लिये क्षेत्र भी अनन्त योजन विस्तारवाला चाहिये। वह समुद्र तो असंख्य योजन विस्तारवाला है; उसका अन्त है। परन्तु आत्माकी शक्तियाँ अपार अनन्त हैं। उन अनन्त गुणोंको रहनेके लिये अधिक प्रदेश अर्थात् अनन्त प्रदेशकी आवश्यकता नहीं है। असंख्य प्रदेशोंमें उसके अनन्तगुण रह सकते हैं। ऐसी स्वभावकी शक्तिकी अमापता है। ऐसे सहज स्वभावकी जिसे रुचि हुई उसका उपयोग अन्तर्मुख हुए बिना रहेगा ही नहीं। मार्गकी सच्ची विधि इस प्रकार है।

❀

वचनामृत-३७

'मैं अबद्ध हूँ,' 'ज्ञायक हूँ,' यह विकल्प भी दुःखरूप लगते हैं, शान्ति नहीं मिलती, विकल्पमात्रमें दुःख ही दुःख भासता है, तब अपूर्व पुरुषार्थ उठाकर वस्तुस्वभावमें लीन होने पर, आत्मार्थी जीवको सब विकल्प छूट जाते हैं और आनन्दका वेदन होता है।। ३७।।

"'मैं अबद्ध हूँ,' 'ज्ञायक हूँ,' यह विकल्प भी दुःखरूप लगते हैं, शान्ति नहीं मिलती, विकल्पमात्रमें दुःख ही दुःख भासता है,"....

व्यापार-धन्धा तथा स्त्री-परिवारका पालन वह तो मात्र पाप ही है, परन्तु दया-दान-व्रत-भक्तिके शुभपरिणाम हैं वे भी दुःखरूप हैं, राग हैं ना? राग आकुलतारूप है। अरे! यह तो दूरकी बात है परन्तु 'मैं ज्ञायक हूँ' और 'मैं अबद्ध हूँ' यह विकल्प भी ज्ञानीको दुःखरूप लगते हैं। समयसारकी १४२वीं गाथाकी टीकामें कहा है ना! कि—आत्मा अबद्ध है, पूर्ण है, परन्तु उससे क्या? उससे तू घरमें कहाँ आया? गजब है ना! बाहरकी और व्यवहारकी बात तो दूर रही, किन्तु 'मैं अबद्ध हूँ' ज्ञायक हूँ, मुक्त हूँ, गुणोंका असीम सागर हूँ, ऐसे—वस्तुके निश्चयस्वरूपके—विकल्प उठें वे भी दुःखरूप हैं।

संसारके सर्व कार्य तो दुःखरूप हैं ही, परन्तु व्रत-तप आदि पुण्यकार्य भी दुःखरूप हैं, वे कहीं वस्तुभूत नहीं हैं—राग हैं। यहाँ तो 'ज्ञायक हूँ और अबद्ध हूँ' वह है अवश्य, परन्तु उसका विकल्प दुःखरूप है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अरे! जन्म-मरणका नाश करनेकी रीति कोई अपूर्व है! मैं वर्तमानमें पूर्ण ज्ञायक हूँ, त्रैकालिक ध्रुव पदार्थ हूँ, मैं परमार्थसे प्रमत्त भी नहीं हूँ और अप्रमत्त भी नहीं हूँ। शुभ और अशुभ भाव जीवकी पर्यायमें होते हैं, उन्हें व्यवहारनयसे—अभूतार्थनयसे जीव कहा जाता है, परन्तु निश्चयनयसे तो ज्ञायकभाव शुभ-अशुभभावरूप कभी हुआ नहीं है; क्योंकि वह तो अचेतन है, चैतन्य झिलमिलाते, चमकते, प्रकाशित होते अंश उसमें नहीं हैं। जिसप्रकार मणिमें चमक उठती है, उसीप्रकार जिसमें अनन्तगुणोंकी चमक उठे ऐसा चैतन्यमणि–भागवान आत्मा–मैं हूँ; मैं चैतन्यपदार्थ ऐसा हूँ, ऐसा भी जो पक्षका विकल्प उठे वह भी दुःखरूप लगता है। उन विकल्पोंमें भी आत्मशान्ति नहीं है। विकल्पमात्रमें दुःख ही दुःख लगता है।

बड़ा मकान बनवाये, अच्छा प्रीतिभोज दे और अभिमान करे कि यह सब मैं करता हूँ—यह सब विकल्प-राग तो दुःख हैं ही, किन्तु यहाँ तो 'मैं अबद्ध हूँ' 'मैं ज्ञायक हूँ'–ऐसी सूक्ष्मरूपसे अंतर्जल्पकी–रागकी वृत्ति उठे वह भी दुःख ही है; उसमें शांति नहीं मिलती। ज्ञानीको विकल्पमात्रमें दुःख ही भासता है।

...'तब अपूर्व पुरुषार्थ उठाकर वस्तुस्वभावमें लीन होने पर, आत्मार्थी जीवको सब विकल्प छूट जाते हैं और आनन्दका वेदन होता है।'

यह तो प्रथम सम्यग्दर्शन होनेके कालमें व्यवहारके अन्य जो स्थूल विकल्प आयें वे तो दुःखरूप हैं, परन्तु ज्ञायक हूँ, अबद्ध हूँ—ऐसी जो मनके सम्बन्धसे विकल्पोंकी वृत्ति उठे वह भी दुःखरूप लगे, शान्ति न मिले, तब उसका उपयोग अंतरमें जाता है और तब पहले कभी नहीं किया ऐसा अपूर्व पुरुषार्थ उठाने पर जीवके समस्त विकल्प छूट जाते हैं और निर्विकल्प आनन्दका वेदन होता है। निश्चय सत्ता यह है, बाकी सब मिथ्या हैं।

मुनिव्रत धार अनन्तबार ग्रीवक उपजायो;
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।

—उस मुनिव्रतके समय भी पुरुषार्थ स्वरूपके ओरका नहीं किया था। अंतरमें स्वभावका अपूर्व पुरुषार्थ उठाने पर आत्मस्वभावमें लीन होने पर, पुरुषार्थको विकल्पसे हटाकर अंतरमें जानेपर आत्मार्थी जीवके सब विकल्प छूट जाते हैं। जिसकी दृष्टिमें, जिसके प्रयोजनमें भगवान आत्मा ही है ऐसे आत्मार्थी जीवको विकल्प छूटनेसे अंतरमें जो अतीन्द्रिय आनन्दका वेदन होता है उसका नाम सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र कहनेमें आता है। जीवको समस्त विकल्प छूट जाने पर अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दका वेदन होता है; क्योंकि भगवान आत्मा स्वयं अतीन्द्रिय आनन्दका कन्द है। जब आनन्द-

१३

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निधानका आदर किया, स्वीकार किया, सत्कार किया, वह ज्ञान-ध्यानमें उपादेयरूपसे आया तब समस्त विकल्प छूटकर पर्यायमें आनन्दका वेदन होता है। उसका नाम सम्यग्दर्शन और आत्मज्ञान कहनेमें आता है।

यह कठिन लगता है इसलिये लोग धर्मके नामसे बाह्यमें—मन्दिर बनवाना, दान करना, रथयात्राएँ निकालना आदिमें—लग जाते हैं; किन्तु बाहर कहीं धर्म–शान्ति नहीं है।

शुभाशुभ विकल्प छूटकर, अरे! अबद्ध और ज्ञायकके विकल्प भी छूटकर, जब अपूर्व पुरुषार्थसे स्वरूपसन्मुख होता है तब अतीन्द्रिय आनन्दका अनुभव होता है उसका नाम धर्म है। उसका नाम जन्म-मरणसे रहित होनेका पंथ है।

❃

वचनामृत-३८

आत्माको प्राप्त करनेका जिसे दृढ़ निश्चय हुआ है उसे प्रतिकूल संयोगोमें भी तीव्र एवं कठिन पुरुषार्थ करना ही पड़ेगा। सच्चा मुमुक्षु सद्गुरुके गंभीर तथा मूल वस्तुस्वरूप समझमें आये ऐसे रहस्योंसे भरपूर वाक्योंका खूब गहरा मंथन करके मूल मार्गको ढूँढ़ निकालता है।। ३८ ।।

'आत्माको प्राप्त करनेका जिसे दृढ़ निश्चय हुआ है उसे प्रतिकूल संयोगोंमें भी तीव्र एवं कठिन पुरुषार्थ करना ही पड़ेगा।'

स्वरूपको अनादिकालमें कभी प्राप्त नहीं किया है, उसके सिवा सब कुछ प्राप्त किया—राग, पुण्य-पापके भाव और उसके फलरूप संयोग मिले। मुझे संयोग प्राप्त हुए ऐसा अज्ञानी मानता है; संयोग उसे प्राप्त होते ही नहीं, क्योंकि उनका अस्तित्व कहीं आत्मामें नहीं आता। हमारी स्त्री, हमारे बच्चे, हमारा मकान ऐसा मिथ्याभाव–यह मेरे और यह तेरे ऐसे विकल्प मिथ्या दृष्टिके कारण उठते हैं—जिसे छोड़ना है और आत्माको प्राप्त करनेका जिसने दृढ़ निश्चय किया है उसे चाहे जैसे प्रतिकूल संयोगोंमें भी तीव्र और कठिन पुरुषार्थ करना ही पड़ेगा।

अहा, सरल गुजराती भाषा! भगवान आत्मा अंतरमें चैतन्य-रत्नाकर है। क्षेत्रसे जिस प्रकार आकाशका अंत नहीं है, उसीप्रकार भावसे तथा गुणोंकी संख्यासे जिसका अंत न मिले ऐसी, यह कौन-सी वस्तु है! ऐसा जो निजभगवान आत्मा उसे प्राप्त करनेका दृढ़ निश्चय हुआ है उसे प्रतिकूल संयोगोंमें—शरीरमें रोग आये, निर्धनता हो, प्रतिष्ठा चली जाय, दूकान जल जाये, बीमा कंपनी दिवाला निकाल दे, चारों ओर विपरीत परिस्थितियाँ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हों ऐसे समय—भी तीव्र पुरुषार्थ अर्थात् कठिन पुरुषार्थ करना ही पड़ेगा, दुर्बल और हीन पुरुषार्थ नहीं। प्रतिकूलताकी ओरका लक्ष छोड़कर स्वयं अंतरमें पूर्णानन्दस्वभाव जितना है उस ओर पुरुषार्थको लगा देना चाहिये। आया कुछ समझमें? उसे कठिन पुरुषार्थके बिना अंतरमें समता—शान्ति नहीं आयगी।

चाहे जैसे प्रतिकूल संयोग हों, उनकी जिस काल जो अवस्था हो, शरीरमें कुछ भी हो जाये, ऐसे प्रसंगोंमें पुरुषार्थको तीव्र बनाकर अंतरोन्मुख करना होगा; उसके बिना कोई उपाय नहीं है। मैं रोगी हूँ, मैं निर्धन हूँ ऐसा मानेगा तो बस, मर ही गया! रागभावमें अपना पूर्ण अस्तित्त्व मानकर यदि तूने त्रैकालिक पूर्ण स्वभावका, पुरुषार्थके पिण्डका, निज सहज अस्तित्वका अनादर किया तो पुरुषार्थ उठेगा ही कहाँसे? अहा! ऐसी बात है!

'सच्चा मुमुक्षु सद्गुरुके गंभीर तथा मूल वस्तुस्वरूप समझमें आये ऐसे रहस्योंसे भरपूर वाक्योंका खूब गहरा मंथन करके मूल मार्गको ढूँढ़ निकालता है।'

ज्ञानीके (मूल वस्तुस्वरूप समझमें आये ऐसे गम्भीर और रहस्योंसे भरपूर) वचनोंका मंथन करके सच्चा मुमुक्षु मार्ग ढूँढ़ लेता है। अमाप जिसकी शक्ति है, ज्ञान, आनन्दादि अनन्त गुणोंमें अन्तिम गुण कौन-सा ऐसा जिसमें कोई अंत नहीं है ऐसे आत्मामें पुरुषार्थ करके, उसका खूब गहरा मंथन करके, वस्तुस्वभावकी थाह लेकर, मुमुक्षु मूल मार्गको खोज लेता है। अभी तो यह प्रथम सम्यग्दर्शनकी बात है; चारित्रकी बात तो अभी बहुत दूर है भाई!

बाह्यमें साधुदशा धारण की, उपसर्ग और परीषह सहन किये, कषाय मन्द करके नववें ग्रैवेयकमें गया, परन्तु वह कोई धर्म नहीं है। बाह्य त्यागका अभिमान हो जाय कि—हम त्यागी हैं, व्रतधारी हैं, तपस्वी हैं; अल्प आहार आदि मोक्षका साधन है। भाई, क्या कहें? अरे, छह-छह महीनेके उपवास किये वह सब क्रिया रागकी है। जिसे रागके विकल्पमें ही पुरुषार्थ लगता है उसने ज्ञायकस्वभाव—आनन्दके भण्डार—पर रागके साथ एकत्वबुद्धिका ताला लगा दिया है। उसे धर्म नहीं होगा भाई!

आत्माको प्राप्त करनेका जिसने पक्का निर्णय किया उसे प्रतिकूल संयोगोंमें भी गहरा और तीव्र पुरुषार्थ उठाना ही पड़ेगा। मुमुक्षुजीव ज्ञानीके गंभीर वाक्योंका खूब अर्थात् गहरा मंथन करके मार्ग खोज लेता है। खूब अर्थात् अत्यधिक; गहरा अर्थात् त्रैकालिक आनन्दसागरके—ध्रौव्यके—धरातल तक पहुँचकर; मंथन अर्थात् अंतरकी एकाग्रता;—उसके द्वारा मूलमार्गको ढूँढ़ लेता है। विकल्प होते हैं किन्तु धर्म नहीं है। अहा! ऐसा धर्म है; यहाँसे धर्मका प्रारम्भ होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यह सुनकर तुझे दुःख होगा कि—यह जो हम व्रतादिका पालन करते हैं वह सब शुभराग धर्म नहीं है उसमें! हाँ भाई! वह सब शुभराग है, धर्म नहीं है; धर्म तो, भगवान आत्मा जो कि आनन्दस्वरूप है उसके अतीन्द्रिय आनन्दके वेदनमें रहना, वह है।

पद्मनन्दि मुनिराज ब्रह्मचर्य-अधिकारमें कहते हैं कि शरीरसे और मनसे अनन्तबार ब्रह्मचर्यका पालन किया, परन्तु वह धर्म नहीं है, शुभभाव है। अनादि-अनन्त नित्यानन्द चैतन्य प्रभु जो भीतर विराजमान है उसमें गये बिना ब्रह्मचर्य—ब्रह्म अर्थात् आत्मा, उसमें चर्य अर्थात् रमना—नहीं कहा जाता। पद्मनन्दि मुनिराज भावलिंगी संत थे। ब्रह्मचर्यकी बहुत व्याख्या करके फिर कहते हैं कि—हे युवको! हे युवतियो! तुम्हें शरीरमें और विषयमें प्रेम होनेसे यह ब्रह्मचर्यकी बात अच्छी न लगे, न रुचे तो क्षमा करना। हम तो मुनि हैं, ब्रह्मानन्दमें रहनेवाले संत हैं। हमारे पास और क्या आशा रखोगे? हम तो यही बात कहेंगे। उसीप्रकार सम्यग्दर्शनकी—धर्मकी—ऐसी व्याख्या करनेसे किसीको अच्छा न लगे तो क्षमा करना। और क्या हो? मार्ग तो भाई! ऐसा है। हमारे पास इसके सिवा और क्या आशा रख सकते हो?

दया-दान-व्रत-तपादि करना चाहिये; इस प्रकार तुम्हें 'करने-करने'का उत्साह आता है, किन्तु भाई! 'करना' वह तो मरना है। प्रभु! तुझे अपनी प्रभुताकी खबर नहीं है। साधक जीव, मुमुक्षु गुरुके वाक्योंका गहरा मंथन करके, अंतरमें जहाँ निज चैतन्य भगवान विराजमान है वहाँ एकाग्रता करके, तत्त्वके रहस्यमय भावोंका अंतरमें भावभासन करके, मार्गको ढूँढ़ लेता है। बाह्यमें भाषण देना वह मार्ग तथा यह अंतरका मार्ग—दोनों भिन्न हैं भाई!

❀

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-१२

ता. १७-६-८१

वचनामृत-३६

सहज दशाको विकल्प करके नहीं बनाये रखना पड़ता। यदि विकल्प करके बनाये रखना पड़े तो वह सहज दशा ही नहीं है तथा प्रगट हुई दशाको बनाये रखनेका कोई अलग पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता; क्योंकि बढ़नेका पुरुषार्थ करता है जिससे वह दशा तो सहज ही बनी रहती है।। ३६।।

'सहज दशाको विकल्प करके नहीं बनाये रखना पड़ता।'

आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप शुद्ध द्रव्य है; उसके त्रैकालिक अतीन्द्रिय स्वभावका अनुसरण करे, रागसे भिन्न होकर, जो अंतर्दृष्टि और अनुभव हुआ, निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुआ वह सहज दशा है। उस सहज दशाको विकल्प करके नहीं बनाये रखना पड़ता। क्या कहते हैं? कि वस्तुका स्वरूप है वह एक समयमें पूर्ण ब्रह्म प्रभु है। सम्यग्दर्शनका जो विषय, ध्येय—अतीन्द्रिय अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त वीतरागता आदि अनन्त गुणस्वरूप त्रैकालिक ध्रुव अभेद आत्मा—उसका, रागरहित जो वस्तु है उसका, वेदन हुआ उस सहज दशाको राग करके बना रखूँ तो रहे—ऐसा विकल्प करके नहीं बनाये रखना पड़ता। रागसे भिन्न होकर परिणति सहज शुद्ध हुई वह, राग करूँ या विकल्प करूँ तो रहेगी—ऐसा नहीं है। अहा! मार्ग ही ऐसा है।

शुद्ध चैतन्यस्वरूप भगवान निज आत्माका अनुभव हुआ, रागके विकल्पोंसे भिन्न हुआ, ऐसी सहज दशाको 'यह विकल्प करके बना रखूँ, वह विकल्प करके बना रखूँ'—इसप्रकार विकल्प करके नहीं बनाए रखना पड़ती; वह तो सहज स्वभावकी सहजदशा है। प्रभु! तुझे अपनी महानता नहीं सूझती, इसलिये तू ऐसी मान्यता करे कि रागसे और निमित्तसे मुझे महानता मिलेगी तुझे शोभा नहीं देता; अंतरमें तेरे बड़प्पनका तेरी प्रभुताका पार नहीं है। संख्यासे अनन्तानन्त गुणोंसे भरपूर ऐसे इस

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रभुको रागसे तथा निमित्तसे लाभ हो यह मान्यता सचमुच कलंक है। छापेको जिस रंगमें डुबोया जायगा उसी रंगकी छाप पड़ेगी, उसीप्रकार सहज स्वभाव भगवान आत्माका रंग—प्रेम लगा हो उसे भीतर सहज् दशा प्रगट होगी। वह दशा विकल्पसे हो अथवा रहे ऐसा नहीं है।

'यदि विकल्प करके बनाए रखना पड़े तो वह सहज दशा ही नहीं है।'

सहजात्मस्वरूप प्रभु नित्य ध्रुव है। उसके ध्यानसे प्रगट हुई सहज निर्मल दशाको, शुभराग करूँ—पूजा, भक्ति, श्रवण, दया-दानादि विकल्प करूँ—इसप्रकार विकल्पसे नहीं बनाए रखना पड़ता। विकल्पसे बनाए रखना पड़े तो वह सहज दशा ही नहीं है। आत्मस्वभावमें एकाग्र होनेपर रागके साथकी एकता टूटती है। जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी निर्मल सहजदशा प्रगट होती है वह इसप्रकार होती है। वह होनेके पश्चात् उसे बनाए रखनेके लिये विकल्प करें, स्वाध्याय करें, मनन करें, शुभराग करें तो वह दशा टिकी रहेगी—ऐसा नहीं है। विकल्पसे टिका रखना पड़े तो वह सहजदशा ही नहीं है। यह वस्तुस्थिति है।

आत्माकी सहजदशाको बनाए रखनेके दो बोल हुए : (१) सहजदशाको विकल्पकी वृत्ति करे तो बनाये रखा जा सकता है—ऐसा नहीं हैं; (२) यदि विकल्प करके टिकाए रखना पड़े तो वह सहजदशा ही नहीं है। अब तीसरा बोल है—

'तथा प्रगट हुई दशाको बनाये रखनेका कोई अलग पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता; क्योंकि बढ़नेका पुरुषार्थ करता है जिससे वह दशा तो सहज ही बनी रहती है।'

जहाँ वस्तुके स्वभावकी दृष्टि और अनुभव हुआ वहाँ पुरुषार्थका झुकाव उस ओर सहज बना ही रहता है; उसके लिये कोई नया पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता।

अहा! यह पुस्तक भाग्ययोगसे प्रकाशित हो गई है। इसमें शुद्ध मक्खन ही भरा है। चाहे जैसा आग्रही हो, एक बार मध्यस्थ होकर सुने और विचारे तो उसे भी ऐसा लगेगा कि मार्ग तो यह एक ही है।

यह आत्मा सहजात्मस्वरूप पूर्ण पवित्र निर्मल वस्तु है। दया-दान, व्रत-तप तथा भक्ति और गुण-गुणीके भेदरूप विकल्प आदिके जो भाव हैं वे शुभराग हैं। उस रागसे भी भिन्न होकर जो पवित्र दशा प्रगट हुई है वह शुभराग करूँ तो रहे—ऐसा हो तो वह सहजदशा नहीं है। सहज दशाकी ओर पुरुषार्थकी सावधानी निरंतर वर्तती ही है। 'रुचि अनुयायी वीर्य।' अंतरमें जो रुचि हुई, उसकी ओर उसका वीर्य सहजभावसे झुकता ही रहता है; क्योंकि बढ़नेका पुरुषार्थ करता है इसलिये वह दशा तो सहज ही बनी रहती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा वह गुणी और ज्ञान, आनंदादि उसके गुण,—ऐसा भेद करना भी रागका भाग है, विकल्प है। वह विकल्प तोड़कर जिसने सम्यक्त्वदशा, सहज दशा, निर्विकल्प दशा, धर्मकी दशा प्रगट की है,—भगवान आत्मा ध्रौव्यशक्तिरूप है, उस ध्रुवशक्तिकी पर्यायमें व्यक्तता प्रगट की है—उसे वह दशा बनाए रखनेके लिये अन्य कुछ नवीन करना पड़े ऐसा नहीं है। उसका पुरुषार्थ सहज उस ओर झुकता ही रहता है, इसलिये वह दशा सहज बनी रहती है। अहा! ऐसी बात है! दुनियासे अलग बात है!

दुनियाको खबर ही नहीं है कि धर्म क्या है। दया पालन करें, हिंसा न करें, व्रत पालें, शुभ क्रियाएँ करें तो धर्म होगा ऐसा लोग मानते हैं। उसमें तो धूल भी धर्म नहीं होता। ऐसे राग तो जीवने अनंतबार किये हैं। यहाँ तो अंतरमें जो आत्मा सत् है, विद्यमान है, स्वयंसिद्ध है, शाश्वत–अविनाशी है, और पूर्ण स्वभावसे परिपूर्ण वस्तु है, उसकी जब अन्तरमें प्रतीति हो, तब रागके विकल्पसे सहज भिन्न होता है। वह सहजदशा व्रतादिका राग करूँ तो रहेगी—ऐसा नहीं है। वह दशा बनाये रखनेके लिये अन्य नवीन पुरुषार्थकी आवश्यकता नहीं है। उसका पुरुषार्थ तो उस ओर लगा हुआ ही है।

अनादिकालसे यह सहजात्मस्वरूप भगवान आत्मा स्वयं क्या है उसकी तुझे खबर नहीं है, और पर जीवोंके प्रति दयाका भाव रखूँ, दान दूँ, व्रतोंका पालन करूँ आदि जो परका कर्तृत्वभाव है वह सब मिथ्याभाव है, रागभाव है, और राग वह स्वरूपकी हिंसा है। उस रागसे भिन्न होकर, आत्माका जो यथार्थ स्वरूप अनुभवमें आता है उस सहज दशाको बनाए रखनेके लिये कोई अलग पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता; क्योंकि बढ़नेका पुरुषार्थ तो वह करता ही है इसलिये वह दशा तो सहज ही बनी रहती है।

आत्माके आश्रयसे जो पुण्य-पापरहित भावस्वरूप शुद्धि हुई वह संवर दशा है; और उस शुद्धिमें आत्माके आश्रयसे वृद्धि हो वह निर्जरा है। उसमें स्वोन्मुखताका पुरुषार्थ है। उस सहजदशाको टिका रखनेके लिये नवीन पुरुषार्थ करना पड़े ऐसा नहीं है।

आत्मा शरीरसे तथा कर्मसे भिन्न है। दया-दान एवं व्रत-भक्तिके भाव हैं वह राग है, विकल्प है। उस रागसे भिन्न अंतरमें शुद्ध चैतन्यघन आत्माकी दृष्टि करके उसका अनुभव होना तथा अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद आना उसका नाम धर्म है।

यहाँ तो सर्वज्ञ परमात्मा प्रभु ऐसा कहते हैं कि–तेरे आत्माकी दशामें पुण्य-पापके विकल्प उठते हैं वह राग है। वह राग धर्म नहीं है और धर्मका कारण भी नहीं है। धर्मका कारण तो अंतरमें जो सच्चिदानंद प्रभु अतीन्द्रिय आनन्दकन्द है उसका रागसे भिन्न होकर अनुभव करना—अतीन्द्रिय आनन्दका आहार करना—वह है। उसका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नाम धर्मका प्रारम्भ है; पूर्णता तो बादमें होगी। धर्मकी बात ऐसी है प्रभु! यहाँ तो यही बात चलती है। यहाँसे (सोनगढ़से) अभी तक करीब बीस लाख पुस्तकें छप चुकी हैं। यहाँ ४५ वर्षसे यही बात चलती है। सत्य बात तो यही है। लोग भी प्रेमपूर्वक सुनते हैं और पढ़ते हैं।

*

वचनामृत-४०

साधकदशामें शुभभाव बीचमें आते हैं, परन्तु साधक उन्हें छोड़ता जाता है; साध्यका लक्ष नहीं चूकता।—जैसे मुसाफिर एक नगरसे दूसरे नगर जाता है तब बीचमें अन्य-अन्य नगर आयें उन्हें छोड़ता जाता है, वहाँ रुकता नहीं है; जहाँ जाना है वहींका लक्ष रहता है॥ ४०॥

'साधकदशामें शुभभाव बीचमें आते हैं, परन्तु साधक उन्हें छोड़ता जाता है; साध्यका लक्ष नहीं चूकता।'

रागके विकल्पसे भिन्न अपनी वस्तुका जिसने अनुभव किया है; रागसे लाभ नहीं है, मेरी अपनी वस्तु ही लाभसे भरपूर है—ऐसी साधकदशा जिसे उत्पन्न हुई है, उसे दया-दानादि शुभभाव बीचमें आते हैं। अशुभसे बचनेके लिये वह शुभभाव आता है, परन्तु वह धर्म नहीं है। मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप सच्चिदानंद पूर्ण हूँ ऐसी दृष्टि होने पर ही जबतक सर्वज्ञ वीतराग न हो तबतक बीचमें शुभभाव आता है। साधक उसे विघ्नकारी और दुःखरूप जानता है; उसे वह छोड़ता है।

जिसे आत्माका सम्यग्दर्शन हुआ, आत्माका यथार्थ स्वरूप जिसके ज्ञानमें आया और जो रागसे भिन्न हो गया;–उसे बीचमें शुभराग आता है; परन्तु साधक तो उसे छोड़ता हुआ साध्यकी ओर आगे बढ़ता जाता है। धर्मात्माको दयाका, दानका, भक्तिका, जिनमन्दिर बनवाने आदिका शुभभाव आता है परन्तु उसे वह हेय जानता है, उसमें आदरणीय बुद्धि नहीं है।

प्रश्नः—सोनगढके यह जिनमन्दिर, इन लाखों शास्त्रोंका प्रकाशन तो आपके ही द्वारा हुआ है ना महाराज?

उत्तरः—नहीं...नहीं...; परका जो होना हो वह उसके कालमें होता है, हमसे परमें कुछ नहीं हो सकता। आज नैरोबी (अफ्रीका)में जिनमन्दिरका शिलान्यास है। विदेशमें पहली बार जिनमन्दिरका निर्माण हो रहा है। लाखों रुपये (शिलिंग) लगाकर वे जिनमन्दिर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बनवा रहे हैं। हम तो पहले से ही कह रहे हैं कि उसमें धर्म बिलकुल नहीं है; मन्द कषाय हो तो शुभभाव है। अशुभसे बचनेके लिये शुभ आता है, परन्तु उसमें धर्म नहीं है। जन्म-मरणके फेरे कम हों ऐसी वस्तु वह नहीं हैं। यहाँ तो ४५ वर्षसे यही एक बात कह रहे हैं। वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है।

'यह, बेनके (बहिनश्री चम्पाबेनके) वचनामृत हैं। बेनको असंख्य अरब वर्षका जातिस्मरण ज्ञान है। यह बैठी हैं वे बेन (चम्पाबेन) हैं। उन्हें पूर्वभवका, उससे पहलेके भवका, ऐसा सब स्मरण है। उन्हें असंख्य अरबों वर्षका वर्तमानवत् स्मरणमें है। यह उनके वचनामृत हैं। वे जो (सभामें) बैठी हैं वे बेन (चम्पाबेन) हैं।'

वस्तुस्वरूप तो वीतराग है। मैं तो पूर्णानन्दस्वरूप हूँ, शुभाशुभ भावोंसे भिन्न ध्रुव ज्ञानानन्द प्रभु हूँ–ऐसा धर्मी जीव जानता है और मानता है। उसे साधकदशामें बीचमें शुभभाव आता है परन्तु उसे वह हेय–छोड़ने योग्य मानता है। मेरी वस्तु तो अंतरमें जो नित्यानन्द ज्ञायक प्रभु है वह है। उसे वह उपादेय मानता है, आदरणीय मानता है। त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञ भगवान ऐसी घोषणा कर रहे हैं भाई! श्री सीमंधर भगवान वर्तमानमें महाविदेहक्षेत्रमें विराजमान हैं; उनकी वाणीमें यह उपदेश है कि—आत्मा शुभाशुभभावसे भिन्न ज्ञायक प्रभु है, शुभभावसे शुद्धभाव नहीं होता। शुभकी भी रुचि छोड़कर उससे भिन्न अंतरमें निज त्रिलोकीनाथ ज्ञायक प्रभु विराजमान है उसका आश्रय करनेसे शुद्धता अर्थात् धर्म होता है; बाकी तो सब थोथे हैं। यह वीतरागी तत्त्व स्मरणमें रखने योग्य है।

क्या कहा? कि साधकदशामें शुभभाव आते हैं; पाँच समिति, तीन गुप्ति आदि शुभभाव बीचमें आते हैं, परन्तु उन्हें वह हेय जानता है। यदि उसे आदरणीय माने तो वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है धर्मी नहीं है; उसे धर्मकी खबर नहीं है। चैतन्यज्योति, झिलमिल ज्योति, प्रकाशका भी प्रकाशक ऐसा ज्ञायक आत्मा सो मैं हूँ–ऐसी जिसे प्रतीति हुई उसे शुद्ध आत्माका लक्ष नहीं छूटता। बाण मारनेवालेका साध्य तो सामने निशान है, उसीप्रकार धर्मीका ध्येय त्रैकालिक ज्ञानानन्दस्वरूप भगवान आत्मा है–अनादि-अनन्त ध्रुवतत्त्व है। धर्मीके ध्यानका लक्ष उस पर है; बीचमें शुभभाव आते हैं, परन्तु उन पर लक्ष नहीं है उन्हें हेय मानकर छोड़ देते हैं। समझमें आता है कुछ?

साधक जीव उसे कहते हैं जिसके अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दका वेदन हुआ हो। उस वेदनमें उपयोग अधिक काल तक नहीं रह सकता तब उसे शुभभाव–भगवानकी भक्तिका भाव, भगवानके नामस्मरणका विकल्प, शास्त्रश्रवण–पठन–मननके भाव तथा व्रत-तपादिका शुभराग आता है, परन्तु उसे वह अच्छा या लाभदायक नहीं मानता–नहीं

१४

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जानता। उसके प्रति अंतरमें रुचि नहीं है। रुचि तो अंतरमें निजानन्दस्वरूप ज्ञायक आत्मा पर है। वीतरागकी बातें ऐसी हैं भाई! यह तो बहुत संक्षिप्त शब्दोंमें ऊँची बात कह दी है। इसमें तो माल भरा है। माल कहो या मक्खन कहो, वह इसमें भरा पड़ा है। इस 'वचनामृत'में से कुछ बोल लेकर 'अध्यात्म-पीयूष' नामक छोटी पुस्तिका छपी है। ऐसी छोटी पुस्तकें तो कई प्रकाशित हो चुकी हैं। यह तो दुनियासे कोई निराली बात है। जो पढ़ेगा वह विचारेगा।

आत्मा सच्चिदानंदस्वरूप है। पुण्य और पाप विकृतभाव हैं; उस विकृतिको जो अपनी माने वह जीव चारगतिमें भटकता है। मेरी वस्तु तो अंतरमें निर्विकल्प एवं पूर्ण आनन्दमय है,—ऐसी दृष्टि और उसका अनुभव करना वह धर्मकी प्रथम श्रेणी है। साधकको बीचमें शुभभाव आता है, परन्तु वह साध्य आत्माका लक्ष नहीं चूकता।

'जैसे मुसाफिर एक नगरसे दूसरे नगर जाता है तब बीचमें अन्य-अन्य नगर आयें उन्हें छोड़ता जाता है, वहाँ रुकता नहीं है; जहाँ जाना है वहींका लक्ष रहता है।'

धर्मी जीवकी दृष्टि अपने शुद्ध चैतन्यतत्त्व पर स्थित है। मुसाफिर जिसप्रकार बीचमें आनेवाले नगरोंको छोड़कर आगे बढ़ता जाता है उसीप्रकार धर्मी जीव बीचमें आनेवाले शुभरागको छोड़कर साधनाके—शुद्धताके मार्गमें आगे बढ़ता है। मुसाफिर जब रास्तेमें चलता है वहाँ सैकड़ों वृक्षोंकी छाया आती है परन्तु वह उसे पार करता हुआ—छोड़ता हुआ आगे बढ़ता रहता है, उसीप्रकार विभावसे भिन्न ऐसे निज ज्ञानानंद स्वभावकी दृष्टि हुई ऐसे ज्ञानीको शुभराग रूपी छाया बीचमें आती है परन्तु वे उसमें रुकते नहीं, उसे धर्म मानते नहीं है। आत्मतत्त्वकी ऐसी बातें हैं। दुनिया पागल है इसलिये उसे ये बातें पागल जैसी लगती हैं।

आत्मा सत्‌—ज्ञान आनन्दमय है, उसमें सभी कुछ भरा है। मैं उसको साधनेवाला हूँ, रागको साधनेवाला नहीं हूँ। जैसे मुसाफिर एक गाँवसे दूसरे गाँवमें जाते समय बीचके गाँवमें रुकता नहीं उसे छोड़ता जाता है, उसीप्रकार धर्मीका ध्येय पूर्णानन्दस्वरूप परमात्म दशा है। वेही उसका साध्य है। साधकका साध्य पुण्य-पापके भाव तथा रागकी क्रियासे भिन्न है। अपने पूर्णानन्द स्वरूपकी दृष्टि एवं स्थिरता वह पूर्ण साध्यका साधन है। बीचमें पूजा-भक्ति तथा दया-दानादिके शुभ भाव आते हैं, परन्तु उन्हें छोड़ता जाता है।

अपनी शुद्ध चैतन्यवस्तु पुण्य-पापके विकल्पसे रहित है। उसकी दशामें शुभरागकी वृत्ति उठे वह दुःख है, विष है। भगवान आत्मा अंतरमें अमृतका सागर है। जीवको यह सत्य बात सुननेको नहीं मिली तो उसके प्रति रुचि कहाँसे हो? और रुचिके बिना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनुभव भी कैसे होगा? प्रभु! सारा जगत मार्ग ही भूला हुआ है। आत्महितकी यह बात जाने बिना जीव अनादिकालसे भटक रहा है। श्रीमद् राजचन्द्र कहते हैं :—

अनन्त कालथी आथड्यो, विना भान भगवान;
सेव्या नहि गुरु संतने, मूक्युं नहि अभिमान।

जहाँ-तहाँ 'हम जानते हैं'—ऐसे अज्ञानके पागलपनमें, भगवान निज आत्माकी प्रतीति बिना, अनंतकालसे जीव भटक रहा है; चौरासी लाख योनियोंमें परिभ्रमण कर रहा है। दुर्लभ मनुष्य भव मिला, सच्चे ज्ञानी गुरु मिले, अब तो जाग प्रभु! तेरी वस्तु भीतर है उसे सँभाल। पुण्य-पापकी, शुभ-अशुभ रागकी सँभाल बहुत की; परन्तु रागसे पृथक् चैतन्यज्योति झिलमिल प्रभु, ज्ञानप्रकाशका पुंज, आदि-अन्तरहित वस्तु, नित्यानन्द प्रभु तू है। उसे ध्येय बनाकर तू एकबार पर्यायमें शुद्धि प्रगट कर। प्रगट हुई शुद्धि ही धर्म और साधकदशा है।

'आणंद कहे परमाणंदा, वाते वाते फेर;
एक लाखे ना मिले, एक ताँबियाना तेर।'

यहाँ परमात्मा कहते हैं कि तेरी श्रद्धामें और हमारी बातमें उदय-अस्त जितना अंतर है।

मुसाफिर जिसप्रकार बीचमें आनेवाले नगरोंको छोड़ता जाता है, वहाँ रुकता नहीं है; उसीप्रकार जिसे अंतरमें रागसे भिन्न ऐसे निजतत्त्वकी प्रतीति हुई है ऐसे साधक धर्मी जीवको अशुभसे बचनेके लिये बीचमें शुभभाव आते हैं, परन्तु वह उनमें अटकता नहीं है, उन्हें छोड़ता जाता है। जिसप्रकार गेहूँमें कंकर होते हैं; लोग कंकर निकाल देते हैं, क्योंकि कीमत गेहूँकी है, कंकरोंकी नहीं; उसीप्रकार भगवान आत्मामें पुण्य-पापके भाव कंकर समान तुच्छ हैं। प्रभु तेरी अंतरंग महिमा कुछ और ही है। उसका माहात्म्य तुझे नहीं आता। प्रभु! तू कौन है? तू तो निर्विकल्प है, शुद्ध है, बुद्ध है, प्रकाशका पुंज है, आनन्दका सागर है, अक्रिय चैतन्यतत्त्व है; उसमें जो शुभ-अशुभ भाव हैं वह तो राग और विकल्प है। अपने स्वभावकी महिमाको भूलकर तूने तो दया-दान, व्रत-तपके भावोंको महानता दे दी है, ज़हरको बड़प्पन दे दिया है, अमृतके सागरको छोड़ दिया है। अहाहा!...ऐसी गम्भीर और सूक्ष्म बातें हैं।

वि. सं. १९६४ की—७० वर्ष पहलेकी—बात है। पालेजसे बड़ौदा माल लेने गये थे। वहाँ रात्रिमें 'सती अनुसूया' नामक नाटक देखने गये थे। अनुसूया अपने पुत्रको पालनेमें झुलाती है तब वह लोरी गाती है कि बेटा! 'शुद्धोऽसि' तू शुद्ध है, 'बुद्धोऽसि' तू बुद्ध है,—ज्ञानका पिण्ड है, **'निर्विकल्पोऽसि'** तू निर्विकल्प है, **'उदासीनोऽसि'**

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तू उदासीन है–परसे और रागसे भिन्न तेरा आसन है। ऐसी बातें नाटकमें भी कहते थे। उन दिनों नाटक भी बोधप्रद और वैराग्यप्रेरक होते थे। वर्तमान कालमें तो वह सब बदल चुका है। उस समय जो बात नाटकोंमें कही जाती थी वह तो अब धार्मिक सम्प्रदायोंमें भी नहीं मिलती।

भगवान आत्मा रागादि विकल्पोंसे रहित निर्विकल्प तत्त्व है। यह बात तो आजकल सुननेको भी नहीं मिलती; आजकल तो यह करो, वह करो, व्रत धारण करो, तप करो, प्रतिमा लो,–ऐसी बाहरी बातें चलती हैं। परन्तु 'करना सो मरना है'। करनेका भाव तो चैतन्यकी हिंसाका भाव है। उससे पर्यायमें ज्ञाता द्रष्टा स्वभावका मरण होता है। साधक जीव तो बीचमें व्रतादिके शुभभाव आयें उन्हें छोड़ता चला जाता है; साध्यका लक्ष नहीं चूकता; साध्यदशाकी ओर आगे बढ़ता ही जाता है। अहा! ऐसी बात है।

✽

यह तो बेनके अंतरके वचन हैं! बेनकी भाषा सादी किन्तु अंतरकी है। अनुभवको विद्वत्ताकी जरूरत नहीं होती, अंतर्-अनुभूति एवं रुचि माँगता है। यह बेनके शब्द हैं; वे भगवानके शब्द हैं। भाषा भी नवीन और भाव भी नवीन! सादी भाषामें भीतर रहस्य है। लाखों पुस्तकें छपीं, मैंने कभी कहा नहीं था; जहाँ यह (वचनामृत) हाथमें आयी, (देखी–पढ़ी) और रामजीभाईसे कहा : भाई! यह पुस्तक लाख छपाओ।

—पूज्य गुरुदेव.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन-१३

ता. १८-६-७८

वचनामृत-४१

सच्ची उत्कंठा हो तो मार्ग मिलता ही है, मार्ग न मिले ऐसा नहीं बनता। जितना कारण दे उतना कार्य होता ही है। अन्दर वेदनसहित भावना हो तो मार्ग ढूँढ़े।। ४१।।

चालीस बोल चल चुके हैं, अब यह इकतालीसवाँ—

'सच्ची उत्कंठा हो तो मार्ग मिलता ही है, मार्ग न मिले ऐसा नहीं बनता।'

यानी क्या कहा? कि—अनन्त आनन्दका रूप जिसका स्वरूप है ऐसे निज आत्माके अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद लेनेकी जिसे उत्कंठा जागृत हो, जगतके समस्त रस जिसे बिलकुल नीरस—फीके लगें, अहा! एक आत्माके सिवा दूसरी बातमें कहीं रुचि न हो और अंतरमें अतीन्द्रिय-आनन्दस्वरूप आत्माकी उत्कंठा अर्थात् प्राप्तिके प्रयत्नका पुरुषार्थ उस ओर ढले, उसे मार्ग मिलता ही है, भीतर रास्ता निकल ही आता है। दूसरे मार्ग पर चले और यह मार्ग मिल जाय ऐसा नहीं हो सकता। अहा! बात बड़ी सूक्ष्म! सत्यवस्तु तो सूक्ष्म ही होती है।

सच्ची उत्कंठा हो और मार्ग न मिले ऐसा होता ही नहीं। जिसकी आवश्यकता हो उसका पुरुषार्थ हुए बिना नहीं रहता। ज्ञानीजन जिसकी इतनी-इतनी प्रशंसा करते हैं ऐसा यह आत्मा क्या वस्तु है? भगवान आत्मा, सर्वोत्कृष्ट आत्मा, परमेश्वरस्वरूप आत्मा, अनन्तानन्त गुणोंकी खान आत्मा, अहाहा! यह सब क्या है? ऐसी जिसे अंतरमें लगन लगे, उसकी धुन चढ़े, उसे मार्ग मिलता ही है, मार्ग न मिले ऐसा नहीं हो सकता।

'जितना कारण दे उतना कार्य होता ही है।'

कार्य क्यों नहीं आता? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग हमें क्यों नहीं मिलता?

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ऐसा कोई कहे तो उससे कहते हैं कि मोक्षमार्ग कार्य है; उसका कारण देना चाहिये। जितना कारण दे उतना कार्य होता ही है। कारण विपरीत दे और कार्य सच्चा हो, अथवा कारण थोड़ा दे और कार्य अधिक हो ऐसा नहीं हो सकता।

अहा! आनन्दादि अनंत धर्मोंको धारण करनेवाला यह भगवान आत्मा वह क्या वस्तु है? एक समयकी दशामें जो नहीं आती अर्थात् जो एक समयकी पर्याय जितनी नहीं है, जो नित्य एकरूप रहती है, जिसमें बदलना या पलटना नहीं होता, जो छोटी-बड़ी या विपरीत नहीं होती, ऐसी कोई त्रैकालिक अचिन्त्य वस्तु है वह क्या है?—ऐसी जिसे अंतरमें रुचि एवं उत्कंठा जागृत हो उसे स्वरूपानुभव हुए बिना नहीं रहता।

कारणकी कचाशके कारण कार्य नहीं होता—ऐसा सिद्धान्त निश्चित् न करे और कहे कि—हम पुरुषार्थ तो बहुत करते हैं। लेकिन पुरुषार्थ कहना किसे? भीतर जो सच्चिदानंद प्रभु है उसकी पूर्णताको प्राप्त करनेका भाव हो उसे, अंतरमें लगन लगती है, आत्माके सिवा कहीं मिठास नहीं लगती—अन्यत्र कहीं रुचि नहीं होती—कहीं रस नहीं आता।

सर्वज्ञ परमात्माने जिसके बहुत गीत गाये हैं ऐसा यह भगवान आत्मा क्या वस्तु है? जिसमें संख्याकी अपेक्षा ज्ञान-आनन्दादि गुणोंका पार नहीं है ऐसी इस वस्तुकी पुरुषार्थमें आवश्यकता हो और वह न मिले ऐसा नहीं हो सकता। उसके लिये तीव्र लगन लगाये उसे पहले सम्यग्दर्शन होता है। जितना कारण दे उतना कार्य होता है। श्रद्धा एवं ज्ञानमें पुरुषार्थ करके सच्चा कारण दे तो स्वानुभवरूप कार्य हुए बिना नहीं रहता।

'अंदर वेदनसहित भावना हो तो मार्ग ढूंढ़े।'

वेदन अर्थात् भीतरका खटका; उस खटकेके साथ भावना हो तो मार्ग ढूँढ़ता ही है। यह बात ऐसी है प्रभु! कि बाह्यके किन्हीं साधनोंका—दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति आदि क्रियाकाण्डके भावोंका जबतक प्रेम है, उनसे मार्ग प्राप्त होगा ऐसी जबतक वहाँ रुचि लगी है तबतक आत्माकी प्राप्ति—सम्यग्दर्शन या आत्मानुभव नहीं होता। वे सब विकल्प—रागकी क्रिया हैं। राग तो अंधकार है; अंधकारके मार्गसे आत्मप्रकाशकी प्राप्ति हो ऐसा नहीं हो सकता। अंतरकी तीव्र खटक सहित—तीव्र वेदनसहित प्रयत्न करे तो मार्ग प्राप्त होता है। अहाहा! ऐसी बातें हैं वीतरागकी!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत-४२

यथार्थ रुचिसहित शुभभाव वैराग्य एवं उपशमरससे सराबोर होते हैं; और यथार्थ रुचि बिना, वहके वही शुभभाव रूखे एवं चंचलतायुक्त होते हैं।। ४२ ।।

'यथार्थ रुचि सहित शुभभाव वैराग्य एवं उपशमरससे सराबोर होते है;'

क्या कहते हैं? कि–आत्मा अस्तिस्वरूप एक वस्तु है; जगतमें वह एक ही सर्वोत्कृष्ट-स्वरूप तथा भगवानस्वरूप है; परन्तु बाह्य मिठास—रुचिकी ओटमें—स्त्री, पुत्र, परिवारके प्रेमकी ओटमें—अपने स्वभावकी यथार्थ रुचि नहीं है। परन्तु जिस जीवने परसे तथा विभावसे रहित ऐसे निज शुद्ध प्रभुकी यथार्थ रुचि की है उसे जो शुभभाव आयें वे वैराग्य अर्थात् रागकी मन्दता और उपशम अर्थात् आत्माका शांतरस—ऐसे भावसे सराबोर होते हैं। जिसे आनन्दके निधानस्वरूप आत्माकी—वस्तुस्वरूपकी—रुचि हुई उसे शुभराग आता है, किन्तु 'राग वह मैं नहीं' ऐसा विरक्ततारूप वैराग्य तो साथ होता ही है। शांत उपशमरस अर्थात् अपना आत्मरस। अंतरमें जो अविकारी प्रभु है उसकी रुचि और उसका अकषायवेदन वह शांतरस अर्थात् आत्मरस है। अकषाय उपशमरस साथ है इसलिये ज्ञानीके मंदकषायरूप शुभभावको वैराग्यसे तथा उपशमरससे सराबोर कहा है। राग वह तो राग ही है, उतनी अशांति है, परन्तु उस मन्दरागके साथ वैराग्य और आत्माके अस्तित्वरूप उपशमरसका वेदन है। शुभभाव वैराग्य और उपशमरससे सराबोर है, तथापि उस शुभरागकी दशाके समय ज्ञानी उससे भिन्न हैं।

आत्मा ज्ञाता-द्रष्टा है। परको देखने पर उसमें विस्मय और अधिकता लगती है, इसलिये वह अंतरात्मस्वभावके आश्चर्य और अधिकताको नहीं देखता। बाह्य सामग्रीमें—सुन्दर शरीर, वाणी, मकान, लक्ष्मी, धन-सम्पत्ति, सजावटमें—उसे आकर्षण लगता है, आनन्द आता है; परन्तु वह सब परवस्तु है भाई! वह वस्तु तुझमेंसे हुई नहीं है, तूने उसे किया नहीं है, तेरे कारण उसका अस्तित्व है–ऐसा भी नहीं है। जड़के कारण जड़का अस्तित्व है। उसके अस्तित्वमें तेरा कुछ भी भाग हो ऐसा नहीं है। यदि तुझे उसके अस्तित्वसे कुछ भी आश्चर्य या विस्मय होता हो, उसके प्रति प्रेम लगता हो, तो तुझे अपने अस्तित्वका आश्चर्य–विस्मय नहीं बैठेगा, स्वभावका प्रेम नहीं होगा। ज्ञानीको स्वभावकी यथार्थ रुचि होती है, उन्हें स्वभावके यथार्थ प्रेमसहित भूमिकानुसार शुभराग आता है वह है तो राग परन्तु मंदराग वैराग्य और उपशमरससे सरोबार होता है।

'और यथार्थ रुचि बिना, वहके वही भाव सूखे एवं चंचलतायुक्त होते हैं।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पूर्णानन्द प्रभु आत्माकी रुचि, दृष्टि और अनुकूलताके बिना जो शुभभाव होते हैं वे आत्मरसरहित रूखे और क्षणिक होते हैं। बाहरी ठाटवाट वह तो स्मशानमें हड्डियोंमें होनेवाले फोस्फरसकी आतिशबाजी जैसे हैं। कुछ पढ़ना–बोलना आता हो वह तो ठीक; अरे! चक्रवर्तीका राज्य आदि सब बाहरी ठाटवाट इस अमृतस्वरूप निज भगवान आत्माके समक्ष, हड्डियोंमें होनेवाले फोस्फरसकी आतिशबाजी जैसा विनश्वर है।

अपनी महानताके समक्ष जगतकी अनंत वस्तुओंमेंसे अन्य कोई भी वस्तु विशेषरूपसे, अधिकतारूपसे, आश्चर्यरूपसे, विस्मयरूपसे भीतर वीर्यमें कार्य करती हो तो उसका वैराग्य या शुभभाव सच्चा नहीं होता। उसका शुभभाव भी आत्मार्थकी स्निग्धतारहित चपलतायुक्त होता है। उसका लक्ष शुभभावमें होनेसे उसीकी आदत पड़ गई है। देवदर्शन, स्तुति, पूजादि होते रहें, दो-चार घन्टे वहाँ व्यतीत करता है, परन्तु अंतरमें स्वयं परमात्मस्वरूप पूर्णानन्दसे भरपूर वस्तु है उसकी दृष्टि, रुचि तथा महिमा नहीं है। बाह्य वस्तुकी महिमा लाकर उसमें समय व्यतीत करता है। वे सब शुभभाव आत्मरसरहित, रूखे और चंचलतायुक्त हैं, उनसे किंचित् आत्मकल्याण–धर्म नहीं होता।

भाई! यह शरीर तो छूट जायगा। चाहे जितनी संभाल करेगा तब भी यह रहेगा नहीं; क्योंकि यह तो परवस्तु है। इसे अपना मानकर तू भ्रममें पड़ा है। यह शरीर छूटनेके अवसरपर तू रागकी एकतामें पिस जायगा। 'णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं' कहता हो उसे लोग समाधिमरण हुआ कहते हैं; लेकिन यह समाधिमरण है ही नहीं। आत्मा क्या वस्तु है उसकी जिसे खबर नहीं है उसे ऐसे शुभ भावोंके समय अंतरमें आत्माका रस नहीं है और रागसे विरक्ततास्वरूप वैराग्यका परिणमन नहीं है; इसलिये वह सब शुभराग रूखा और चंचलतायुक्त है।

प्रश्नः—ऐसा तो बाबा बन जाय जब समझमें आये!

उत्तरः—अरे भाई, तू बाबा ही है। तुझमें रागका कण भी नहीं है। शरीर, स्त्री, पुत्रादि बाह्यपदार्थ तो कहीं दूर रह गये, किन्तु अंतरमें शुभभाव होते हैं वे भी आत्माका स्वरूप नहीं है। बाह्य संयोग उनके कारण आते-जाते रहते हैं। वे तेरे कारण नहीं हैं, और तू उनमें नहीं है। अंतरमें अन्य पदार्थोंके प्रति विस्मय अथवा आश्चर्य न छूटे और शुभभाव रहे वह सब रूखा तथा चंचलतायुक्त है।

प्रश्नः—दीक्षा लेते समय तीर्थंकर भगवानको भी 'णमो सिद्धाणं' ऐसा शुभभाव तो आता है?

उत्तरः—भाई, उसके पीछे आत्मप्रतीति और वैराग्य है। उन्हें रागका रस नहीं है, शुभ विकल्पके पीछे आत्माका शांतरस है; उसके कारण उस शुभभावको उपशमरस

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

और वैराग्यसहित कहा जाता है। प्रतीतिरहित शुभभावको आत्मरसरहित, रुक्ष एवं चंचल कहा जाता है।

यह मुख्य मुद्देकी बात है, समझने जैसी है। बाह्यमें यह करना, वह करना; व्यवहारचारित्रका पालन करें तो निश्चय होगा;—यह सब आत्मभान बिनाके–शुभभाव रुक्ष एवं चंचल हैं, आत्मशान्तिके लिये—धर्मके लिये बेकार हैं। धर्मात्माको आत्माकी दृष्टि सहित शुभभाव आता है, व्यवहारचारित्र आदिका शुभभाव आता है, परन्तु उसमें उसे प्रेम नहीं है। उस शुभभावके प्रति भी उसे अंतरसे वैराग्य वर्तता है। अहा! स्वभावकी यथार्थ रुचिके कारण उसके शुभभाव भी वैराग्य एवं उपशमरससे–आत्मशान्तिसे–सराबोर दिखते हैं। वे शुभभाव हैं तो राग ही; किन्तु अंतरमें उनकी रुचि नहीं है। भूमिकानुसार ऐसे भाव आते हैं। अहा! ऐसा उपदेश है! अब उसका न्याय देते हैं।

❃

वचनामृत-४३

जिसप्रकार कोई बालक अपनी मातासे बिछुड़ गया हो, उससे पूछें कि 'तेरा नाम क्या है?' तो कहता है 'मेरी माँ,' 'तेरा गाँव कौन?' तो कहता है 'मेरी माँ,' तेरे माता-पिता कौन हैं?' तो कहता है 'मेरी माँ'; उसीप्रकार जिसे आत्माकी सच्ची रुचिसे ज्ञायकस्वभाव प्राप्त करना है उसे हरएक प्रसंगमें 'ज्ञायकस्वभाव...ज्ञायकस्वभाव'—ऐसी लगन बनी ही रहती है, उसीकी निरन्तर रुचि एवं भावना रहती है॥ ४३॥

'जिसप्रकार कोई बालक अपनी मातासे बिछुड़ गया हो, उससे पूछें कि 'तेरा नाम क्या है?' तो कहता है 'मेरी माँ,' 'तेरा गाँव कौन?' तो कहता है 'मेरी माँ,' तेरे माता-पिता कौन हैं?' तो कहता है 'मेरी माँ';'

माताकी अँगुली पकड़कर चलता हुआ कोई बालक, रास्तेमें भीड़के कारण अंगूलीसे छूट गया हो, मातासे बिछुड़ गया हो, उससे पूछें कि 'तेरा नाम क्या?'...यह तो हमने पोरबन्दरमें स्वयं अपनी आँखोंसे देखा था; एक बच्ची अपनी माँसे अलग हो गई, ठीक वहीं उस उपाश्रयके पास जहाँ हम ठहरे थे, इतनी रोये...रोये! पुलिसके सिपाहीने पूछा : 'तेरा नाम क्या है?' तो रोती जाय और कहे 'मेरा माँ,' फिर पूछा कि : 'तू किस मोहल्लेमें रहती है?' 'तेरी कोई सहेली है?'...तो सब प्रश्नोंका एक ही उत्तर कि—'मेरी माँ,' 'मेरी माँ;' मेरी माँ किस रास्ते और कहाँ गई होगी?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

"...उसीप्रकार जिसे आत्माकी सच्ची रुचिसे ज्ञायकस्वभाव प्राप्त करना है उसे हर एक प्रसंगमें 'ज्ञायकस्वभाव...ज्ञायकस्वभाव'—ऐसी लगन बनी ही रहती है, उसकी निरन्तर रुचि एवं भावना रहती है।"

जिसके ध्येयमें, रुचिमें और प्रेममें ज्ञायकभाव ही विद्यमान है उसे शुभ विकल्पमें या अन्यत्र कहीं रुकना अच्छा नहीं लगता। अहा! अंतर ज्ञायकस्वभावमें जानेकी उत्कंठा है। जिसे बहिरात्मपनेका अर्थात् आत्मस्वभावसे बाह्य ऐसे पुण्य-पापके भाव और उनके फलका रस एवं प्रेम है उसे ज्ञायकस्वभावका प्रेम नहीं है, और जिसे आत्माके ज्ञायकभावका प्रेम लगा उसे पुण्यके परिणामोंसे लेकर सारा जगत प्रेमका विषय नहीं है। अहा! ऐसे ज्ञायकस्वभावका जिसे रस है—प्रेम है उसे उसकी प्राप्तिकी निरन्तर रुचि और भावना रहती है। जिसे बाहरका प्रेम है कि दुनिया मुझे कैसे माने, दुनियामें मेरी प्रसिद्धि कैसे हो, मुझमें योग्यता होगी तो दुनिया मुझे बड़प्पन देगी, उसे ज्ञायकस्वभावकी रुचि और प्रेम नहीं है।

दक्षिण अमेरिकाके भयानक जंगलमें एक वायुयान गिरा। सब लोग मर गये, एक अठारह वर्षकी लड़की जीवित रही। 'कोई मुझे मार्ग दिखाओ,'...अहाहा! एक ही उत्कंठा। ग्यारह दिन उस घने जंगलमें बिताये। बारहवें दिन कुछ शिकारी मिल गये। अपनी मोटरमें डालकर शहरके अस्पतालमें ले गये। अहा! उस भयानक जंगलमें कैसा लगता होगा! उसीप्रकार यह जीव अनादिकालसे परिभ्रमण करते-करते परके प्रेममें गिर पड़ा है; उसके अंतरसे पुकार आना चाहिये कि—मेरा ज्ञायक भगवान कौन है? कहाँ है? कैसा है? कोई बताओ रे!...बताओ!

श्रीमद्‌ने भी कहा है:—

"हुं कोण छुं? क्यांथी थयो? शुं स्वरूप छे मारुं खरुं?
कोना संबंधे वळगणा छे? राखुं के अे परिहरुं?
अेना विचार विवेकपूर्वक शांत भावे जो कर्या,
तो सर्व आत्मिकज्ञाननां सिद्धान्ततत्त्व अनुभव्यां।"

अहा! सर्व कपाट खुल गये। यह ज्ञायक प्रभु कौन है? उसे पकड़े बिना, अन्यत्र कहीं चैन नहीं पड़ता, कहीं रस नहीं आता, कहीं रुचता नहीं है। आत्माकी सच्ची रुचिसे जिसे अंतरमें ज्ञायक प्रभुको प्राप्त करना है उसे प्रत्येक प्रसंगमें 'ज्ञायकस्वभाव...ज्ञायकस्वभाव' ऐसी लगन लगती है, ऐसा रटन दिन-रात रहा करता है, उसकी रुचि और भावना निरंतर बनी रहती है। छहढालामें कहा है कि—

"लाख बातकी बात यहै निश्चय उर लाओ;
तोरि सकल जग दंद-फंद नित आतम ध्याओ।"

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहा! प्राप्त करनेकी ऐसी उत्कंठा होती है कि स्वप्न भी उसीके आते हैं। जागृत दशामें तो लगन लगी रहती है परन्तु निद्रामें भी ज्ञायकके ही स्वप्न आयें ऐसी उत्कंठा रहती है। भगवान आत्मा कौन है? कैसा है? कहाँ है? किस दशामें है? मुझे कैसे प्राप्त हो?—ऐसी जिसे लगन लगती है उसे उसीका रटन और मंथन बना रहता है, उसीकी निरन्तर रुचि और भावना रहती है।

बाह्यमें राग होता है; शरीरकी क्रिया भी होती दिखायी देती है; परन्तु जहाँ अंतरमें ज्ञायकभाव, सामान्यभाव, एकरूप भावकी लगन लगी है उसे आत्मा प्रगट हुए बिना नहीं रहता।

जिस प्रकार उस बच्चीको 'मेरी माँ, मेरी माँ'का रटन था, उसीप्रकार आत्मार्थीको रुचिमें 'आत्मा...आत्मा'की धुन लगी रहती है। वस्तु ज्ञायकभाव, चैतन्यभाव, स्वभावभाव, ध्रुवभाव, नित्यभाव, एकभाव, एकरूप नित्य स्थायी वस्तु वह कौन है?—इसप्रकार उसे प्राप्त करनेका खटका लगा ही रहता है। उसे जगतकी पर्याय दिखायी देती है परन्तु उससे वह पृथक् एवं उदास है। सम्यग्दृष्टिसे कोई पूछे कि—'यह लड़का किसका? यह दूकान किसकी?' तो वह कहेगा कि 'मेरे हैं,' किन्तु अंतरमें 'मेरे' नहीं मानता। उसे ज्ञायकभावकी ऐसी लगन है, ऐसा खटका है कि उसकी रुचि और भावना निरन्तर उसीमें रहती है।

❃

वचनामृत-४४

रुचिमें सचमुच अपनेको आवश्यकता लगे तो वस्तुकी प्राप्ति हुए बिना रहती ही नहीं। उसे चौवीसों घन्टे एक ही चिन्तन, मन्थन, खटका बना रहता है। जिस प्रकार किसीको 'माँ'का प्रेम हो तो उसे माँकी याद, उसका खटका निरंतर बना ही रहता है, उसीप्रकार जिसे आत्माका प्रेम हो वह भले ही शुभमें उल्लासपूर्वक भाग लेता हो तथापि अंतरमें खटका तो आत्माका ही रहता है। 'माँ'के प्रेमवाला भले ही कुटुम्ब-परिवारके समूहमें बैठा हो, आनन्द करता हो, परन्तु मन तो 'माँ'मेंही लगा रहता है : 'अरे! मेरी माँ...मेरी माँ!'; उसीप्रकार आत्माका खटका रहना चाहिये। चाहे जिस प्रसंगमें 'मेरा आत्मा...मेरा आत्मा!' यही खटका और रुचि रहना चाहिये। ऐसा खटका बना रहे तो 'आत्म-माँ' मिले बिना नहीं रह सकती।। ४४ ।।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

‘रुचिमें सचमुच अपनेको आवश्यकता लगे तो वस्तुकी प्राप्ति हुए बिना रहती ही नहीं।’

पुनः वही बात आयी। रुचिमें जिस अंतर्चैतन्यकी आवश्यकता लगती हो, अन्य किसी वस्तुकी जिसे आवश्यकता नहीं है, क्षण-क्षण और प्रसंग-प्रसंगमें जिसे अंतरका ध्यान (लक्ष) होता है और ‘मुझे तो अपना एक आत्मा ही चाहिये’ ऐसा जिसे अंतरसे खटका लगा रहता है? उसे वस्तुकी प्राप्ति हुए बिना रहती ही नहीं। सम्यग्दर्शन प्रगट होनेसे पूर्व भी ऐसी उत्कंठा और लगन होती है। सारी दुनियाकी उपेक्षा, एकमात्र स्ववस्तुकी ही अपेक्षा; उसमें सब आ जाता है। जिसे रागसे लेकर सर्व वस्तुओंमें उपेक्षा और एक आत्मस्वभावकी ही अपेक्षा वर्तती है, उसे वस्तुकी प्राप्ति हुए बिना रहती ही नहीं। अहा! ऐसी है यह पुस्तक! ऐसा सब भरा हुआ है इसमें! बिलकुल सादा और सरल शब्द! हिन्दीवालोंको अभी यह पुस्तक नहीं मिली है; गुजरातीवालोंको कइयोंको मिल गई है।

‘उसे चौवीसों घन्टे एक ही चिंतन, मंथन, खटका बना रहता है।’

नींदमें भी उसे उसीकी विचारधारा चलती रहती है। ऐसी आत्माकी यथार्थ रुचि जिसे लगे, उसे सांसारिक सुविधाओंके ढेर हों या असुविधाओंके पहाड़ हों—उन सबके प्रति उपेक्षा वर्तती है। अरे! सातवें नरककी प्रतिकूलताओंकी तो क्या बात करें! वहाँके दुःखोंका वर्णन तो सुना भी जाय ऐसा नहीं है। मरकर वहाँ जानेवाला जीव संयोगोंकी तीव्र एकत्वबुद्धिवाला महा मिथ्यात्वी और तीव्र कषायवान होता है। कोई जीव ऐसी प्रतिकूलताओंकी भीषण स्थितिमें भी सम्यक्त्व प्राप्त करता है। जहाँ खानेको अन्नका कण नहीं है, पीनेको पानीकी बूँद नहीं है, जन्मसे ही जहाँ कुष्ठ आदि तीव्र रोग होते हैं; जहाँ वह पड़ा है वहाँ अरे! शीतकी वेदना कैसी! उस शीतका एक कण भी इस मनुष्यलोकमें आ जाय तो दस हजार योजनके विस्तारमें रहनेवाले मनुष्यादि प्राणी ठण्डसे ठिठुरकर मर जायँ। ऐसी तो शीतकी वेदना है!—ऐसी प्रतिकूलताके संयोगोमें भी जो आत्माकी लगन लगाये वह फट्-से अंतरमें—आत्मामें उतर जाता है। प्रभु! तुझे तो अभी ऐसी प्रतिकूलता है नहीं। अनंतकाल खाने-पीनेमें और स्त्री-पुत्रोंमें बिता दिया। पूर्वकालमें आत्माका उपदेश सुना था किन्तु रुचि नहीं की थी; अब तो अंतरमें आत्माकी रुचि और खटका पैदा करो! ऐसी प्रतिकूलतामें भी भीतर प्रभुकी लगन लगाकर सम्यग्दर्शन प्राप्त करते हैं; तथा अनंतगुनी सुविधाओंमें, इन्द्रके इन्द्रासनमें, चक्रवर्तीके राज्यमें भी उस ओरका लक्ष छोड़कर धर्मी जीव अंतरमें उतर जाते हैं; क्योंकि वस्तुओंमें कहीं अनुकूलता या प्रतिकूलता है ही नहीं। चैतन्यप्रभु तो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उन वस्तुओंका स्पर्श भी नहीं करता। अहो! ऐसी अनुकूलताओंमें और नरक जैसी प्रतिकूलताओंमें वह भीतर उतर जाता है। आत्माके पिपासुको चौवीसों घन्टे आत्माका चिंतन, मंथन और खटका बना ही रहता है।

''जिसप्रकार किसीको 'माँ'का प्रेम हो तो उसे 'माँ'की याद, उसका खटका निरंतर बना ही रहता है, उसीप्रकार जिसे आत्माका प्रेम हो वह भले ही शुभमें उल्लासपूर्वक भाग लेता हो तथापि अंतरमें खटका तो आत्माका ही रहता है।''

अहमदाबादमें लालभाई सेठ बहुत प्रसिद्ध थे। उन्हें अपनी माँके प्रति अत्यधिक स्नेह था। माँका स्वर्गवास होनेपर खूब रोये। रोते-रोते कहते थे कि—मुझे 'तू' कहनेवाली माँ चली गई...! 'लालू! तू यहाँ आ', 'लालू! तू यह खा ले', ऐसा कहनेवाली एक मेरी माँ थी वह चली गई, अब कोई ऐसा प्रेमसे कहनेवाला नहीं रहा! 'माँ'के प्रेमीको निरन्तर उसका स्मरण रहता है, उसीप्रकार 'यह मेरा आत्मा है' उसकी जिसे लगन हो—प्रेम हो वह दूसरा सब भूल जाता है वह 'माँ'के वियोगमें रोता है और यह आत्माकी लगनमें आनन्द मनाता है। आत्माका प्रेमी शुभभावमें स्थित दिखायी दे, परन्तु रुचि और लगन अंतरमें होती है।

'''माँ'के प्रेमवाला भले ही कुटुम्ब-परिवारके समूहमें बैठा हो, आनन्द करता हो, परन्तु मन तो 'माँ'में ही लगा रहता है : 'अरे! मेरी माँ...मेरी माँ!'; उसीप्रकार आत्माका खटका रहना चाहिये।''

अपने स्त्री-पुत्रादि परिवारमें आनन्द करता हो तथापि अंतरमें प्रेम तो 'माँ' पर ही है, उसका मन तो 'माँ'में ही लगा रहता है। उसीप्रकार आत्माकी रुचि और खटका रहना चाहिये।

''चाहे जिस प्रसंगमें 'मेरा आत्मा...मेरा आत्मा!' यही खटका और रुचि रहना चाहिये। ऐसा खटका बना रहे तो 'आत्म-माँ' मिले बिना नहीं रह सकती।''

अहा! बड़ी सरल भाषामें गम्भीर तत्त्व भरा है! अंतरमें मैं परिपूर्ण तत्त्व हूँ—ऐसी रुचि और खटका होना चाहिये। जो मैं नहीं हूँ वह सब याद आता रहे, और जो मैं स्वयं हूँ उसे याद करना पड़े यह कैसा? मैं तो भीतर परिपूर्ण ही हूँ—ऐसी रुचि सहित खटका लगा रहे उसे आत्मारूपी 'माँ' मिले बिना रहेगी ही नहीं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन-१४

ता. १६-६-७८

वचनामृत-४५

अंतरका तल खोजकर आत्माको पहिचान। शुभ परिणाम, धारणा आदिका थोड़ा पुरुषार्थ करके 'मैंने बहुत किया है' ऐसा मानकर, जीव आगे बढ़नेके बदले अटक जाता है। अज्ञानीको जरा कुछ आ जाय, धारणासे याद रह जाय, वहाँ उसे अभिमान हो जाता है; क्योंकि वस्तुके अगाध स्वरूपका उसे ख्याल ही नहीं है; इसलिये वह बुद्धिके विकास आदिमें संतुष्ट होकर अटक जाता है। ज्ञानीको पूर्णताका लक्ष होनेसे वह अंशमें नहीं अटकता। पूर्ण पर्याय प्रगट हो तो भी स्वभाव था सो प्रगट हुआ इसमें नया क्या है? इसलिये ज्ञानीको अभिमान नहीं होता।। ४५ ।।

'अंतरका तल खोजकर आत्माको पहिचान।'

क्या कहते हैं? कि अंतरका जो तल वह ध्रुव है; पुण्य-पापके परिणामकी तो यहाँ बात ही क्या करना? परन्तु एक समयकी पर्याय वह भी ऊपर-ऊपर तैरती है। एक समयकी पर्यायके निकट—समीप अंतरमें जो ध्रुव ज्ञायक आत्मा है उसे खोज। अंतरका धरातल अर्थात् अंतरमें जो ध्रुव सम्पूर्ण वस्तु है उसे खोज। खोजकर आत्माको पहिचान। आत्माको पहिचानने, सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेका यह एक ही उपाय है। पर्याय और रागको जाननेसे आत्माकी पहिचान नहीं होगी।

'शुभपरिणाम, धारणा आदिका थोड़ा पुरुषार्थ करके 'मैंने बहुत किया है' ऐसा मानकर, जीव आगे बढ़नेके बदले अटक जाता है।'

दया, दान, व्रतादिके किंचित् शुभपरिणाम हों, पठन, श्रवण या शास्त्रोंकी धारणा हो; कुछ बोलना—भाषण देना आ जाये;—आदिका थोड़ा पुरुषार्थ करके उसे ऐसा लगता है कि 'मैंने बहुत किया है, मैं बहुत करता हूँ'; परन्तु वह कोई विशेषता नहीं है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मुझमें बड़ी योग्यता हैं मैंने बहुत किया, ऐसा मानकर जीव आगे बढ़नेके बदले पिछड़ जाता है, बाह्यमें अटक जाता है।

चाहे जितनी धारणा या शुभभाव हो परन्तु जाना है अंतरमें ठेठ धरातल तक; ध्रुवतत्त्वको ध्येय बनाकर उसका ध्यान करना है। मुख्य जो त्रैकालिक ध्रुव उसका अनुभव करना है। यह जो करना है वह तो पड़ा रहा, और जो शुभभाव तथा शास्त्रोंकी धारणा आदि हो, लाख–दो लाख श्लोक कण्ठस्थ हों उससे क्या हुआ? यह कोई विशेषता है? जो इतनेसे संतोष कर लेगा वह चैतन्यतल तक नहीं पहुँच सकेगा। लोग प्रशंसा करें कि ओहो! आपका भाषण तो बहुत अच्छा है! आपकी लेखन-शैली और भाषा भी सुन्दर है! लेकिन उससे आत्माको क्या? अज्ञानी वहीं अटक जाता है।

यह सब मूल रकमकी बातें हैं भाई! स्वद्रव्यमें दृष्टि न करे, उसे ग्रहण न करे, उसे ध्येय न बनाये, वह अज्ञानी जीव बाह्यमें रुककर जीवनको निष्फल कर देता है। अहा! जीवका जीवन जो परमानन्दस्वरूप त्रैकालिक चैतन्य उसे दृष्टिमें नहीं लेता वह आगे बढ़नेके बदले पिछड़ जाता है—अटक जाता है।

'अज्ञानीको जरा कुछ आ जाय, धारणासे याद रह जाय, वहाँ उसे अभिमान हो जाता है; क्योंकि वस्तुके अगाध स्वरूपका उसे ख्याल ही नहीं है; इसलिये वह बुद्धिके विकास आदिमें संतुष्ट होकर अटक जाता है।'

अज्ञानीको विकास हो, ग्यारह अंगकी धारणा हो, किन्तु उससे क्या? एक आचारांगमें ही अठारह हजार पद और एक पदमें इक्यावन करोड़से अधिक श्लोक, वह सब कण्ठस्थ कर ले, किन्तु उससे क्या? अहा! अंतरमें भगवान ज्ञानसमुद्र प्रभु है, उसका स्पर्श न करे, उसके सन्मुख न हो और इस विमुखताकी धारणामें सन्तुष्ट हो जाय, वह भटक मरेगा।

धारणा इतनी अधिक हो कि कोई कुछ पूछे तो जवाब तैयार! भाषा भी धाराप्रवाह निकलती हो! लेकिन उसका अभिमान हो जाता है तो उससे आत्माको क्या लाभ है भाई! वह कोई वस्तु है? अरे, पूर्ण वस्तु तो परमानन्दस्वरूप प्रभु है! उसके तलमें उतरता नहीं है, धरातलको देखता नहीं है और ऊपर-ऊपरकी—पर्यायकी—बातोंमें अटककर वहीं रुक जाता है, वह आत्माको प्राप्त नहीं कर सकेगा। उसे अभिमान हो जायगा; क्योंकि वस्तुके अगाध सत्स्वरूपका तो ध्यान ही नहीं है। केवलज्ञान हो तब भी, जो शक्तिरूप था वह प्रगट हुआ है, उसमें कोई विशेषता नहीं है; तो उसके समक्ष मति-श्रुत ज्ञानकी बात ही क्या है? और मति-श्रुतकी परलक्षी धारणादि सब वास्तवमें थोथे हैं।

सम्पूर्ण वस्तु जो चैतन्यस्वभाव उसकी अनुभूति न हुई और बाह्य धारणासे संतुष्ट

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होकर उसका अभिमान करता है उसे वस्तुके अगाध स्वरूपकी खबर ही नहीं है। यह, अनन्त-अनन्त आनन्दरससे भरपूर तल—परिपूर्ण वस्तु तत्त्व है। जिसमें केवलज्ञानादि पर्यायोंको प्रगट करनेवाले ज्ञानादि अनन्तगुण विद्यमान हैं ऐसा जो एकरूप द्रव्य उस ओर तो उसका लक्ष नहीं है; है उसकी प्रतीति नहीं है; इसलिये वह बुद्धिके विकासमें संतुष्ट हो जाता है, वहाँ अटक जाता है।

'ज्ञानीको पूर्णताका लक्ष होनेसे वह अंशमें नहीं अटकता।'

धर्मीको स्वभावका अगाध और गंभीर समुद्र ऐसा जो महाप्रभु—परिपूर्ण तत्त्व—उसका ज्ञान और श्रद्धा हुई होनेसे, पूर्णताका लक्ष होनेसे, वह अंशमें—प्रगट दशामें—संतुष्ट नहीं हो जाता, वहाँ अटक नहीं जाता। स्वके आश्रयसे जो सच्चा मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञान हुआ, पूर्णज्ञान एवं पूर्ण आनन्दस्वरूप ऐसे चैतन्य भगवानकी सन्मुखताका जो भाव प्रगट हुआ, वह भी केवलज्ञानकी अपेक्षा एक अंश ही है। उसी अंशमें ज्ञानी अटक नहीं जाता।

'पूर्ण पर्याय प्रगट हो तो भी स्वभाव था सो प्रगट हुआ इसमें नया क्या है?'

अरे! केवलज्ञान हो वह तो मूल वस्तुमें शक्ति थी सो प्रगट हुई है, उसमें नवीनता क्या है? मति-श्रुतके विकासमें बारह अंगका ज्ञान हो वह भी स्थूल ज्ञान है। वस्तुस्वभाव तो अगाध और अनंत है; उसके निकट, पंचाध्यायीमें कहा है कि—बारह अंगका ज्ञान स्थूल है। इसलिये कहते हैं कि ज्ञानकी पूर्ण पर्याय प्रगट हो तथापि जो स्वभाव था वह प्रगट हुआ, उसमें नवीन क्या है? वस्तुमें शक्ति थी तो वह पर्यायमें प्रगट हुई है।

'कार्तिकेयानुप्रेक्षा'में दोनों बोल लिये हैं : द्रव्य-अपेक्षासे जो सत् है वही प्रगट होता है, और पर्याय-अपेक्षासे केवलज्ञानादि पर्यायें जो नहीं थीं वे प्रगट हुई हैं। केवलज्ञानकी पर्याय आयी कहाँ से? क्या कहीं बाहरसे या पूर्व पर्यायमेंसे आती है? भीतर स्वभावमें जो शक्ति थी वह पर्यायमें प्रगट हुई है। उसमें नवीनता क्या? शक्तिका ऐसा यथार्थ ज्ञान होनेसे ज्ञानीको अंतरमें वीतरागता वर्तती है। यहाँ तो अज्ञानीको जरा प्रवचन करना आ जाय, सभामें लोगोंकी अच्छी भीड़ हो तो ऐसा लगने लगता है कि हम आगे बढ़ गये हैं। अरे भाई! अंतरमें अगाध वस्तु विद्यमान है, उसकी प्रतीति के बिना तुझे किसका अभिमान है? जो बाह्य जानकारीमें या शुभभावमें संतुष्ट हो जाता है उसे मूल वस्तुके अथाह स्वभावकी खबर ही नहीं है।

'इसलिये ज्ञानीको अभिमान नहीं होता।'

एक समयमें तीनकाल और तीनलोकके सर्व पदार्थोंको एकसाथ जाने ऐसी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

केवलज्ञानकी पूर्ण पर्याय प्रगट हो वह तो अंतरमें ज्ञानकी ध्रुव शक्ति थी वह प्रगट हुई है उसमें नवीन क्या है? ज्ञानीको बारह अंगका ज्ञान होनेपर भी वह अपनी पर्यायमें पामरता मानता है। अरे, बारह अंगका ज्ञान किसे कहते हैं! उसका भी ज्ञानीको अभिमान नहीं होता।

❀

वचनामृत-४६

जीवन आत्मामय ही कर लेना चाहिये। भले ही उपयोग सूक्ष्म होकर कार्य नहीं कर सकता हो परन्तु प्रतीतिमें ऐसा ही होता है कि यह कार्य करनेसे ही लाभ है, मुझे यही करना है; वह वर्तमान पात्र है॥४६॥

'जीवन आत्मामय ही कर लेना चाहिये।'

करना तो यह है : जीवन तो ज्ञानमय, आनन्दमय, श्रद्धामय, शांतिमय, पूर्ण प्रभुताका सागर भगवान आत्मा है, उसकी प्रभुतामय करके जीना चाहिये। जागृतज्योति जो जीवमें भरी है उसे पर्यायमें प्रगट करके जीना ही जीवन है। पच्चीस, पचास या सौ वर्षतक स्त्री–बच्चोंको सँभाला, व्यापार किया, उद्योगपति बन गया, अपने हाथोंसे–पुरुषार्थ करके–पैसाकमाया है;—यह सब किसकी प्रशंसा है? पागलपनकी? अरे भाई! वह कोई आत्माका जीवन है? जिसे आत्मज्ञान हो वह तो अंतरमें स्थिर होता है, उसे बाह्यमें दूसरोंको दिखानेकी विशेषता या महत्ता नहीं होती; बाह्य शुभाशुभ भावोंकी रुचि छोड़कर, उसे अन्तर्मुख करके जीवन तो आत्मामय बना लेना चाहिये।

'भले ही उपयोग सूक्ष्म होकर कार्य नहीं कर सकता हो परन्तु प्रतीतिमें ऐसा ही होता है कि यह कार्य करनेसे ही लाभ है, मुझे यही करना है; वह वर्तमान पात्र है।'

उपयोग सूक्ष्म होकर भले ही पर्यायको एकदम नहीं पकड़ सकता, परन्तु प्रतीतिमें तो ऐसा ही होता है कि यह चैतन्यभगवान जो सर्वोत्कृष्ट वस्तु है उसे प्राप्त करना ही है, वह कार्य करनेमें ही लाभ है, मुझे वही करना है। अहाहा! वह जीव वर्तमान पात्र है। पद्मनन्दि पंचविंशतिकाके एकत्व–अधिकारमें आया है ना!

तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येन वार्ताऽपि हि श्रुता।
निश्चितं स भवेद्भव्यो भाविनिर्वाणभाजनम्॥

जिस जीवने प्रसन्न चित्तसे इस चैतन्यस्वरूप आत्माकी बात भी सुनी है, वह भव्य पुरुष भविष्यमें होनेवाली मुक्तिका अवश्य भाजन होता है। अंतरंग प्रेम

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सहित—रुचिपूर्वक अपने लिये, परके लिये नहीं, अपने आत्माके आनन्दकी प्राप्तिके लिये जिसने इस तत्त्वका श्रवण किया है वह अवश्य मोक्ष प्राप्त करेगा; वह अवश्य मोक्षका भाजन—पात्र है। उसमें मोक्ष समा सकेगा—रह सकेगा।

प्रश्न :—इसमें करना क्या आया ?

उत्तर :—जीवनको आत्मामय करना वही करना है। परन्तु किया ऐसा जाता है कि बाहरके दूसरे लोग कुछ देखें, लोगोंको अच्छा लगे, उनकी समझमें आये कि यह जानकारीमें, आचरणमें हमसे कुछ अधिक है; शुभ आचरण करनेसे दुनिया प्रभावित होती है, परन्तु उससे उसके आत्माको क्या लाभ ?

मेरा स्वरूप शुद्ध चैतन्य है, उसका अनुभव करके ही रहूँगा। दूसरा कुछ आये या न आये। उसमें कुछ न्यूनाधिकता हो उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है; मुझे तो मेरा जीवन आत्मामय करना है।—ऐसी भावनावाला जीव वर्तमान पात्र है।

❀

वचनामृत-४७

त्रैकालिक ध्रुव द्रव्य कभी बँधा नहीं है। मुक्त है या बँधा है वह व्यवहारनयसे है, वह पर्याय है। जैसे मकड़ी अपनी लारमें बँधी है वह छूटना चाहे तो छूट सकती है, जैसे घरमें रहनेवाला मनुष्य अनेक कार्योंमें, उपाधियोंमें, जंजालमें फँसा है परन्तु मनुष्यरूपसे छूटा है; वैसे ही जीव विभावके जालमें बँधा है, फँसा है परन्तु प्रयत्न करे तो स्वयं मुक्त ही है ऐसा ज्ञात होता है। चैतन्यमूर्ति पदार्थ तो मुक्त ही है। चैतन्य तो ज्ञान— आनन्दकी मूर्ति—ज्ञायकमूर्ति है, परन्तु स्वयं अपनेको भूल गया है। विभावका जाल बिछा उसमें फँस गया है, परन्तु प्रयत्न करे तो मुक्त ही है। द्रव्य बँधा नहीं है।। ४७।।

'त्रैकालिक ध्रुव द्रव्य कभी बँधा नहीं है।'

त्रैकालिक ध्रुव पदार्थ है वह कब बँधता है ? ध्रुव द्रव्य बँधे तो वह अवस्तु हो जाय। त्रैकालिक स्वभावभाव सत्-रूप है, वह कभी कर्मसे तो नहीं, किन्तु रागसे भी नहीं बँधता।

प्रश्न :—पर्यायमें बंध है इसलिये द्रव्य बँधता है ना ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्तर :—नहीं, ऐसा नहीं है। एक समयकी पर्याय अटकी हुई है, द्रव्य नहीं। द्रव्य तो पृथक् और मुक्त ही है। त्रिकाल रहनेवाली वस्तु अर्थात् ध्रुवद्रव्य कभी–किसी काल बँधा नहीं है। अहा! पर्यायबुद्धिवालेको यह बात बैठना कठिन है। पर्याय अशुद्ध हुई तो द्रव्य भी अशुद्ध हो गया; क्योंकि पर्याय उसीकी है ना?–ऐसा कोई कहता है। किन्तु भाई द्रव्य—वस्तुका त्रैकालिक सत्त्व—तो ज्योंका त्यों ही है। उसकी प्रभुताकी क्या बात कहें! उसका माप करते हुए अपनी मतिका माप हो जाता है। तेरा अरूपी भगवान आत्मा वह तो कोई अगाध वस्तु है, भाई! वह अनादिसे एक समयकी पर्यायमें खेल रहा है। नववें ग्रैवेयकमें गया तथापि वहाँ भी एक समयकी पर्यायका खेल खेल रहा था। अहा! कैसे बैठे यह बात! पंच महाव्रतका पालन करना, यह करना–वह करना—यह बंधके भाव पर्यायमें हैं; त्रैकालिक ध्रुवद्रव्य किसी काल बँधा नहीं है, वह मुक्त ही है।

'मुक्त है या बँधा है वह व्यवहारनयसे है, वह पर्याय है।'

त्रैकालिक भगवान आत्मा वह तो मुक्तपना या बंधपना—दोनोंसे रहित है। अनन्तगुणगम्भीर ऐसा यह जीवतत्त्व जहाँ मतिज्ञान और श्रुतज्ञानमें बैठा, वहाँ उसका सहज अस्तित्व ख्यालमें आता है कि—वस्तु है वह कभी बँधी या मुक्त हुई नहीं है। वस्तु मुक्त है या बँधी है वह पर्यायनयसे, अभूतार्थनयसे है।

प्रश्न :—पर्याय तो असत्य है अर्थात् पर्याय नहीं है ऐसा समयसारकी ११वीं गाथामें आता है ना?

उत्तर :—अभूतार्थ–असत्य है वह किस अपेक्षासे? वस्तुमें पर्याय अस्तिरूपसे होनेपर भी उसका लक्ष छुड़ानेके लिये उसे असत्य कहा है। उसका आश्रय करनेसे राग होता है। पर्यायका आश्रय करनेसे क्या वस्तुस्वभाव हाथ आयगा?—नहीं आ सकता। समयसारकी ३२०वीं गाथाकी श्री जयसेनाचार्यकृत टीकामें कहा है कि—आत्मद्रव्य जो कि ध्रुववस्तु है, वह बंधमार्ग या मोक्षमार्गको नहीं करती। अहाहा! तत्त्व है ना? द्रव्य है ना? वस्तु है ना? वह बँधती है तथापि एक समयके रागकी–पर्यायकी अपेक्षासे; और छूटती है तो भी राग और अज्ञानताके अभावसे उत्पन्न हुई सर्वज्ञदशारूप पर्यायकी अपेक्षासे। इसप्रकार एक जीवकी बंध-मोक्षरूप दो पर्यायोंसे विचारणा करना वह व्यवहारनय है। वस्तुस्वरूप तो अंतरमें त्रैकालिक अबंध वस्तु है वह है। प्रमाणके विषयमें पर्यायका अंश है ना? इसलिये ऐसा भी कहा जाता है कि—जीव बंध-मोक्षको, सम्यग्दर्शन या केवलज्ञानको प्रगट करता है। परन्तु वह व्यवहारसे कहा जाता है।

प्रश्न :—यह कैसी बातें! धरम करना है उसमें ऐसी बातें कहाँ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्तर :—भाई! धर्म उसे होता है जो अंतरमें विद्यमान अगाध, गम्भीर एवं अनंत सत्तासम्पन्न चैतन्यवस्तुको दृष्टिमें लेकर उसे ग्रहण करे; उसीका नाम सम्यग्दर्शन है और वही धर्म है।

बंध-मोक्षको भी त्रैकालिक जीवद्रव्य नहीं करता। 'परमात्म-प्रकाश'के प्रथम अधिकारके ६८वें दोहेमें श्री योगीन्द्रदेवने भी कहा है कि :—

'ण वि उपज्जइ ण वि मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ।
जिउ परमत्थे जोइया जिणवर एउ भणेइ॥'

हे योगी! परमार्थसे जीव उपजता भी नहीं है, मरता भी नहीं है और बंध-मोक्ष नहीं करता—ऐसा श्री जिनवर कहते हैं। अहा! तीनलोकके नाथ अनन्त तीर्थंकर ऐसा कहते हैं कि परमार्थसे त्रैकालिक ध्रुव जीवद्रव्य है वह बंधको और बंधके मार्गको (पुण्य-पाप-आस्रवको) तथा मोक्षको और मोक्षके मार्गको (संवर–निर्जराको) नहीं करता। जीव उन्हें करता है वह पर्याय-अपेक्षासे व्यवहारनयसे है। अगाध, गंभीर और गहरा-गहरा तल है जिसका, ऐसी इस निर्विकल्प वस्तुमें—भले ही अरूपी है परन्तु वस्तु है अगाध–गंभीर!—बंध या मुक्ति हो वह भी पर्याय है, व्यवहार है।

'जैसे मकड़ी अपनी लारमें बँधी है वह छूटना चाहे तो छूट सकती है, जैसे घरमें रहनेवाला मनुष्य अनेक कार्योंमें, उपाधियोंमें, जंजालमें फँसा है परन्तु मनुष्यरूपसे छूटा है;'.....

एक दृष्टान्त है कि–दो पैर हों तबतक मनुष्य; विवाह करके स्त्रीको लाया इसलिये हुआ चौपाया—पशु। अहा! कहाँ उसका आत्मा और कहाँ तेरा आत्मा! जगतकी किसी वस्तुके साथ तुझे कहाँ सम्बन्ध है? वह तो तुझसे भिन्न रहकर स्वतंत्ररूपसे परिणमित होती है। उसे अपनी मानकर तू मकड़ीकी भाँति रागकी लारमें बँध रहा है। फिर पुत्र हुआ इसलिये षट्पद—भँवरा हो गया और उसका विवाह किया इसलिये अठपगा—मकड़ी बन गया। 'यह करूँ और ऐसे करूँ'–इसप्रकार मकड़ीकी भाँति कर्तृत्वके रागकी लारमें उलझ गया है। भाई! वे सब कहाँ तेरे थे? जहाँ बंध और मोक्षको भी व्यवहार कहा, वहाँ राग और परके सम्बन्धकी बात ही कहाँ रही? अहा! बाह्यदृष्टि वालेको अंतरके तलकी खबर कैसे पड़ेगी? पर्यायमें अटक गया परन्तु तलमें अनंत ज्ञान और अनंत आनन्दकी कितनी महान प्रभुता विद्यमान है उसका लक्ष नहीं किया।

मकड़ी छूटना चाहे तो छूट सकती है। वैसे ही घरके जंजालमें फँसा मनुष्य मनुष्यरूपसे तो मुक्त ही है, उसका मनुष्यपना उस उपाधिमें कहीं घुस नहीं गया है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'वैसे ही जीव विभावके जालमें बँधा है, फँसा है परन्तु प्रयत्न करे तो स्वयं मुक्त ही है ऐसा ज्ञात होता है।'

जिस प्रकार अनेक कार्योंमें फँसा मनुष्य वह मनुष्य ही है, उसीप्रकार शुद्ध ज्ञानानन्दस्वभावसे परिपूर्ण भगवान आत्मा विभावके जालमें फँसा है, उलझा है, परन्तु प्रयत्न करे तो स्वयं छूटा ही है ऐसा बराबर ज्ञात हो।

व्यवहारनयसे विभावमें बँधा हुआ है; बिलकुल नहीं बँधा है—ऐसा नहीं है। व्यवहारनय है ना? उसका विषय भी है ना? किन्तु वस्तुरूपसे बँधा हुआ नहीं है। एक द्रव्यमें बंध और मोक्ष ऐसे दो भेद करना वह तो व्यवहारभावसे है; द्रव्यके तलमें ऐसे दो भेद नहीं हैं। उस अभेद ज्ञायक तलको ज्ञेय बनाकर, उसका आश्रय करके जो ज्ञान हो उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं। बाकी तो बारह अंगका ज्ञान भी विकल्प है। उस विकल्पसे भी जीव स्वयं मुक्त ही है, ऐसा अंतरमें प्रयत्न करे तो बराबर ज्ञात हो।

'चैतन्य पदार्थ तो मुक्त ही है।'

आत्मा चैतन्यवस्तु है ना? चैतन्यकी चैतन्यता तो मुक्त ही है। वस्तुको क्या है? क्या उसे बंध होता है? बंध हो तब तो वह अवस्तु हो जाये; परन्तु कभी किसी दिन अवस्तु होती नहीं है। जिसप्रकार अपने द्रव्यकी अपेक्षा दूसरा 'अद्रव्य' है, उसीप्रकार द्रव्यको बंधन हो तो वह 'अद्रव्य' हो जाये; अपना स्वद्रव्य नहीं रहे। ऐसी बातें हैं!

'चैतन्य तो ज्ञान-आनन्दकी मूर्ति—ज्ञायकमूर्ति है, परन्तु स्वयं अपनेको भूल गया है।'

ज्ञान और आनन्दादि गुण आत्माका सत्त्व है। सत्का सत्त्व कभी बँध सकता है? वस्तु, वस्तुरूपसे तो ज्ञायकमूर्ति ही है, किन्तु अल्प अस्तित्वमें अपनत्व मानकर अपने महासत्त्वके त्रैकालिक शुद्ध अस्तित्वको भूल गया है।

'विभावका जाल बिछा है, उसमें फँस गया है, परन्तु प्रयत्न करे तो मुक्त ही है। द्रव्य बँधा नहीं है।'

विकल्प असंख्य प्रकारके हैं। शुभ और अशुभके निमित्त अनन्त हैं। उन निमित्तोंके लक्षसे उत्पन्न विभावोंके—शुभाशुभ भावोंके जालमें जीव फँस गया है। वह जाल बिछाया है स्वयंने, परन्तु पुरुषार्थ करे तो स्वयं मुक्त ही है ऐसा भास हो। द्रव्य बँधा हुआ नहीं है। द्रव्यको बंधन कैसा? बंधन तो पर्यायमें अटकी हुई एक समयकी दशाकी अपेक्षा है और निमित्तरूप कर्मका बंधन व्यवहारसे है, तथा एकसमयकी दशामें पूर्णता प्राप्त हो वह भी एक समयकी पर्याय है। वस्तु क्या कभी बँध सकती है? वस्तु तो त्रिकाल मुक्त ही है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा तो अनादि-अनन्त अस्तित्व रखनेवाली एक ऐसी वस्तु है जो कभी बँधती नहीं है। अनादि-अनंत ज्ञान एवं आनन्दमय अस्तित्व रखनेवाले चैतन्यतत्त्व—निजशुद्धात्म-द्रव्य पर दृष्टि जाना, उसकी अंतरमें प्रतीति होना उसका नाम सम्यग्दर्शन है और वह धर्मका मार्ग है।

✽

बेनकी पुस्तक (वचनामृत) बड़ी ऊँची है। सादी भाषा, मर्म बहुत। अतीन्द्रिय आनन्दमेंसे निकली हुई बात है। अकेला मक्खन भरा है— माल भरा है। अति गंभीर! थोड़े शब्दोंमें अति गंभीर! यह तो अमृतधाराकी वर्षा है। वचनामृत तो बारह अंगका सार है, सारमें सार तत्त्व आगया है। 'द्रव्यदृष्टिप्रकाश'की अपेक्षा यह पुस्तक अलौकिक है। जगतके भाग्य हैं कि ऐसी वस्तु प्रगट हुई! ऐसे वचनामृत किसे अच्छे नहीं लगेंगे? सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकीनाथने देखे वे यह भाव हैं। *—पूज्य गुरुदेव*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-१५

ता. २०-६-७८

वचनामृत-४८

विकल्पमें पूरा-पूरा दुःख लगना चाहिये। विकल्पमें किंचित् भी शान्ति एवं सुख नहीं है ऐसा जीवको अन्दरसे लगना चाहिये। एक विकल्पमें दुःख लगता है और दूसरे मन्द विकल्पमें शान्तिका आभास होता है, परन्तु विकल्प मात्रमें दुःख लगे तो अन्दर मार्ग मिले बिना न रहे ॥ ४८ ॥

'विकल्पमें पूरा-पूरा दुःख लगना चाहिये।'

विषय जरा सूक्ष्म है। विकल्पमें पूरा-पूरा दुःख लगना चाहिये इसका क्या अर्थ? भक्तिका विकल्प हो या गुण-गुणीके भेदका विकल्प हो, वह विकल्प शुभराग है। विकल्पमात्र दुःख है, उसमें किंचित् सुख है ही नहीं। विकल्पमें सुख मानना वह मिथ्यात्व है। भक्ति-पूजादिका स्थूल विकल्प या अंतरमें तत्त्व-विचारका सूक्ष्म विकल्प होता अवश्य है; परन्तुवह विकल्प मेरा है, उसमें सुख है, यह मान्यता मिथ्यात्व है, पूरा-पूरा दुःख ही है; ऐसा अन्दरसे लगना चाहिये, मिथ्यात्व मिट गया उसके बाद भी जो राग है वह दुःख ही है ऐसा ज्ञानमें ख्याल आता है। अज्ञानीको तो ख्याल ही नहीं है कि मैं आनन्द-स्वरूप हूँ, मेरी नित्य यथार्थ वस्तु तो आत्मामें है।

विषय-वासनाके, व्यापार-धन्धेके या बाह्यमें बड़प्पनके भाव वे तो अशुभ राग हैं, तीव्र दुःखरूप ही हैं; परन्तु जो शुभरागके विकल्प आयें वह भी आत्माकी जाति नहीं है। उस विकल्पमात्रमें पूरा-पूरा दुःख लगना चाहिये अर्थात् उस ओरके झुकावमें आकुलता लगना चाहिये।

प्रश्नः—व्यवहारके शुभ विकल्पको निश्चयका साधन कहा जाता है ना?

उत्तरः—व्यवहारका शुभराग भी वास्तवमें निश्चयका साधन नहीं है। व्यवहारका शुभराग भी दुःखरूप है; तो वह आत्माका आश्रय लेनेके लिये साधन कैसे होगा? राग उठे उसमें सचमुच कहीं सुख नहीं है, दुःख ही है। राग उठे उसमें पूरा-पूरा दुःख है? हाँ, शुभ हो या अशुभ हो—रागमात्रमें, विकल्पमात्रमें, परिपूर्ण दुःख लगना चाहिये।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'विकल्पमें किंचित् भी शान्ति एवं सुख नहीं है ऐसा जीवको अन्दरसे लगना चाहिये।'

शुभके विकल्पमें भी किंचित् शान्ति या सुख नहीं है। पहले अस्तिसे कहा कि विकल्पमें पूरा-पूरा दुःख लगना चाहिये; अब नास्तिसे कहते हैं कि विकल्पमें किंचित् भी शान्ति और सुख नहीं है ऐसा अन्दरसे लगना चाहिये। बाह्य साधनोंमें सुख है यह मान्यता तो महा दुःखरूप है ही; परन्तु भीतर जो शुभ या अशुभ रागकी वृत्ति उठे उसमें भी किंचित्मात्र शान्ति और सुख नहीं है। विकल्पमें किंचित् भी शान्ति नहीं है किन्तु पूरा-पूरा दुःख है—ऐसा 'किंचित् भी' और 'पूरा-पूरा' शब्द आमने-सामने आये हैं। भगवानका स्मरण आदि जो शुभराग है उसमें पूरा-पूरा दुःख है और तू अंतरमें पूरा-पूरा आनन्दरूप है।

व्यवहार क्रियाकाण्डके चाहे जो शुभभाव हों, किन्तु वे निश्चयका–शुद्धताका साधन हों यह कैसे हो सकता है? वह तो परलक्षी राग है, दुःख दशा है; उसके साधनसे आत्माका निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान या निश्चय चारित्र हो ऐसा तीन कालमें नहीं हो सकता। आया कुछ समझमें? सूक्ष्म बातें हैं भाई! जन्म-मरणसे रहित होनेका पंथ, अरेरे! जगतको सुननेको नहीं मिला। अंतरमें स्वयं नित्य चैतन्यधातु, ज्ञान-आनन्दादि स्वभावोंको धारण करके नित्यस्थायी तत्त्व त्रिकाल विद्यमान है; उसे छोड़कर जितनी वृत्तियाँ हों—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, भगवानका और गुरुका स्मरण—वह सब विकल्प हैं और दुःखरूप है, क्योंकि वह भी विभाव है ना? कठिन काम है भाई! दुनियासे यह बिलकुल अलग बात है!

निश्चय सम्यग्दर्शनके पश्चात् भी व्यवहारचारित्रके विकल्प आयें, किन्तु उनसे निश्चय-चारित्रकी प्राप्ति नहीं होती। शुभराग स्वयं दुःखरूप है वह निश्चयका साधन कैसे हो सकता है? अबंधस्वरूपी भगवान बंधभावसे कैसे प्राप्त होगा? चारित्र है वह तो अरागी, अकषायी शुद्ध परिणति है और व्यवहारचारित्रका भाव तो रागकी मन्दतारूप शुभ विकल्प है। विकल्प दुःख है और निश्चयचारित्र तो आनन्द है। दुःख आनन्दका साधन कैसे होगा?

प्रश्न :—व्यवहारको साधन कहा है ना?

उत्तर :—वह तो साधनका दो रूपमें वर्णन किया है। जिसे रागसे भिन्न होकर भीतर चैतन्यके आनन्दका स्वाद आया है ऐसे जीवको वास्तवमें सच्चा साधन तो अंतरमें आनन्द एवं शान्ति है, तथापि साथमें जो व्रतादिके शुभरागका विकल्प उठता है उसे सहचर मानकर आरोपसे निमित्तरूपसे साधन कहा है। सचमुच वह शुभरागका विकल्प शुद्धिका साधन है नहीं; किन्तु दुःख है—ऐसा उसे अंतरमें लगना चाहिये।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'एक विकल्पमें दुःख लगता है और दूसरे मन्द विकल्पमें शान्तिका आभास होता है, परन्तु विकल्प मात्रमें तीव्र दुःख लगे तो अन्दर मार्ग मिले बिना न रहे।'

यहाँ तो मार्ग मिलनेकी बात है ना? मार्ग मिलनेके पश्चात् जो शुभ-अशुभ विकल्प आयें वे भी लगते तो दुःखरूप ही हैं। वे विकल्प कर्मधारा है; ज्ञानधाराको वह बिलकुल सहायक नहीं होती; यहाँ तो प्रथम प्राप्त करने वाले को 'किस प्रकार प्राप्त हो?' वह समझानेके लिये बात चलती है। एक विकल्पमें दुःख लगे और दूसरे मन्द विकल्पमें शान्तिका अनुभव हो—यह भ्रम है। रागभावसे वीतरागता या शान्ति प्राप्त हो—इस बातका जिनेश्वरदेवके वीतरागमार्गमें निषेध है। विकल्पमात्रमें दुःख लगे तो भीतर मार्ग मिले बिना न रहे। अहाहा! बेन कैसा बोली हैं!

❋

वचनामृत-४६

सारे दिनमें आत्मार्थको पोषण मिले ऐसे परिणाम कितने हैं और अन्य परिणाम कितने हैं वह जाँचकर पुरुषार्थकी ओर झुकना। चिंतवन मुख्यरूपसे करना चाहिये। कषायके वेगमें बहनेसे अटकना, गुणग्राही बनना॥ ४६॥

'सारे दिनमें आत्मार्थको पोषण मिले ऐसे परिणाम कितने हैं और अन्य परिणाम कितने हैं वह जाँचकर पुरुषार्थकी ओर झुकना।'

चौवीस घन्टेमें अन्तरोन्मुख सत्‌के परिणाम कितने आते हैं और बाह्योन्मुख परिणाम कितने—वह विचारनेका जीव अवकाश नहीं निकालता; परन्तु अवकाश लेकर परिणामोंको जाँचकर पुरुषार्थकी ओर चलना चाहिये। भगवान पूर्णस्वरूप ध्रुवधाम है वह, जिसप्रकार चबूतरा बैठनेका स्थान है उसी प्रकार अंतरमें स्थिरताका स्थान है। ध्रुव चैतन्य प्रभुकी ओर उन्मुखताके तथा बाहरकी ओर झुकावके परिणाम कितने हुए—ऐसा दोनोंका भेद करके दोनोंको जाँचकर अंतर-पुरुषार्थकी ओर बढ़ना। भगवान ध्रुवधाम–चैतन्यधाम–नित्यानन्द प्रभु परसे उदासीन होकर स्वरूपमें बैठने—स्थिर होनेका—स्थान है, विश्रामस्थल है। वहाँ पुरुषार्थको अंतरोन्मुख करना। अहा! ऐसी बात है! लोगोंको बेचारोंको सुननेको भी नहीं मिलती, और जीवन यों ही पापकी गठरी बाँधकर व्यर्थ चला जायगा। आत्मा क्या वस्तु है उसकी भी उन्हें खबर नहीं है! यहाँ तो कहते हैं कि अंतरमें तिरनेके साधन और स्थिर होनेके स्थान ऐसे निर्विकल्प वीतरागी परिणाम कितने हैं और बाह्योन्मुख परिणाम

१७

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कितने हैं वह जाँचकर पुरुषार्थको अन्तरोन्मुख करना। यह बात दुनियाको कैसे बैठे? जो स्वरूप है उसमें पुरुषार्थ करो।

'चिंतवन मुख्यरूपसे करना चाहिये। कषायके वेगमें बहनेसे अटकना, गुणग्राही बनना।'

अंतरमें कितना पहुँच सके और बाहर कितने विकल्प आये—उन्हें देखकर अंतर्मुख होना। लोगोंको यह भी खबर नहीं है कि कषाय किसे कहना। वे तो हिंसा और विषयभोग, कमाना और खाना-पीना आदि पापभावोंको कषाय जानते हैं—मानते हैं; परन्तु अंतरमें जो भक्तिका अथवा यात्रादिका शुभराग आये वह भी कषाय ही है। उसके वेगमें बहनेसे भी अटकना चाहिये। अहा! यह बात जीवोंके कैसे बैठे? अनन्तकालसे वस्तुकी शरण बिना जीव चौरासीके परिभ्रमणमें भटक मरा है। स्त्री-पुत्र-परिवारको छोड़कर साधु बने किन्तु अंतरमें जो यह महाव्रतादिके विकल्प उठते हैं वे भी दुःखरूप हैं, अभिप्रायमें उन्हें भी छोड़ दे तो उसने आत्माकी ओर प्रयाण किया कहा जाय। रुचिमें जब विकल्पका त्याग करे और स्वरूपको ग्रहण करे तब उसे धर्म हो। अहाहा! ऐसी बात है भाई! कषायके वेगमें बहनेसे अटकना। लोगोंका प्रवाह जैसा चल रहा है उसीमें चलते-बहते जाना वह कषायका वेग है! भगवान कहते हैं कि आत्माके स्वभावमें जाना, उसकी ओर ढलना—ऐसे जो वीतरागी परिणाम वह धर्म है; बाकी सब थोथे हैं।

विशाल गजरथ चलाये, बड़े-बड़े यात्रासंघ निकाले उनमें धूल भी धर्म नहीं है। वे सब विकल्प हैं। यहाँ तो कहते हैं कि तीनलोकके नाथ समवसरणमें विराजते हों—वर्तमानमें श्री सीमंधर भगवान विराजते हैं महाविदेहमें—वहाँ अनंतबार गया, और दिव्य-ध्वनि सुनी; वह सुननेका भाव भी शुभराग है, दुःखरूप है। उस शुभरागरूप कषायके वेगमें भी बहनेसे अटकना, अंतरके गुणोंको ग्रहण करना, गुणग्राही बनना, अंतरमें अनन्तानन्त गुणोंका सागर भगवान आत्मा स्वयं है उसे जानना और ग्रहण करना।

दूसरोंके गुणोंको जानना, अरिहंत भगवानको 'यह केवली हैं'—ऐसा जानना वह भी परलक्षी विकल्प है, राग है। अहा! बड़ा कठिन कार्य! समयसारकी ११वीं गाथाके भावार्थमें कहा है कि—वीतरागकी वाणीमें व्यवहारको सहकारी गिनकर उसका उपदेश बहुत दिया है, परन्तु उसे पकड़नेका फल संसार है! वीतरागकी वाणीमें आया हुआ जितना व्यवहारका कथन है—व्रत लेना, उपवास करना, ब्रह्मचर्य पालना—वह सब विकल्प और शुभरागका वर्णन है। उसका फल संसार है। यह बात बड़ी असह्य है भाई! बड़ी कठिन है! क्या किया जाय? अरे! अपनी शुद्धतासे भरपूर निजसत्ताकी तो खबर नहीं है और उस सत्ताकी प्राप्ति कहीं बाहरसे-विकल्पसे होगी ऐसा मानता है उसे धर्म नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होता। तीर्थयात्रामें अथवा विशाल गजरथ चलाकर कदाचित् राग मन्द किया हो तो वह शुभभाव है, परन्तु है वह दुःखरूप। अहा! ऐसा वीतरागका मार्ग सहा नहीं जाता—असह्य लगता है! समझे नहीं और पुकार करे कि–एकान्तवादी हैं, एकान्तवादी हैं! क्योंकि व्यवहारसे धर्म होनेकी—लाभ होनेकी बातसे इन्कार करते हैं। यहाँ तो भगवान कहते हैं कि—अंतर्स्वरूपके आश्रयसे धर्म–मोक्ष होता है और रागके विकल्पसे कदापि धर्म नहीं होता—इसका नाम अनेकान्त है। जहाँ सम्यक् तत्त्वको ग्रहण किया है वहाँ श्रुतज्ञानके अंशरूप नयका विषय एक ही अंश है, दो नहीं। निश्चयनय मात्र चैतन्यस्वरूपको ही ग्रहण करता है, पर्यायका लक्ष छूट जाता है। उसे सम्यक् एकान्त कहते हैं।

घाटकोपर (बम्बई)की भजनमण्डलीके भजनमें आता है कि—शुभभावमें तो तुझे नहीं रहने दूँगा किन्तु पर्यायमें भी नहीं अटकने दूंगा; क्योंकि एकसमयकी पर्याय—प्रगट अंश—जितनी दिखती है उसमें कहाँ पूर्ण आत्मा है? पूर्ण आत्मा तो अंतरमें चलनेवाली विचारधाराकी एक समयकी दशासे भिन्न वर्तता है। अरे! तूने अपनी जातिको कभी जाना नहीं। भगवान तो तुझे भगवान रूपसे प्रभुरूपसे बुलाते हैं। वह भगवान तो कितना महान होगा भाई!

अहा! शुभ या अशुभ रागका जो अंश उठता है उसे दुःखरूप जानकर पुरुषार्थको अन्तर्मुख कर, और ज्ञान तथा आनन्दादि अनन्त-अनन्त गुण जो भीतर भरे हैं उन्हें पकड़। उन दुःखरूप विकल्पोंको छोड़ दे तो आत्माका हित होगा, और तभी परिभ्रमण मिटेगा; अन्य रीतिसे परिभ्रमणका अन्त नहीं आयगा। भले ही सदा सामायिक तथा चौविहार करे, कन्दमूल तथा हरितकायका त्याग हो; परन्तु उसमें हुआ क्या? अंतरमें विकल्प उठता है उसे तो अभी खाता है–उसका अनुभव करता है वह मिथ्यात्व है। आत्मा अंतरमें ज्ञानकी जगमग ज्योति है और विकल्पमात्र दुःखरूप हैं ऐसा अनुभव वह सम्यक्त्व है। वही सुखका—आत्मशान्तिका—सच्चा उपाय है।

❃

वचनामृत-५०

तू सत्‌की गहरी जिज्ञासा कर जिससे तेरा प्रयत्न बराबर चलेगा; तेरी मति सरल एवं सुलटी होकर आत्मामें परिणमित हो जायगी। सत्‌के संस्कार गहरे डाले होंगे तो अन्तमें अन्य गतिमें भी सत् प्रगट होगा। इसलिये सत्‌के गहरे संस्कार डाल॥ ५०॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'तू सत्‌की गहरी जिज्ञासा कर जिससे तेरा प्रयत्न बराबर चलेगा;'

गहरी जिज्ञासाका अर्थ क्या? कि–ऊपर-ऊपरसे आत्मा ऐसा है और वैसा है—ऐसा शास्त्रसे नहीं, किन्तु अंतरमें सत्-चिद्-आनन्द प्रभु आत्मा सर्वोत्कृष्ट आनंदस्वरूपसे विद्यमान है उसे समझनेकी गहरी भावना कर।

खान-पानादिकी जरा अनुकूलता हो तो वहाँ मानों तृप्त-तृप्त हो जाता है; रबड़ी-मलाई और पूरी-कचौड़ी एकाकार होकर रुचिपूर्वक खाता है, उसमें तल्लीन हो जाता है। अरे प्रभु! यह क्या हो गया है तुझे? वह तो जड़ है, उसमें तुझे कहाँसे सुखका अनुभव हुआ? उसकी मिठासका ज्ञान होनेसे ज्ञानमें मिठास नहीं आती और ज्ञान मिठासमें नहीं जाता। हाँ, मात्र राग करता है कि मैसूब अच्छा है। उस रागके–पापके–विकल्पको तू अनुभवता है–भोगता है। तू क्या भोगता है उसकी भी तुझे खबर नहीं है। परवस्तुको तू भोग नहीं सकता। लक्ष्मी, बँगला, मोटर यह सब जड़ है—पर है; तू उनका स्पर्श भी नहीं करता, और नहीं वे तुझे छूते हैं।

प्रश्नः—साहब, रुपये मीठे तो लगते हैं?

उत्तरः—खाक मीठे लगते हैं? मिठासकी वृत्ति जीवका रागभाव है, पैसा जड़ है। आत्मा जड़का स्पर्श करेगा? आत्मा तो अरूपी है, स्पर्श-रस-गंध-वर्ण रहित है। आत्मा रुपयेसे तो क्या, शरीरसे भी भिन्न वस्तु है, उसे छुए बिना उसके साथ रहता है। अहा! यह बात कैसे बैठे? ध्रुव स्वभावकी थाह लेनेके लिये चैतन्यका धरातल हाथ आये ऐसी गहरी जिज्ञासा कर, उससे तेरा प्रयत्न बराबर चलेगा।

विषय-कषायके प्रेममें ही जिसका जीवन बीत जाता है वह तो मात्र दुःखके दावानलमें डूब गया है। वह सब तो अशुभ है ही, परन्तु यहाँ तो व्यवहार-रत्नत्रयका शुभराग भी दुःखरूप है। इसलिये शुभाशुभभावसे रहित अंतरमें चैतन्य भगवान सत् है, नित्य वस्तु है, जो बैठनेका विश्राम-स्थल और रहनेका शान्तिधाम है; उसकी उथली नहीं गहरी जिज्ञासा कर।

'अहाहा! क्या पुस्तक प्रगट हो गई है! गुजराती सादी–सरल भाषा है। अब तो हिन्दी भी हो गया है ना?......(जी, हाँ)

'तेरी मति सरल एवं सुलटी होकर आत्मामें परिणमित हो जायगी।'

अपनी मतिको, विपरीततासे हटाकर स्वरूपकी ओर मोड़ दे। गहरी जिज्ञासासे तेरी मति आत्मामें परिणमित हो जायगी। उसका बराबर प्रयत्न चलनेसे तेरी जाति शुद्धरूप परिणमित हो जायगी। शुभरागसे भिन्न होकर स्वरूपोन्मुख होनेपर मति परिणमित हो जायगी।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गहरे-गहरे तलमें उतरनेसे तेरी बुद्धि सरल और सुलटी होकर आत्मामें परिणमित हो जायगी। अबुद्धिपूर्वक विकल्प रहने पर भी, बुद्धिपूर्वकका उपयोग अंतरमें जाने पर आत्मा सम्यग्दर्शनरूप, सम्यग्ज्ञानरूप, सम्यक्शान्तिरूप, अतीन्द्रिय आनन्दके अंशरूप हो जायगा। जिसने निज आत्माको ग्रहण किया है उसकी परिणति ऐसी निर्मल हो जायगी। अहाहा! यह कैसा उपदेश!

'सत्के संस्कार गहरे डाले होंगे तो अन्तमें अन्य गतिमें भी सत् प्रगट होगा।'

शुद्ध सत्तास्वरूप पूर्णानन्द पवित्र प्रभुके गहरे संस्कार डाले होंगे तो भविष्यमें भी तेरा अपना कार्य हो जायगा। यह आत्मा सत्स्वरूप वस्तु है, शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द है—ऐसा व्यवहारश्रद्धामें भी जिसने दृढ़रूपसे धारण कर रखा है उसे सत्के संस्कार अंतरमें गहरे जाकर परिणमित हो जायेंगे; क्योंकि उसका वीर्य रागकी रुचिमेंसे हट गया है। अभी अंतरमें धर्म हुआ नहीं है, किन्तु 'रागकी ओर ढलना और रागकी रुचि करना'—वह श्रद्धामेंसे चला गया है। आत्मा ज्ञान एवं आनन्दस्वरूप है, वहाँ जाना और रहना ऐसी श्रद्धा की है; रागमें जाये किन्तु रागसे लाभ न माने; इसप्रकार व्यवहारश्रद्धामें—विकल्पसहित श्रद्धामें—सत्के गहरे संस्कार डाले होंगे तो अन्तमें अन्य गतिमें सत् प्रगट होगा। यह भव पूरा हो गया तो अगले भवमें प्राप्ति होगी। पुरुषार्थकी कुछ कमी रह गई हो तो पुरुषार्थ वहाँ पूर्ण हो जायगा।

प्रश्नः—ऐसा करनेके लिये उसकी पात्रता कितनी होना चाहिये?

उत्तरः—पात्रतामें ऐसी श्रद्धा आती है कि भीतर स्वभावमें गये बिना आत्माका धर्म कभी त्रिकालमें नहीं होगा; यह दया-दान एवं व्रत-पूजादिके भाव सब दुःखरूप हैं, मेरे आनन्दके घातक हैं,—इस प्रकार रुचिका वेग परकी ओरसे बदल दिया है और स्वकी ओर ढलनेका प्रयत्न चल रहा है। उस सच्ची पात्रताके संस्कार भविष्यमें भी रहेंगे और अन्तमें दूसरी गतिमें सत् प्रगट होगा ही। विश्वास रख; प्रभुको पकड़ा है तो प्रभु मिले बिना नहीं रहेगा। यहाँ श्रद्धा भले ही विकल्पयुक्त है; परन्तु अंतरमें जानेका जो प्रयत्न है वह मुक्तिका कारण है।

नये कोरे दियेमें पानीकी बूँदें गिरनेसे वह सोख लेगा; परन्तु विशेष बूँदें गिरनेपर वह भीना होकर पानीको भर लेगा; उसी प्रकार जिसने अंतरमें सत्के संस्कार डाले हैं उसे संस्कार छलककर परिणति हो जायेगी। परिणति होनेमें कारण तो वर्तमान पुरुषार्थ है, परन्तु पूर्वके संस्कार सहायक होते हैं ऐसा पर्यायदृष्टिसे—व्यवहारसे—कहा जाता है। 'समाधिशतक'में पूज्यपाद आचार्यने कहा है कि सम्यक्त्वप्राप्त जीव भी पूर्व संस्कार के कारण गिर जाता है; वास्तवमें तो वहाँ वर्तमान विपरीत पुरुषार्थ होनेसे सम्यक्त्व गिर जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सारा जगत रागसे दब गया है—नष्ट हो गया है। अंतरमें निजप्रभु तो सर्व प्रकारके रागसे रहित शुद्ध पदार्थ है; उसे रागकी क्रियासे—सदाचरणके शुभभावसे—सम्यक्त्व या धर्म हो ऐसी मान्यतारूप भाव मिथ्यात्व है। उसका प्रेम वह निगोदमें जानेका लक्षण है, और वह तत्त्वके गहरे संस्कार तो सिद्ध होनेका लक्षण है।

बेनने कहा ना, कि गहरे संस्कार डाले होंगे तो सत् प्रगटेगा ही!

'इसलिये सत्के गहरे संस्कार डाल।'

अंतरमें वस्तु त्रैकालिक सत् है। एक समयकी पर्यायको त्रैकालिक सत्की ओर ढाल। उसमें तुझे सत्की प्राप्ति होगी, एकसमयकी पर्यायपर लक्ष जायगा तो तुझे सत्की प्राप्ति नहीं होगी, क्योंकि पर्यायमें पूर्ण सत् नहीं है। पूर्ण सत् तो त्रैकालिक स्वरूपमें है। स्वयं अस्तित्ववान अंतर्‌तत्त्व है परन्तु उसकी खबर नहीं है! भगवान आत्मा दया–दानादिके विकल्पोंसे भिन्न है। कब? इसी समय। अरे! वह रागसे तो भिन्न है, परन्तु उसे जाननेवाली जो ज्ञानकी वर्तमान पर्याय उस पर्यायमेंसे भी सम्पूर्ण तत्त्व नहीं आता; उस वर्तमान अंशको त्रैकालिककी ओर ले जायगा तो तुझे त्रैकालिक तत्त्वका परिणमन होगा–अनुभव होगा। पर्यायके ऊपर लक्ष रखकर परिणमेगा तो रागकी दशा होगी और त्रैकालिक चैतन्य सत् पर दृष्टि करके, उसके गहरे संस्कार डालकर परिणमेगा तो वीतरागदशा होगी।

अहाहा! सादी गुजराती भाषा! बेनकी भाषा सादी गुजराती!

अरे! दुनियाको क्या पड़ी है? मैंने यह किया, मैंने कमाया और बड़ा उद्योगपति बन गया। पिताके पास कुछ नहीं था और मैंने अपने हाथोंके बलसे प्राप्त किया—इस प्रकार दुनिया पागलपनमें जीवन बिता देती है। प्रभु! तूने बाहरका कुछ किया नहीं है, कर भी नहीं सकता; तूने मात्र राग किया है और मिथ्यात्व भाव। अब तू अपनी दिशा पलट दे। अंतरमें तू नित्यस्थायी तत्त्व है; उसके तल पर दृष्टि लगा और उसके गहरे संस्कार डाल। वहाँ बैठनेसे आत्माको स्थायी विश्राम मिलेगा। राग और पर्यायमें बैठने–रहनेसे तुझे दुःख होगा। एक समयकी पर्याय भी तेरा ध्रुवधाम नहीं है। अहा! अंतरमें जहाँ तेरा ध्रुवधाम—भगवान आत्मा है वहाँ जा! उसके संस्कार डाल तो तुझे सत् प्रगट होगा ही।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत-५१

आकाश-पाताल भले एक हो जायें परन्तु भाई! तू अपने ध्येयको मत चूकना, अपने प्रयत्नको मत छोड़ना। आत्मार्थको पोषण मिले वह कार्य करना। जिस ध्येय पर आरूढ़ हुआ उसे पूर्ण करना, अवश्य सिद्धि होगी॥ ५१ ॥

'आकाश-पाताल भले एक हो जाय परन्तु भाई! तू अपने ध्येयको मत चूकना,'.....

दुनिया सारी उलट जाय, बदल जाय परन्तु भाई! तू अपने ध्येयको मत चूकना। अंतरमें आनन्दका नाथ प्रभु आत्मा है उसे मत छोड़ना। दुनिया तो कहेगी कि यह तो भ्रष्ट हो गया, निश्चयाभासी हो गया, व्यवहार की तो इसके मनमें कोई कीमत ही नहीं है। भले सारी दुनिया कहे परन्तु तू अंतरकी गहराईमें उतर जा। अहा, बेनकी भाषा कैसी है, देखी?—'आकाश-पाताल भले एक हो जायें।' यद्यपि कभी एक होते नहीं हैं परन्तु ऐसा कहकर कहती हैं कि–औंधे गिरे हुए मनुष्य—पण्डित नाम धारण करनेवाले, त्यागी नाम धारण करनेवाले, साधु नाम धारण करनेवाले—सब तेरा विरोध करें और कहें कि—'हम यह जो व्रत, तप और भक्ति करते हैं वह क्या धर्म नहीं है?'—इस प्रकार सारी दुनिया भले बदल जाय, परन्तु भाई! अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दका सागर है वह शरीरसे, दया-दानके विकल्पसे और उन्हें जाननेवाली एकसमयकी पर्यायसे भी भिन्न है, उस अपने ध्येयको तू चूकना नहीं। भीतर जहाँ आनन्द भरा है उस आनन्दके नाथ—आत्माके संस्कार डालकर सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेका प्रयत्न कर; उसके सिवा अन्य कोई साधन नहीं होगा।

यह शरीर तो हाड़, माँस तथा चमड़ेकी बनी हुई कुटिया है। भीतर दया, दान, यात्रादि पुण्यके तथा खान-पान राग-रंग आदि पापके भाव आते हैं, परन्तु वे तो राग और दुःखरूप हैं। प्रभु! तू राग एवं दुःखसे भिन्न वस्तु है।—इस ध्येयमें सारी दुनिया तेरा विरोध करे तथापि तू अपने ध्येयको छोड़ना मत।

❃

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन-१६

ता. २१-६-७८

वचनामृत-५१

यह ५१वाँ बोल चलता है। इसमें क्या कहते हैं? कि—

'आकाश-पाताल भले एक हो जायें परन्तु भाई! अपने ध्येयको मत चूकना, अपने प्रयत्नको मत छोड़ना।'

अर्थात् क्या? कि—तू नित्य ध्रुव आत्मा है, उसे पकड़नेके लिये ऐसा प्रयत्न कर कि जिससे अनन्त संसारका अंत आ जाय। सारी दुनिया बदल जाय—विरोधी होजाय तथापि तू अपने ध्येयसे च्युत मत होना। परवस्तु नहीं, राग नहीं, पर्याय नहीं, परन्तु चैतन्यस्वभावसे परिपूर्ण भरा हुआ जो निज स्वरूपका सहज अस्तित्व उसे ध्येय बनाकर अनुभवना;—उसमें तेरी निन्दा हो, प्रतिकूलता आये तथापि शुद्ध आनन्दकन्द स्वरूप अपने ध्येयको मत चूकना। अहाहा! विकल्पको तोड़कर स्वरूपका निर्विकल्प अनुभव करना—वही प्रथम कर्त्तव्य है।

व्यवहारसे निश्चयकी प्राप्ति होती है, देव-गुरुकी कृपा हो तो आत्मा मिल जाय, केवली भगवानके समवसरणमें जाय तो आत्मज्ञान होता ही है;—ऐसे अनेक प्रकारके स्वच्छन्द—मिथ्या अभिप्राय—चलते हों तो उनका लक्ष छोड़कर तू अपने ध्येयको—अंतरकी चैतन्यस्वरूप वस्तुको—चूकना नहीं; अपने प्रयत्नको मत छोड़ना। बाह्य क्रियाका प्रयत्न तो आत्मा कर ही नहीं सकता, परन्तु जो तू कर सकता है ऐसे—पुण्य-पापके विकल्पोंसे रहित चैतन्यस्वरूपकी ओर जानेके—प्रयत्नको नहीं छोड़ना। अतंर्मुख होनेमें देर लगे, अकुलाहट हो, उलझन हो, तथापि ध्येयको चूकना नहीं। उसे प्राप्त करके ही रहूँगा ऐसा पहले अंतरमें निर्णय कर। अहा! ऐसी बात है।

अभी तक जितने सिद्ध हुए वे भेदविज्ञानसे हुए हैं—

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन॥

और जितने बँधे हैं वे कर्मसे बँधे हैं—ऐसा नहीं कहा, किन्तु भेदज्ञानके अभावसे

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बँधे हैं। भेदज्ञान करनेका तेरा जो प्रयत्न है उसे चूकना नहीं।

'आत्मार्थको पोषण मिले वह कार्य करना।'

आत्माकी प्रयोजनभूत वस्तु जो शुद्धि—आत्मानुभूति—उसे पोषण मिले ऐसा कार्य करना। सुनने और पढ़नेके रागका शुभ विकल्प आये-हो, तथापि आत्मार्थकी पुष्टि हो वह कार्य करना। पूर्णानन्द स्वभावका दृष्टिमें स्वीकार, उसके अस्तित्वकी पर्यायमें स्वीकृति—वह जीवका कार्य है। उसे पोषण मिले वह कार्य करना।

'जिस ध्येयपर आरूढ़ हुआ उसे पूर्ण करना, अवश्य सिद्धि होगी।'

अंतरमें शुद्ध चैतन्यघन, परमार्थस्वरूप ध्रुव जो निश्चय आत्मा उसे ग्रहण करनेको, उसके सन्मुख होकर उसपर जानेको उद्यत हुआ—आत्मामें आरूढ़ हुआ—उसे पूर्ण करना, अवश्य मुक्ति होगी।

नैरोबी (अफ्रीका)से एक वकीलका पत्र आया है। वचनामृत-पुस्तक पढ़कर बहुत प्रसन्न हुए हैं। लिखतें हैं कि—अहा! ऐसी बात किसने लिख ली! ऐसी वस्तु किसने प्रगट की! लिखनेवाली बेटियोंको धन्य है! जिसने प्रकाशन किया उसे धन्य है। जिन्होंने रुपिया देकर मूल्य कम किया उन्हें भी धन्य है! इससे संसारमें धर्मकी प्रभावना होगी ऐसा लगता है।—ऐसा वे वकील लिख रहे हैं।

भाई! यह तो उसके घरकी बात है। वकील हो या बालक हो, नारकी हो या पशु; वस्तु स्वयं कहाँ नारकी या पशु है, वकील या बालक है? एक समयमें वर्तमान त्रैकालिक पूर्ण ध्रुवतत्त्व अस्तित्वरूपसे है। पदार्थ है ना?—उस ध्येय पर चढ़ा है तो उसे पूर्ण करना, जरूर प्राप्ति होगी।

शरीरादि परको अनेक प्रयत्न करके रखना चाहे तो भी रहते नहीं हैं, और रागको अपना बनाना हो तो वह भी हो नहीं सकता। यह तो जो 'है' उसकी—प्राप्तिकी—प्राप्ति करना है। तू पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्दका कन्द प्रभु है। दृष्टिमें उसे ध्येय बनाया है, तो उस ध्येयको पूर्ण करना, अवश्य सिद्धि होगी।

यह (पुस्तक) लोग पढ़ेंगे तो विरोधियोंका विरोध मिट जायगा। मुनि भी पढ़ेंगे तो विरोध टल जायगा। ऐसी शैलीसे अस्तिसे बात कही है। मुनिपना कैसा होता है, वह (बात) आगे आयगी। मुनिपनेकी स्थितिका जितना और जैसा अस्तित्व है उसका वर्णन किया है कि इसका नाम मुनिपना। उसमें किसे विरोध लगेगा? हाँ, उन्हें ऐसा लगेगा कि अरे! इस दशामें तो हम नहीं है; इसमें तो मुनिका स्वरूप ऐसा कहते हैं! न्याय एवं लॉजिकसे भी ऐसा हीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत-५२

शरीर शरीरका कार्य करता है, आत्मा आत्माका कार्य करता है। दोनों भिन्न-भिन्न स्वतंत्र हैं, उनमें 'यह शरीरादि मेरे' ऐसा मानकर सुख-दुःख न कर, ज्ञाता बन जा। देहके लिये अनन्त भव व्यतीत हुए; अब, संत कहते हैं कि अपने आत्माके लिये यह जीवन अर्पण कर॥ ५२॥

'शरीर शरीरका कार्य करता है, आत्मा आत्माका कार्य करता है।'

करेगा ऐसा नहीं, किन्तु करता है ऐसा कहा है। यह चलना, फिरना, बोलना जो जड़का कार्य है वह जड़ स्वयं करता है। वह वस्तु तेरी नहीं है कि तुझसे वे कार्य हों।

प्रश्न :—यहाँ तो शरीरकी बात ली है; व्यापार–धंधा कहाँ गया?

उत्तर :—अनाज या लोहेकी चद्दरों आदिके व्यापारकी बात नहीं ली है। वे कार्य भी जड़ स्वयं ही करता है। यह तो शरीर जोकि आत्माके साथ आकाशकी अपेक्षा एकक्षेत्रावगाह है उसकी बात ली है। एकक्षेत्रावगाह होनेपर भी एक दूसरेरूप नहीं होते, एक-दूसरेका कार्य नहीं करते। आत्मा स्वयं अपना कार्य करता है, परका कार्य नहीं करता; उसे अपने कार्यके लिये परकी सहायताकी आवश्यकता नहीं होती। आगे बेनका बोल आता है कि—'द्रव्य उसे कहते हैं कि जिसके कार्यके लिये अन्य साधनोंकी राह नहीं देखना पड़े।' शरीर अपना कार्य करता है उसमें 'मैं करूँगा' यह कहाँसे आया? जो मध्यस्थ हैं उन्हें तो यह बात बड़ी अच्छी लगेगी।

वस्तुतत्त्व ऐसा है भाई! तेरे हितकी बात कही जा रही है भाई! शरीर छूट जायगा, सब छोड़कर चला जायगा। हमने यह कराया—वह कराया, मकान बनवाये, लड़के-लड़कियोंके विवाह किये आदि अभिमानकी बातें हैं भाई! पर पदार्थ तो स्वयं अपना कार्य–परिणमन–करते हैं उसमें तेरा अधिकार क्या है?

'दोनों भिन्न-भिन्न स्वतंत्र हैं, उनमें 'यह शरीरादि मेरे' ऐसा मानकर सुख-दुःख न कर, ज्ञाता बन जा।'

शरीर शरीरका कार्य करता है और आत्मा आत्माका, दोनों भिन्न-भिन्न स्वतंत्र हैं। शरीरका परिणमन जिस काल जैसा होना हो वह उसके अपनेसे ही होता है, उसमें मनुष्यके हाथकी बात कहाँ है? आत्मामें भी राग, और ज्ञानके परिणाम हों वे, आत्मा स्वयं करता है। जहाँ अपना-अपना कार्य करनेमें दोनों पदार्थ स्वतंत्र हैं, वहाँ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मैंने बाहरके कितने काम व्यवस्थित किये हैं? इतने किये और इतने बाकी हैं इस बातको स्थान ही कहाँ है? ऐसी बातें हैं! भाषा अत्यन्त सादी–सरल और बिलकुल सीधी है।

आत्मा और शरीर दोनों स्वतंत्र वस्तुएँ हैं; उसमें शरीर-स्त्री-पुत्रादि मेरे यह बात कहाँ से लाया?

प्रश्न :—आत्मा है तो शरीर चलता है, मुर्दा चलता है क्या?

उत्तर :—अरे! सुन भाई! मृत-अवस्थामें भी शरीरकी पर्याय शरीर करता है और इस समय भी चलना-फिरना आदि शरीरकी पर्यायका कार्य शरीर करता है। आत्माका और उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धको कर्त्ता-कर्म सम्बन्ध मानता है उस बातको यहाँ उड़ा देते हैं। शरीरादि कहनेसे उसमें वाणी, मकान, कुटुम्ब-परिवार यह सब आ गया। वे जहाँ रहते हैं वह धरती, जिसमें रहते हैं वह मकान, चारों ओर फैला हुआ फर्नीचर; परन्तु भाई! जहाँ शरीर ही तेरा नहीं है वहाँ यह सब तेरे हैं यह लाया कहाँ से? आत्मा और शरीरादि पर—दोनों वस्तुएँ भिन्न-भिन्न हैं; प्रत्येक अपना कार्य करती है उसमें रुपये-पैसेकी व्यवस्था करना, लड़के-लड़कियोंके विवाह करना आदि परके कार्य करना रहता ही कहाँ है? वे–वे पदार्थ उस-उस समयमें अपनी पर्याय करते हैं उसमें 'मैं करता हूँ'—यह बात रहती ही कहाँ है? प्रभु! मार्ग अलग है! वर्तमानमें तो वीतरागके मार्गको अस्तव्यस्त कर दिया है।

वास्तवमें तो ज्ञान और आनन्द वह आत्माका कार्य है। परसे भिन्न करनेके लिये ऐसा कहते हैं कि राग उसका कार्य है, परन्तु वह अज्ञानभावसे। ज्ञानभावसे तो ज्ञान ही उसका कार्य है। जगतका प्रत्येक रजकण अपना कार्य स्वतंत्ररूपसे करता है और आत्मा भी अपने जाननेका कार्य स्वतंत्र करता है। अहा! यह बात कैसे बैठे? प्रभुका मार्ग बहुत सूक्ष्म है! उसके फल भी बड़े—आनन्द और शान्ति—हैं ना! आत्माको जिसने ध्येय बनाया और 'पर पदार्थ उसके अपने कार्य करता है'—इस प्रकार परमेंसे दृष्टि हटाली–मेरा उसमें अधिकार नहीं है और मेरे ज्ञान-आनंदादि कार्योंमें उसका अधिकार नहीं है ऐसी प्रतीति हुई–वहाँ अंतरमें अनंत शांतिका अनुभव होता है।

यह शरीरादि मेरे हैं ऐसा मानकर सुख–दुःख न कर। आत्मा और शरीर दोनों अपने-अपने कार्य करते हैं। आत्मा शरीर-स्त्री-पुत्रादिका लक्ष करके राग, द्वेष एवं मिथ्यात्वभाव करता है, परन्तु उससे वह शरीरादि परके कार्य करता है ऐसा कहाँ है? 'यह शरीरादि मेरे' ऐसा मानकर कल्पना करता है कि यह ठीक हैं, मैं सुखी हूँ; और शरीरमें रोग हो, स्त्री-पुत्र-परिवारमें किसीको असाध्य रोग आ जाय, मरनेकी तैयारी हो तो यह बुरा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है, दुःख है ऐसा मानता है;—इस प्रकार कल्पनामें अच्छा-बुरा, सुख-दुःख न कर, ज्ञाता हो जा। सामने ज्ञेय है इसलिये ज्ञान जानता है ऐसा भी नहीं है। ज्ञेयका कार्य ज्ञेयमें और ज्ञानका कार्य ज्ञानमें होता है। अहा! ऐसी बात है!

परको अपना मानकर अनुकूलतामें सुख और प्रतिकूलतामें दुःख ऐसा न मान, ज्ञाता होकर रह। वे ज्ञेय तुझसे कहते नहीं हैं कि तू हमें अपना मान अथवा हम अनुकूल या प्रतिकूल हैं। ज्ञेय तो प्रमेय हैं, तेरे ज्ञानप्रमाणमें प्रमेयरूपसे ज्ञात हों ऐसे हैं। तू तो ज्ञेयको मात्र जान; इसके सिवा कुछ हीनाधिक करने जाये कि—यह मेरे और यह मेरे नहीं, अनुकूलता वह सुखरूप है और प्रतिकूलता वह दुःखरूप है, तो मिथ्यात्वका पोषण होगा। इसलिये छोड़ यह सब और ज्ञाता हो जा। तेरा स्वरूप ही ज्ञानस्वरूप है। जिसके द्वारा, जिस प्रकारसे, जिस कालमें, जिस क्षेत्रमें, जो कार्य हो उसका जो ज्ञाता रहे वह ज्ञान है; उससे कम-अधिक करने जायगा तो व्यभिचार—दोष—आयगा। एक तत्त्वकी दूसरे तत्त्वमें मिलावट करे तो सर्वसंकर दोष आता है।

प्रश्न :—निमित्त तो है ना?

उत्तर :—भाई! निमित्त है अर्थात् क्या? निमित्त यानी पर पदार्थ तुझमें कुछ कर देते हैं क्या? परसे सुख-दुःख होता है ऐसा मानना वह भ्रान्ति है; उसे छोड़ और ज्ञाता हो जा। मेरी उपस्थिति होनेसे दूसरोंके कार्य बराबर होते हैं, इस भ्रमको छोड़ दे, उनका ज्ञाता रह जा।

'देहके लिये अनन्त भव व्यतीत हुए;'.....

श्रीमद्‌ने कहा है ना, कि—'अनन्त बार देहके लिये इस आत्माको लगाया है, जो देह आत्माके लिये लगेगा उस देहसे आत्मविचार जन्म प्राप्त करने योग्य जानकर, सर्व देहार्थ कल्पना छोड़कर, एक आत्मामें ही उसका उपयोग करना, ऐसा मुमुक्षु जीवको अवश्य निश्चय होना चाहिये।' आत्मा स्वयं अंतरमें भगवानस्वरूप विराजमान है, उस भगवानमें इसका करना और उसका करना, इसको जानना और उसको जानना तथा सारे दिन खान-पान एवं व्यापार-धंधेकी प्रवृत्ति करना—ऐसी जो भ्रमणा वह उसे हैरान करनेवाली है; परवस्तु हैरान नहीं कर सकती। अरेरे! काम-भोगकी प्रवृत्तिमें शरीरके हेतु अनंत भव व्यतीत हो गये।

'अब, संत कहते हैं कि अपने आत्माके लिये यह जीवन अर्पण कर।'

आत्माके हेतु एकबार शरीरका ममत्व छोड़ दे। आत्माके हेतु यह जीवन अर्पण कर।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बच्चे गाते हैं ना!—

'मैं हूँ आतमा....परमातमा....
आनंदका, आनंदका, आनंदका धाम;
मैं हूँ आतमा.....परमातमा......

—यह मात्र भाषामें नहीं, किन्तु अंतरंग पर्यायमें ऐसा परिणमन होना चाहिये। परका परिणमन वह मेरा कार्य नहीं है, मेरा कार्य मात्र ज्ञाता-दृष्टारूप परिणमित होना है। त्रैकालिक ज्ञायकस्वभावका ज्ञातास्वभावरूप रहकर पर्यायमें ज्ञान, दर्शन तथा आनन्दरूप परिणमन होना वह मेरा कार्य है। अनजान लोगोंको ऐसा लगेगा कि यह सब क्या है? हमने तो इतने वर्षोंमें कभी ऐसी बात नहीं सुनी! यह कोई नया धर्म निकाला होगा?! अरे भाई! तुझे वस्तुके मूलस्वरूपकी खबर नहीं है; तूने परपदार्थके लक्षसे अनंत भव किये; अब आत्माके लक्षसे एकबार जीवन व्यतीत कर। दुनियाकी सर्व वस्तुएँ एक ओर रहीं; वहाँसे हटकर इस ओर आ जा। अपने आत्माके हेतु यह जीवन अर्पण कर। दुनिया कहेगी कि—यह तो बिलकुल पुरुषार्थहीन है, धंधा करना भी नहीं आता; हम कितने होशियार हैं।—इस मूर्खताकी परवाह मत करना भाई! एकबार आत्मकार्य हेतु उसमें अर्पणता कर दे। मुझे तो अपना जानना, देखना, आनन्दादि करना है, ऐसी दृढ़ता कर।

यह पुस्तक तो प्रगट हो गई.....देखो ना अब! अनुभवकी अमृतवाणी है! वाणी है संक्षिप्त भाषामें....!

❃

वचनामृत-५३

निवृत्तिमय जीवनमें प्रवृत्तिमय जीवन नहीं सुहाता। शरीरका रोग मिटना हो तो मिटे, परन्तु उसके लिये प्रवृत्ति नहीं सुहाती। बाहरका कार्य उपाधि लगता है, रुचता नहीं॥ ५३॥

'निवृत्तिमय जीवनमें प्रवृत्तिमय जीवन नहीं सुहाता।'

भीतर रागरहित चैतन्यमूर्ति ज्ञायक प्रभु निवृत्त तत्त्व है। उसके आश्रयसे जिसने निवृत्तिमय जीवन किया है उसे रागादिकी प्रवृत्तिमय जीवन नहीं रुचता। लड़केकी बहू पाँच हजारकी साड़ी पहिनकर बजारमें निकले, वहाँ जवान लड़के तो उसे अन्य दृष्टिसे देखते हैं, परन्तु ससुरको ऐसा लगता है कि देखा, बहू की साड़ी हजारोंमें एक लग

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रही है! इसमें हमारा श्रीमन्तपना प्रगट होता है, हमारी विशेषता दिखायी देती है! यह क्या कर रहा है भाई! अरे! निवृत्तिमय ज्ञायक प्रभुको बाह्य रागका इतना अधिक रस कैसा?

शरीरकी, व्यापारकी, रसोई–पानीकी आदि बाह्य प्रवृत्ति तो कहीं रह गई, परन्तु भीतर जो भक्तिके भाव आयें, स्वाध्यायके भाव आयें, प्रवचन सुननेके भाव आयें—ऐसे प्रवृत्तिमय परिणाम भी निवृत्तिमय जीवनके प्रेमीको अच्छे नहीं लगते। अंतरमें जहाँ परिणमन ही रागकी ओरसे दूर हट गया है उसे रागमय परिणामकी प्रवृत्ति कैसे रुचेगी? भगवान आत्मा रागरहित निवृत्त तत्त्व है—उसमय जीवन ही अच्छा लगता है।

'शरीरका रोग मिटना हो तो मिटे परन्तु उसके लिये प्रवृत्ति नहीं सुहाती।'

शरीरकी व्याधि मिटना हो तो मिटे परन्तु उसके लिये यह दवा लूँ और वह दवा लूँ, ऐसा करूँ तो आराम मिले–आदि प्रवृत्ति निवृत्तिके प्रेमीको अच्छी नहीं लगती। रोग मिटानेके लिये बड़े-बड़े डॉक्टरों और वैद्योंको बुलाओ, अच्छी से अच्छी औषधियाँ मँगाओ,—ऐसी शरीरके हेतु होनेवाली प्रवृत्तियाँ अच्छी नहीं लगती। वह तो मानता है कि—रोग मिटना हो तो मिटे, जिस समय शरीरकी जो क्रिया होना हो वह हो। भाई! वह तो जड़की पर्यायका काल है, उसे बदलने का व्यर्थ प्रयत्न न कर, उसे मिटानेकी प्रवृत्तिमें न पड़। जो अंतरंगसे निवृत्तिका प्रेमी है उसे वह बाह्यप्रवृत्ति नहीं रुचती।

सनत्कुमार चक्रवर्ती महा पुण्यशाली थे। क्या उनके शरीरकी सुन्दरता! प्रत्येक अवयव मानों विधिने बड़ी कुशलतासे बनाया हो। रूप–लावण्य तो देवोंको भी चकित कर देता था! एकबार दो देवोंने आकर देखा और कहा—अति सुन्दर है आपका शरीर! चक्रवर्तीके मनमें अभिमान आ गया। वे बोले : अभी तो हम स्नान किये बिना, शृंगार किये बिना बैठे हैं; जब आभूषणादि पहिनकर राजदरबारमें बैठूँ तब आना मेरा रूप देखने! देव राजदरबारमें देखने आये और मुँह बिगाड़ने लगे। चक्रवर्तीको मनमें लगा कि यह क्या? क्या होगया इन्हें? पूछा तो बोले—शरीर बिगड़ गया है आपका! थूकिये तो मालूम होगा कि उसमें इल्लियाँ पड़ गई हैं। शरीरकी ऐसी विचित्र स्थिति देखकर वैराग्य उत्पन्न हो गया और दीक्षा ले ली। सातसौ वर्ष तक गलित-कुष्ठकी व्याधि रही; परन्तु उन चक्रवर्तीको मुनिदशामें आनन्द, आनन्द, अपार अतीन्द्रिय आनन्द है! उनके पास ऐसी ऋद्धि थी कि अपना थूंक लगाने मात्रसे समस्त व्याधि मिट जाय, परन्तु वह रोग मिटे या न मिटे उसकी उन्हें कोई चिन्ता नहीं है। मैं तो मात्र ज्ञाता-द्रष्टा एवं आनन्दका वेदक हूँ।—ऐसा मेरा जो निवृत्तिमय स्वरूप उसे मैं छोड़ूँगा नहीं। निवृत्तिमय जीवनमें शरीरादिके हेतु बाह्य प्रवृत्ति नहीं रुचती।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'बाहरका कार्य उपाधि लगता है, रुचता नहीं।'

निवृत्तिके प्रेमीको बाह्य कार्य बोझरूप लगते हैं। प्रातःकालसे लेकर सारे दिन बाहरका यह करना है और वह करना है, इतने कार्य पूरे करना हैं। बच्चे छोटे हों उन्हें सँभालना, उनका पालन-पोषण करना, फिर पढ़ाना–लिखाना, विवाह करना, यह सब दुनिया का जंजाल है प्रभु! निवृत्तिमय जीवनवालेको यह प्रवृत्ति बिलकुल अच्छी नहीं लगती। तू अंतरमें निवृत्तिमय तत्त्व है; उसके सिवा तेरी अन्य कोई जाति नहीं है।

✾

राजकोट

ई. सन्–१९८०

यह बेनके वचन हैं। अंतर्‌आनन्दके अनुभवमेंसे आयी हुई बात है। अंतरका बहुत जोर है, अप्रतिहत भावना है। आत्माका सम्यग्दर्शन और अतीन्द्रिय-आनन्दकी अनुभूति—उसमेंसे यह बात आयी है। आनन्दके स्वादमें मुर्देकी भाँति चलती हैं। अहाहा! सच्चिदानन्द प्रभु हैं बेन! अंतरकी महत्ताके समक्ष बाहरका कोई लक्ष ही नहीं है। अनुभवी, सम्यक्त्वी, आत्मज्ञानी हैं। आत्माका अनुभव तो है ही, साथमें असंख्य अरब वर्षोंका जातिस्मरण ज्ञान है। परन्तु लोगोंको बैठना कठिन होगा। —*पूज्य गुरुदेव.*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन-१७

ता.२२-६-७८

वचनामृत-५४

अनुकूलतामें नहीं समझता तो भाई! अब प्रतिकूलतामें तो समझ! किसी प्रकार समझ....समझ, और वैराग्य लाकर आत्मामें जा !।। ५४ ।।

'अनुकूलतामें नहीं समझता तो भाई! अब प्रतिकूलतामें तो समझ!'

क्या कहते हैं? शरीरमें निरोगता हो, युवावस्था हो, बाह्यमें पुण्यकी अनुकूल सामग्री हो–स्त्री, पुत्र, अच्छे मित्र, अच्छी प्रतिष्ठा, रहने को सुन्दर मकान, अच्छे व्यापारादिके साधन, इन सबकी अनुकूलता हो—उस काल 'मैं कौन हूँ? मेरा सच्चा स्वरूप क्या है?' यह विचारनेका अवसर नहीं मिला; तो भाई! प्रतिकूलतामें—शरीरमें रोग हो, युवावस्था चली जाय और वृद्धावस्था आये, जवानीमें चेचक निकले और दाने-दानेमें इल्लियाँ पड़ जायें, स्त्री-पुत्र-व्यापारादि बाह्यसामग्रीमें हानिसे मनमें अशांति-अशांति रहने लगे; ऐसी प्रतिकूलतामें—तो समझ!

'किसी प्रकार समझ....समझ, और वैराग्य लाकर आत्मामें जा।'

मेरा आत्मा कौन है? यह सब प्रतिकूलता आदि क्या हैं? उसे समझनेकी जिज्ञासा तो कर। कहते हैं कि—प्रतिकूलतामें तो समझ!....अहा! कितनी सरल भाषा!

एक श्वेताम्बर साधु कुछ दिन पहले पालीताना आये थे। उन्होंने एक भाई के हाथमें यह वचनामृत पुस्तक देखी। हाथमें लेकर कहने लगे कि—अहा! ऐसी अच्छी पुस्तक! ऐसी वस्तु! मुझे दे दो, मुझे पढ़ना है। अरे! अनुकूलतामें तो रुचे, परन्तु प्रतिकूलतामें भी रुचे ऐसी वस्तु है।

अब प्रतिकूलतामें तो समझ! जवानी जा रही हो, शरीर जीर्ण हो जाय, रोग आकर घेरने लगें—बुखार, श्वास, खाँसी, बवासीर—वहाँ क्या करे? अरे! ऐसे समयमें प्रतिकूलताओंके घेरेमें भी भीतर अनुकूल चैतन्यतत्त्व विद्यमान् है ना! यह तो बेनका प्रथम बोल है कि—हे जीव! तुझे कहीं न रुचता हो तो अपना उपयोग पलट दे

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

और आत्मामें रुचि लगा। आत्मामें रुचे ऐसा है। आत्मामें आनन्द भरा है, वहाँ अवश्य रुचेगा। जगतमें कहीं रुचे ऐसा नहीं है परन्तु एक आत्मामें अवश्य रुचे ऐसा है। इसलिये तू आत्मामें रुचि लगा। यह पहला बोल पढ़कर वे साधु प्रसन्न हो गये और बोले : मुझे दे दो!

लोगोंके हाथमें यह पुस्तक पहुँचेगी। बुद्धिशाली पढ़ेंगे और विचार करेंगे, तब उन्हें लगेगा कि अहा! यह तो अद्भुत वस्तु है! गुजरातीकी चौथी क्लास तक पढ़ा हो वह भी पढ़ सके इतनी सरल भाषा है।

प्रभु! अनुकूलतामें तो आत्मा को नहीं समझ सका, क्योंकि उसमें ललचा गया–लुभा गया; किन्तु अब जब चारों ओर प्रतिकूलता हो, पापने घेरा डाला हो ऐसी दशामें समझ! उस अनुकूलता और प्रतिकूलतासे तू भिन्न है। सातवें नरकमें उत्पन्न होनेवाले नारकीको जन्मसे ही सोलह रोग होते हैं। मिथ्यादृष्टिके रूपमें तो उसने वहाँ जन्म धारण किया है। ऐसे विपरीत कालमें भी—पूर्वकालमें अंतर आत्माकी बात सुनी थी, किन्तु प्रयोगमें नहीं लाया था—वह वैराग्य लाकर आत्मामें उतर जाता है, जहाँ ज्ञायकभाव और अतीन्द्रिय आनन्दके ढेर लगे हैं। प्रतिकूलतामें भी इस ओर जा....इस ओर जा! भाषा सरल, भाव कठिन।

अंतरमें प्रगट वस्तु विद्यमान है, ध्रुवरूपसे भीतर पड़ी है। बदलती पर्यायको उस ओर ले जा ना! जहाँ मात्र ज्ञान एवं आनन्द भरा है, उसे समझ और वैराग्य लाकर वहीं निवास कर। अंतरकी दृष्टि करके बाह्यसे वैराग्य उत्पन्न कर भाई! प्रतिकूलताके पहाड़ हों तथापि परसे उदास होकर, परकी ओरके रागसे वैराग्य लाकर स्वोन्मुख हो। स्वका आचरण करके अंतरमें जा! अहा, ऐसी बात है।

❀

वचनामृत-५५

चैतन्यकी भावना कभी निष्फल नहीं जाती, सफल ही होती है। भले ही थोड़ा समय लगे, किन्तु भावना सफल होती ही है॥ ५५॥

'चैतन्यकी भावना कभी निष्फल नहीं जाती, सफल ही होती है।'

भगवान आत्मा अंतरमें ज्ञानानन्दस्वरूप त्रैकालिक वस्तु है; उसकी रुचि करके, उसी ओरकी भावना कर, निष्फल नहीं जायगी। अपने प्रयत्नको अन्तर्मुख कर, तेरी भावना सफल होगी— तेरा जीवन सफल होगा। अतीन्द्रिय आनन्दका चैतन्यपिण्ड

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ध्रुववस्तु भीतर पड़ी है; उसके ओरकी भावना निष्फल नहीं होगी, सफल ही होगी। तुझे आत्मज्ञान होगा, आत्मदर्शन होगा, आत्म-आनन्द होगा। भावना सफल होगी। अहा! ऐसी बात है!

'भले थोड़ा समय लगे, किन्तु भावना सफल होती ही है।'

भीतर प्रवेश करनेमें थोड़ा समय लगे—भगवान ध्रुवधाम महाप्रभु जो भीतर विराजमान है उसका अनुभव करनेमें थोड़ा विलम्ब हो—परन्तु उस विलम्बके सन्मुख नहीं देखना, तेरे अपने प्रयत्नका परिणाम आयगा ही। थोड़ा समय लगेगा किन्तु भावना सफल होगी ही। अंतरमें प्रयत्न करते-करते, स्वभावकी पूर्णताकी ओर जाते-जाते थोड़ा समय लगेगा, किन्तु अंतरंग भावनासे उस 'भाव'को जिसने भावनामें लिया है उसे वह प्राप्त होगा ही, उसकी भावना अवश्य सफल होगी।

यहाँ पण्डिताई भी कुछ काम नहीं आती, आगमज्ञान भी काम नहीं करता। परलक्षी आगमज्ञान और धारणा वह कोई ज्ञातातत्त्व नहीं है। भीतर चैतन्यतत्त्वकी ऋद्धिसिद्धिमें एकाग्रता करनेका भाव हुआ, ज्ञानानन्दमय ध्रुवधाममें एकाग्र होनेकी रुचि जागृत हुई, वह सफल होगा ही। आगमके विकल्पवाला ज्ञान भी वहाँ काम नहीं करेगा। मध्यस्थ जीव हो उसकी समझमें आये और कषायकी निर्जरा हो ऐसी यह बात है भाई! तेरा मार्ग तो तुझमेंसे निकलेगा या परमेंसे? जहाँ तू त्रैकालिक ज्ञायकतत्त्व है उस मार्गपर जा तो तेरा मार्ग मिलेगा; राग और पुण्यमें कहाँ आत्मा है कि उसमेंसे मार्गकी प्राप्ति होगी?

❃

वचनामृत-५६

जीव स्वयं पूरा खो गया है वह नहीं देखता, और एक वस्तु खो गई तो मानों स्वयं पूरा खो गया, रुक गया; रुपया, घर, शरीर, पुत्रादिमें तू रुक गया है। अरे! विचार तो कर कि तू सारे दिन कहाँ रुका रहा! बाहरका बाहर ही रुक गया, तो भाई! वहाँ आत्मप्राप्ति कैसे होगी? ॥५६॥

'जीव स्वयं पूरा खो गया है वह नहीं देखता, और एक वस्तु खो गई तो मानों स्वयं पूरा खो गया, रुक गया; रुपया, घर, शरीर, पुत्रादिमें तू रुक गया है।'

उसकी दृष्टि बाहर रागमें और पुण्यमें है; वर्तमान पर्यायकी प्रगटता, उसका प्रेम, मानों बस वही अस्तित्व हो! भीतर पूर्ण प्रभु विद्यमान है वह खो गया। परमें और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रागादि भावमें, अरे! व्रत-तप-भक्तिके शुभभावमें, जहाँ तू खो गया है वहाँ, तू नहीं है। तेरी दृष्टि पर्यायमें पड़ी है वहाँ तू नहीं है। अंतरमें जहाँ तेरा त्रैकालिक तत्त्व है वहाँ जा। स्वयं पूरा खो गया है उसे नहीं ढूँढ़ता और घरकी एकाध वस्तु खो जाय तो वहाँ स्वयं पूरा ख़ो जाता है, रुक जाता है। घरमें सौ–पचास वस्तुएँ हों और उनमेंसे एकाध खो जाय, कोई ले गया हो या अपने ही ध्यानके बाहर रह गई हो तो उसे ऐसा लगता है कि—गई कहाँ? किसने ली होगी? उसकी खोजमें आकुल-व्याकुल होकर रुक जाता है; परन्तु यह जो सम्पूर्ण आत्मा खो गया है उसे ढूँढ़ने–देखने नहीं जाता।

प्रश्न :—आत्मा है, ऐसा माना तो है ना?

उत्तर :—ऐसा सुनकर तो माना है, परन्तु अंतरमें आत्मा जो त्रैकालिक पदार्थ, उसे जैसा है वैसा नहीं माना। यों तो शास्त्र पढ़कर भी मानता है, परन्तु अस्ति-नास्तिसे भीतर उसके तलमें उतरकर अनुभव हो—इस प्रकार कभी नहीं माना।

एक वस्तु खो जाय तो कहाँ गई? गई कहाँ? इस प्रकार बार-बार इधर-उधर ढूँढ़ता है; हिसाबमें फेर पड़े तो फेर क्यों पड़ा? पैसे घटे हों तो लड़का ले गया होगा? लड़का देर से घर लौटे तो चिन्ता करता रहता है कि कहाँ गया होगा?—इस प्रकार परकी चिन्तामें, उसकी खोजमें तेरा अंतरका आत्मा अनादि कालसे खो गया है उसे तू नहीं देखता! घरकी एक वस्तु इधर-उधर हो जाय उसे ढूढ़ँनेकी मेहनत करता है, परन्तु स्वयं पूरेका पूरा खोगया है, उसे ढूँढ़नेका बिलकुल प्रयत्न नहीं करता। एक क्षण भी उसमें नहीं लगाता। भाई! तुझे करना क्या है? कहाँ जाना है?

स्त्रियाँ प्रतिकूलता आने पर, सास–ननंदके ताने असह्य हो जाने पर कुएँमें गिरकर आत्महत्या कर लेती हैं; परन्तु प्रभु! कुएँमें गिरकर मरनेकी अपेक्षा तू अंतरकी गहराईमें उतर जा ना! भीतर आत्मा समाधान एवं शांतिका पिण्ड महाप्रभु विद्यमान है; अनंत प्रतिकूलतामें भी वह अनंत-अनंत शान्ति देनेवाला है। परन्तु आत्मा कौन है उसकी तुझे खबर नहीं है। भाई, आत्मा महाप्रभु है, सर्वोत्कृष्ट वस्तु है उससे ऊँची कोई वस्तु इस जगतमें है ही नहीं।

आत्माकी महिमाके बिना तू रुपया, घर, शरीर, पुत्रादिमें रुक गया है। पैसे कमानेमें, उनकी रक्षामें तथा मकान बनानेमें कि उसके दरवाज़े और खिड़कियाँ कैसे रखे जायें जिनसे बराबर हवा और प्रकाश मिले; ऐसी छत बनाना, ऐसा रंग–रोगन करना आदि उसीमें तू खो गया! प्रभु! तू इस बाहरकी पंचायतमें कहाँ पड़ गया? क्या तेरे रखनेसे वे सब रहेंगे? अरे! तेरे प्रयत्न उनमें काम नहीं आयेंगे। अपने

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

घरमें जानेका प्रयत्न तो करता नहीं और यह सब पुण्य–पापके फल हैं उनके संयोगोंकी मिठासमें रुक गया है। कहा है ना कि—'घरके बच्चे चक्की चाँटें और पड़ौसीको आटा!' स्वयं तो पूरा खो गया है और बाहरकी पंचायत कर रहा है। व्रतादिका पालन करता है, आजीवन ब्रह्मचर्य पालता है, लोग प्रशंसा करते हैं इसलिये बाहरका बाहर रुका रहता है; अपने लिये एक क्षण भी नहीं निकालता।

'अरे! विचार तो कर कि तू सारे दिन कहाँ रुका रहा! बाहरका बाहर ही रुक गया, तो भाई! वहाँ आत्मप्राप्ति कैसे होगी?

बाहरी झंझटोंमें—पर वस्तुओंको व्यवस्थित रखनेमें रुक गया। सदा सुव्यवस्थित द्रव्य-स्वभावमें प्रवेश न करके बाह्यमें ही लगा रहा। ज्ञातातत्त्व परको देखनेमें—रोकड़-बही, खान-पान और शास्त्र-पठनमें लगा रहा, लेकिन वहाँ आत्मप्राप्ति कैसे होगी? प्रभु! अंतरमें ज्ञाताको देख ना!

शास्त्र-पठ़नका प्रयोजन जो ज्ञायक स्वभावको समझना है, वह तो सिद्ध करता नहीं है और दिन भर पढ़नेमें तथा गोखनेमें लगा रहता है; वे सब तो अटकनेके–रुकनेके साधन हैं। वे सब पठन–मनन आदि आते हैं किन्तु वहाँ अटक नहीं जाना। ऐसा ग्यारह अंग नव पूर्वका ज्ञान तो हुआ, परन्तु वह वहीं रुक गया; अंतरमें जो ज्ञायकस्वभावसे परिपूर्ण वस्तु है उसमें जानेका अवकाश नहीं मिला।

कोई किसीकी राह देख रहा हो, तो वह उससे कहता है कि—कहाँ था तू? कहाँ रुक गया था? उसी प्रकार प्रभु! तू बाह्यमें—विषयोंमें तथा शुभ विकल्पमें—कहाँ रुक गया कि जिससे तुझे अंतरमें विद्यमान चिदानन्द भगवानको देखनेका—अंतर्मुख होनेका भी समय नहीं मिलता?..... तुझे आत्मप्राप्ति कैसे होगी भाई?

✻

वचनामृत-५७

पूज्य गुरुदेवके श्रीमुखसे स्वयं जिस तत्त्वको ग्रहण किया हो उसका मंथन करना चाहिये। निवृत्तिकालमें अपनी परिणतिमें रस आये ऐसी पुस्तकोंका पठन करके अपनी लगनको जागृत रखना चाहिये। आत्माके ध्येयपूर्वक, अपनी परिणतिमें रस आये ऐसे विचार-मंथन करने पर अंतरसे अपना मार्ग मिल जाता है॥ ५७॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'पूज्य गुरुदेवके श्रीमुखसे स्वयं जिस तत्त्वको ग्रहण किया हो उसका मंथन करना चाहिये।'

यहाँ बेनने कहा है कि स्वयं जिस तत्त्वका श्रवण किया हो, ग्रहण किया हो उसका मंथन करना चाहिये। सुन-सुनकर वहाँ का वहीं नहीं रखना। अहा! श्रवणका मतलब क्या? यों तो अनन्तबार समवसरणमें जाकर भगवानकी वाणी सुन आया, परन्तु तत्त्वको नहीं पकड़ा। यथार्थ तत्त्व क्या है वह ख्यालमें आया हो तो उसका मंथन करना चाहिये; बारम्बार मंथन करना चाहिये।

'निवृत्तिकालमें अपनी परिणतिमें रस आये ऐसी पुस्तकोंका पठन करके अपनी लगनको जागृत रखना चाहिये।'

निवृत्तिके समय अपनी लगनको पोषण मिले, परिणतिकी निर्मलताकी पुष्टि हो ऐसी पुस्तकें पढ़ना चाहिये। पठनके पश्चात् जो करना है वह अंतरमें जानेका कार्य करना। अपनी स्वभावकी लगनको निरन्तर जागृत रखना। यह तो शरीरसे ब्रह्मचर्य-पालन तथा व्रत–तपादि शुभ भावमें रुक गया। वे भाव आते हैं, परन्तु उनसे लक्ष उठाकर भीतर चैतन्यके रसमें लीन होना चाहिये। रस अर्थात् चैतन्यकी एकाग्रता। भाषा बड़ी सरल! भाव तो जो है सो है। गुजराती सादी भाषा!

'आत्माके ध्येयपूर्वक, अपनी परिणतिमें रस आये ऐसे विचार–मंथन करने पर अंतरसे अपना मार्ग मिल जाता है।'

जिस वस्तुस्वभावका श्रवण किया है उसके ध्येयपूर्वक अपनी दशामें रस और शान्ति आये ऐसे विचार एवं मनन करना। पठन करते समय यदि ऐसी मान्यता हो कि–पहले धारण कर लूँ, फिर शास्त्रसभामें बोलूँगा, दूसरोंको उत्तर दूँगा, अच्छी पढ़ाई हो तो संस्थामें अधिकारीका पद मिलेगा, शिक्षाधिकारी भी बना जा सकता है—ऐसे भाव रहें तो वह सब पढ़ाई उसने दूसरोंके लिये की है अपने आत्माके लिये नहीं। प्रभु! तू कहाँ रुक गया? अपनी परिणतिमें रस आये ऐसा अपने आत्माके लिये कर ना! निजात्मामें जाने हेतु ऐसे विचार और ऐसा मंथन करनेसे अपना मार्ग—अंतर्स्वरूपोन्मुख होनेका मार्ग—प्राप्त हो जायगा।

'द्रव्यसंग्रह'की '४७वीं गाथामें कहा है:—

दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।

निश्चय और व्यवहार ऐसे दोनों प्रकारसे जिसका कथन है ऐसा जो मोक्षमार्ग है वह अंतरकी ओरके ध्यानमें मिलता है। भीतर पूर्ण वस्तु है वह ध्येय है; उसका ध्यान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करने पर अंतरसे मार्ग मिलता है; बाहरसे मार्ग नहीं मिल सकता। देव-शास्त्र-गुरुसे निजवस्तुकी प्राप्ति हो ऐसा नहीं है।

श्रीमद् राजचन्द्र कहते हैं:—.

सर्व जीव छे सिद्धसम, जे समजे ते थाय;
सद्गुरु-आज्ञा जिनदशा, निमित्त कारणमांय।

जो समझे सो होता है। सद्गुरुकी आज्ञा निमित्तकारण है। वह निमित्त कुछ कर नहीं देता। गुरुकी आज्ञा और देवकी दशा—जिनदशा स्वरूप समझनेमें निमित्त कारण हैं, परन्तु वे अकिंचित्कर हैं। जिसप्रकार पाँचों इन्द्रियोंके विषय सुखकी कल्पना होनेमें अकिंचित्कर हैं, उसीप्रकार यहां देव-शास्त्र-गुरुकी आज्ञा और अरिहंत केवलीकी दशा—सब निमित्तकारण हैं अर्थात् तेरे कार्यके लिये अकिंचित्कर हैं। लोगोंको कठिन लगता है!

अंतरमें अपना मार्ग मिल जाता है; क्योंकि मार्गका आश्रय और आधार तो भगवान स्वयं है। बाह्यमें देव-गुरु निमित्त हैं। वह निमित्त तेरे कार्यके लिये अकिंचित्कर हैं। बेनके बोलमें आया है ना!—'द्रव्य उसे कहते हैं कि जिसके कार्यके लिये अन्य साधनोंकी राह न देखना पड़े।' महाविदेह क्षेत्र मिले, वहाँ जन्म हो, समवसरणमें जायें तो मार्ग मिले—ऐसा नहीं है। निर्मल मोक्षमार्गके लिये अन्य द्रव्यकी राह नहीं देखना पड़ती। वर्तमानमें व्रत-तप-भक्ति आदि पुण्य करो, जिससे स्वर्ग मिलेगा; वहाँसे भगवानके पास जायेंगे, वहाँ सम्यक्त्वकी प्राप्ति होगी–यह बात बराबर नहीं है। उसमें कोई बाह्य कारण काम नहीं करते। शास्त्रस्वाध्याय भी अकिंचित्कर है। अंतरमें मंथन करनेसे, अपना मार्ग अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, अंतर्मुख दृष्टिसे मिलता है। विचार एवं मनन ऐसे करना चाहिये जिनसे अपनी परिणतिमें रस जागृत हो, विकथा उत्पन्न हो ऐसे नहीं। ध्येय-वस्तुको लक्षमें लेकर मनन करनेसे अंतरमें वस्तु प्राप्त हो जाती है। मार्ग तो अंतरमें मिलता है कहीं बाहरसे नहीं आता।

❀

वचनामृत-५८

ज्ञानीको दृष्टि-अपेक्षासे चैतन्य एवं रागकी अत्यन्त भिन्नता भासती है, यद्यपि वे ज्ञानमें जानते हैं कि राग चैतन्यकी पर्यायमें होता है।। ५८।।

'ज्ञानीको दृष्टि-अपेक्षासे चैतन्य एवं रागकी अत्यन्त भिन्नता भासती है;'

भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप और राग आकुलतास्वरूप—इस प्रकार ज्ञानीको दोनों

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भासते हैं। त्रैकालिक नित्यानन्द चैतन्यप्रभु पर दृष्टि प्रसरनेके साथ जो ज्ञान हो वह चैतन्य एवं रागको अत्यन्त भिन्न जानता है। 'दृष्टिकी अपेक्षासे'—ऐसा क्यों कहा? कि—जिसे दृष्टि हुई है उसे सम्यग्ज्ञान होता है; जिसे तत्त्वकी दृष्टि नहीं है उसे सम्यग्ज्ञान नहीं होता। इसलिये दृष्टि-अपेक्षासे धर्मीको चैतन्य और रागकी अत्यन्त भिन्नता भासती है ऐसा कहा है। चैतन्य-स्वरूप आनन्द और रागस्वरूप आकुलता उस भाव-भिन्नताको ज्ञान जानता है। जिसे दृष्टि नहीं हुई है उसमें चैतन्य एवं रागको भिन्न जाननेकी शक्ति नहीं है।

दृष्टिमें आलम्बन ध्रुव द्रव्यका ही है। परन्तु दृष्टिके साथ जो ज्ञान हुआ वह चैतन्य और रागको भिन्न जानता है, क्योंकि ज्ञानका स्वभाव स्व-परप्रकाशक है। दृष्टिका स्वभाव तो निर्विकल्प है। उसने तो मात्र द्रव्यका ही आश्रय लिया है। द्रव्यका आश्रय लिया है उसका ज्ञान, ज्ञान करता है। दृष्टि है वह स्वयं अपनेको नहीं जानती और जो स्वयंको न जाने वह, जो आश्रय है उसे कैसे जानेगी? परन्तु बाहरसे हटकर अन्दर जाती है वहाँ दृष्टिका विषय ध्रुव हो जाता है।—उसका विषय ध्रुव हो जाता है उसे कौन जानता है? ज्ञान। अहा! ऐसा मार्ग है! सूक्ष्म लगता है, लेकिन क्या किया जाय?

लोगोंने वीतरागमार्गमें फेरफार कर डाला है। प्रथा और शैली बदल दी है। यह बात सुननेको मिलती हो तो समझनेमें सरलता हो, परन्तु यह तो मार्गमें ही फेरफार कर दिया है।

'यद्यपि वे ज्ञानमें जानते हैं कि राग चैतन्यकी पर्यायमें होता है।'

राग जड़में होता है और राग जड़का है—ऐसा नहीं है। भगवान आत्मा चैतन्य वह चैतन्यस्वरूप है, और राग है वह चैतन्यस्वरूपके अभावस्वरूप है इसलिये उसे जड़ कहा है। दृष्टि तो एक ध्रुवतत्त्वका ही अवलम्बन लेती है। दृष्टिका विषय रागको जानना—ऐसा नहीं है। परन्तु ज्ञान जानता है कि राग चैतन्यकी पर्यायमें होता है। भले उसे पुद्गल कहा हो, अचेतन–जड़ कहा हो, अजीव कहा हो वह स्वभावकी अपेक्षासे; परन्तु वह होता है अपनी पर्यायमें–ऐसा ज्ञानी ज्ञानमें बराबर जानते हैं। मेरी पर्यायमें राग होता है ऐसा ज्ञानी बराबर जानते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन-१८

ता. २३-६-७८

वचनामृत-५६

जिस जीवका ज्ञान अपने स्थूल परिणामोंको पकड़नेमें काम न करे वह जीव अपने सूक्ष्म परिणामोंको कहाँसे पकड़ेगा? और सूक्ष्म परिणामोंको न पकड़े तो स्वभाव कैसे पकड़में आयेगा? ज्ञानको सूक्ष्म-तीक्ष्ण करके स्वभावको पकड़े तो भेदविज्ञान हो।।५६।।

'जिस जीवका ज्ञान अपने स्थूल परिणामोंको पकड़नेमें काम न करे वह जीव अपने सूक्ष्म परिणामोंको कहाँसे पकड़ेगा?'

क्या कहते हैं? कि—जो शुभ और अशुभ परिणाम हैं वे स्थूल हैं। जिसे वह ख्यालमें न आये वह ज्ञानके सूक्ष्म परिणामोंको कैसे पकड़ेगा? धैर्यवानकी बातें हैं यह!

स्त्री–परिवार आदि परकी बातें तो छोड़ दो, परन्तु शरीरादि जड़की पर्याय जो क्षण-क्षण होती है उसे अपनी माने और भेद करना न आये तो वह भी बड़ी स्थूल बुद्धि है। यहाँ तो, अपनेको जो शुभाशुभभाव हों उन स्थूलपरिणामोंको पकड़नेमें अपना ज्ञान काम न करे वह जीव अपने ज्ञान-श्रद्धादि सूक्ष्म परिणामोंको कहाँसे पकड़ेगा? शुभाशुभभाव–स्थूल परिणाम–को पकड़ना न आये उसे ज्ञानकी वर्तमान पर्याय जो सूक्ष्म है वह ख्यालमें नहीं आयगी। धीरेसे, धैर्यपूर्वक पकड़े–समझे उसकी यह बात है।

'और सूक्ष्म परिणामोंको न पकड़े तो स्वभाव कैसे पकड़में आयगा?'

आत्माके ज्ञानादि अनन्त गुणोंके वर्तमान परिणाम जो सूक्ष्म हैं–शुभाशुभ तो स्थूलमें गये–उन्हें न पकड़े उसे स्वभाव कैसे पकड़में आयगा? तीन बातें ली हैं : (१) स्थूल परिणाम, (२) सूक्ष्म परिणाम और (३) त्रैकालिक स्वभाव। स्थूल परिणाम अर्थात् शुभाशुभभाव। जिसे वे ख्यालमें न आयें वह अपने सूक्ष्म परिणामोंको कहाँसे जानेगा? जो, रागादिरहित अपने ज्ञानादि सूक्ष्म परिणामोंको न पकड़े वह त्रैकालिक स्वभावको कहाँसे

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पकड़ेगा? जिसे दया, दान, भक्ति आदि तथा हिंसा–झूठ–चोरी आदि स्थूल भावोंको जानना न आये वह पुण्य-पापके रागरहित वर्तमान सूक्ष्म ज्ञानपर्यायको कैसे जान सकेगा? जिसे सूक्ष्म ज्ञानपरिणामको अंतरसे पकड़ना न आता हो, वह सम्यग्दर्शनका विषय जो त्रैकालिक अखण्ड, सूक्ष्ममें सूक्ष्म अव्यक्त स्वभावको कैसे पकड़ सकेगा? स्वभाव अर्थात् अरूपी चैतन्य, और पर्याय अर्थात् सूक्ष्म परिणाम। सूक्ष्म पर्यायको भी पकड़ना न आये वह, पर्यायकी समीपतामें अनन्तकालसे अज्ञातरूप रहे त्रैकालिक ज्ञायकस्वभावको कैसे पकड़ेगा?

भाषा सरल है किन्तु गंभीर है। बड़ा मान्धाता हो और यह पढ़े तो उसे भी ऐसा लगेगा कि यह बात कुछ और ही है। एक श्वेताम्बर मुनिके हाथमें यह पुस्तक पहुँची तो देखकर कहने लगे कि—ओहो! यह तो बड़ी अलौकिक बात है! मुझे दे दो यह पुस्तक! ऐसी माँग की। उन्होंने इसे देखा, पढ़ा और बहुत प्रसन्न हुए।

शुभाशुभ भाव अरूपी हैं—रजकण नहीं हैं—इसलिये सूक्ष्म हैं, परन्तु निमित्त जो रूपी है उसमें युक्त होनेसे—जुड़नेसे—हुए हैं इसलिये रूपी, स्थूल और अजीव कहे जाते हैं। व्रत-तपादिके भाव, आत्माके सूक्ष्म निर्मल परिणाम न होनेसे, स्थूल हैं और कर्मोदयमें युक्त होनेके कारण होते हैं इसलिये अजीव हैं। अपने ज्ञानादि वर्तमान परिणाम सूक्ष्म हैं, तथापि इनमें त्रैकालिक चैतन्यस्वभावका अभाव है। वर्तमान ज्ञानादि सूक्ष्म परिणामोंको न पकड़े, तो अप्रगट सम्पूर्णतत्त्व परमात्मा स्वयं है उसे कैसे पकड़ सकेगा? जो अपने शुभाशुभ परिणामोंको पकड़नेमें काम न करे वह ज्ञान, ज्ञानको पकड़नेमें कैसे काम करेगा? और जो ज्ञान परिणामोंको न पकड़े वह अपने स्वभावको कहाँसे पकड़ेगा? बड़ा पढ़ा-लिखा हो तब भी एकबार तो चकित रह जायगा कि—यह क्या रहस्य भर दिया है थोड़े-से शब्दोंमें?!

जिसकी प्रगट पर्याय है, जिसमें अनादिसे रहा है, जिसमें अनन्त-अनन्त शक्ति है उसके परिणामकी भी जिसे खबर नहीं है, उस परिणामको भी जो ज्ञान नहीं पकड़ सका, वह ज्ञान त्रैकालिक स्वभावको कैसे पकड़ेगा? अहा! ऐसी बातें हैं!

'ज्ञानको सूक्ष्म–तीक्ष्ण करके स्वभावको पकड़े तो भेदविज्ञान हो।'

इसलिये वर्तमान ज्ञानकी पर्यायको सूक्ष्म और तीक्ष्ण करके, त्रैकालिक ज्ञानादि स्वभावसे विद्यमान वस्तु प्रभु स्वयं ही है उसे पकड़े तो भेदविज्ञान हो। रागादि स्थूल परिणामसे तो भेदज्ञान हो, परन्तु उपयोग तीक्ष्ण होकर स्वभावको पकड़े तो सूक्ष्म परिणामसे भी भेदज्ञान हो।

प्रशन :—यह करें कैसे?

उत्तर :—कैसे करें यह तो प्रश्न ही कहाँ रहता है? करना है उसकी तो यह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बात है। परके स्थूल उपयोगमें स्वयं जो लगा है उस उपयोगको सूक्ष्म करके अंतरमें ले जाना, अंतरमें त्रैकालिक स्वभाव पकड़में आये ऐसे परिणाम करना। त्रैकालिक सहज स्वभावको पकड़े तो भेदविज्ञान हो। ऐसी बात है! थोड़ेसे शब्दोंमें बड़ा गंभीर रहस्य भरा है!

अंतरमें सूक्ष्म स्वभाव है ना? उपयोगको सूक्ष्म करके उस सूक्ष्म स्वभावको ग्रहण करना। जो ज्ञान परके और रागके स्थूल उपयोगमें लग गया है उस ज्ञानको सूक्ष्म करके, तीक्ष्ण करके, स्वभावको पकड़े तो सम्यग्दर्शन और भेदविज्ञान हो। सम्यग्दर्शन जो मूल वस्तु है उसकी यह रीति है। उसकी तो खबर भी न हो और व्रत ले लो, तप करो तो हो गया धर्म! जिस जीवमें उस स्थूल परिणामको जाननेकी अन्तर्‌शक्ति नहीं है, वह ज्ञानके सूक्ष्म परिणामको कैसे जानेगा? और जितना कार्य व्यक्त हुआ है, प्रगट है ऐसे सूक्ष्म परिणामको भी पकड़नेकी जहाँ शक्ति न हो वह अंतरमें त्रैकालिक ज्ञायक प्रभुको कैसे जानेगा?

बहिर्मुख परिणामसे हटकर अंतर्मुख होनेके परिणाम करे, ज्ञानको सूक्ष्म तथा तीक्ष्ण करके स्वभावको—ध्रुवस्वरूप चैतन्य परमात्माको—पकड़े, तो सचमुच रागसे भिन्न हो और ज्ञातापर्याय जितनी ही त्रैकालिक वस्तु नहीं है ऐसा भेदज्ञान हो।

क्या किया जाय?! आजकल तो भगवानके मार्गको ही खोखला कर दिया है, इकट्ठे होकर छिन्न-भिन्न कर दिया है। गुड़के पिघलनेसे पास रखी हुई रजाई गुड़वाली हो जाय, उसका स्वाद लेनेके लिये कुत्ते रजाईको फाड़ डालें; उसीप्रकार भगवान पूर्णानन्दका नाथ असंग अभेद तत्त्व–विश्राम लेने जैसी वस्तु–उसे पर्यायबुद्धिवाले, रागबुद्धिवाले जीवोंने छिन्नभिन्न कर दिया है। कठिन बात है भाई! सत्‌के उद्‌घाटनके लिये है, व्यक्तिके अनादरके लिये नहीं है, उसकी निन्दाके लिये नहीं है। सत्य कैसा होता है, कैसे पकड़में आता है, उसकी बात है। अनंतकालमें मनुष्य भव प्राप्त हुआ और ऐसा सूक्ष्म तत्त्व अनुभवमें न आये?...उस सूक्ष्म स्वभावका अनुभव करना ही सच्चा कार्य है।

प्रश्न :—त्रैकालिक सूक्ष्म तत्त्वको पकड़ना किस प्रकार?

उत्तर :—ज्ञानके परिणाम सूक्ष्म हैं, रागपरिणामोंकी भाँति स्थूल—मोटे परिणाम नहीं है। उन ज्ञाता परिणामोंमें किंचित् लक्ष जाये तो उसकी सूक्ष्मता हो। यह जो परिणाम है उसका जाननेवाला मैं आत्मा त्रैकालिक ज्ञानस्वभावी हूँ,–इसप्रकार अंतरमें जानेसे सूक्ष्म तत्त्व समझमें आता है। अहा! तत्त्व ऐसा अटपटा है!

❀

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत-६०

अनादिकालसे अज्ञानी जीव संसारमें भटकते-भटकते, सुखकी लालसामें विषयोंके पीछे दौड़ते-दौड़ते, अनन्त दुःखोंको सहता रहा है। कभी उसे सच्चा सुख बतलानेवाले मिले तो शंका रखकर अटक गया, कभी सच्चा सुख बतलानेवालेकी उपेक्षा करके अपना सच्चा स्वरूप प्राप्त करनेसे वंचित रहा, कभी पुरुषार्थ किये बिना अटका रहा, कभी पुरुषार्थ किया भी तो थोड़ेसे पुरुषार्थके लिये वहाँसे अटका और गिरा।—इसप्रकार जीव अपना स्वरूप प्राप्त करनेमें अनंतबार अटका। पुण्योदयसे यह देह प्राप्त हुआ, यह दशा प्राप्त हुई, ऐसे सत्पुरुषका योग मिला; अब यदि पुरुषार्थ नहीं करेगा तो किस भवमें करेगा ? हे जीव! पुरुषार्थ कर; ऐसा सुयोग एवं सच्चा आत्मस्वरूप बतलानेवाले सत्पुरुष बार-बार नहीं मिलेंगे॥ ६०॥

'अनादिकालसे अज्ञानी जीव संसारमें भटकते-भटकते, सुखकी लालसामें विषयोंके पीछे दौड़ते-दौड़ते दुःखोंको सहता रहा है।'

अज्ञानी जीव गति-गतिमें, जन्म-मरणकी पंक्तिमें, परिभ्रमण करते-करते एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुर्न्द्रिय, पंचेन्द्रिय, मनुष्य, देव, नारकी, कीड़ा, कौआ और पशुके अवतारोंमें भटकते-भटकते सुखकी लालसामें—सुख आत्मामें है, मेरा प्रभु सुखरूप है, अपने सुखके लिये मुझे किसी परपदार्थकी अपेक्षा नहीं है ऐसी जिसे खबर नहीं है वह—विषयोंके पीछे दौड़ता-दौड़ता सुन्दर रूप, प्रशंसाकी भाषा, पैसा प्राप्त करने, अनुकूल स्त्री प्राप्त करने, मनभावन रूप-रस-गंध-स्पर्श करने आदि विषयोंकी प्राप्तिके लिये—अनन्त दुःख सहता रहा है। स्वयं आनन्दका सागर है वहाँ नहीं देखता, वहाँ देखनेका अवकाश नहीं लेता और विषयोंके पीछे दौड़ता-दौड़ता वहीं गति कर रहा है; अंतरमें भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है वहाँ गति करने—जानेकी सूझ नहीं पड़ती।

शरीर, स्त्री-पुत्रादि तो इन्द्रियोंका विषय हैं ही; देव-शास्त्र-गुरुके नेत्रों द्वारा दर्शन करना, भगवानकी वाणी सुनना, अरे! तीनलोकके नाथ साक्षात् भगवान भी, इन्द्रियका विषय हैं। पाँच इन्द्रियोंके विषयमें वह सब आ जाता है। उन विषयोंके पीछे सुखके लिये मिथ्याप्रयत्न करता हुआ अज्ञानी जीव अनन्त दुःखको सहता रहा है। अरबपति हो या जैनका पंचमहाव्रत पालन करनेवाला मुनि हो, परन्तु यदि सुखनिधान ऐसे आत्मस्वभावकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रतीति नहीं है तो वह भी वास्तवमें परके–विषयोंके पीछे सुखकी अभिलाषामें दौड़ता है। गिरनार, शत्रुंजय या सम्मेदशिखर आदि तीर्थोंकी दौड़ लगाता है, परन्तु वहाँ कहाँ उसका सुख रखा है? सुख तो अंतरमें जानेसे मिल सकता है।

'कभी उसे सच्चा सुख बतलानेवाले मिले तो शंका रखकर अटक गया, कभी सच्चा सुख बतलानेवालेकी उपेक्षा करके अपना सच्चा स्वरूप प्राप्त करनेसे वंचित रहा, कभी पुरुषार्थ किये बिना अटका रहा, कभी पुरुषार्थ किया भी तो थोड़ेसे पुरुषार्थके लिये वहाँसे अटका और गिरा।'

सुख भीतर है, सम्मेदशिखर या गिरनारमें नहीं है–इसप्रकार कोई सच्चा सुख बतलानेवाला मिले तो उसमें शंका करता है और अटक जाता है। 'सुख आत्मामें हो तो मिलता क्यों नहीं? हम तो अनादिसे हैं, फिर अभी तक तो सुख नहीं मिला!' ऐसी शंका करता है। परन्तु भाई! सुख जहाँ है वहाँ तू गया ही नहीं, उसका आदर भी नहीं किया, तो फिर सुख मिले कैसे?

कभी सच्चा सुख बतलानेवालेकी अवहेलना की कि—'आत्मा है कहाँ? मात्र सूक्ष्म बातें हैं?'–इसप्रकार लापरवाही करके छोड़ ही दिया। 'अंतरमें सुख है वहाँ जा तो सुख प्राप्त हो–ऐसा कहते रहते हैं, लेकिन कोई क्रिया करना तो कुछ बतलाते नहीं हैं'–इसप्रकार सच्चे सुखका मार्ग बतलानेवालेकी उपेक्षा करके अपना सच्चा स्वरूप प्राप्त करनेसे वंचित रह गया। भाई, 'करूँ-करूँ' ऐसा अभिप्राय तो मिथ्यात्व है, आकुलता है–दुःख है; दुःखसे क्या सुख प्रगट होगा?

अथवा, जीव बाह्यमें दया, दान, पूजा, व्रत, भक्ति आदिके शुभभावमें अटक गया। 'द्रव्यसंयमसे ग्रैवक पायो, फिर पीछे पटक्यो।' पंचमहाव्रतका पालन किया, हजारों रानियाँ छोड़ीं, निर्दोष आहार ग्रहण किया,–इसप्रकार शुभभावमें आया; परन्तु उन शुभभावोंसे भिन्न जिस आत्माकी जरूरत थी उस ओर नहीं गया। इस प्रकार शुभमें अटका, शुभभावका पुरुषार्थ किया, पठन-मननका पुरुषार्थ किया किन्तु अंतरमें जानेका पुरुषार्थ नहीं किया। और यदि पुरुषार्थ किया भी तो जितना चाहिये उतना नहीं किया और वहीं अटककर नीचे गिरा।

'—इसप्रकार जीव अपना स्वरूप प्राप्त करनेमें अनंतबार अटका।'

कभी-कभी ऐसा सोचता है कि अभी तो जवानी है, अभी से क्या है, फिर करेंगे। परन्तु भाई! बारात लेकर गया हो और हृदयगति रुक जाती है। ऐसा किसीको नहीं, तुझे भी अनन्तकालमें अनन्तबार हो गया है। एक आदमी विवाह करने गया था। विवाह-मंडपमें पाटके नीचे सर्प था, काटा और मर गया। वहींका वहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

खत्म हो गया। अरे! कैसी स्थिति! ऐसे भावोंमें मरकर कहाँ जायगा? तिर्यंच होगा। ऐसे भाव तो तूने अनंतबार किये हैं भाई! अभी तो जवानी है, बुढ़ापा आयगा तब धर्म करेंगे—ऐसे वायदे करता है; लेकिन बुढ़ापेमें जब रोग आ घेरता है तब कहता है—हे भगवान! अब क्या करूँ?—इसप्रकार कोई न कोई कारण देकर स्वरूपमें जानेसे वंचित रह गया। वंचित रह जानेके अनेक कारण और अंतरमें जानेका एक ही कारण है कि भीतर विद्यमान पूर्णानन्द भगवानका आश्रय करना। आजीवन ब्रह्मचर्यादिके शुभभाव करे, लेकिन उससे क्या? वह तो रागकी मन्दता हो तो शुभभाव कहा जाता है। इतना शुभभाव तथा इतना जानपना तो है—ऐसा संतोष करके अंतरमें नहीं जा पाता; धीरे-धीरे वे शुभभाव आदि काम करेंगे—ऐसा मानकर जीव अनंतबार अपना स्वरूप प्राप्त करनेसे वंचित रह गया।

'पुण्योदयसे यह देह प्राप्त हुआ, यह दशा प्राप्त हुई, ऐसे सत्पुरुषका योग मिला; अब यदि पुरुषार्थ नहीं करेगा तो किस भवमें करेगा? हे जीव! पुरुषार्थ कर; ऐसा सुयोग एवं सच्चा आत्मस्वरूप बतलानेवाले सत्पुरुष बार-बार नहीं मिलेंगे।'

पूर्व पुण्यके कारण श्रवण करनेका सुयोग मिला, सत्पुरुषकी प्राप्ति हुई; अब यदि पुरुषार्थ नहीं किया तो फिर कब करेगा प्रभु! अभी नहीं किया तो किस भवमें करेगा? अभी नहीं, अभी नहीं; फिर करूँगा, फिर करूँगा; तो वह सदा फिर ही रहेगा—कभी भी नहीं कर पायगा। शास्त्रमें तो ऐसे शब्द हैं कि 'आज ही कर।' 'हमने तुझे आत्मा और शरीर भिन्न करके बतला दिये; राग एवं शरीरकी आत्मासे भिन्नता समझा दी; अब ऐसा कौन जीव होगा जो आत्माको प्राप्त न कर सके!?' अहा! धन्य है दिगम्बर सन्तोंकी वाणी! उसके सामने दूसरे सब भरते हैं पानी! —ऐसी वाणी है! अब पुरुषार्थ नहीं करेगा तो कब करेगा? किस भवमें करेगा? हे जीव! पुरुषार्थ कर। अंतरमें आनन्दस्वरूप भगवान विराजमान है उसकी प्राप्तिका उद्यम कर! शुभराग और पर्यायबुद्धिमें अटक रहा है उसे छोड़ दे। अनंत गुणोंका भण्डार चैतन्य महाप्रभु भीतर विद्यमान है उस ओरका पुरुषार्थ कर। ऐसा सच्चा आत्मस्वरूप बतलानेवाले सत्पुरुष बार-बार नहीं मिलेंगे। अपने स्वरूपको देख। अनन्तकालमें जो सुयोग प्राप्त होता है वह मिलने पर नहीं किया तो फिर कब करेगा?

प्रश्नः—करना क्या है?

उत्तरः—रागसे भिन्न करके स्वरूपमें दृष्टि लगाना वही करना है। कठिन बात है प्रभु! लाख-करोड़ शास्त्रोंकी जानकारी की हो तो उसे भी छोड़कर अंतर्वस्तुमें जाना—वही करना है। उसका नाम सम्यग्दर्शन है। लोकमें तो ऐसी मान्यता है कि—देव-शास्त्र-गुरु

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

मिले और उनके प्रति भक्ति हुई इसलिये सम्यक्त्व हो गया!—ऐसा अनन्तबार माना और अटक गया। अटकनेके साधन मिले और अटका। परन्तु भाई! ऐसा सुयोग और सच्चा स्वरूप बतलानेवाले स्वानुभवी सत्पुरुष बार-बार नहीं मिलेंगे।

✻

वचनामृत-६१

जिसे सचमुच ताप लगा हो, जो संसारसे ऊब गया हो उसकी यह बात है। विभावसे ऊब जाये और संसारका त्रास लगे तो मार्ग मिले बिना नहीं रहता। कारण दे तो कार्य प्रगट होता ही है। जिसे जिसकी रुचि—रस हो वहाँ उसका समय कट जाता है; 'रुचि अनुयायी वीर्य।' निरंतर ज्ञायकके मंथनमें रहे, दिन-रात उसके पीछे पड़े, तो वस्तु प्राप्त हुए बिना न रहे॥ ६१॥

'जिसे सचमुच ताप लगा हो, जो संसारसे ऊब गया हो उसकी यह बात है।'

सबेरे (प्रवचनमें) आया था कि संसारके भटकते जीवको द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव—ऐसे पाँच परावर्तनरूप भ्रमण प्राप्त हुआ है। समस्त जीवोंको इन पंचपरावर्तनरूप भ्रमण प्राप्त हुआ है—ऐसा कहा। वहाँ समस्त जीवोंमें अनेक तो सर्व द्रव्योंको अर्थात् सर्व पुद्गलके संयोगको प्राप्त नहीं हुए हैं; सर्व क्षेत्रोंमें नहीं जन्मे हैं ऐसे भी जीव हैं; जिन्होंने काल परावर्तन नहीं किये हैं, ऐसे जीव हैं; अनादिकालमें सर्व भवोंको प्राप्त नहीं किया ऐसे भी जीव हैं; सर्व शुभाशुभ भाव नहीं किये ऐसे भी जीव हैं। कुछेक जीवोंने—व्यवहारराशिमें आये जीवोंने—उस पंचपरावर्तनमें भ्रमण किया है इसलिये सामान्य अपेक्षासे उपदेशमें समस्त जीवोंने भ्रमण किया है—ऐसा कहा जाता है।

जिसे परिभ्रमणकी सचमुच थकान लगी हो, तपन लगी हो, वेदना लगी हो, जो संसारसे ऊब गया हो कि—यह चारों गतियाँ संसार हैं, दुःखरूप हैं, असार हैं, उसकी यह बात है। पंचास्तिकायमें समयकी (आगमकी) सफलता बतलाते हुए कहा है : वह समय नारकत्व, तिर्यंचत्व, मनुष्यत्व और देवत्वस्वरूप चार गतियोंका निवारण करनेके कारण परतंत्रता निवृत्ति जिसका लक्षण है ऐसे फलसहित है। योगसारमें भी कहा है : 'भवभयसे डरि चित्त।' यानी समस्त भवोंके भयसे! मात्र नरकके या तिर्यंचके दुःखसे नहीं। भव करनेका ही जिसके चित्तमें भय है, जिसका चित्त चारों गतिमें भ्रमणरूप दुःखसे ऊब गया है, थक गया है, उसकी यह बात है। जिसे

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

संसारमें अभी आनन्द लगता हो, धनमें, आरोग्यमें, बाहरी बड़प्पनमें सुख लगता हो, जिसके चित्तमें भवभ्रमणका भय, ताप या त्रास नहीं लगता हो, उसके लिये विचारनेका अवसर नहीं है।

'विभावसे ऊब जाय और संसारका त्रास लगे तो मार्ग मिले बिना नहीं रहता।'

दया-दान, पूजा-भक्ति, अणुव्रत-महाव्रतादि शुभभाव हैं तथा हिंसा-झूठ-चोरी, विषय-कषायके भाव, व्यापार-धंधा एवं स्त्री-पुत्र-धन-परिवारके ममत्वका भाव अशुभभाव है;–वे सब भाव विभावभाव हैं। पुण्य-पापके विभावभावोंको जानकर—यह मेरा स्वरूप नहीं हैं, दुःखरूप हैं और उनका फल भी दुःख ही है—अंतरसे सचमुच ऊब गया हो, परिभ्रमणका सचमुच त्रास लगा हो तो उसे अंतरमें आत्माका—कल्याणका, शान्तिका, सुखका—मार्ग मिले बिना रहेगा ही नहीं।

'कारण दे तो कार्य प्रगट होता ही है।'

जितना कारण दे, स्वरूपकी दृष्टि और स्थिरताका उतना कार्य होता ही है। कारण अल्प दे और कार्य अधिक हो ऐसा नहीं हो सकता। रागसे भिन्न होकर भेदज्ञानरूप कारण दे उसे भवच्छेदरूप कार्य, आत्मशान्तिरूप कार्य हुए बिना रहेगा ही नहीं—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुए बिना रहेंगे ही नहीं। कारण दे और कार्य न हो–ऐसा वस्तुस्थितिमें है ही नहीं।

कुछ लोग कहते हैं कि—स्वाध्याय और चिंतन-मनन तो करते हैं लेकिन कुछ होता नहीं है। भाई! ऊपर-ऊपरके स्वाध्याय या चिन्तन-मननके शुभ विकल्पसे क्या होगा? आंतरिक समझका कारण नहीं दिया है इसलिये कार्य नहीं होता। यथार्थ कारण दिये बिना जो कार्य माँगे वह भ्रममें पड़ा है।

'जिसे जिसकी रुचि–रस हो वहाँ उसका समय कट जाता है; 'रुचि अनुयायी वीर्य'।'

जिसकी रुचि और रस हो उसमें कितना समय व्यतीत हुआ उसकी खबर नहीं पड़ती। स्वरूपके रसमें लीन हो, अंतरमें रुचिपूर्वक स्वभावका पुरुषार्थ करे, वहाँ कितना काल व्यतीत हुआ उस ओर उसका ध्यान नहीं होता। समय कहाँ चला गया उसकी खबर नहीं रहती। जहाँ रुचि हो वहाँ पुरुषार्थ सहज ही चलता रहता है। जिसकी आवश्यकता लगती हो वहाँ पुरुषार्थ किये बिना नहीं रहता, वीर्य उस ओर ढलता ही जाता है। संसारमें जिसकी आवश्यकता लगती है—बच्चोंके लिये दिन भर कमाना, स्त्रीको सन्तुष्ट रखना आदि पाप-कार्योंकी आवश्यकता लगती है; वह सब मिलता तो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है पूर्वके पुण्यसे तथापि उसकी रुचि है इसलिये—वहाँ पुरुषार्थ किये बिना नहीं रहता; उसीप्रकार अंतरमें आत्महितकी आवश्यकता लगे वहाँ पुरुषार्थ किये बिना न रहे।

'निरन्तर ज्ञायकके मंथनमें रहे, दिन-रात उसके पीछे पड़े, तो वस्तु प्राप्त हुए बिना न रहे।'

अंतरमें ज्ञायकस्वभावी लगन, प्राप्त करनेका गहरा खटका, उसका गहरा मंथन निरन्तर रहे; ज्ञायकस्वभाव...ज्ञायकस्वभाव....ज्ञायकस्वभाव—इसप्रकार दिन-रात उसके पीछे पड़े; तो वस्तुकी अर्थात् ज्ञायक स्वभावकी अनुभूति अवश्य हो ही जाय, ज्ञायक आत्माकी प्राप्ति हुए बिना कदापि न रहे।

✻

ता. २६-१-७८

वचनामृतके एक-एक बोलमें, एक-एक शब्दमें निधान भरे हैं। जिसे तल तक पहुँचना आता हो उसे स्वभावकी अगाधताकी प्रतीति होगी। पर्यायने प्रभुको ग्रहण किया, परिपूर्ण ज्ञानमें ले लिया। यह तो सिद्धान्तका दोहन है। जगतका भाग्य है कि यह (बेनकी पुस्तक) यथासमय प्रकाशित हो गई। थोड़े शब्दोंमें, सरल भाषामें, मूल तत्त्वको प्रगट कर दिया है।

—पूज्य गुरुदेव।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-१६

ता. २४-६-७८

वचनामृत-६२

जीव ज्ञायकके लक्षसे श्रवण करे, चिंतवन करे, मंथन करे उसे—भले कदाचित् सम्यग्दर्शन न हो तथापि—सम्यक्त्वसन्मुखता होती है। अन्दर दृढ़ संस्कार डाले, उपयोग एक विषयमें न टिके तो अन्यमें बदले, उपयोग सूक्ष्मसे सूक्ष्म करे, उपयोगमें सूक्ष्मता करते-करते, चैतन्यतत्त्वको ग्रहण करते हुए आगे बढ़े, वह जीव क्रमसे सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।। ६२ ।।

'जीव ज्ञायकके लक्षसे श्रवण करे, चिंतवन करे, मंथन करे उसे–भले कदाचित् सम्यग्दर्शन न हो तथापि—सम्यक्त्वसन्मुखता होती है।'

अर्थात् क्या? कि—मैं एक ज्ञायक ध्रुव चैतन्यपदार्थ हूँ, परिपूर्ण ज्ञानानन्दस्वभावी ऐसी स्वयं सत् वस्तु हूँ,–ऐसे पहले उसे लक्षमें लेना चाहिये। श्रवण करते हुए भी लक्षका जोर परिपूर्ण परमानन्दस्वभावी निज वस्तुपर रहना चाहिये। एक चैतन्य महाप्रभुका अस्तित्व, शुद्ध, अखण्ड, अभेद और परिपूर्ण आनन्दमय है ऐसा अपने चिन्तनमें लेना। वह जीव भले ही कदाचित् तुरन्त सम्यग्दर्शन प्राप्त न कर सके, तथापि अंतरमें सम्यक्त्व प्राप्त करनेके सन्मुख तो होता ही है।

पहले देव-शास्त्र-गुरुकी भक्ति करना, पूजा करना, व्रत पालना, और वह करते-करते सम्यग्दर्शन अथवा कल्याण हो जायगा, इस बातको छोड़कर अंतरमें जो चैतन्य महाप्रभु विराजमान है उसका लक्ष करके सुने, उस सहज ज्ञायकके लक्षसे चिंतवन करे, वह ध्रुव ज्ञायकभाव क्या है?–इसप्रकार उस ओरका मंथन करे, विचारोंके मंथनमें एक ज्ञायकभावपर ही जोर रहे, उसे भले ही कदाचित् तत्काल सम्यग्दर्शन न हो–भीतरसे जितना कारण देना चाहिये उतना नहीं दिया हो तो सम्यग्दर्शनरूपी कार्य नहीं होता–तथापि ज्ञायकके लक्षपूर्वक श्रवण करता है, उसका चिंतन और मंथन करता है उस जीवको, अहा! जिसे अखण्ड, अभेद, परिपूर्ण एवं सर्वोत्कृष्ट कहते हैं वह क्या वस्तु है?!' ऐसे माहात्म्यपूर्वक सम्यक्त्व-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सन्मुखता तो होती ही है। सर्वोत्कृष्ट वस्तु है इसलिये चौदह ब्रह्माण्डमें—चौदह राजु लोकमें यह प्रभु निज आत्मा ही परम पदार्थ है ऐसा जीवको माहात्म्य तो आना चाहिये। ऐसा होनेसे उसे सम्यक्त्वसन्मुख दशा होती है।

'अन्दर दृढ़ संस्कार डाले, उपयोग एक विषयमें न टिके तो अन्यमें बदले, उपयोग सूक्ष्मसे सूक्ष्म करे, उपयोगमें सूक्ष्मता करते-करते, चैतन्यतत्त्वको ग्रहण करते हुए आगे बढ़े, वह जीव क्रमसे सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।'

आत्मवस्तु अंतरमें अखण्ड, अभेद, परिपूर्ण चैतन्यपिण्ड स्वयंसिद्ध सत् है; उसे गुरुमुखसे बारम्बार सुनकर उसका चिंतवन तथा मंथन करके ऐसे अमिट दृढ़ संस्कार डाले—जिसप्रकार सम्यग्दर्शन होनेपर अप्रतिहत भावका वर्णन किया है उसीप्रकार यह सम्यग्दर्शनके सन्मुख होकर भी ऐसे अचल दृढ़ संस्कार डाले—कि सम्यग्दर्शन होकर ही रहे।

मुनिराज तो कहते हैं कि 'हमें अपना पूर्णानन्दस्वरूप प्रभु—सच्चिदानंदमय शुद्ध आत्मा—अनुभवमें आया, वह अनुभव अब पलट नहीं सकता; हम वहाँसे अब गिरेंगे नहीं।' अहा! पंचमकालके सन्तोंका यह सम्बोधन है! सम्यक्त्वके उस अप्रतिहत भावमेंसे यहाँ भी ऐसा तात्पर्य निकाला है कि अंतरोन्मुखताके अचल दृढ़ संस्कार डाले उसे सम्यग्दर्शन—निज शुद्ध आत्माका निर्मल अनुभव—होकर ही रहेगा।

जीवको अंतरमें ऐसी लगन लगना चाहिये कि—मैं शुद्ध ज्ञायक हूँ, चैतन्य हूँ, ज्ञानानन्दसे परिपूर्ण हूँ, जगतका साक्षी हूँ, जगत ज्ञेय है और मैं मात्र ज्ञाता हूँ, जगत दृश्य है और मैं द्रष्टा हूँ। ऐसा लक्ष रखकर दृढ़ संस्कार डाले, उपयोग एकमें स्थिर न रहे तो दूसरेमें ले जाये, विचारश्रेणी एक ही प्रकार न चले तो विचारधाराको उसीका उसीमें अनेक प्रकार बदले। उपयोगमें, द्रव्य अखण्ड और अभेद है ऐसे एक ही प्रकारसे विचार काम न करे तो वस्तुमें अनन्त गुण हैं, उसकी पर्यायें अनंत हैं, परिणति शुद्ध होना चाहिये आदि अनेक प्रकारसे विचार करे।

उपयोगको सूक्ष्मसे सूक्ष्म बनाये। जैसे हो वैसे अंतरमें प्रसरनेके लिये ज्ञानके वर्तमान परिणामको—उपयोगको धीर-गंभीर होकर सूक्ष्म करे। प्रभु अंतरमें सूक्ष्म और अरूपी है; उसे जाननेके लिये उपयोगको जरा सूक्ष्म बनाये। यह उसे प्राप्त करनेकी कला है। बाकी व्रतादिका पालन एवं भक्ति करनेसे आत्मा प्राप्त हो जाय—यह दृष्टि यथार्थ नहीं है, उसका लक्ष ज्ञायक पर नहीं है। जिसे उन शुभ परिणामोंकी मुख्यता हो उसका जोर व्यवहार पर है, अंतरमें पूर्णानन्दका नाथ प्रभु महान सम्राट विराजमान है उस पर उसका लक्ष नहीं है। जिस प्रकार संसारमें मिथ्यात्वका एकछत्र राज्य चलता है, उसीप्रकार अंतरमें जिसका एकछत्र शासन है ऐसे ज्ञायक स्वभावकी महिमा आना चाहिये।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिसमें ज्ञात होता है वह ज्ञायकभाव है। ज्ञाता परमें जाकर नहीं जानता, परन्तु अपनेमें रहकर परको जानता है। वहाँ ज्ञान परको जानता है इसप्रकार ज्ञानका परसे कथन करना वह व्यवहार है।—इत्यादि प्रकारसे उपयोगको विचारोंमें लगाना। बात सूक्ष्म है भाई! मूल वस्तुको प्राप्त करनेकी सारी रीति ही अलग है। लोगोंने व्रत लो, प्रतिमा धारण करो—इसप्रकार उसीकी रीति ही बदल दी—बदलकर रख दी है।

जिसमें विकल्प है ही नहीं, उसकी प्राप्ति विकल्प द्वारा होगी?—नहीं होगी। भगवान आत्मा तो निर्विकल्प शान्ति एवं निर्विकल्प आनन्दसे ज्ञात हो ऐसा है।—इसप्रकार सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेसे पूर्व, सम्यक्त्व-सन्मुख होनेके लिये, विचारकी धारामें—विचारके उपयोगमें—भी यह बात लेना।

एक शुद्ध चैतन्यघनकी ओरके उपयोगमें सूक्ष्मता करता-करता, चैतन्यतत्त्वको ग्रहण करता—ज्ञायकतत्त्वके लक्षमें विशेष जोर लगाता, ज्ञानको उसमें युक्त करता—आगे बढ़े, वह जीव अनुक्रमसे सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है। इसमें ऐसा नहीं कहा कि—ऐसे व्रत करे, ऐसा शुभराग हो, तो अनुक्रमसे प्राप्त हो; परन्तु वह इसमें है ही कहाँ? अंतरमें द्रव्य परिपूर्ण है...है...है, उसका विचार करे। अहा! बहुत कठिन कार्य है भाई! लेकिन दूसरा क्या हो? मार्ग तो यही है। यहाँ तो अभी सम्यग्दर्शन—धर्मका प्रथम सोपान—के लिये भी, इसप्रकार स्वके लक्षमें उपयोगको जोड़ दे, उसीका विचार, उसीका मंथन करे, उसीके दृढ़ संस्कार डाले, उपयोगको सूक्ष्म करके उसी ओर ढले, वह जीव अनुक्रमसे सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।

बीचमें गड़बड़ न करे कि ऐसे शुभभावकी क्रिया तथा ऐसे विकल्प करेंगे तो आत्मप्राप्ति होगी। उपयोगमें विकल्प आते अवश्य हैं, परन्तु उसके विचारमें परिवर्तन नहीं होता कि इनसे भी आत्मा प्राप्त हो जायगा। दूसरोंको समझानेके लिये बहुत पढ़ना और स्वाध्याय करना यह बात भी यहाँ नहीं ली है।

ऐसे ज्ञानानन्दस्वरूप चैतन्यतत्त्वको ग्रहण करता हुआ आगे बढ़े, वह जीव अन्य समस्त भावों परसे लक्ष हटा लेता है और अनुक्रमसे सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।

❀

वचनामृत-६३

जैसा बीज बोये वैसा वृक्ष होता है; आमका बीज (गुठली) बोये तो आमका वृक्ष होगा और अकौआ (आक)का बीज बोयेगा तो अकौएका वृक्ष

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उगेगा। जैसा कारण देंगे वैसा कार्य होता है। सच्चा पुरुषार्थ करें तो सच्चा फल मिलता ही है॥ ६३॥

'जैसा बीज बोये वैसा वृक्ष होता है; आमका बीज (गुठली) बोये तो आमका वृक्ष होगा और अकौआ (आक)का बीज बोयेगा तो अकौएका वृक्ष उगेगा।'

आमका बीज बोये तो आमका और अकौएका बीज बोये तो अकौएका वृक्ष उगेगा; उसीप्रकार जिसने आत्माके लक्षसे, आत्माका अनुभव करनेके लिये, अंतरका सच्चा पुरुषार्थरूप बीज बोया है उसे आत्मा प्राप्त होगा ही; परन्तु जिसने बाह्य मान–प्रतिष्ठा आदि परपदार्थकी रुचिरूप मिथ्यात्वका बीज बोया होगा उसे संसार फलित होगा।

पर्यायबुद्धिमें, रागादिमें, अनुकूल परपदार्थ प्राप्त होनेमें तथा प्रतिकूल परपदार्थ छूट जानेमें जिसे किंचित् भी विशेषता लगे, उसे उस मिथ्यात्वरूप बीजसे तो संसार ही फलेगा।

चैतन्यस्वरूप आनन्दकन्द प्रभुका अस्तित्व कितना महान है! अंतरमें इतना बड़ा ज्ञायक प्रभु विराजमान है–ऐसा बीज जिसने ज्ञान–श्रद्धाकी पर्यायमें बोया है, उसे उस बीजमेंसे ज्ञायक फलित होकर केवलज्ञान होगा। अहा! ऐसी बात है!

'जैसा कारण देंगे वैसा कार्य होता है।'

पुरुषार्थसे स्वभाव-सन्मुखतारूप कारण दे तो उसके फलरूप आत्माकी प्राप्ति हो; और उसे छोड़कर बाह्यमें किसी भी वस्तुका आश्चर्य या विशेषता लगे, आत्माके सिवा बाह्यमें कोई भी चमत्कार भासे, तो उसके फलरूप उसे संसार फलेगा; संयोगी वस्तुकी महत्तामें उसे संयोगी वस्तुके भव ही मिलेंगे।

आत्माका प्रेम और विशेषता–महत्ता हो उसे अतीन्द्रिय आनन्द फलेगा; क्योंकि जैसा कारण दे वैसा कार्य होता है। परन्तु जिसे ऐसा लगे कि—'मैंने तो कितना किया। मैं कैसा करता हूँ। सारा दिन शास्त्र-स्वाध्याय करता हूँ और दूसरोंको समझाता हूँ! भगवानकी भक्ति स्वयं करता हूँ और कराता भी हूँ!'—इसप्रकार उसकी महत्ता–विशेषता लगती हो उसे तो उसके फलरूप संसार ही फलेगा। अरे! परिभ्रमणके दुःख होंगे! कषायकी वक्रता की है उसे कौए कुत्तेके भवमें जाना पड़ेगा भाई! कुन्दकुन्दाचार्यदेव तो यहाँ तक कहते हैं कि वस्त्रका एक टुकड़ा रखकर भी मुनिपना मानना, माननेवालेको अच्छा मानना–ऐसे भावसे जीव निगोदमें जायगा। मुश्किल काम है भाई!...कठिन काम है!...उस मान्यतामें उसे नवों तत्त्वोंकी भूल खड़ी होती है। इसप्रकार मिथ्यात्वका पोषण किया, कराया और अनुमोदन किया हो वहाँ दूसरा क्या फल आये? अकौएका बीज

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बोये उसे अकौएके फल मिलेंगे; वहाँ किसीकी सिफारिश नहीं चलेगी कि—मैंने इतने लोगोंको समझाया था, मैंने इतनोंको पक्षमें लिया था, इतने वर्ष तक लोग मेरी प्रशंसा करते थे। भाई! तुझे वहाँ यह सब क्या काम आयगा? जैसा कारण दिया होगा वैसा कार्य होगा।

अहा! कितनी सरल भाषा! किसी बड़े साधुने यह (वचनामृत-पुस्तक) देखी, और सादी भाषा तथा ऊँचे भाव देखकर वे प्रसन्न हो गये। कहने लगे—'मुझे दे दो।' 'ले जाओ, बहुत अच्छा, भाई!'

'सच्चा पुरुषार्थ करें तो सच्चा फल मिलता ही है।'

स्वसन्मुखताका वीर्य वह सच्चा पुरुषार्थ। रुचि अनुयायी वीर्य। मेरा प्रभु चैतन्य ज्ञायक है, उसके सिवा एक भी वस्तु मेरी नहीं है—इसप्रकार सभी कार्य करते हुए उसे खटका लगा रहेगा।

शिष्य–शिष्याएँ इकट्ठे हों। स्वयं माने कि 'मैंने इतनोंको पढ़ाया और समझाया, हमें माननेवाले इतने।' भाई, यह क्या किया है तूने? ज्ञायकप्रभु ज्ञातृत्वके सिवा एक भी विकल्पका कर्त्ता नहीं है; फिर तुझसे कौन-कौन और कितने-कितने लोग पढ़े प्रभु? अहा! सादी–सरल भाषा!–'जैसा कार्य देंगे वैसा कार्य होगा; सच्चा पुरुषार्थ करेंगे तो उसका सच्चा फल आत्माका अतीन्द्रिय-आनन्द प्राप्त होगा ही। अहाहा! भगवान आत्मा जैसा और जितना है उसे वैसा और उतना ही विश्वासमें लेना; उस विश्वासमें किसीकी अपेक्षा नहीं है। ऐसा कारण दे तो कार्य हुए बिना रहेगा ही नहीं। बड़ी सरल भाषामें अलौकिक बात है!

✻

वचनामृत-६४

अंतरमें, चैतन्यतत्त्व नमस्कार करने योग्य है; वही मंगल है, वही सर्व पदार्थोंमें उत्तम है, भव्य जीवोंको वह आत्मतत्त्व ही एक शरण है। बाह्यमें, पंचपरमेष्ठी—अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु—नमस्कार करने योग्य हैं क्योंकि उन्होंने आत्माकी साधना की है; वे मंगलरूप हैं, वे लोकमें उत्तम हैं; वे भव्य जीवोंके शरण हैं ॥ ६४ ॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'अंतरमें, चैतन्यतत्त्व नमस्कार करने योग्य है; वही मंगल है, वही सर्व पदार्थोंमें उत्तम है, भव्य जीवोंको वह आत्मतत्त्व ही एक शरण है।'

नमस्कार योग्य दो स्थान हैं—अन्तरमें अपना चैतन्यतत्त्व और बाह्यमें अरिहंतादि नमस्कार योग्य हैं। श्रीमद् राजचन्द्र कहते हैं:—

जे स्वरूप समज्या विना पाम्यो दुःख अनंत;
समजाव्युं ते पद नमुं श्री सद्गुरु भगवंत।

वहाँ 'समजाव्युं ते पद नमुं'—उसमें गुरु आये; और 'समजायुं ते पद नमुं' ऐसा लें तो उसमें स्वयं आया। अंतरमें पूर्णानन्दका नाथ चैतन्य प्रभु अनाकुल आनन्द एवं शांतिसे परिपूर्ण है, उसके प्रति विस्मय, आश्चर्य या अलौकिकता नहीं आती, उसके प्रति अंतरमें वीर्यका स्फुरण नहीं होता, और यह जीव अरेरे! अन्य रसोंमें रुल जाता है! अंतरमें चैतन्यतत्त्व पूर्णानन्द प्रभु स्वयं अपनेको नमस्कार करने योग्य है। पंचपरमेष्ठीको नमस्कार करना वह शुभभाव है; वह भाव आता है; परन्तु मूल वस्तु तो अपना चैतन्यतत्त्व है और वही मंगल है। 'अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और केवली प्ररूपित धर्म मंगल है'—यह व्यवहार है, विकल्प है। व्यवहारसे ऐसा कहा जाता है, परन्तु निश्चयसे तो अपना चैतन्य भगवान ही मंगलस्वरूप है। अल्पकालमें अर्थात् एक समयमें त्रिकालको जाने और एक समयमें स्वयं त्रैकालिक ज्ञात हो जाय—ऐसा भगवान आत्मा स्वयं है; वही मंगल और नमस्कार करने योग्य है। जरा सूक्ष्म तो है परन्तु मूल वस्तु यही है। प्रथम निज आत्मा निश्चय मंगल, उत्तम और शरण है ऐसा कहकर पश्चात् व्यवहारसे पंचपरमेष्ठी मंगल, उत्तम एवं शरण हैं—ऐसा कहेंगे।

अंतरमें महान ध्रुवधाम जिसका देश है और ज्ञान-दर्शन-आनन्दादि अनंत गुणोंको जो आश्रयभूत—निवास योग्य ज्ञायक वस्तु है ऐसा यह भगवान चैतन्य प्रभु ही मंगल, उत्तम और नमस्कार करने योग्य है। कहा है न! :—

घट घट अंतर जिन बसै, घट घट अंतर जैन,
मत-मदिराके पान सौं, मतवाला समुझै न।

वह जिन भगवान आत्मा स्वयं ही है। बाह्य—परकी ओरके मांगलिककी जिसे अपेक्षा नहीं है ऐसा निज चैतन्य भगवान आत्मा ही अपने लिये सर्वोत्कृष्ट मंगल है, वही सर्व पदार्थोंमें उत्तम है। अहा! ऐसा मार्ग! लोगोंको इसका अभ्यास नहीं है। अरिहंत, सिद्ध आदि चार बोल व्यवहारसे मंगल—उत्तम—शरण हैं यह बात आगे कहेंगे।

समयसार जैसी लाखों पुस्तकें छपी हैं, मन्दिरोंका निर्माण हुआ है, यह कार्य व्यवहारसे उत्तम हुए कहे जाते हैं, उस प्रकारका शुभभाव होता है, परन्तु सर्वोत्कृष्ट—उत्तम

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तो अपरिमित अतीन्द्रिय आनन्दका नाथ अपना भगवान आत्मा है। दया, दान, भक्ति आदि परिणामोंको उत्तम मानना वह तो एक ओर रह गया, अरे! एक समयकी शुद्ध पर्यायको परमार्थसे उत्तम माने—यह बात भी यहाँ नहीं है। कैसे बैठे यह बात?

गन्नेका रस पीता हो तो उसीमें तल्लीन हो जाता है! भाई! तेरे अंदर अतीन्द्रिय आनन्दरस भरा है। उसके बिना तुझे यह बाह्य रस कैसे उत्तम लगते हैं? अरिहंत, सिद्ध आदि उनके अपनेमें उत्तम हैं; उनकी उत्तमता उनके पास रही। तुझमें तो तू स्वयं ही मंगल, उत्तम और नमन करने योग्य है। अरिहंत–सिद्धको मंगल–उत्तम–शरणरूप स्वीकार करने जायगा तो विकल्प उठेगा, तेरे अपने निजस्वरूपको मंगल–उत्तम–शरणरूपसे स्वीकार करेगा तो अंतर्स्थिरता होगी।

देहान्तके समय चारों ओरसे व्याधि घेर लेती है, सहनशीलता नहीं रहती; वहाँ क्या शरण है? **'णमो अरिहंताणं'** कहते-कहते शरीर छूट जाय तो लोग कहते हैं कि समाधिमरण हुआ। किन्तु भाई! वह समाधि नहीं है। अंतरमें जो ध्येय है उसकी तो सुध-बुध है नहीं, फिर समाधिमरण कैसे हुआ? समस्त बाह्यवृत्तिको समेटकर अंतरमें चैतन्य-प्रभुके समीप जा, वही तुझे शरणभूत है (और तभी तेरी समाधि होगी), अंतरमें महान पुरुष अर्थात् भगवान आत्माकी शरण मिलेगी। वह एक तुझे मंगल, उत्तम, शरण एवं नमन करने योग्य है।

✽

ता. ७-१२-७७

बेनकी पुस्तकके सिवा हम किसीमें नहीं पड़े। बेनकी पुस्तक बहुत अच्छी आयी...बेनके बोलमें आता है न! कि–'बाह्य प्रसिद्धिके प्रसंगोंसे दूर भागनेमें लाभ है!' अति उत्तम!

—पूज्य गुरुदेव.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-२०

ता. २५-६-७८

वचनामृत-६४

यह ६४वाँ बोल चल रहा है। 'बाह्यमें, पंचपरमेष्ठी...' यह बाकी है। ६४वाँ बोल जरा फिरसे...

'अंतरमें, चैतन्यतत्त्व नमस्कार करने योग्य है;'

यह आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति, परमानन्दमय, वीतरागी चित्-चमत्कारसे भरपूर सहजात्मस्वरूप, त्रैकालिक सत् पदार्थ है। शरीर तो अजीव तत्त्वमें और पुण्य-पाप आस्रव-तत्त्वमें जाते हैं। उनसे भिन्न जो स्वयं परमात्मा है वह नमन करने योग्य है।

प्रश्न :—हाथ जोड़कर साष्टांग नमन करने योग्य है?

उत्तर :—यह बाहरकी नहीं, आत्माकी—अंतरकी बात है। बाहरकी बात फिर आयगी। वह तो शुभराग है; अशुभसे बचनेके लिये ऐसा शुभराग होता है, परन्तु वह पुण्यबंधका कारण है; वह कोई संवर, निर्जरा और मोक्षका कारण नहीं है। अहा! अंतरतत्त्व, चैतन्य ज्ञायकभाव, वीतरागी शीतल स्वभावसे भरपूर पूर्ण जिनचन्द्र, नित्य ध्रुव ऐसा निज आत्मा वह नमन करने योग्य है।

'वहीं मंगल है,'

चैतन्यतत्त्व ही मंगल है। मोक्ष जानेकी योग्यतावाले जो जीव हैं उन्हें मंगल कहते हैं। 'धवला' टीकामें तीर्थंकर होने योग्य आत्माको अनादि द्रव्यमंगल कहा है।

प्रश्न :—वे तो अनादिके मंगल हैं ना?

उत्तर :—हाँ, जो जीव तीर्थंकर होनेवाला है वह जीव स्वयं ही मंगलस्वरूप है। यहाँ तो, अखण्ड चैतन्य एवं आनंदस्वरूप, महिमावन्त भगवान आत्मा स्वयं नमन करने योग्य है और परमार्थसे वही मंगल है। अरिहंतादि तो व्यवहारसे मंगल हैं। शुभराग आनेके कारण हैं, इसलिये उन्हें मंगल कहा जाता है। वास्तवमें तो जिसके आश्रयसे शुद्धोपयोग होता है ऐसा निज आत्मा ही मंगल और नमस्कार करने योग्य है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'वही सर्व पदार्थोंमें उत्तम है,'

सर्व पदार्थोंमें शुद्धात्मद्रव्य ही उत्तम है, सर्वोत्कृष्ट प्रभु है।

'भव्य जीवोंको वह आत्मतत्त्व ही एक शरण है।'

देव-गुरु भी वास्तवमें शरण नहीं हैं, क्योंकि उनकी ओर लक्ष जाये, उनकी महिमा आये वह शुभभाव है, पुण्यबंधका कारण है। वे आत्माको शरणभूत नहीं हैं; पवित्रतासे भरपूर नित्यस्थायी वस्तु जो निज आत्मा वही शरण है। पुण्यके परिणाम हैं वे कोई पवित्र या शरण नहीं हैं।

प्रश्न :—पुण्यका अर्थ पवित्रता होता है ना?

उत्तर :—आत्माकी पवित्रताको वास्तवमें पुण्य कहा जाता है, शुभरागको वास्तवमें पवित्रता नहीं कहा जाता। समयसार-कलशमें आता है कि—'पुण्यः पुराणः पुमान्,' वहाँ 'पुण्यः' का अर्थ पवित्र है।

अरे! देहान्तके समय चारोंओरका दबाव पड़ेगा उस समय कौन शरण है? 'णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं' करे वह तो राग है। भव्य जीवोंकी शरण तो अंतरमें जो पूर्णानन्दका नाथ विराजमान है वह है। शुभ विकल्प आये तब 'अरिहंतकी शरण है' ऐसा व्यवहारसे कहा जाता है। वास्तवमें तो आत्मा वीतरागपरिणतिरूप परिणमे वह **'केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्ञामि'** है; वह भी पर्याय है। यहाँ तो त्रैकालिक भगवान आत्मा ही उसकी शरण है; उसमें जब न रहे सके तब अरिहंतकी शरण शुभ भावमें आती है, परन्तु वह पुण्यबंधका कारण है, मुक्तिका कारण नहीं है। वीतरागस्वरूपकी पूर्ण प्राप्ति न हो तब धर्मीको भी वह आये बिना नहीं रहती; इसलिये व्यवहारसे वह शरण है ऐसा कहा गया है।

अहाहा! चारों ओर दुःखसे घिरा हो, एक-एक अंगुलमें छियानवे रोग हैं वे सब जब उभरते हों तब भाई! कौन शरण है? औषधि या वैद्य शरणभूत हैं? सच्चा शरणभूत तो अंतरमें भगवान आत्मा है। उसका विश्वास अंतरसे आया हो, अनुभव हुआ हो तब शरणभूत है। परन्तु जिसने अन्तर्दृष्टिमें और अनुभवमें आत्माको देखा–जाना ही नहीं कि आत्मा ऐसा है, वह कहाँ जायगा? प्रभु! यह बाहरकी चकाचौंध सब अदृश्य हो जायगी। अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दका नाथ विद्यमान है उससे भेट कर तो वह शरण होगा।

यहाँ तो कहते हैं कि–अंतरमें शरण है चैतन्यकी; और यदि उसमें न रह सके तो व्यवहारसे अरिहंतकी शरण है, सिद्धकी शरण है, पंचपरमेष्ठीकी शरण है।

'बाह्यमें, पंचपरमेष्ठी–अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु–नमस्कार करने

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

योग्य हैं क्योंकि उन्होंने आत्माकी साधना की है; वे मंगलरूप हैं, वे लोकमें उत्तम हैं; वे भव्य जीवोंके शरण हैं।'

आत्मा चिदानन्दस्वरूप है—उसके निराकुल आनन्दकी निर्मलदशा जिन्हें प्रगट ऐसे पंचपरमेष्ठी नमस्कार करने योग्य हैं। पंचपरमेष्ठीमें आचार्य—उपाध्याय—साधुको प्रचुर स्वसंवेदन जिसकी मुहर—छाप है ऐसा आत्मानुभव होता है। अविरत सम्यक्त्वीको स्वसंवेदन प्रचुर नहीं है; उसे भी आनन्दका स्वाद है, किन्तु अति अल्प। वास्तवमें अतीन्द्रिय आनन्दसे भरपूर भगवान आत्मा नमन करने योग्य है; परन्तु जिन्होंने ऐसे आत्माकी साधना की है ऐसे पंचपरमेष्ठी भी व्यवहारसे पूज्य हैं। यहाँ ऐसा नहीं कहा कि—उन्होंने व्रतादिका पालन किया है इसलिये वे पूज्य हैं। अहा! अतीन्द्रिय आनन्दका अरूपी गुप्त भण्डार जिसमें भरा है ऐसे भगवान आत्माकी साधना जिन्होंने अंतरसे की है वे पंचपरमेष्ठी भगवन्त व्यवहारसे नमस्कार करने योग्य हैं, और व्यवहारसे वे मंगलरूप हैं, उत्तम हैं तथा भव्यजीवोंको शरणभूत हैं।

❋

वचनामृत-६५

देव-गुरुकी वाणी और देव-शास्त्र-गुरुकी महिमा चैतन्यदेवकी महिमा जागृत करनेमें, उसके गहरे संस्कार दृढ़ करनेमें तथा स्वरूपप्राप्ति करनेमें निमित्त हैं ॥ ६५ ॥

'देव-गुरुकी वाणी'...

पहले तो देव किसे कहा जाय वह परीक्षा होना चाहिये। जो अठारह दोषरहित है, जिसे क्षुधा या तृषा नहीं है—आहार-जल नहीं है, किसी प्रकारकी इच्छा नहीं है, निद्रा आदि नहीं है और जिसे सम्पूर्ण वीतराग एवं सर्वज्ञदशा प्रगट हुई है, उसे देव कहा जाता है। अभी तो परम हितोपदेशी सर्वज्ञ—वीतरागकी भी खबर न हो उसे अंतरमें निज आत्मदेव कौन है उसकी क्या खबर पड़ेगी? अहा! ज्ञान—आनन्दादि दिव्य शक्तियोंका भण्डार जिनके सम्पूर्ण खुल गया है वे देव हैं। उनके शरीर हो तथापि क्षुधा-तृषा और रोगादि नहीं हैं। शरीररहित हुए सिद्ध भी देव हैं; परन्तु यहाँ तो देव-गुरुकी वाणी लेना! अरिहंत दशामें हैं उनको वाणी होती है, अशरीरी सिद्धको वाणी नहीं होती।

अरिहंत वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा वे देव; और जिनको आत्माकी प्रतीति एवं अनुभव सहित अंतरमें उग्र रमणता होनेसे अंतर-बाह्य निर्ग्रन्थ—नग्न दशा हुई है वे गुरु। जिनके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अंतरमें वस्त्रका विकल्प भी नहीं है और बाह्यमें वस्त्रका टुकड़ा भी नहीं है तथा जो अतीन्द्रिय आनन्दके स्वादमें उग्ररूपसे परिणमन कर रहे हैं उन्हें वीतरागमार्गके सच्चे गुरु कहते हैं। जो यथार्थ देव–गुरु हैं उनकी वाणी आत्माको समझनेमें तथा अनुभव करनेमें निमित्त होती है, कल्पित देव और गुरुकी वाणी नहीं।

...'और देव-शास्त्र-गुरुकी महिमा चैतन्यदेवकी महिमा जागृत करनेमें'...

देव-गुरुकी वाणी और देव-शास्त्र-गुरुकी महिमा चैतन्यदेवकी महिमा जागृत करनेमें निमित्त हैं। स्वयं अंतरमें अपने आत्मदेवकी महिमा जागृत करे तो उसे निमित्त कहा जाता है। अहा! जो एकसमयकी पर्यायमें समस्त द्रव्य, गुण और पर्याय तथा भूत-वर्तमान-भविष्य तीनों कालकी अवस्थाओंको वर्तमानवत् साक्षात् प्रत्यक्ष जानते हैं वे सर्वज्ञदेव हैं। भाई! कैसी होगी वह दशा! और कैसी होगी उनकी वाणीकी महिमा? भविष्यका अंत नहीं है और भूतका आदि नहीं है; दोनोंको वर्तमानवत् प्रत्यक्ष देखते हैं। भविष्यकी पर्याय होगी तब ज्ञानमें ज्ञात होगी ऐसा नहीं, किन्तु वर्तमान ज्ञानकी पर्यायमें भविष्यको भी प्रत्यक्ष जानते हैं। उसकी महिमा जिसे लगे उसे चैतन्यकी महिमा जागृत होनेमें उसका निमित्तपना होता है। अरिहंतके चैतन्यकी महिमा अपने चैतन्यकी महिमा कर देती है–ऐसा नहीं है; परन्तु स्वयं अपने चैतन्यकी महिमाके भावरूप परिणमे तो उसे निमित्त कहा जाता है।

गुरुकी वाणी—कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, पूज्यपादस्वामी आदि कि जिन्हें आत्माकी पर्यायमें प्रचुर अतीन्द्रिय आनन्दकी मुहर–छाप लग गई है ऐसे निर्ग्रन्थ गुरुकी वाणी—स्वरूप समझनेमें निमित्त है। यों तो देव-शास्त्र-गुरु तीनों निमित्त कहे जाते हैं; परन्तु यहाँ तो वाणीकी प्रधानता है ना? इसलिये देव-गुरुकी वाणी और देव-शास्त्र-गुरुकी महिमा आत्मस्वरूपकी जागृति होनेमें निमित्तरूप कहे हैं।

अरे! वह वाणी भी कैसी कि जो एकसाथ तीनकाल और तीनलोककी बात करे, केवलज्ञानकी बात करे! भाषाकी पर्यायमें केवलज्ञान नहीं है तथापि वह बात करती है केवलज्ञानकी। सर्वज्ञ परमात्माके श्रीमुखसे ॐकारध्वनि खिरे और उसकी जिसे महिमा आये उसे वह स्वरूप समझनेमें निमित्त होती है। जिनवाणीकी महिमा किसे कहते हैं? श्रीमद् राजचन्द्र कहते हैं कि—

'उपमा आप्यानी जेने तमा राखवी ते व्यर्थ,
आपवाथी निज मति मपाई में मानी छे;
अहो, राजचन्द्र, बाल ख्याल नथी पामता अे,
जिनेश्वर तणी वाणी जाणी तेणे जाणी छे।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहा! वीतरागकी वाणी वह क्या वस्तु है! ॐकारध्वनि निकली और गणधरोंने शास्त्र रचे।

'मुख औंकार धुनि सुनि अर्थ गणधर विचारैं;
रचि आगम उपदिशैं भविक जीव संशय निवारैं।'

स्वभावके आश्रयसे स्वयं संशयका निवारण करे तो वाणीकी महिमाको निमित्त कहा जाता है। अहा! अद्भुत बात है! वाणी जड़ है, उसे खबर नहीं है कि स्वयं कौन है और साथमें जो सर्वज्ञ हैं वे कौन हैं; तथापि उस वाणीमें सर्वज्ञका स्वरूप आता है। अनंत–अनंत गुणोंसे भरपूर भगवान आत्मा ऐसा होता है; जिनको पूर्ण केवलज्ञान, पूर्ण केवलदर्शन और पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट हुआ हो वे ऐसे होते हैं;—वह सब यह वाणी कहती है। जड़में स्व-परको जाननेकी शक्ति नहीं है परन्तु स्व-परकी कथा कहनेकी शक्ति है। जिसमें सर्वज्ञपना निमित्त है वह भाषापर्याय भी अद्भुत है। वह निमित्त है इसलिये निमित्तसे भाषा हुई है ऐसा नहीं है; कुछ करता नहीं है इसीलिये निमित्त कहा जाता है ना?

जिसे अंतरमें चैतन्यकी महिमा आये उसे देव-शास्त्र-गुरुकी महिमा निमित्त कही जाती है।

प्रश्नः—बाह्य साधन भी तो होना चाहिये ना? क्या एकदम सीधी छलाँग मारनेसे आत्मप्राप्ति हो जायगी?

उत्तरः—भाई, सुन तो सही! भगवानकी वाणी ऐसा कहती है कि–अपने स्वभावको प्रगट करनेमें किसी अन्य वस्तुकी अपेक्षा नहीं है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त करनेके लिये किसी अन्य वस्तुकी–राग, निमित्त या देव-शास्त्र-गुरुकी–अपेक्षा नहीं है। अरे! भेदकी भी अपेक्षा नहीं है। ऐसा कौन कहता है?–वाणी। सूक्ष्म बातें हैं यह सब।

अहो! देवकी महिमा! गुरुकी महिमा! गुरुको शरीरमें भीषण कुष्ठ रोग हो तथापि वे संत आनन्दमें हैं, रोगमें या रोगके विकल्पमें वे नहीं हैं। अहा! ऐसी तो गुरुकी महिमा है! उनकी वाणीकी महिमा भी अपार है! वह वाणी ऐसा कहती है कि वस्तुका अनुभव वचनातीत है, विकल्पातीत है। ऐसी वाणीको शास्त्र कहा जाता है। श्रीमद्‌ने कहा है कि—

वचनामृत वीतरागनां परम शांतरस मूल;
औषध जे भवरोगनां, कायरने प्रतिकूल।
...रे गुणवन्ता ज्ञानी! अमृत वरस्यां रे पंचमकालमां।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वाणी आयी और अंतरमें अनन्त आनन्दकी वर्षा हुई...उस अतीन्द्रिय आनन्दकी बातें कही किसने?—वाणीने।

...'उसके गहरे संस्कार दृढ़ करनेमें'...

आत्माकी पर्यायमें चैतन्यकी महिमा जागृत करनेमें तथा गहरे संसार दृढ़ करनेमें देव-गुरुकी वाणी और देव-शास्त्र-गुरुकी महिमा निमित्तरूप है। अहा! गहरे संस्कार दृढ़ करनेमें, ध्रुवतत्त्वको ग्रहण करनेमें, अंतरतलमें विराजमान आत्माको पकड़नेमें देव-गुरुकी वाणी और देव-शास्त्र-गुरुकी—महिमा स्वयं संस्कार डाले तो और पकड़े तो—निमित्त है। अहाहा! एक-एक बोल अलौकिक है, यह कोई साधारण कथा नहीं है।

तीनलोकके नाथ जिनेन्द्रदेव, उनका केवलज्ञान, उनका आनन्द, गुरुकी साधक दशाका आनन्द और यह सब कहनेवाली चमत्कारी वाणी—ऐसे देव-गुरु-शास्त्र जो कि दिगम्बर संतोंके मार्गमें हैं—वह अन्यत्र कहाँ है? दूसरे सम्प्रदायोंको दुःख होगा, परन्तु क्या किया जाय? भाई! दूसरोंके अनादरका प्रश्न नहीं है। यह तो सत्का उद्घाटन है, सत् ऐसा है भाई! सत्को आँच नहीं लगाना, उसे निस्तेज नहीं करना।

...'तथा स्वरूप-प्राप्ति करनेमें निमित्त है।'

स्वरूपकी प्राप्तिमें ऐसे देव-गुरु और वाणीका निमित्तपना है; इनके सिवा अन्य देव-गुरु-शास्त्रके दृढ़ संस्कार तथा स्वरूपप्राप्तिमें निमित्तपना नहीं होता; तथापि निमित्त उपादानमें कुछ करता नहीं है। आत्मानन्दके अनुभवरूप कार्य परके कारण हो ऐसा वीतरागकी वाणी नहीं कहती। अहा! देखो यह शास्त्र! और देखो उस वाणीमें झरती चमत्कृति! आत्मा स्वयं शुद्ध चैतन्यघन है, उसकी अनुभूतिका कारण वाणी आदि परद्रव्य नहीं हैं। ऐसा कौन कहता है?—वाणी। वाणीमें—पुद्‌गलमें—निमित्तपना है। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षामें कहा है कि—पुद्‌गलकी शक्ति तो देखो, जोकि केवलज्ञानकी पर्यायको रोकती है!—यह बात व्यवहारसे निमित्तपने की है। जीव स्वयं अपनी विपरीतता या मंदताके कारण केवलज्ञानरूपसे—उत्कृष्टभावसे—नहीं परिणमता तब निमित्तमें निमित्तरूपसे उत्कृष्ट परिणमनकी सीमा कितनी होती है वह बतलाया है। चैतन्य महाप्रभुको केवलज्ञानकी उत्पत्तिके लिये परकी या पूर्व-पर्यायकी अपेक्षा नहीं है। जीव स्वयं एकसमयमें अपने षट्कारकरूपसे परिणमित होकर केवलज्ञान उत्पन्न करता है। उस वाणीको शास्त्र कहा जाता है। अपने चैतन्यकी महिमा प्रगट करे तो उसे निमित्त कहते हैं।

✾

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत-६६

बाह्यमें सबकुछ हो उसमें—भक्ति-उल्लासके कार्य हों उनमें भी—आत्माका आनन्द नहीं है। जो तलमेंसे आये वही आनन्द सच्चा है॥ ६६॥

'बाह्यमें सबकुछ हो उसमें–भक्ति-उल्लासके कार्य हों उनमें भी–आत्माका आनन्द नहीं है।'

परमें उल्लास आया हो ऐसा दिखायी देता है, तथापि वह जो उल्लसित विकल्प हैं उनमें आत्माका आनन्द नहीं है। पंचपरमेष्ठी तथा परमेष्ठी द्वारा कही हुई वाणीका बहुमान आये तथापि वह भाव आनन्द नहीं है। अहो! आत्माके निजघरकी ऐसी बातें त्रिलोकनाथ परमात्मा जिनेश्वरदेवने कही हैं। उनका भाव समझनेमें उल्लासके परिणाम अर्थात् ऐसे शुभभाव आते हैं किन्तु उनमें कहीं आत्माका आनन्द नहीं है। प्रभु! तू कौन है? उस विकल्पमें तेरा आनन्द नहीं है–वह तुझे खबर नहीं है। लाखों रुपये खर्च करके बड़े-बड़े मन्दिर बनवानेके भाव आयें, परन्तु वे भाव विकल्प हैं, आनन्द नहीं हैं। नैरोबी (अफ्रिका)में पन्द्रह लाखका मन्दिर बनवानेवाले हैं। कैसा उल्लास लगता है! वह शुभराग है, आनन्द नहीं है। भरत चक्रवर्तीने—सम्यग्दृष्टिने—तीन चौवीसीके जिनबिम्ब प्रतिष्ठित किये थे। बाहरसे लोगोंको कितना उल्लास लगता है! परन्तु वह उल्लासका वीर्य कोई आनन्द नहीं है, शुभरागरूप दुःख है। प्रभु! तेरा मार्ग कोई अलग है!

प्रश्नः—शुभ विकल्प और वाणी निमित्त तो है ना?

उत्तरः—भाई! आत्मा तो विकल्प और वाणीसे अगोचर एक अलौकिक वस्तु है, वह विकल्पसे तथा वाणीसे ज्ञात नहीं होता, तथापि वाणी उसमें निमित्त होती है। निमित्तका अर्थ है कि–जो परका कुछ नहीं करे। अरेरे! वर्तमानमें तत्त्वकी बातमें बड़ा फेरफार कर दिया है। भगवानका विरह हुआ, भरतक्षेत्रमें केवलज्ञान प्रगट हो ऐसी शक्ति नहीं रही! अरे प्रभु! सत्‌स्वरूपका यह उद्‌घाटन करनेसे जगतको यह एकान्त लगे, परन्तु भाई! तेरा स्वरूप ही ऐसा है–ऐसा भगवानने जाना है और उनकी वाणीमें भी ऐसा ही आया।

केवली भगवान जब विहार कर रहे हों तब उनकी कितनी महिमा होती है! इन्द्र भी जयघोष करते हैं, धर्मचक्र तथा अष्ट मंगल-द्रव्य उनके आगे चलते हैं। सर्वज्ञ परमात्मा पाँच हजार धनुष आकाशमें गमन करते हैं, अन्य सब विभूतियाँ वहाँ साथ ही साथ होती हैं–इत्यादि भक्ति एवं उल्लासके कार्य होते हैं; परन्तु उनमें कहीं आत्माका अतीन्द्रिय आनन्द नहीं है, किन्तु दुःख है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'जो तलमेंसे आये वही आनन्द सच्चा है।'

वर्तमान वर्तती ज्ञानपर्यायको अपार स्वभावकी ओर मोड़ दे–उन्मुख करे, उसे तलमें ले जाये अर्थात् ध्रुवस्वभावकी ओर ले जाये तब उसकी थाह मिलती है और सच्चा आनन्द प्रगट होता है।

प्रश्नः—थाह लेनेके लिये कितनी गहराई तक जाना होगा?

उत्तरः—पर्यायके पास ही प्रभु बैठा है ना? बिलकुल समीप, निकट ही विद्यमान है–दूर नहीं है। चर्चा होती थी ना, कि पर्याय और द्रव्य दोनों भिन्न हैं। कितनी दूरी है? कि विंध्याचल और सह्याचल जितनी। वह तो वस्तुस्वरूपको बिना समझेकी चर्चा थी। प्रभु तो भीतर पर्यायके पास ही परिपूर्ण विद्यमान है। अहाहा! ऐसी वाणी वीतरागके सिवा और कहाँ है भाई! अरे ऐसी वाणी भी सुननेको न मिले वह कब विचार करेगा और कब अंतरमें उतरेगा? बात दुर्लभ हो गई थी! संतोंने सरल करके रख दी है–ऐसा 'अनुभव-प्रकाश'में आता है।

आनन्द तो तलमेंसे आये वह सच्चा है। आनन्द जहाँ है वहाँसे–अंतरमेंसे–पर्यायमें आता है। रागके या पर्यायके आश्रयसे आनन्द माना जाय वह सच्चा आनन्द नहीं है। तलके–ध्रुवस्वभावके–आश्रयसे पर्यायमें आनन्द आये उसे सच्चा आनन्द कहा जाता है। वह अतीन्द्रिय आनंद तो अंतरमेंसे आता है। अहाहा! भगवानके प्रति शुभरागमें भी आनन्द नहीं है। भले लाख-करोड़ों भक्ति करे परन्तु वह शुभराग है, दुःख है, आनन्द नहीं है। आनन्द तो अंतरमेंसे आये तब सच्चा कहा जाता है।

✽

ता. १२-६-७१

बेन (चम्पाबेन)की निर्मलता बहुत है! निर्मलता–निर्मलता! अपूर्व-अपूर्व स्मरण! शांत और गंभीर! बेन तो धर्मरतन हैं। महाविदेहमें बड़ी निर्मलता थी; वहाँकी निर्मलता लेकर यहाँ आयी हैं। एकान्त-प्रिय, शान्तिसे एकाकी बैठकर पुरुषार्थ करती रहती हैं। उन्हें कहाँ किसीकी पड़ी है! कुटुम्बकी भी नहीं पड़ी। अंतरूस्वरूपपरिणतिमें रहती हैं।

—पूज्य गुरुदेव.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन-२१

ता. २६-६-७८

वचनामृत-६७

प्रत्येक प्रसंगोंमें शान्ति, शान्ति और शान्ति ही लाभदायक है ॥ ६७ ॥

इसका अर्थ क्या? कि—चाहे जो प्रसंग हो, आत्माका ज्ञाता-द्रष्टारूपसे रहना ही शान्ति है। संयोग प्रतिकूल हों या अनुकूल; उस प्रत्येक प्रसंगमें 'मैं एक शुद्ध चैतन्य आनन्दघन हूँ'—यह दृष्टि हटना नहीं चाहिये। मेरा अस्तित्व सहज एक ज्ञायकभाव है, उसमें शरीरादि परका अथवा रागादि विभावका प्रवेश नहीं है और मेरा जो स्वभाव है वह परमें नहीं जाता—ऐसे भाव रहनेसे परके चाहे जिस प्रसंगमें जीवको शान्ति ही रहती है, खेदकी खलबली नहीं होती। अहा! ऐसी बात है! 'शान्ति' शब्द तीन बार लिया है ना? 'मैं एक सहज शुद्ध चैतन्य हूँ' ऐसा उसका अस्तिस्व किस क्षेत्रमें, किस कालमें और किस प्रसंगमें नहीं है?—सदैव, सर्व प्रसंगोंमें है।

अहा त्रैकालिक सहज ज्ञान एवं आनन्दादिस्वरूप अपने अस्तित्वकी स्थिति, भगवान आत्माकी विद्यमानता, किस प्रसंगमें नहीं है? जो-जो प्रसंग आयें वहाँ अपने अस्तित्वका स्मरण करे, विचारे और उसमें स्थित रहे, तो उसे अंतरसे शांति प्राप्त हो। शुभभावका प्रसंग हो इतना ही नहीं, परन्तु अशुभभावका प्रसंग आये तो उसमें भी उससे भिन्न रहकर 'मैं तो ज्ञाता हूँ' यह बात अंतरसे हटना नहीं चाहिये। तभी उसे शान्ति रहेगी, परका कुछ कर दूँ तो मुझे शान्ति प्राप्त हो, परसे कोई सुविधा मुझे मिले तो ठीक रहे—ऐसा अभिप्राय होगा तब तक अशान्ति और दुःख ही रहेगा।

✽

वचनामृत-६८

पूज्य गुरुदेवकी वाणी मिले वह एक अनुपम सौभाग्य है। मार्ग बतलानेवाले गुरु मिले और उनकी वाणी सुननेको मिली वह मुमुक्षुओंका परम

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सौभाग्य है। प्रतिदिन प्रातः–मध्याह्न दो बार ऐसा उत्तम सम्यक् तत्त्व सुननेको मिलता है इस जैसा दूसरा कौन सा सद्भाग्य होगा? श्रोताको अपूर्वता लगे और पुरुषार्थ करे तो वह आत्माके समीप आ जाय और जन्म-मरण टल जाय–ऐसी अद्भुत वाणी है। ऐसा जो श्रवणका सौभाग्य प्राप्त हुआ है वह मुमुक्षु जीवोंको सफल कर लेने योग्य है। पंचमकालमें निरन्तर अमृत-झरती गुरुदेवकी वाणी भगवानका विरह भुलाती है॥ ६८॥

इस ६८वें बोलमें बेनने अपनी विनय प्रगट की है। अंतरमें उच्चदशा होनेपर भी कैसी नम्रता!...यह बोल स्वयं पढ़ लेना।

❃

वचनामृत-६९

प्रयोजन तो एक आत्माका ही रखना। आत्माका रस आये वहाँ विभावका रस झर जाता है॥ ६९॥

'प्रयोजन तो एक आत्माका ही रखना।'

आत्मा जैसा है वैसी दृष्टि करके स्वयं उसमें रहना वह प्रयोजनभूत है, बाकी सब व्यर्थ है। प्रयोजन तो मात्र एक आत्माका ही रखना, परका—पुण्य-पापके भावका भी—नहीं। अहा! ऐसी बात है! भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान एवं आनन्दादि शक्तियोंसे भरपूर परिपूर्ण वस्तु है; प्रभु समीप होनेपर भी, वर्तमान पर्यायके ऊपर लक्ष होनेसे उसकी ओर दृष्टि नहीं करता। चैतन्य भगवान यही और इतना ही है, उसके स्वभावमें राग-द्वेषादि विभावोंका प्रवेश नहीं है—ऐसी आत्माकी 'अस्ति'को सँभालकर रखना—यह एक ही प्रयोजन रखना। अशुभसे बचनेके लिये शुभराग आता है परन्तु उसका कोई प्रयोजन नहीं है। प्र=प्रकृष्टरूपसे, विशेषरूपसे; और योजन=युक्त होना, लीन होना। आत्मा स्वयं एक सत् चैतन्य एवं ज्ञानानन्दस्वरूप वस्तु है उसमें लीन होना चाहिये, रागमें नहीं। इसमें शब्द सादे हैं लेकिन भाव ऊँचे हैं।

प्रयोजन तो एक आत्माका ही रखना; व्यवहार-रत्नत्रयका विकल्प है उसका भी प्रयोजन नहीं। समयसारमें परको जिलाने-मारने, सुखी-दुःखी करने आदि अध्यवसान छोड़नेकी बात आयी है, उसका स्पष्टीकरण पं० राजमलजीने अच्छा किया है कि–इस जीवको इस जीवने मारा, इस जीवने इस जीवको जिलाया, इस जीवने इस जीवको सुखी किया, इस

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जीवने इस जीवको दुःखी किया—ऐसी कथनी है, वहाँ ऐसी ही प्रतीति मिथ्या है। श्री अमृतचंद्राचार्यदेव ऐसा कहते हैं कि—इन अध्यवसानोंके निषेधसे मैं ऐसा समझता हूँ कि पराश्रित जितना व्यवहार जो कि अपरमार्थ है, उसका प्रभुने निषेध किया है। प्रयोजन तो अंतरमें आनन्दस्वरूप निश्चय आत्मा है उसकी दृष्टि, ज्ञान और रमणताका है। बाकी सब व्यर्थकी बातें हैं।

'आत्माका रस आये वहाँ विभावका रस झर जाता है।'

आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान, आनन्द और प्रभुताका पिण्ड है उसका जिसे रस लगे उसे परका रस छूट जाता है। बड़े संक्षिप्त वाक्य! मैं सहजात्मस्वरूप, शुद्ध चैतन्यघन, अनादि–अनन्त, नित्य ही हूँ; उसमें किसी अन्यका प्रवेश ही नहीं है; उसका किसी क्षेत्रमें विरह नहीं है, किसी कालमें उसका अभाव नहीं है। इस प्रकार जिसे आत्मामें रस–एकाग्रता–लगे उसे अन्य रस छूट जाता है। एक म्यानमें दो तलवारें नहीं रह सकतीं। स्वभावका रस लगे उसे रागका रस छूट जाता है–झर जाता है।

आनन्दस्वरूप चैतन्यका जितना रस लगा, उस ओर जितना झुकाव हुआ, उतना पराश्रय छूट जाता है, विभाव छूट जाता है। बात छोटी किन्तु सारगर्भित है। स्वाश्रय करना ही प्रयोजन है। लाख बातकी बात और बारह अंगका सार यही है। क्षुल्लकजीने कहा था ना! कि—'परसे हट, स्वमें बस; यह है सीधा पथ, इतना कर तो बस!' क्या कहा है? भाषा तो बड़ी सरल–संक्षिप्त है! प्रयोजन एक ही है कि—परके आश्रयसे छूटकर स्वकी शरणमें आ जा। परका आश्रय लेने जायगा तो वहाँ विकार होगा। शुभ–उपयोगरूप विकार भी सहकारी होकर शुद्धताकी रचना करे–ऐसा नहीं होगा। भाई! यह तेरे लाभकी बात है। तू हानिकी बातमें हर्षित होता है!

समयसारकी ७४वीं गाथामें, शुभभाव वर्तमान दुःख है और भविष्यमें भी दुःखका कारण है—ऐसा कहा जाता है। अरे! प्रभुका उपदेश तो देखो! जिनेन्द्रकी वाणी तो देखो!–शुभयोग वर्तमान राग है, दुःखरूप है; उससे पुण्यरूप बंध होगा, जिससे संयोग प्राप्त होंगे, और संयोगोंमें तेरा लक्ष जायगा इसलिये राग ही होगा। कोई कहता है कि शुभयोगसे शुद्धता होगी। अरे प्रभु! क्या कहता है तू? पुण्य भले ऐसा बँधे कि उसके फलमें वीतराग प्रभु और उनकी वाणी मिले, तथापि वे भी परद्रव्य हैं ना! उनकी ओर लक्ष जानेसे तुझे राग होगा। अहा! ऐसी बात तो जिनेन्द्रदेव ही कह सकते हैं, दूसरोंकी सामर्थ्य नहीं। ज्ञानियोंको कहाँ इसकी परवाह है कि दुनिया या समाज इस बातको नहीं मानेगी? तेरा मार्ग तो प्रभु यही है!

अरे! शुभोपयोग भी दुःखरूप है और दुःखका कारण है; शुद्धोपयोग ही आनन्दरूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। भाई! जब तुझे सत्य बात स्वीकार करना ही नहीं आता, तो सत्यमें जायगा कैसे? वीतराग प्रभुने तो ऐसा उपदेश किया है कि—अंतरमें आत्मा अकेला मुक्तस्वभाव है, परिपूर्ण वस्तु–आनन्दका पिण्ड है। उस पर दृष्टि देनेसे, उसका विश्वास और पोषण मिलनेसे तुझे आनन्द होगा। यह तो जिसे अंतरात्माकी प्राप्तिका खटका हो उसकी बात है। इस शरीरका अन्त होनेपर तेरा अस्तित्व रहेगा या नहीं? उस अस्तित्ववान त्रैकालिक तत्त्वका आश्रय कर, और जिसमें अस्तित्व नहीं है उसका आश्रय छोड़ दे। अहा! आत्माका रस लगे उसे विभावका रस झर जाता है। जिसे शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्माका प्रेम लग जाय उसे अन्य रागादि भाव हों, परन्तु उनका रस–प्रेम छूट जाता है, 'वे ठीक हैं' ऐसा मोहभाव मिट जाता है।

❀

वचनामृत-७०

सब कुछ आत्मामें है, बाहर कुछ नहीं है। तुझे कुछ भी जाननेकी इच्छा होती हो तो तू अपने आत्माकी साधना कर। पूर्णता प्रगट होनेपर लोकालोक उसमें ज्ञेयरूपसे ज्ञात होगा। जगत जगतमें रहे तथापि केवलज्ञानमें सब ज्ञात होता है। जाननहार तत्त्व पूर्णतारूप परिणमने पर उसकी जानकारीसे बाहर कुछ नहीं रहता और साथ ही साथ आनन्दादि अनेक नवीनताएँ प्रगट होती हैं।। ७०।।

'सब कुछ आत्मामें है, बाहर कुछ नहीं है।'

बड़ी सरल भाषा! सबकुछ आत्मामें है अर्थात्? जो भी ज्ञान, आनन्द, स्वच्छता, प्रभुता, चैतन्य आदि किसी गुणकी या पर्यायकी जो तुझे महानता लगती है वह सब आत्मामें है। क्या सबकुछ आत्मामें है?–हाँ, आत्माका जो भी कुछ है वह आत्मामें है। उसकी पहले श्रद्धा कर। आत्माका वीर्य स्थिर हो जाय ऐसी श्रद्धा कर ले।

परके आश्रयसे कोई लाभ नहीं है। तुझे जो कुछ करना है वह सब अपने आश्रयसे करना है। उसमें तीनलोकके नाथका भी तुझे आश्रय नहीं है ऐसा भगवान स्वयं कहते हैं। आत्माकी वस्तु ही अनन्त ज्ञान-आनन्दादि अनन्त शक्तियोंसे भरपूर है। अनन्त शक्ति किसे कहते हैं भाई! वस्तु भले एक, क्षेत्र भले शरीरप्रमाण छोटा; परन्तु उसमें अनंत-अनंत अमर्यादित ज्ञान है। ज्ञानस्वभाव है उसमें मर्यादा कैसी? तुझे सुखी होनेकी जिज्ञासा है तो सुखसे भरपूर भगवान तू स्वयं ही है। अहा! कितनी अच्छी बात है!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पुत्र मर जाय तो कहते हैं कि—उसके बिना यह महल और मकान सूने-सूने लगते हैं, सब स्मशान जैसा दिखायी देता है; उसीप्रकार यहाँ कहते हैं कि—तेरे (आत्मा) बिना सब वस्तुएँ स्मशानवत् लगती हैं। अहा! तू अपनेमें पूर्ण प्रभु है! परन्तु तुझे खबर नहीं है। अपने स्वभावकी महानता एवं प्रभुताकी तुझे प्रतीति ही नहीं है; क्योंकि अपनी प्रगट दशाके सिवा अंतरमें अपने समीप महाप्रभु बैठा है वह सुना नहीं है, उस ओर कभी दृष्टि ही नहीं डाली है। ज्ञानमें उसका विश्वास नहीं आता। ज्ञान ही नहीं किया वहाँ विश्वास कहाँसे आये?

'तुझे कुछ भी जाननेकी इच्छा होती हो तो तू अपने आत्माकी साधना कर।'

बहुतोंको देखने-जाननेका भाव होता है। तीनकाल और तीनलोकको जाननेवाला ज्ञान और आनन्द वह सब चाहिये हो तो तुझमें ही पड़ा है। अरे! जाननेवाला परको जानता है परन्तु जाननेवाला ज्ञाताको–स्वयं अपनेको नहीं जानता! अहा! ज्ञाता प्रभु तुझमें है ना? तू शरीरको और वेशको मत देख। उन बाह्य वस्तुओंको और भीतर जो पुण्य-पापके विकल्प हैं उन्हें मत देख! एक समयकी क्षणिक विकृतदशा पर्यायदृष्टिसे है, वस्तुदृष्टिमें वह है ही नहीं। यदि तुझे ज्ञानकी, आनन्दकी, श्रद्धाकी, वीर्य-पुरुषार्थकी आवश्यकता हो तो वे सब तुझमें भरे हैं; अपने आत्माकी साधना कर। अहा! ऐसी बातें और ऐसा उपदेश है!

कोई कहता है–दया पालो, व्रत धारण करो, उपवास करो तो आत्मा समझमें आयगा। भाई! उप = समीप और वास = निवास करना; जिसके समीप निवास करना है उस आत्माके स्वरूपकी तो खबर नहीं है, फिर उपवास करेगा कैसे? राग और स्वभावकी एकताका जो ताला लगा रखा है वह जबतक नहीं खोलेगा तबतक वस्तुस्वरूपमें समीप जाकर निवास नहीं कर सकता।

प्रश्नः—सब कुछ आत्मामें है उसका अर्थ क्या?

उत्तरः—ज्ञान एवं आनन्दादि गुण और पवित्रता सब आत्मामें हैं; रागादि विभाव उसमें नहीं हैं। रागादि जोकि अपनेमें नहीं हैं उनकी अपने अस्तित्वके साथ एकता अनुभवता है वह, अपनी अंतरकी ज्ञान-आनन्दादि पूँजीको ताला लगा रखा है। अंतरमें आनन्दादि अनंत शक्तियोंका स्वामी चैतन्यरत्न तू स्वयं ही है उसका तुझे मूल्य नहीं है। अहा! कैसे बैठे यह बात! 'अनुभवप्रकाश'में उदाहरण दिया है कि—एक आदमीके पास बहुमूल्य रत्न था। उसे उसके मूल्यकी कोई खबर नहीं थी। घासलेटके बदले उस रत्नके प्रकाशमें घरके रसोई आदि कार्य करता था। जौहरीने देखकर कहा : अहा, यह तो अमूल्य वस्तु है! यह तो करोड़ों स्वर्ण-मुद्राओंके मूल्यका रत्न है। उस आदमीने कहा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कि—हम जहाँ रहते थे वहाँ तो ऐसे चमकते हुए टुकड़े कितने ही थे, उनमेंसे मैंने एक प्रकाशके लिये ले लिया। उसीप्रकार आत्मदेशमें ज्ञान, सुख आदि अनेक रत्न भीतर भरे पड़े हैं। तुझे सुख, संतोष, विश्वास, स्वरूपरमणता आदिकी आवश्यकता हो तो वह सब उसमें है, बाहर कुछ नहीं है। शरीरमें, बाहरी तड़क-भड़कमें या पुण्य-पापमें तेरा कुछ नहीं है। बाह्य वस्तुको अपनी मानना वह बहिरात्मपना है; अंतरकी आत्मवस्तुको अपनी माने वह अंतरात्मा है।

स्वयं अंतरमें गुणरत्नोंसे भरपूर वस्तु है ऐसा उसके ज्ञानमें न आये तबतक अपनी महानता और महिमा नहीं भासती। पहले ऊपर ऊपरसे परन्तु महिमा कर कि जिसके स्पर्शमात्रसे अनंत शक्तियोंका अंश व्यक्त हो जाय ऐसा कोई अद्‌भुत तत्त्व मैं हूँ। बाहर तेरे लिये कुछ भी नहीं है। अरे, देव-शास्त्र-गुरु भी तेरे लिये बाहर हैं। पंचपरमेष्ठी पद अंतरसे प्रगट होता है। जो पर्यायमें प्रगट होता है ऐसी पूर्ण अनन्त शक्तिवान तू स्वयं ही है, बाहर कुछ नहीं है।

तुझे कुछ जाननेकी इच्छा होती हो तो तू अपने आत्माकी साधना कर। लोग तो जाननेकी इच्छासे परदेशमें घूमते हैं, यूरोप और अमेरिका आदि स्थानोंका पर्यटन करते हैं। परन्तु प्रभु तो कहते हैं कि रागादि सर्व भाव म्लेच्छ हैं, वे तेरे नहीं हैं, तुझमें नहीं हैं। वे तेरा देश, क्षेत्र या घर नहीं है। तुझे कुछ भी जाननेकी इच्छा होती हो तो तू अपने आत्माकी साधना कर। तुझे सब जाननेको मिलेगा।

'पूर्णता प्रगट होनेपर लोकालोक उसमें ज्ञेयरूपसे ज्ञात होगा।'

आत्माकी साधनासे पूर्णता प्रगट होनेपर, लोकालोकको प्रत्यक्ष जाननेवाला केवलज्ञान प्रगट होगा। सब जाननेको मिलेगा। वह लोकालोकको जाननेका स्वभाव तुझमें भरा पड़ा है। नियमसारमें कहा है कि—ज्ञान-दर्शनस्वभाव आत्मामें त्रिकाल है। लोकालोकको देखने-जाननेका उसका स्वभाव है। जाननेकी इच्छा हो तो वहाँ स्वभावमें जा, भाई! वहाँ तुझे सम्पूर्ण भगवान आत्मा ज्ञात होगा।

पैसा तो धूल है! सारे दिन रुपये-पैसे और स्त्री-बच्चोंकी ममता करके मरेगा तो जायगा तिर्यंच गतिमें। पुण्य-परिणामोंका तो कोई ठिकाना नहीं होता, धर्म समझनेके लिये शास्त्र-स्वाध्याय या श्रवण-मननका अवकाश नहीं निकालता, एकबार कभी अपनी मानी हुई सामायिक कर लेना अथवा यात्रा कर आना,—बस हो गया धर्म, ऐसा मान लेता है। किन्तु भाई! यात्रा करना या माला फेरना वह धर्म नहीं है, किन्तु शुभराग है, पुण्य है। प्रभु! तुझे जाननेकी इच्छा होती हो तो सब तेरे आत्मामें है, इसलिये आत्माकी साधना कर। स्वयं ज्ञायक अर्थात् जाननेवाला है वह ज्ञातारूपसे ज्ञात होगा। ज्ञाता स्वयं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञानकी पर्याय अंतरसे प्रगट करेगा। पूर्णता प्रगट होनेपर पूर्ण आनन्द प्रगट होगा, साथ ही लोकालोक प्रमेयरूपसे ज्ञानमें आयगा। आत्माकी साधना करनेसे पूर्णता प्रगट होने पर लोकालोकको प्रत्यक्ष जाननेवाला केवलज्ञान प्रगट होगा।

सर्व ही जाननेको मिलेगा। वही लोकालोकको जाननेका स्वभाव तुझमें भरा पड़ा है। नियमसारमें कहा है ज्ञान–दर्शनस्वभाव आत्मामें त्रिकाल है। लोकालोकको जानने-देखनेका तेरा स्वभाव है। जाननेकी इच्छा हो तो स्वभावमें जा न! अहा! तुझे वहाँ पूरा भगवान आत्मा दिखेगा।

बहुत शास्त्र पढ़े तो बहुत ज्ञान हो जाय–ऐसा नहीं है। शास्त्रको जाननेमें भी विकल्प और राग है। वह तो परज्ञेय है। स्वज्ञेयमें—स्वभावमें—आकर ऐसी दशा प्रगट कर कि जिसमें लोकालोक ज्ञात हो जायें। अरेरे! ऐसा वस्तुस्वरूप समझनेका जीवको अवकाश कहाँ है?! ऐसा बहुमूल्य समय व्यर्थ जा रहा है!

प्रश्नः—बाबा बन जायें तो यह सब समझमें आ सकता है?

उत्तरः—भाई! तू बाबा ही है। यह स्त्री-पुत्रादि समस्त परपदार्थ तुझमें हैं ही कहाँ? शरीर और पुण्य-पापसे तो तू रहित ही है, बाबा ही है, निवृत्त ही है। निवृत्तस्वभावी अपने आत्माको जाननेकी भावना–साधना करनेपर पूर्णता होनेसे तुझे सब ज्ञात होगा।

'जगत जगतमें रहे तथापि केवलज्ञानमें सब ज्ञात होता है।'

क्या कहा? कि—लोकालोक केवलज्ञानमें नहीं आते, तथापि केवलज्ञानमें ज्ञात हो जाते हैं। लोकालोक तो लोकालोकमें रहते हैं, वे ज्ञानमें प्रविष्ट नहीं हो जाते; वे ज्ञानमें आये बिना—प्रविष्ट हुए बिना उन सबको जान लेनेका ज्ञानका स्वभाव है। स्व-परको जानना वह ज्ञानका स्वरूप है।

स्व-परको जाननेवाली पर्याय अपनी है; परन्तु वह पर्याय किसके आश्रयसे प्रगटती है?–इस बातमें जगतको आपत्ति है। जिसमें वे ज्ञानादि शक्तियाँ भरी पड़ी हैं उसमेंसे आयँगी या जिसमें नहीं है उसमेंसे? प्रभु! एकबार विचारकर श्रद्धामें तो ले कि–मैं केवलज्ञानादि शक्तियोंसे परिपूर्ण पदार्थ हूँ; उस स्वरूपको साधने पर भले लोकालोक ज्ञानकी पर्यायमें न आयें, तथापि उन्हें सम्पूर्णरूपसे जाने ऐसी मेरी पर्याय होगी ही। ज्ञानकी पर्याय लोकालोकका स्पर्श नहीं करती, और लोकालोक ज्ञानकी पर्यायमें नहीं आते, तथापि उन्हें जाननेवाला तेरा ज्ञान अपनेमें प्रगट होगा ही। केवलज्ञानमें सब ज्ञात होगा।

'जाननहार तत्त्व पूर्णरूप परिणमने पर उसकी जानकारीसे बाहर कुछ नहीं रहता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

और साथ ही आनन्दादि अनेक नवीनताएँ प्रगट होती हैं।'

भगवान आत्मा स्वयं ज्ञातातत्त्व है; शरीर, राग वह कोई ज्ञाता—जाननहार—तत्त्व नहीं हैं। पुण्य-पाप, शरीर, वाणी वह क्या ज्ञाता तत्त्व हैं? वे सब तो अज्ञानतत्त्व, जड़तत्त्व हैं। ज्ञायकतत्त्व ज्ञायकभावसे पूर्णरूप परिणमने पर उसके ज्ञानसे बाहर कुछ नहीं रहता। जिसका आदि-अन्त नहीं है उसका भी उसे परिपूर्ण ज्ञान हो जाता है। 'द्रव्यकी पहली पर्याय कौन-सी? पहला सिद्ध कौन? जीव अनादिसे निगोदमें रहा था वहाँ निगोदका पहला भव कौनसा?—यह सब किसप्रकार जाना जायगा?' अनादिमें 'पहला यह' ऐसा है ही नहीं,—वह बराबर ज्ञात हो जाता है। जाननहार तत्त्व पूर्णरूपसे परिणमने पर उसकी जानकारीसे बाहर, कोई बात नहीं रहती। साथ ही साथ आनन्दादि अनेक नवीनताएँ प्रगट होती हैं। आनन्द, शांति, स्वच्छता, प्रभुता आदि पर्यायोंकी अनेक नवीनताएँ प्रगट होती हैं, अनन्त कालसे नहीं प्रगटी ऐसी नवीनता प्रगटती है। वे प्रगट होती हैं, परन्तु शक्तिरूपसे तो भीतर विद्यमान ही हैं। ऐसे निज आत्माको जानने पर, जाननहार परिपूर्ण परिणमने पर, उसकी पर्यायमें आनन्दादि नवीनताएँ प्रगट होती हैं। वहाँ पूर्णता होनेपर सिद्धपद प्रगट होगा ही।

❀

बेन अभी तक गुप्त थीं। अब ढँका नहीं रहेगा—छिपा नहीं रहेगा। उनके वचन भगवानकी वाणी है, उनके घरका कुछ नहीं है—दिव्यध्वनि है। बेन तो महाविदेहसे आयी हैं। यह वचनामृत लोग पढ़ेंगे, विचार करेंगे, तब ख्याल आयगा कि कैसी पुस्तक है! अकेला मक्खन है!

—पूज्य गुरुदेव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-२२

ता. २७-६-७८

वचनामृत-७१

धन्य वह निर्ग्रन्थ मुनिदशा! मुनिदशा अर्थात् केवलज्ञानकी तलहटी। मुनिको अंतरमें चैतन्यके अनंत गुण-पर्यायोंका परिग्रह होता है; विभाव बहुत छूट गया होता है। बाह्यमें श्रामण्यपर्यायके सहकारी कारणभूतपनेसे देहमात्र परिग्रह होता है। प्रतिबंधरहित सहज दशा होती है; शिष्योंको बोध देनेका अथवा ऐसा कोई भी प्रतिबंध नहीं होता। स्वरूपमें लीनता वृद्धिंगत होती है ॥ ७१ ॥

'धन्य वह निर्ग्रन्थ मुनिदशा! मुनिदशा अर्थात् केवलज्ञानकी तलहटी। मुनिको अंतरमें चैतन्यके अनंत गुण-पर्यायोंका परिग्रह होता है; विभाव बहुत छूट गया होता है।'

अहाहा! मुनिदशा कैसी होती है?–किसे कहते हैं मुनिदशा! मुनि तो छठवें-सातवें गुणस्थानमें झूलते हैं, अतीन्द्रिय आनन्दका प्रचुर स्वसंवेदन वह उनका वेश है, उनके अंतरमें अनंतगुण–पर्यायोंका परिग्रह होता है। जिसे आत्माके ज्ञान, सुख आदि अनंतगुण और सम्यग्दर्शनादि अनंत पर्यायोंका अपने अनुभवमें परिग्रह होता है उसे मुनिदशा कहते हैं। परि=समस्त प्रकारसे, और ग्रह=पकड़ना। जिसने समस्त प्रकारसे अंतरमें अपने ज्ञानादि गुणों तथा निर्मल वीतराग पर्यायोंको पकड़ा है, वैसी सहजदशारूप जिसे परिणमन हुआ है उसे मुनिदशा कहा जाता है। अहा! मुनिदशाका क्या कहना? वह तो केवलज्ञानकी तलहटी है। मुनिको अंतरमें आनन्दादि अनन्त गुणों और उनकी अनन्त शुद्ध निर्मल पर्यायोंका—प्रचुर अतीन्द्रिय स्वसंवेदनका—परिग्रह होता है; विभाव बहुत छूट गया होता है। छठवें गुणस्थानमें संज्वलन कषायका एक अंश जरा होता है; परन्तु बहुत विभाव—अनंतानुबंधी आदि तीन कषायका विभाव—छूट गया होता है। महाव्रतादि अट्ठाईस मूलगुणके विकल्पका मन्दराग–शुभराग–रह गया होता है। ऐसी अंतरंग सहज दशाको निर्ग्रन्थ मुनिदशा कहते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'बाह्यमें श्रामण्यपर्यायके सहकारी कारणभूतपनेसे देहमात्र परिग्रह होता है।'

मुनिको बाह्यमें श्रमणपर्यायके सहकारी कारणरूपसे साधुकी निर्मल वीतरागी पर्यायके सहकारी निमित्तरूपसे, साथ रहनेवाले कारणभूतरूपसे—देहमात्र परिग्रह होता है। श्रीमद् राजचन्द्रने 'अपूर्व अवसर'में कहा है कि:—

सर्व भावथी औदासीन्य-वृत्ति करी,
मात्र देह ते संयमहेतु होय जो;
अन्य कारणे अन्य कशुं कल्पे नहीं,
देहे पण किंचित् मूर्छा नव जोय जो।

मोरपीछी और कमण्डल होते हैं। कभी-कभी—दया तथा शरीर शुचिके विकल्प-कालमें—उस ओर लक्ष जाता है। उन्हें बाह्य परिग्रहमें नहीं गिना गया है; संयमदशामें निमित्तरूपसे वे होते हैं। शरीर तो कर्मोदयसे प्राप्त, जिसे छोड़ा न जा सके ऐसी वस्तु है। अहा! धन्य वह मुनिदशा! जहाँ बाह्यमें संयमदशाके सहकारी निमित्तरूपसे, शरीरमात्र परिग्रह होता है।

प्रश्न :—वह मुनिदशा कैसी होती है?

उत्तर :—मुनिराज निर्मल विज्ञानघनमें निमग्न हैं। अहा! कैसी भाषाका प्रयोग किया है! साधुपना कोई अलग ही है भाई! विज्ञानका घन ऐसा जो निज भगवान आत्मा, उसमें वे अंतर्निमग्न हैं। निमग्नपना वह पर्याय है, परन्तु वह त्रैकालिक एकाकार विज्ञानघन स्वभावमें निमग्न है, डूबी हुई है। अहा! उस दशाके बिना मुक्ति नहीं है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूप-आचरण चतुर्थ गुणस्थानमें होते हैं, परन्तु इतनेसे ही सम्पूर्ण मुक्ति नहीं होती। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक प्रचुर स्वसंवेदनस्वरूप निर्ग्रन्थ चारित्रदशा आये उससे मुक्तिदशा प्राप्त होती है। बाह्यमें वेश धारण कर ले—नग्नता ले ले—और पंच महाव्रतादिका पालन करे वह कोई मुनिदशा नहीं है।

'प्रतिबंधरहित सहज दशा होती है;'

मुनिको तो किसी प्रकारका प्रतिबंध नहीं है। उनको सहज शुद्धात्मस्वरूप आत्माकी अरागी निर्विकारी पर्याय रागादिके किसी भी प्रतिबंधसे सहजतया भिन्न होती है। भले पर्यायमें अस्थिरताका अल्प राग हो परन्तु बाहरके किसी भी प्रतिबंधमें नहीं रुकते। उनको स्वाभाविक आनन्द, स्वाभाविक शान्ति—चारित्र—वीतरागता आदि सहजदशा हो गई होती है। सर्वज्ञके पथपर चलनेवाले, अल्पकालमें सर्वज्ञदशा प्राप्त करनेवाले ऐसे उन मुनियोंकी सहजदशा केवलज्ञानकी तलहटी है। तलहटीमें नीचे खड़े हैं, लेकिन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चढ़नेके लिये। यात्रामें पहाड़ पर चढ़नेके लिये पहले तलहटीमें जाते हैं ना! अहा! वह मुनिपना प्रतिबंधरहित सहजदशा है।

'शिष्योंको बोध देनेका अथवा ऐसा कोई भी प्रतिबंध नहीं होता।'

क्या कहते हैं?—आपको एक घन्टे तक व्याख्यान देना होगा, पाठशालाका इतना ध्यान रखना होगा, आपके नामकी पाठशाला चल रही है, उसके लिये इतना दान दिलवाना होगा—ऐसा कोई प्रतिबंध मुनिको नहीं होता।

प्रश्न :—भगवानके दर्शन करने जाते हैं?

उत्तर :—हाँ, जाते हैं; परन्तु जाना ही चाहिये ऐसा प्रतिबंध नहीं है। कहीं जंगलमें, अतीन्द्रिय आनन्दमें रमते हुए, एकाकी निवास करते हों तो नहीं भी जाते। श्रावकको देव-पूजादि षट्कर्म होते हैं, क्योंकि वे अभी गृहस्थाश्रममें हैं। मुनि तो कहीं वनमें विचरते होते हैं, उन्हें प्रतिदिन भगवानके दर्शन करना ही—ऐसा प्रतिबंध नहीं होता। वे तो सदा भगवान आत्माके दर्शनमें—अतीन्द्रिय आनन्दके वेदनमें—ही लीन हैं।

शिष्योंको पढ़ानेका, समाजको उपदेश देनेका अथवा दूसरा ऐसा कोई भी प्रतिबंध मुनिको नहीं होता। अहा! मुनिदशा किसे कहा जाता है? वह तो विज्ञानघन स्वभावमें अंतर्निमग्न अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप अद्‌भुत अनगार दशा है। उन्हें पंच महाव्रतादिके विकल्प होते हैं, संयमके हेतु शरीरमात्र परिग्रह होता है, बाकी तो बहुत-सा विभाव छूट गया है, बाह्यमें भी वस्त्र–पात्र रहित निर्ग्रन्थदशा है। ऐसे मुनिराजको कोई भी कार्यभार लेनेका बंधन नहीं होता।

प्रवचनसारकी चरणानुयोगसूचक चूलिकामें कहा है कि मुनि कर्मप्रक्रमका अर्थात् किसी भी कार्यकी व्यवस्थाका बोझ अपने सिर लेते ही नहीं। जहाँ वीतरागता प्रगट हुई है, अतीन्द्रिय आनन्दकी मौज–मस्तीमें लीन हैं वहाँ उसमेंसे बाहर निकलना कैसे अच्छा लगेगा?

अहाहा! जिसे एकाकी होकर सादि-अनन्त सिद्धरूपसे रहना है, उसकी साधनदशा भी उसी प्रकारकी होती है। वहाँ द्विपना—दूसरोंको प्रतिबोध देना आदि प्रतिबंध नहीं होते। शिष्य बनाये इसलिये उन्हें प्रतिदिन घन्टे–दो घन्टे पढ़ना ही होगा, व्याख्यान देना ही होगा—ऐसा बंधन नहीं है। पंचपरमेष्ठीमें ऐसी होती है साधुकी दशा। उसका जिसे ज्ञान नहीं है और जिस-तिसको साधु मान बैठे, उसने पंच परमेष्ठीको नहीं पहिचाना, इसलिये उसके तो व्यवहारश्रद्धाका भी ठिकाना नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'स्वरूपमें लीनता वृद्धिंगत होती है।'

मुनिको अतीन्द्रिय आनन्दमें विशेष लीनता होती ही जाती है। श्रीमद्में समय-समय अनंतगुने वृद्धिंगत संयमपरिणामकी बात आती है। भगवान आत्माका जिसे अभी पूर्ण आश्रय नहीं हुआ है, पूर्ण स्वभावका आश्रय लेकर मध्यम दशा वर्तती है, उसे संयमके परिणाम बढ़ते ही जाते हैं। पूर्ण आश्रय ले तो केवलज्ञान हो जाय। यदि किंचित् भी आश्रय न लिया हो तो वह सम्यग्दृष्टि ही नहीं है। मध्यम आश्रयमें—मध्यम वीतरागदशामें—वर्तता है उसे स्वरूपमें लीनता बढ़ती ही जाती है। मुनिपना ऐसा होता है।

❃

वचनामृत-७२

अखण्ड द्रव्यको ग्रहण करके प्रमत्त-अप्रमत्त स्थितिमें झूले वह मुनिदशा। मुनिराज स्वरूपमें निरंतर जागृत हैं। मुनिराज जहाँ जागते हैं वहाँ जगत सोता है, जगत जहाँ जागता है वहाँ मुनिराज सोते हैं। मुनिराज जो निश्चयनयाश्रित, मोक्षकी प्राप्ति करें ॥७२॥

'अखण्ड द्रव्यको ग्रहण करके प्रमत्त-अप्रमत्त स्थितिमें झूले वह मुनिदशा।'

टांकनीसे पत्थरमें उत्कीर्ण चित्रकी भाँति, जिसका त्रिकाल टंकोत्कीर्ण पूर्णस्वरूप सदा शुद्ध है ऐसे चैतन्यमूर्ति भगवान आत्माका—शाश्वत एकरूप पदार्थका—आश्रय करके, स्वरूपमें विशेष स्थिरता होनेपर, प्रमत्त-अप्रमत्त स्थितिमें झूले वह मुनिदशा है। 'धवला'में आयाहै कि—केवलज्ञान प्राप्त करनेमें अन्तिम अंतर्मुहूर्त काल रहे तब छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान हजारों बार आता-जाता है। अखण्ड द्रव्यका आश्रय ग्रहण करके क्षणमें प्रमत्त और क्षणमें अप्रमत्त—इस प्रकार अंतर्मुहूर्तमें हजारों बार, झूलेकी भाँति झूलते हैं। उसे मुनिदशा कहते हैं।

'मुनिराज स्वरूपमें निरन्तर जागृत हैं।'

अनादिसे रागकी एकतामें जो सोते पड़े थे वे अब, रागकी भिन्नता करके, भीतर ज्ञान और आनन्दमें जागकर, जागृत जीते हैं। जागृत जीव—ज्ञायक पर्यायमें जागता खड़ा है। समयसारकी पाँचवीं गाथाकी टीकामें तो यहाँ तक लिया है कि—जिसप्रकार अरिहंतदेव निर्मल विज्ञानघनमें निमग्न हैं उसी प्रकार हमारे गुरु–मुनि भी विज्ञानघनमें निमग्न हैं। देव और गुरु दोनों विज्ञानघनमें निमग्न हैं इसलिये एक अपेक्षासे दोनों समान हैं। अहा! ऐसी होती है मुनिदशा! उसमें कायरोंका काम नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मुनिको आत्माके आनन्दका वीररस जागा है इसलिये वे निरंतर जागृत हैं। भले छठवें गुणस्थानमें आयें तथापि अंतरमें तो निरंतर जागृत ही हैं। ज्ञाता-द्रष्टापना और शुद्ध परिणति छठवेंमें भी वर्तती है। अहा! ऐसी है मुनिदशाकी व्याख्या!

'मुनिराज जहाँ जागते हैं वहाँ जगत सोता है, जगत जहाँ जागता है वहाँ मुनिराज सोते हैं।'

मुनि अतीन्द्रिय आनन्दमें जागते हैं वहाँ जगत सोता है; अतीन्द्रिय ज्ञानकी जागृतिकी जगतको खबर नहीं है। 'मोक्षपाहुड़'में आता है ना!—

योगी सूता व्यवहारमां ते जागता निजकार्यमां;
जे जागता व्यवहारमां ते सुप्त आतमकार्यमां।

मुनि जहाँ जागते हैं वहाँ गृहस्थ सोते हैं और गृहस्थ जहाँ जागते हैं वहाँ मुनि सोते हैं। गृहस्थ रागमें जागते हैं वहाँ मुनि सोते हैं वीतराग हो गये हैं। मुनिराजकी स्वरूपमें जागृति है। भले छठवें गुणस्थानमें आयें, महाव्रतादिके प्रमादजनित विकल्प आयें, तथापि त्रैकालिक ज्ञान-दर्शन स्वभावका अवलम्बन लेकर पर्यायमें ज्ञाता-द्रष्टापनेकी जागृति उग्रतासे प्रगट हुई है; इसलिये वे, जागतीज्योति चैतन्यमें ही बैठे हैं; नग्नदशामें या पंचमहाव्रतके विकल्पमें वे नहीं बैठे हैं। नग्नदशा तो अजीव शरीरकी अवस्था है और पंचमहाव्रत आस्रव है। जागती-ज्योति अजीव एवं आस्रवमें नहीं रही है। अहा! मुनिराजका ऐसा स्वरूप है।

वस्त्र—पात्रकी गठरियाँ रखें और उसमें मुनिपना मानें—मनायें वह तो गजबकी बात है! स्त्रीको मुनिपना और केवलज्ञानका होना मानें, स्त्रीको तीर्थंकर मानें, मल्लिनाथ तीर्थंकर स्त्री थे ऐसा कहें—वह सब मिथ्यात्व और कोरी गप्प है। अरे भाई! ऐसा नहीं होता। जिनके दास चक्रवर्ती, बलदेव—वासुदेव तथा इन्द्र भी स्त्री नहीं होते, ऐसे उन तीन लोकके अधिपतियोंके स्वामी तीर्थंकरको स्त्री मनायें—वह तो प्रभु! बड़ा फेरफार कर डाला!

यहाँ तो, दिगम्बर सम्प्रदायमें जन्म लिया है उन्हें भी खबर नहीं है कि सच्ची मुनिदशा कैसी होती है। मुनिराज जागते हैं वहाँ जगत सोता है। जागृतदशा क्या? और सुप्तदशा क्या? उसकी जगतको खबर नहीं है। अंतरमें चैतन्यकी जागृतदशाकी—अर्थात् ज्ञान, दर्शन एवं आनंदरूपदशाकी—जगतको खबर नहीं है।

जगत जहाँ जागता है वहाँ मुनिराज सोते हैं। जगतके प्राणी तो पुण्य और पापके रागमें जागते ही पड़े हैं; स्त्री—पुत्र—परिवार वह सब पर हैं उन्हें अपना मानते हैं। जो अपना नहीं है उसे अपना मानकर जगतके जीव राग और विकारमें जागते हैं, निर्विकारमें अजागृत हैं—सोते हैं। लोग परमें और रागमें जागते हैं वहाँ मुनिराज सो गये हैं, उस ओरका राग छूट गया है। उस ओरका मुनिको लक्ष ही नहीं है, भीतर ज्ञान और आनन्दकी जागृतिमें लगे हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यहाँ तो मुनिकी बात लेना है ना? मुनिको प्रचुर स्वसंवेदन होता है। प्रचुर विशेषणका प्रयोग करनेमें हेतु है। सम्यग्दर्शन होनेपर वेदन सम्यक् आता है, परन्तु प्रचुर नहीं आता। मुनिदशामें तीन कषायका अभाव होनेसे, प्रचुर स्वसंवेदन होता है। आत्माके सिवा जो रागादिके विकल्पमें सावधानी करके पड़े हैं वे स्वरूपसे सो गये हैं—विमुख हो गये हैं; अज्ञान-अंधकारको जागृत दशा मानकर पड़े हैं। संसारी जीव पुण्य-पापके भाव और उसके फलरूप कुटुम्ब-परिवारमें सावधान होकर जागते हैं, उसमें मुनिराज सो गये हैं, उनके प्रति सावधानी छूट गई है और अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्ददशामें लीन हो गये हैं। 'समाधितंत्र'में कहा है ना!—

सूतो जे व्यवहारमां ते जागे निजमांय;
जागृत जे व्यवहारमां, सुषुप्त आत्मामांय।

मुनिराज व्यवहारमें सो गये हैं और निजकार्यमें सदा जागृत हैं। जगत व्यवहारमें—परमें और विभावमें—जागृत है और निज आत्माके कार्यमें सोता है, अज्ञान-अंधकारमें पड़ा है।

'मुनिराज जो निश्चयनयाश्रित, मोक्षकी प्राप्ति करें।'

बेनने समयसारकी २७१वीं गाथाका आधार दिया है। जिन्हें व्यवहारका आश्रय नहीं है वे निश्चयमें जागृत हैं। स्वरूपके आश्रयसे जो जागृत दशा हुई उससे मुनिराज निर्वाणकी प्राप्ति करते हैं; व्यवहारके आश्रयसे नहीं।

अन्य मतमें भी आता है कि—जगत जहाँ सोता है वहाँ धर्मी जागते हैं और जहाँ धर्मी जागते हैं वहाँ जगत सोता है। परन्तु यहाँ यह बात अलौकिक है। मुनिराज निजघरमें जागते हैं और परघरसे सो गये हैं; लोक परघरमें जागता है और निजघरसे सो गया है। ज्ञानीकी सावधानी अंतरमें है, परमें सावधानी छूट गई है।

'मुनिराज जो निश्चयनयाश्रित.....'का अर्थ ऐसा है कि—निश्चय जो त्रैकालिक द्रव्य है उसके आश्रयसे जो निर्मल परिणति प्रगट हो उससे निर्वाणकी प्राप्ति होती है। निश्चय तो त्रैकालिक द्रव्य है, उसके आश्रयसे वीतराग परिणति हुई वह भी निश्चय है। यह वीतराग परिणति वह पर्यायका निश्चय है। यहाँ निश्चयद्रव्य निर्मल पर्यायका आश्रय है, पर्यायने आश्रय किया है द्रव्यका; उस आश्रय लेनेवाली पर्यायको भी निश्चय कहा है और उस निश्चयके आश्रयसे—निश्चयरूप परिणमनेसे—मुनि मुक्तिको प्राप्त करते हैं। व्रतादिके विकल्परूप व्यवहार है वह बात यहाँ नहीं लेना है। 'परमार्थवचनिका'में द्रव्य सो निश्चय और मोक्षमार्गकी पर्याय सो व्यवहार—ऐसा कहा है; वह यहाँ नहीं लेना है। यहाँ तो द्रव्यके आश्रयसे जो परिणति प्रगट हुई वह शुद्ध परिणति निश्चय है। मोक्ष और मोक्षका मार्ग पर्याय है। मोक्षमार्गकी पर्यायके आश्रयसे वास्तवमें मोक्ष नहीं होता, द्रव्यके आश्रयसे मोक्ष होता है; परन्तु द्रव्यके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आश्रयसे प्रगट हुआ मोक्षमार्गका परिणमन द्रव्यकी जातिका है, रागकी जातिका नहीं है, व्यवहारकी जातिका नहीं है—ऐसा बतलानेके लिये मोक्षमार्गरूप पर्यायको यहाँ निश्चय कहा है।

❃

वचनामृत-७३

द्रव्य तो निवृत्त ही है। उसका दृढ़तासे अवलम्बन लेकर भविष्यके विभावसे भी निवृत्त होओ। मुक्ति तो जिनके हाथमें आ गई है ऐसे मुनियोंको भेदज्ञानकी तीक्ष्णतासे प्रत्याख्यान होता है ।। ७३ ।।

'द्रव्य तो निवृत्त ही है।'

आत्मवस्तु तो संसारके प्रत्येक भावसे रहित, समस्त विकल्पसे रहित, निवृत्त ही है। परके ग्रहणके अभावस्वरूप ही उसका स्वभाव है। शरीर, वाणी आदि परके ग्रहण-स्वरूप नहीं, परन्तु त्यागस्वरूप ही उसका गुण है। वस्तु त्याग-उपादानशून्यत्व शक्ति सहित है, परके ग्रहणसे रहित निवृत्त स्वरूप ही है।

प्रश्न :—पंचमहाव्रत धारण करूँ, हिंसादिका त्याग करूँ—ऐसा शुभराग आता है ना ?

उत्तर :—आत्मा स्वभावसे समस्त विकल्परहित निवृत्त तत्त्व है। परका त्याग करूँ—ऐसा विकल्प भी उसके स्वभावमें नहीं है।

'उसका दृढ़तासे अवलम्बन लेकर भविष्यके विभावसे भी निवृत्त होओ।'

प्रत्याख्यानकी बात लेना है ना ? शुभराग बीचमें आता है, पश्चात् उसका अभाव करके विशेष स्थिरतारूप चारित्र होता है। साथ रहे हुए महाव्रतादिके शुभभावको शुद्धिका कारण भी कहा जाता है; परन्तु सचमुच ऐसा नहीं है। पूर्वकालमें शुभभाव था उसके कारण चारित्र हुआ है ऐसा नहीं है। पहले एक इतना निर्णय कर कि प्रत्येक द्रव्य स्वयं अपनी पर्याय स्वतंत्ररूपसे करता है; अपने कार्यके लिये उसे किसी संयोगकी या पूर्वक्षणकी अपेक्षा नहीं है। यह बात लक्षमें रखकर शास्त्रका अर्थ करेगा तो बात बैठ जायगी। महाव्रत लिये और उनकी सहायतासे चारित्रकी स्थिरता हुई है ऐसा नहीं है। ऐसी बातें हैं!

ज्ञायक चैतन्यज्योति निर्मल विज्ञानघन ऐसा आत्मद्रव्य तो सदा निवृत्त ही है। राग हटे तो निवृत्त हो ऐसा नहीं है। रागका हटना वह तो पर्यायमें है। वस्तुस्वभाव तो निवृत्त ही है। उसका दृढ़तासे अवलम्बन लेकर, आश्रय लेकर, भविष्यके विभावसे भी निवृत्त होओ। 'दृढ़तासे' अर्थात् भविष्यका विकल्प–विभाव उत्पन्न न हो इस प्रकार।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'मुक्ति तो जिनके हाथमें आ गई है ऐसे मुनियोंको भेदज्ञानकी तीक्ष्णतासे प्रत्याख्यान होता है।

श्री समयसारमें कहा है ना?—

सौ भावने पर जाणीने पचखाण भावोनुं करे,
तेथी नियमथी जाणवुं के ज्ञान प्रत्याख्यान छे. ३४.

मुनियोंको भेदज्ञानकी तीक्ष्णतासे प्रत्याख्यान होता है। तीक्ष्ण ज्ञान सो प्रत्याख्यान। राग छोड़ूँ तो प्रत्याख्यान होगा ऐसा तू मानता है, परन्तु स्वरूपमें राग हुआ ही कब है कि वह छोड़ना है? राग तो आत्मासे निवृत्तस्वरूप ही है। ऐसे त्रैकालिक स्वरूपके अवलम्बनसे भविष्यका भी विकल्प न उठो!—उसका आश्रय लेकर भविष्यके विभावसे भी निवृत्त होओ!....निवृत्त होओ! आत्मा मुक्तस्वरूप है वह जिनके अनुभवमें आ गया है, मुक्तिकी पर्याय जिनके हाथमें हैं, मुक्ति तो जिनके हाथमें आ गई है ऐसे मुनियोंको भेदज्ञानकी तीक्ष्णतासे प्रत्याख्यान होता है।

मुनियोंको मोक्षमार्ग प्रगट हुआ है। मोक्षमार्गकी पर्यायको—श्रमणको—प्रवचनसारमें मोक्षतत्त्व कहा है ना? और मुनि हुआ हो तथापि रागको अपनेमें एकरूप माने उसे संसारतत्त्व कहा है। यहाँ तो मुक्ति झट प्राप्त करनेके लिये अन्तरमें सहज परिणमनरूप दशा हो गई है। मुक्ति जिनके हाथमें अर्थात् जिनके भावमें आ गई है, उन मुनियोंको भेदज्ञानकी तीक्ष्ण दशा द्वारा प्रत्याख्यान होता है। सम्यक्त्वमें भेदज्ञान तो था, पश्चात् भेदके अभ्याससे चारित्र प्राप्त करते हैं। नियमसार शास्त्रमें आता है ना?—

जीव-कर्म केरा भेदनो अभ्यास जे नित्ये करे,
ते संयमी पचखाण-धारणमां अवश्य समर्थ छे. १०६.

भेदज्ञानके अभ्याससे अंतरमें स्थिरता करते-करते, रागसे भिन्न होते-होते संयमी जीवको–मुनिको प्रत्याख्यान अर्थात् चारित्र होता है। अहा! मुनियोंको भेदज्ञानकी तीक्ष्णतासे प्रत्याख्यान–चारित्र होता है। बाह्यमें हाथ जोड़कर प्रत्याख्यान ले उसकी यह बात नहीं है। आजकल तो द्रव्यके स्वरूपकी भी खबर न हो, उसका अवलम्बन या आश्रय क्या, उसकी भी खबर न हो और धारण कर लेते हैं सातवीं प्रतिमा। ग्यारहवीं प्रतिमाका नाम धारण कर लेते हैं परन्तु वस्तुके स्वरूपकी खबर कहाँ है? यहाँ तो कहते हैं कि भेदज्ञानकी तीक्ष्णतासे प्रत्याख्यान होता है; बाहरसे त्याग किया, प्रतिमा ली, इसलिये प्रत्याख्यान हो गया—ऐसा नहीं है।

❃

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत-७४

यदि तेरी गति विभावमें जाती है तो उसे शीघ्रतासे चैतन्यमें लगा। स्वभावमें आनेसे सुख और गुणोंकी वृद्धि होगी; विभावमें जानेसे दुःख और गुणोंकी हानि होगी। इसलिये शीघ्रतासे स्वरूपमें गति कर॥७४॥

'यदि तेरी गति विभावमें जाती है तो उसे शीघ्रतासे चैतन्यमें लगा।'

परमानन्दस्वरूप शुद्ध ज्ञायक प्रभुमेंसे यदि तेरी परिणति विभावमें जाती है तो उसे शीघ्रतासे अर्थात् उग्र पुरुषार्थ करके चैतन्यमें लगा। फिर करेंगे, फिर करेंगे—ऐसा नहीं। 'फिर करेंगे'में फिर रह जायगा। प्रवचनसारमें आया है ना!—'ज्ञानकी कला द्वारा इस एक पूर्ण शाश्वत स्वतत्त्वको प्राप्त करके आज परमानन्द परिणामरूप परिणमो।' 'उस चैतन्यको ही चैतन्य आज प्रबलरूपसे–उग्ररूपसे अनुभवो।'

तथा, समयसारकी पाँचवीं गाथाकी टीकामें कहा है कि—विज्ञानघनमें अंतर्निमग्न हमारे गुरुने अनुग्रह करके—कृपा करके जो शुद्ध आत्मा बतलाया है उसे हम कहते हैं; उसे अनुभव-प्रत्यक्षसे प्रमाण करना। एकत्वविभक्तस्वरूप शुद्ध आत्माका उपदेश देनेका हमने उद्यम किया है उसे तू प्रमाण करना, स्वीकार करना। व्यवहारश्रद्धा करना ऐसा नहीं कहा। हम जो कहते हैं उसे, परका लक्ष छोड़कर, अपने आत्मामें लक्ष देकर अनुभवसे प्रमाण करना। अहा! दिगम्बर संतोंकी वाणी तो देखो! यह बात अन्यत्र कहाँ मिलेगी? अहा! दिगम्बर संत कि जिन्होंने अपने ज्ञायक परमेश्वरसे प्रत्यक्ष भेंट की है, उनकी अंतरमें ज्ञायक परमेश्वरको प्राप्त करनेकी सीधी बात! स्वर्गमें जाएँगे, फिर भगवानके पास जाएँगे, वहाँ सम्यक्त्व प्राप्त करेंगे और फिर चारित्र प्राप्त करेंगे—ऐसा नहीं कहा, यह वाणी सन्तोंकी नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि तू अपना पुरुषार्थ 'है' उसमें—अपने चैतन्यतत्त्वमें—उग्रतासे लगा।

'स्वभावमें आनेसे सुख और गुणोंकी वृद्धि होगी; विभावमें जानेसे दुःख और गुणोंकी हानि होगी। इसलिये शीघ्रतासे स्वरूपमें गति कर।'

भगवान आत्मा स्वमें आनेसे सुखमें–आनन्दमें तथा अन्य जो गुण हैं उनकी सर्व पर्यायोंमें वृद्धि होगी। दो बातें ली हैं : (१) चैतन्यमें पुरुषार्थ लगा इसलिये मुख्य वस्तु जो आनन्द, उसकी तथा अन्य गुणोंकी परिणतिमें शुद्धि तथा वृद्धि होगी और (२) विभावमें जानेसे दुःख और गुणोंकी हानि होगी। विभावमें जानेसे आकुलता और गुणोंकी परिणतिमें हानि होगी; स्वभावमें जानेसे निराकुल सुख तथा अन्य गुणोंकी परिणतिमें लाभ होगा। इसलिये शीघ्रतासे स्वभावकी ओरके पुरुषार्थमें उग्रता लाकर स्वरूपमें गति कर। ❋

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-२३

ता. २८-६-७८

वचनामृत-७५

जिन्होंने चैतन्यधामको पहिचान लिया है वे स्वरूपमें ऐसे सो गये कि बाहर आना अच्छा ही नहीं लगता। जैसे अपने महलमें सुखसे रहनेवाले चक्रवर्ती राजाको बाहर निकलना सुहाता ही नहीं, वैसे ही जो चैतन्यमहलमें विराज गये हैं उन्हें बाहर आना कठिन लगता है, भाररूप लगता है; आँखसे रेत उठवाने जैसा दुष्कर लगता है। जो स्वरूपमें ही आसक्त हुआ उसे बाहरकी आसक्ति टूट गई है॥७५॥

'जिन्होंने चैतन्यधामको पहिचान लिया है वे स्वरूपमें ऐसे सो गये कि बाहर आना अच्छा ही नहीं लगता।'

क्या कहते हैं? कि—सम्यग्दृष्टि जीवने अतीन्द्रिय आनंदके धामको—ध्रुव जागृत चैतन्यधामस्वरूप द्रव्यस्वभावको—अंतरमें पहिचान लिया है। 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम';—ऐसे ध्रुव आत्माका जिन्हें ज्ञान हुआ है वे स्वरूपमें ऐसे सो गये, अंतर आनन्दके नाथमें दृष्टि ऐसी जम गई, कि उन्हें बाहर आना अच्छा नहीं लगता। उन्दें देव-गुरुकी ओरके, वाणी-श्रवणके पुण्यभावमें आना वह भी भाररूप लगता है।

टंकोत्कीर्ण मूर्तिका उदाहरण है—पत्थरमें, टांकनी द्वारा गढ़ी जाने पर मूर्ति होनेकी शक्ति है ऐसा जानकर वैसा मूर्तिरूप देनेके लिये वह अतिरिक्त भाग निकाल देते हैं, पश्चात् मूर्तिका जो असली रूप है वह रह जाता है; उसीप्रकार यह भगवान आत्मा ध्रुवस्वरूप चैतन्यमूर्ति है। मूर्ति अर्थात् रूपी मूर्ति नहीं, परन्तु चैतन्यस्वरूप। वह तो अंतरमें शक्तिरूपसे जो है सो है ही। धर्मी जीवने जान लिया है कि यह आत्मा चैतन्यस्वरूप आनंदकी मूर्ति है, फिर स्वयं स्वरूपमें स्थिर होकर जो बाहरकी वस्तु थी उसका—शुभाशुभ विभावका—अभाव करके जो स्वरूप था वैसा रखा। अहाहा! कठिन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बात है; वीतरागमार्ग अति सूक्ष्म! लोगोंने तो सब (धर्म) बाह्यमें–क्रियाकाण्ड और प्रवृत्तिमें मनवा दिया है।

शुभाशुभ रागके विकल्पसे रहित, अरे! एक समयकी पर्यायसे रहित, अखण्ड चैतन्यवस्तुको जिन्होंने जान लिया, उस ध्रुव द्रव्यस्वभावकी अंतरमें सम्यग्दर्शनमें प्रतीति की, और 'यही मैं हूँ'—इसप्रकार अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूपकी दृष्टि एवं ज्ञान द्वारा उसीमें रहनेकी–स्थिर होनेकी जिनको परिणति हुई, वे स्वरूपमें ऐसे सो गये हैं कि उसमेंसे बाहर आना अच्छा लगता ही नहीं! 'समयसार नाटक'के मोक्ष-अधिकारमें कहा है ना!—

ता कारन जगपंथ इत, उत सिवमारग जोर।
परमादी जगकौं धुकै, अपरमादि सिव ओर॥ ४०॥

निर्मल विज्ञानघनस्वरूप आनन्दधाममें जो अंतर्निमग्न हुए हैं ऐसे मुनिराजको छठवें-सातवें गुणस्थानमें पंचमहाव्रत आदिके विकल्प उठते हैं वह प्रमाद है; उतना राग भी जगपंथ है–संसारमार्ग है; और अंतरमें आनन्दस्वरूपमें स्थिर हो जाना, रागरहित निर्विकल्परूपसे भीतर रमण करना, वह शिवका–मोक्षका मार्ग है और वही शिव–मोक्ष है। जिन्हें पूर्णस्वरूपके सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् रमणता द्वारा अंतरमें आनन्दका स्वाद आया है ऐसे मुनिराजको बाहर आना रुचता ही नहीं।

'जैसे अपने महलमें सुखसे रहनेवाले चक्रवर्ती राजाको बाहर निकलना सुहाता ही नहीं, वैसे ही जो चैतन्यमहलमें विराज गये हैं उन्हें बाहर आना कठिन लगता है, भाररूप लगता है; आँखसे रेत उठवाने जैसा दुष्कर लगता है।'

चक्रवर्ती राजाको देवों द्वारा निर्मित, सुख-सुविधाओंसे भरपूर पाँच ऊँचे अलौकिक महल होते हैं, उन्हें उन सुविधाओंके सुखसे बाहर निकलना अच्छा नहीं लगता। उसीप्रकार जो आनन्दस्वरूप ऐसे चैतन्यमहलमें, अंतर्दृष्टि करके विराज गये हैं ऐसे सम्यग्दृष्टि ज्ञानीको स्वरूपके अनुभवमेंसे बाहर आना नहीं रुचता। अशुभ राग तो नहीं रुचता–वह तो पाप है, दुःख है–किन्तु दया, दान अथवा व्रतादिका शुभराग भी दुःख और बंधनका कारण होनेसे नहीं रुचता। अहा! ऐसी बात है!

जिसे अंतरमें ज्ञानानन्दमूर्ति चैतन्यप्रभुकी पहिचान हुई उसे उस आनन्दकी खानमेंसे बाहर आना अच्छा नहीं लगता, चैतन्यके महलमें जो विराज गये हैं उन्हें बाहर आना दुष्कर लगता है। अंतरमें जिसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानमें ध्रुवचैतन्यधाम भगवान आत्माकी प्रतीति हुई है उसे उस अतीन्द्रिय आनन्दकी खानमेंसे बाहर आना दुष्कर लगता है। धर्मीको अशुभभावमें तो दुःख लगता है, किन्तु शुभभावमें भी दुःख लगता है। दो सेर घी पिलाया हुआ बादामका मैसूबपाक मिले उसे अन्य साधारण मिठाइयाँ अच्छी नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

लगतीं; उसीप्रकार जिसने अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दका मैसूबपाक चख लिया हो उसे अन्य बाहरी साधारण स्वाद अच्छे नहीं लगते। अहा! बड़ी बात है भाई! यह तो जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ परमात्माकी वाणी है और वस्तुस्वरूप भी ऐसा ही है।

चैतन्यधामका—ज्ञान, आनन्दादि अनंत गुणकी खानका—स्वरूप जिसने देख लिया उसे उस धाममेंसे बाहर निकलना कठिन लगता है; वह बाहर आजाय, उसे शास्त्र-श्रवण, पूजा और भक्ति आदिके विकल्प आयें, परन्तु अंतर-चैतन्यधाममेंसे जो अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद आया है उसमेंसे बाहर निकलना कठिन लगता है। जिसके चक्रवर्तीका राज्य हो, छियानवे हजार रानियाँ हों, सोलह हजार देव सेवा करते हों, बहत्तर हजार नगर, अड़तालीस हजार पाटन और छियानवे करोड़ ग्राम हों ऐसे चक्रवर्ती राजा अतीन्द्रिय आनन्दका उग्र स्वाद लेने वनमें चले जाते हैं, यह सब वैभव एक क्षणमें कफकी तरह थूक देते हैं। अहा! मेरा प्रभु जो आनन्दस्वरूप है वहाँ मुझे निवास करना है, वह मेरा विश्रामस्थल है, मेरा धाम है। अहा! समझमें आया कुछ...? यह तो सरल गुजराती भाषा है!...अंतरके आनन्दधाम चैतन्यमहलमें विराज रहे हैं उन्हें बाहर आना दुष्कर लगता है—भाररूप मालूम होता है।

देखो तो सही! मुनिको भी व्रतादिकी वृत्ति उठती है; अपनी भूमिकानुसार व्यवहारके विकल्प होते हैं, परन्तु जिसमें डुबकी लगानेसे शान्ति एवं आनन्दका अनुभव हो ऐसा जो आनन्दका नाथ, अनाकुल शान्तिका सागर भगवान आत्मा उसमेंसे बाहर निकलना उन्हें भाररूप लगता है, दुःखरूप लगता है। जिसने चैतन्यता ही धारण कर रखी है, अतीन्द्रिय आनन्दको ही ध्रुवरूपसे धारण कर रखा है, सर्वोत्कृष्ट चैतन्य धातुमय प्रभुका जहाँ ज्ञान हुआ, उसका मूल्यांकन किया उसे बाह्यरुचि उड़ जाती है, बाहर आना बोझरूप लगता है। जहाँ अंतरमें आनन्दधाम ज्ञायकप्रभुकी प्रतीति हुई वहाँ शुभरागरूप व्यवहार भी, मानों किसी हलकीसी वस्तु पर लोहेके बड़े-बड़े वजन रख दिये हों इसप्रकार, भाररूप लगता है। जबतक सम्पूर्ण वीतराग नहीं हुआ तबतक व्यवहार आता है परन्तु वह भार लगता है।

अहा! दिगम्बर जैनधर्म—वीतराग जैनदर्शन—के सिवा कहीं अन्यत्र यह वस्तु है ही नहीं। अतीन्द्रिय आनन्दके झूलेमें झूलते-झूलते विकल्प आये और शास्त्रोंकी रचना हो गई। शास्त्र-रचनाका वह विकल्प भी उन्हें बोझ लगा।

गृहस्थाश्रममें सम्यक्त्वीको अशुभ भाव भी आता है; शुभभाव तो मुनिको भी अट्ठाईस मूलगुण, पंचमहाव्रत तथा अचेलपने—नग्नपनेके आते हैं; परन्तु भीतर सम्यग्दर्शनमें स्वरूपकी सम्पदा देखी है—अनुभव किया है इसलिये उन्हें उस रागकी पामरतामें आना कठिन लगता है, बोझ लगता है, दुःख लगता है। अहा! ऐसा मार्ग है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बाहर आना वह आँखके पास रेत उठवाने जैसा दुष्कर लगता है। प्रत्यक्ष पूर्णानन्दसे भरपूर, अनन्त गुणोंका भण्डार भगवान है। जिसे उसकी पहिचानपूर्वक रुचि हुई, उसकी निर्मल दृष्टि हुई, उसे उस आनन्दधाममेंसे बाहर आना, आँखसे रेत उठवाने जैसा दुष्कर लगता है। समयसारमें आता है ना!—

ज्यम नेत्र तेम ज ज्ञान नथी कारक, नथी वेदक अरे!
जाणे ज कर्मोदय निरजरा, बंध तेम ज मोक्षने।३२०।

अहा! ज्ञान बाहरका क्या करेगा? वह तो दृष्टिकी भाँति मात्र जानता है—उदयको जानता है, निर्जराको जानता है, बंधको जानता है और मोक्षको जानता है। अहाहा! ज्ञाताको अतीन्द्रिय आनन्दके स्वादमेंसे बाहर निकलना वह आँखसे रेत उठवाने जैसा दुष्कर लगता है।

'जो स्वरूपमें आसक्त हुआ उसे बाहरकी आसक्ति टूट गई है।'

अनाकुल नित्यानन्दका नाथ जो सहजात्मस्वरूप निज ज्ञायक भगवान, उसमें जो आसक्त हुआ उसे राग और पुण्यके परिणामकी आसक्तिका रस टूट गया। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दादि अनंत गुणोंका महासागर है। असंख्य योजनके विस्तारवाले अन्तिम स्वयंभूरमण समुद्रके तलमें रेत नहीं है, अकेले रत्न भरे हैं, उसीप्रकार चैतन्य स्वयंभूमें पुण्य-पापके विकार नहीं हैं, परन्तु अतीन्द्रिय ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता आदि अनंत रत्न भरे हैं। अहा! चैतन्यके अनन्त रत्नोंसे भरपूर स्वयंभू ऐसे भगवान आत्माका स्वरूप वह क्या वस्तु है? यह जीवने कभी सुना नहीं है, देखा नहीं है। अनन्त गुणभण्डार ऐसे भगवान आत्मासे रागका कार्य करवाना वह आँखसे रेत उठवाने जैसा दुष्कर है। जो स्वरूपमें ही आसक्त हुआ उसे बाहरकी आसक्ति छूट गई है।

पूर्ण वीतराग न हुआ हो तबतक विकल्प आता है, परन्तु उसका आदर नहीं है; आदर तो शुद्ध आत्माका है—उपादेय तो अंतरमें शुद्ध चैतन्यप्रभु है; राग आये वह हेय है, बोझरूप लगता है। जो बोझरूप लगे—हेय लगे—उससे निश्चयकी प्राप्ति कैसे होगी?

प्रश्नः—व्यवहार करते-करते निश्चय प्राप्त होता है ना?

उत्तरः—व्यवहारसे निश्चय प्राप्त हो—ऐसा है ही नहीं। वह वीतरागका मार्ग नहीं है। व्यवहारकी शुभरागकी रुचि छोड़कर त्रैकालिक ज्ञायक भगवान पर दृष्टि कर तो सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होगी। व्यवहारके सहकारसे निश्चयधर्म होगा—ऐसा नहीं है। अरेरे! लोगोंने निमित्तसे होता है और व्यवहारसे होता है—इसप्रकार जिनेश्वरदेवके नामसे गड़बड़ी कर डाली है। अहा! ऐसा मनुष्यभव और उसमें त्रिलोकीनाथ जिनेश्वरदेवकी वाणीका सुयोग प्राप्त हुआ है भाई! इसके सिवा अन्यत्र कहीं आत्माकी बात है ही नहीं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यहाँ तो कहते हैं कि—धर्मीको चैतन्यके—आनन्दके निर्विकल्प स्वादके समक्ष अन्य कुछ भी अच्छा नहीं लगता, उस स्वादमेंसे छूटना अच्छा नहीं लगता। जिसप्रकार मिसरीके स्वादसे मक्खीको हटना अच्छा नहीं लगता; भले ही वहाँ चिपक जाय तथापि उड़ेगी नहीं, उसीप्रकार भगवान आत्माके अतीन्द्रिय आनन्दके स्वादके समक्ष, ज्ञानीको व्यवहारका विकल्प उठे वह नहीं रुचता। वस्तुस्थिति ऐसी है प्रभु! मार्ग तो ऐसा है! भगवानने यह कुछ किया नहीं है, परन्तु वस्तुस्वरूपको जाना वैसा कहा है। अहा! दिगम्बर संतोंकी वाणी! वे संत कहते हैं कि जो निजस्वरूपमें आसक्त हुआ उसे बाहरकी—शुभाशुभभावकी, व्यवहारकी—आसक्ति टूट गई है।

✽

वचनामृत-७६

तस्वीर खींची जाती है वहाँ जैसे चेहरेके भाव होते हैं तदनुसार स्वयमेव कागज पर चित्रित हो जाते हैं, कोई चित्रण करने नहीं जाता। उसीप्रकार कर्मके उदयरूप चित्रकारी सामने आये तब समझना कि मैंने जैसे भाव किये थे वैसे ही यह चित्रण हुआ है। यद्यपि आत्मा कर्ममें प्रवेश करके कुछ करता नहीं है, तथापि भावके अनुरूप ही चित्रण स्वयं हो जाता है। अब, दर्शनरूप, ज्ञानरूप, चारित्ररूप परिणमन कर तो संवर—निर्जरा होगी। आत्माका मूल स्वभाव दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप है, उसका अवलम्बन करनेपर द्रव्यमें जो (शक्तिरूपसे) विद्यमान है वह (व्यक्तिरूपसे) प्रगट होगा ॥ ७६ ॥

'तस्वीर खींची जाती है वहाँ जैसे चेहरेके भाव होते हैं तदनुसार स्वयमेव कागज पर चित्रित हो जाते हैं, कोई चित्रण करने नहीं जाता।'

तस्वीर खींचते हैं वहाँ चेहरे पर जैसे भाव हों, जैसा चेहरेका तथा शरीरका आकार हो तदनुसार तस्वीर खिंच जाती है; वहाँ कोई कागजपर चित्रित करने—खींचने नहीं जाता।

'उसीप्रकार कर्मके उदयरूप चित्रकारी सामने आये तब समझना कि मैंने जैसे भाव किये थे वैसे ही यह चित्रण हुआ है।'

जैसे कर्म बाँधे हों वैसा फल आता है। पूर्वकालमें मैंने जैसे भाव किये थे यह उसीका चित्रण है। भीतर आनन्दका नाथ भिन्न हूँ; इस चित्रणमें मैं नहीं हूँ और मुझसे यह चित्रण नहीं हुआ है। शुभभाव किया हो और उससे पुण्यबंध हो गया हो, उसके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

फलरूप भले ही चक्रवर्तीपद या इन्द्रपद प्राप्त हो, वह सब वीतरागमार्गमें कर्मके चित्रणका फल कहा है। वे मेरे नहीं हैं और न मुझमें हैं। करोड़ों रुपये, लाखोंके मकान, सामान आदि सब क्या हैं? पूर्व कालमें जो पुण्यके भाव हुए थे, उनके फलमें जो कर्म बँधे थे, उन्हींका यह चित्रण दिखायी देता है।

अहा! यह बात बैठना कठिन है। जीवने अनादिकालमें सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया। द्रव्यलिंग धारण करके दिगम्बर मुनि हुआ,—वस्त्रसहित जो मुनि हैं वे तो द्रव्यलिंगी भी नहीं हैं—परन्तु आत्माकी प्रतीतिके बिना कर्मके चित्रणमें रुक गया। छहढालामें भी कहा है :—

मुनिव्रत धार, अनंतबार ग्रीवक उपजायो;
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।

आत्माकी प्रतीति बिना पंचमहाव्रतोंका पालन किया, हजारों रानियोंका त्याग किया, अट्ठाईस मूलगुण पाले, परन्तु यह सब राग और दुःख है, मैं उनसे भिन्न ज्ञायक पदार्थ हूँ–ऐसे आत्मज्ञानके बिना लेश सुख प्राप्त नहीं किया। महाव्रत आदि विकल्प हैं, राग हैं; उनसे रहित भगवान आत्मा अंतरमें सुखस्वरूप है, उसका यथार्थ ज्ञान नहीं किया। उन अज्ञानजनित भावोंसे यह कर्मका चित्रण हुआ है। वह कर्मके उदयरूप चित्रण जब सामने आये तब समझना कि मैंने जैसे भाव किये थे वैसा यह चित्रण हुआ है। यह चित्रण मेरी वस्तु नहीं है, उसमें मैं नहीं हूँ, वह वस्तु मुझे छूती नहीं है—स्पर्श नहीं करती। शरीरको आत्माने स्पर्श नहीं किया है। शरीर जड़ तथा रूपी है और प्रभु आत्मा अरूपी है; वह स्पर्श कहाँसे करे?

'यद्यपि आत्मा कर्ममें प्रवेश करके कुछ करता नहीं है, तथापि भावके अनुरूप ही चित्रण स्वयं हो जाता है।'

कहा न! कि–जो तस्वीर खिंची है वह इसके कारण नहीं; यह उसमें प्रवेश करके कुछ करता नहीं है। जीवके भावके अनुरूप कर्मका चित्रण स्वयं हो जाता है, जीव उसमें प्रविष्ट होकर कुछ नहीं करता। शुभाशुभभाव निमित्त है–अनुकूल है, और पुण्य-पापकर्मरूप चित्रण स्वयं हो जाना वह नैमित्तिक–अनुरूप है। उस विभावमें और कर्मके चित्रणमें आत्माके शुद्धस्वभावकी गंध भी नहीं है। चक्रवर्तीका महान साम्राज्य दिखायी देता है वह सब कर्मका चित्रण है। कर्मरूप होने योग्य रजकण स्वयं अपने कारण बँधे हैं, जीवके शुभाशुभभावोंके कारण नहीं। कर्मरूप चित्रणमें आत्मा प्रविष्ट होकर कुछ नहीं करता। जीवके विकारी भावोंका निमित्त पाकर भावके अनुरूप कर्मका चित्रण स्वयं हो जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'अब, दर्शनरूप, ज्ञानरूप, चारित्ररूप परिणमन कर तो संवर–निर्जरा होगी।'

शुभाशुभ भाव पूर्वकालमें अनुकूल निमित्त थे, उनके अनुरूप कर्म बँधे, और कर्मके निमित्तरूप–फलरूप बाह्य संयोग प्राप्त हुए। वहाँ बाह्य वस्तुएँ अपने उपादान-कारणसे आयी हैं; जड़कर्मके कारण बाह्यमें जड़का संयोग हुआ–यह निमित्तसे कथन है। पूर्वकालमें विकारी भाव किये थे उनके निमित्तसे कर्मका चित्रण स्वयं हुआ और कर्मके निमित्तसे बाह्य संयोग अपने उपादान-कारणसे स्वयं आते हैं। बड़ी प्रतिष्ठा हो, लोग 'धन्य-धन्य' कहते हों आदि सब कर्मके फलरूप दृष्टिगोचर होते हैं।

अब यदि विभाव और परसंयोगसे भिन्न निज-आत्माके श्रद्धानरूप सम्यक्त्व, उसके ज्ञानरूप ज्ञान और स्वभावमें स्थिरतारूप चारित्र कर, अंतरमें आत्माका अनुभव कर तो कर्मके संवर तथा निर्जरा होंगे; नया चित्रण नहीं होगा और पुराना मिट जायगा।

'आत्माका मूल स्वभाव दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप है, उसका अवलम्बन करने पर द्रव्यमें जो (शक्तिरूपसे) विद्यमान है वह (व्यक्तिरूपसे) प्रगट होगा।'

आत्माका स्वभाव त्रिकाल दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप है, उसका अवलम्बन लेनेसे जो शक्तिरूप है वह पर्यायरूपसे–सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप मोक्षमार्गरूपसे–प्रगट होगा। अहा! शैली तो देखो! शुभाशुभ भाव करेगा तो कर्मका चित्रण होगा और उसके फलरूप बाह्य चित्रण दिखायी देगा। अब यदि तुझे संवर–निर्जरा करना हो तो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख एवं अनन्त वीर्य–ऐसे अनन्त चतुष्टयरूप ध्रुव आत्माका अवलम्बन ले। उसका अवलम्बन लेनेसे द्रव्यमें जो शक्तिरूप है वह व्यक्तिरूप–प्रगट–होगा। शुभाशुभभाव होते हैं, स्वयं कर्म बँधते हैं और उनके कारण स्वयं बाहर संयोग दिखायी देते हैं; अब यदि तुझे उन सबसे रहित होना हो, अंतरमें आत्माकी सच्ची शान्ति और सुखकी इच्छा हो तो आत्माका मूल स्वभाव जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र है तद्रूप परिणमन कर। शुभाशुभभाव तो आस्रव हैं, नवीन कृत्रिम उत्पन्न किये हैं, भीतर विद्यमान नहीं हैं। उन संयोगी भावोंसे, संयोगी चित्रण एवं बाह्य संयोगोंसे तुझे रहित होना हो तो भीतर स्वभावको पहिचानकर, उसका अवलम्बन लेकर, संवर–निर्जरारूप निर्मल परिणमन कर।

प्रश्न :—वह कैसे होगा ?

उत्तर :—भगवान आत्मा अंतरमें दर्शन-ज्ञान-चारित्र स्वभावसे भरपूर है। अंतरमें दृष्टि करनेसे, उसका अनुभव करनेसे, उसमें लीन होनेसे, उस श्रद्धा, ज्ञान और रमणतारूप शक्तिमेंसे व्यक्ति आयगी। स्वभावके आश्रयसे शुभाशुभ आस्रव दूर होंगे और संवर–निर्जरा प्रगटेंगे। अन्तरका ज्ञान–आनन्दादि वैभव पर्यायमें व्यक्तरूपसे अनुभवमें आयगा।

✾

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-२४

ता. २६-६-७८

वचनामृत-७६

७६वें बोलमें क्या आया उसे पुनः देखें।

आत्माका मूलस्वभाव दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप है, उसका अवलम्बन करने पर द्रव्यमें जो (शक्तिरूपसे) विद्यमान है वह (व्यक्तिरूपसे) प्रगट होगा।

आत्मा जोकि दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप है उसका अवलम्बन लेकर जिसने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप वीतराग परिणाम प्रगट किये उसे वीतरागता दिखायी देगी; और जिसकी दृष्टि बाह्यमें है उसें संयोग तथा विभाव दिखायी देंगे। वह शुभाशुभभाव करेगा, इसलिये उसे कर्म स्वयं बँधेंगे और उनके फलरूप संयोग भी आयँगे। तात्पर्य यह है कि रुचि बाह्यमें होनेसे वह संयोगको देखेगा और देखनेसे उसे राग-द्वेष होंगे। वर्तमानमें जो राग-द्वेष करता है, उसके निमित्तसे जो कर्म बँधते हैं उनके उदयकालमें उसे संयोगकी दृष्टि होनेसे, परवस्तुको देखनेपर भविष्यमें भी राग-द्वेष होंगे। समयसारमें आया है न! कि—आस्रव अर्थात् शुभाशुभभाव वर्तमानमें दुःखरूप हैं और भविष्यमें भी दुःखका कारण हैं:—

अशुचिपणुं, विपरीतता अे आस्रवोनां जाणीने,
वळी जाणीने दुःख कारणो, अेथी निवर्तन जीव करे।७२।

आ सर्व जीवनिबद्ध, अध्रुव, शरणहीन, अनित्य छे,
अे दुःख, दुखफल जाणीने अेनाथी जीव पाछो वळे।७४।

अहा! शैली तो देखो! शुभभाव वर्तमान दुःख है, उस शुभरागसे पुण्यबंध होगा और उसके फलमें संयोगोंकी प्राप्ति होगी; संयोग मिलने पर उसका लक्ष वहाँ जायगा इसलिये पुनः राग अर्थात् दुःख होगा। आया कुछ समझमें?

यहाँ तो कहते हैं कि अरागी—वीतरागी मोक्षमार्गके लिये, मोह-मान-मायादिक हटानेके लिये, निजस्वभावको जान लेना। अनन्त गुणसम्पन्न जीवमें मुख्य उसके जो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन स्वभाव उनका—ज्ञानादि अनंतगुणसम्पन्न अभेद आत्माका—आश्रय लेकर जो दशा होगी वह वीतरागी सुखमय होगी। तू वीतरागस्वभावको देखेगा तो तुझे वीतरागतामें वृद्धि होगी।

भगवान आत्मा दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी शक्ति-स्वरूप अकृत्रिम सनातन वस्तु है, उसका आलम्बन लेकर जिसने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट किये हैं वह सुखको देखेगा और उसका अनुभव करेगा। पुण्य-पापकी रुचिवाला बाह्य संयोगोंको देखेगा और उन्हें देखकर राग-द्वेष होगा। चाहे तो तीर्थंकरको देखे, उनकी वाणी सुने, तब भी राग होगा, क्योंकि उसे पर- द्रव्यका प्रेम है।

प्रश्न :—समयसारकी–शुद्ध आत्माकी–चर्चा तो बहुत चली, किन्तु कोई ऐसे नहीं दिखते जो आगे बढ़े हों?

उत्तर :—समयसार सुनकर श्रद्धामें सुधार करते हैं वह क्या आगे बढ़ना नहीं है? मुख्य बात तो वही है। क्या बाहरी त्याग दिखनेसे बढ़ा हुआ कहलायगा? अंतरमें मिथ्या श्रद्धाका त्याग और सच्ची श्रद्धाका आदर किया वह क्या आगे नहीं बढ़ा है? अहा! जीवको श्रद्धामें सुधारकी महिमा नहीं आती; किन्तु प्रभु! श्रद्धाका सुधार ही मुख्य वस्तु है। जीवने अनादिकालमें सम्यग्दर्शनस्वरूप श्रद्धाका सुधार कभी नहीं किया। लोगोंको इस मुख्य वस्तुकी खबर नहीं पड़ती इसलिये बाह्य त्याग करते हैं, प्रतिमा धारण कर लेते हैं, किन्तु वह सब राग है और स्वरूपस्थिरता तो अंतरमें अरागी दशा हो वह है। अंतरकी क्रीड़ामें रत हो तब मध्यम भूमिकामें व्रतादिके विकल्प उठते हैं; परन्तु अभी मुख्य वस्तु जो श्रद्धा है उसका ठिकाना नहीं है वहाँ व्रत और प्रतिमा लाये कहाँ से? भीतर मिथ्या श्रद्धाके जो संस्कार पड़े हैं उन्हें सुधारना चाहिये, मिथ्यात्वके संस्कार नष्ट करना चाहिये;—उस स्वरूपकी तो उन्हें खबर नहीं पड़ती और रागको किंचित् मंद करके व्रत धारण करते हैं, प्रतिमा लेते हैं, वह क्या आगे बढ़े कहलायेंगे? वे धूल भी आगे नहीं बढ़े हैं।

यहाँ तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों साथ लिये हैं। परन्तु उनमेंसे ऐसा भी समझने योग्य है कि—जो दर्शनशुद्धि होती है वह त्रैकालिक आत्मस्वभावके अवलम्बनसे होती है। आत्मामें श्रद्धागुण त्रिकाल विद्यमान है; और जो सम्यक्त्व प्रगट होता है वह उसकी पर्याय है। जिसप्रकार ज्ञानगुण त्रिकाल है और मति–श्रुतादि उसकी पर्यायें हैं तदनुसार। स्वभावके अवलम्बनसे श्रद्धामें सुधार हो तो ज्ञानका भी सुधार हो, और साथ ही स्वरूपाचरण चारित्ररूप स्थिरताका भी सुधार हो।—ऐसा सुधार हो उसका लोगोंको मूल्य नहीं लगता, किन्तु मुख्य वस्तु तो वही है। अहा! जिसे मिथ्या श्रद्धाका नाश

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करना हो, श्रद्धाका सम्यक् सुधार करना हो, उसे पहले भगवान आत्मा कैसा है उसे—शुद्ध चैतन्यतत्त्वको—यथावत् जाननेका प्रयत्न करना चाहिये।

जिसमें धर्मकी पर्याय प्रगट करना चाहता है वह आत्मा ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्दादि अनन्त गुणोंका पिण्ड अखण्ड पदार्थ है; उसका अवलम्बन लेने पर जीवको वीतरागता परिणमती है। बेनकी भाषा सरल है किन्तु भीतर गम्भीरता बहुत है।

❋

वचनामृत-७७

अनंत कालसे जीवको स्वसे एकत्व और परसे विभक्तपनेकी बात रुची ही नहीं। जीव बाहरसे भूसी कूटता रहता है परन्तु अंदरका जो कस–आत्मा–है उसे नहीं खोजता। राग-द्वेषकी भूसी कूटनेसे क्या लाभ है? उसमेंसे दाना नहीं निकलता। परसे एकत्वबुद्धि तोड़कर भिन्न तत्त्वको—अबद्धस्पष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष एवं असंयुक्त आत्माको—जाने, तो कार्य हो ॥७७॥

'अनंत कालसे जीवको अपनेसे एकत्व और परसे विभक्तपनेकी बात रुची ही नहीं।'

इस ज्ञानानन्दस्वरूप भगवान आत्माको अपने स्वभावके साथ एकत्व और दया-दानादि रागके विकल्पोंसे विभक्तपना, भिन्नपना है। समयसारमें तीसरी–चौथी गाथामें यह एकत्व-विभक्तकी बात आचार्यदेवने कही है न! और उसकी पाँचवीं गाथामें कहा है कि–मैं उस एकत्व-विभक्त आत्माको दरशाऊँगा :—

दर्शावुं एक विभक्त ए, आत्मातणा निज विभवथी;
दर्शावुं तो करजो प्रमाण, न दोष ग्रह स्खलना यदि।

उस एकत्व-विभक्त आत्माको अपने निज वैभवसे दिखलाता हूँ, तुम उसे अनुभव करके प्रमाण करना, उसरूप परिणमित हो जाना। 'परिणमना' वह अनुभव हुआ। 'अनुभव करके' अर्थात् 'परिणमन करके'। प्रभु! तेरा त्रैकालिक तत्त्व रागसे भिन्न है; अरे! व्यवहार-रत्नत्रयका विकल्प उठे उससे भी चैतन्यप्रभु तो भिन्न ही है।

प्रश्न :—व्यवहार रत्नत्रय करे तो उससे लाभ होगा ना?

उत्तर :—भाई! अभी जहाँ श्रद्धा ही मिथ्या है, निमित्तसे परमें कार्य होगा, एक द्रव्यसे दूसरे द्रव्यकी पर्याय होगी–ऐसे तीव्र मिथ्यात्वभावमें जहाँ अभी स्थित है, वहाँ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

व्यवहार-रत्नत्रय लाया कहाँसे? व्यवहार—अर्थात् रागकी मन्दताकी क्रिया—करते-करते आगे निश्चयमें पहुँच जायँगे—ऐसा नहीं है भाई! तुझे वस्तुस्वरूपकी खबर नहीं है। व्यवहार-रत्नत्रयका मन्दराग भी कषाय है, दुःख है। दुःख करते-करते सम्यग्दर्शन एवं अतीन्द्रिय आनन्द कभी हो सकता है? मूल बात ही पूरी बदल गई है। क्या किया जाय? जो शास्त्रज्ञ कहे जाते हैं वे भी विपरीत मार्ग पर चलने लगे हैं। आत्मज्ञ होना चाहिये उसके बदले शास्त्रकी—ज्ञानकी बातें करके मानों आगे बढ़ गये हों—ऐसा मानते हैं।

अनादि कालसे जीवकी रुचि परमें है। उसने रागको देखा है, परन्तु रागको जाननेवाला एकत्व-विभक्तस्वरूप ज्ञायक भगवान आत्मा भीतर विद्यमान है उसे नहीं जाना, उसकी कभी रुचि नहीं की। ज्ञाता पर्यायके निकट परिपूर्ण ध्रुव प्रभु विराजमान है उसकी रुचि ही नहीं की है।

'जीव बाहरसे भूसी कूटता रहता है परन्तु अंदरका जो कस—आत्मा—है उसे नहीं खोजता।'

भूसा कूटनेकी दोहा-पाहुडकी बात 'मोक्षमार्ग-प्रकाशक' में ली है : हे पांडे! हे पांडे! तू कणको छोड़कर मात्र तुष (भूसा) ही कूटता है अर्थात् तू अर्थ और शब्दमें ही संतुष्ट है किन्तु परमार्थको नहीं जानता, इसलिये मूर्ख है। एक गृहस्थ स्त्री धान कूट रही थी। उसमें चावल नीचे रह जाते और भूसा ऊपर आता था। एक गरीब भोली औरतको ऐसा लगा कि यह सेठानी भूसा कूट रही है, इसलिये उसमें जरूर कुछ चावल होंगे। परन्तु वास्तवमें भूसेमें चावल नहीं हैं; चावल नीचे अंदर हैं वह तो उसने देखा नहीं है। उसीप्रकार ज्ञानीकी अंतर्दृष्टि, ज्ञान एवं रमणताको जोकि मुख्य वस्तु है उसे तो अज्ञानीने देखता नहीं है, किन्तु भूसे जैसे जो व्रतादिके विकल्प वर्तते हैं उन्हें देखकर उसे ऐसा लगता है कि ज्ञानी भी महाव्रतोंका पालन करते हैं; इसलिये उनमें लाभ होगा ना? परन्तु महाव्रतोंके पीछे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र—चावलों जैसी विशेष वस्तु—हैं उन्हें अज्ञानी नहीं देखता और अनादिकालसे पुण्य-पापका भूसा कूटता रहता है; उसीकी विशेषता उसे वर्तती रहती है। अंतरमें एकत्व-विभक्तस्वरूप जो अखण्ड परिपूर्ण वस्तु है उसकी जिसे रुचि नहीं है वह राग एवं क्रियाका भूसा कूटता रहता है; उसे रागकी क्रियाका मद—अभिमान—है।

ज्ञानीको भगवानकी भक्तिके, पूजाके भाव आते हैं, पंचमहाव्रतके परिणाम भी होते हैं; परन्तु उसका अनुभव और दृष्टि भीतर वस्तुस्वभाव पर है, उसे न देखकर, धर्मी भी भक्ति आदि करते हैं इसलिये हमें भी करना चाहिये—इसप्रकार अज्ञानी भूसा कूटता रहता है; परन्तु भीतरका जो कस है उसे,—जिसप्रकार धानमें चाँवलका कस है तदनुसार, अतीन्द्रिय आनन्दमय आत्माको,—नहीं ढूँढ़ता। व्रतको निरतिचार पालना, लगे हुए दोषोंका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रायश्चित लेना आदि भूसा कूटनेमें अज्ञानी जीव लगा हुआ है; परन्तु भीतर जो कसवाली वस्तु भगवान आत्मा विराजमान है उसे नहीं शोधता। अंतरमें जो खोजना चाहिये उसकी उसे खबर नहीं है।

'राग-द्वेषकी भूसी कूटनेसे क्या लाभ है? उसमेंसे दाना नहीं निकलेगा।'

जिसप्रकार भूसी कूटनेसे कोई लाभ नहीं होता, उसीप्रकार पुण्यका–व्यवहारका–भूसा कूटनेसे उसमें व्यर्थ श्रम करनेसे क्या लाभ है? व्यवहार और निमित्तसे कार्य होता है–ऐसी मान्यतावालोंको यह बात असह्य लगेगी। व्यवहार और निमित होते हैं किन्तु उससे कार्य नहीं होता। सच्चा निमित्त मिले तो कार्य सुधरता है, झूठा निमित्त मिले तो बिगड़ता है–ऐसा नहीं है। वस्तुमें सुधरने-बिगड़नेका प्रत्येक कार्य अपनी उपादान-शक्तिसे होता है, निमित्तसे नहीं। कठिन काम है भाई! मिथ्यात्वके पोषणपूर्वक बाह्यत्याग दिखायी देता है और लोग उसे 'बढ़ गया' मानते हैं। परन्तु वास्तवमें तो भीतर सम्यक्श्रद्धामें–प्रत्येक वस्तुका परिणमन स्वतंत्र है ऐसी स्वाधीनताकी श्रद्धा और ज्ञानमें–गड़बड़ करता है, विपरीतता मानकर मिथ्यात्वका पोषण करता है। अरेरे! क्या किया जाय? जगत अपने हाथसे खुशीसे लुटता है, मरता है, उसकी उसे खबर नहीं है; और 'कैसा मानते हैं? कैसा करते हैं?'....इसप्रकार बाह्यमें भूसी कूटता रहता है। यहाँ कहते हैं कि अंतरके निजस्वरूपकी खबर नहीं है उसे राग-द्वेषकी भूसी कूटनेसे क्या लाभ है? जिसप्रकार भूसी कूटनेसे दाने नहीं निकलते, उसीप्रकार दया, दान और व्रतादि पुण्यकी क्रियाओंकी भूसी कूटनेसे–आत्मज्ञानके बिना व्यर्थ परिश्रम करनेसे–धर्मका लाभ नहीं होता। वे राग-द्वेषके तथा शुभ-अशुभ परिणाम आत्माको हानिकारक हैं, छिलकेके समान व्यर्थ हैं, उनमें आत्माका दाना–धर्म–कहाँ है? दाना, कस तो भीतर आत्मामें है, वहाँ ढूँढ़नेसे उसकी प्राप्ति होती है।

'परसे एकत्वबुद्धि तोड़कर भिन्नतत्त्वको—अबद्धस्पष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष एवं असंयुक्त आत्माको—जाने तो कार्य हो।'

रागके करणके साथ भी एकत्व न कर। भले वह रागका कण ऐसे शुभ-विकल्परूप हो कि 'यह आत्मा बिलकुल अबद्ध है, एकरूप है, न्यूनाधिकता रहित है, गुणभेदरहित है और शुद्ध है' तथापि उससे भी भिन्न ही वस्तुका स्वरूप है; उसे जान। समयसारमें आया है ना! कि–व्यवहारका तो हम निषेध करते आये ही हैं, परन्तु 'आत्मा अबद्ध है, शुद्ध है, अभेद है, एक है, पवित्र है' ऐसे निश्चयपक्षके निर्णयरूप विकल्प उठे वहाँ तक जीव आया तथापि–'उससे क्या?' अहा! उससे भी जीवको क्या लाभ है?

सम्यग्दर्शनसे रहित व्रत-तपके फोतरों–छिलकोंकी बात तो दूर रही, यहाँ तो ऐसा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कहा है कि–'आत्मा शुद्ध चैतन्य, निर्मल विज्ञानघन, आनन्दमूर्ति जिन है'–ऐसे विकल्पों तक आया तथापि उनसे क्या लाभ है? समयसार नाटकमें कहा है कि–

घट घट अंतर जिन बसै, घट घट अंतर जैन।
मत-मदिराके पानसौं मतवाला समुझै न ॥

रागसे भिन्न भीतर कसवाला–सारतत्त्व परिपूर्ण जिनस्वरूप है। परके साथ एकत्वबुद्धि तोड़कर भिन्न तत्त्वको–अबद्धस्पृष्टादि भावोंस्वरूप त्रैकालिक शुद्ध आत्माको–जाने तो कार्य हो, धर्मका अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्दका लाभ हो।

आत्मा वास्तवमें व्यवहार-रत्नत्रयके रागके सम्बन्धवाला भी नहीं है। आत्माको व्यवहारवाला, रागवाला देखना वह मिथ्यात्व है। भगवान आत्मा तो भीतर मुक्तस्वरूप है। पर्यायकी अपेक्षामें रागका सम्बन्ध या अभाव है, परन्तु द्रव्यस्वभाव तो सदा अबद्धस्पृष्ट मुक्तस्वरूप ही है। भगवान आत्माको जिसप्रकार रागका सम्बन्ध नहीं है, उसीप्रकार कर्मके रजकणोंके साथ भी उसका सम्बन्ध नहीं है; वह नारकी आदि विभिन्न गतियोंसे भी भिन्न अनन्य है; पर्यायमें जो हीनाधिकता है वह उसके मूलस्वरूपमें नहीं है इसलिये नियत, त्रिकाल निश्चल एकरूप है; वह रागवाला तो नहीं है परन्तु दर्शन-ज्ञान-चारित्र ऐसे भेदोंवाला भी नहीं है, अविशेष है; और शुभाशुभ भावकी जो आकुलता उससे वह सम्बन्धित नहीं किन्तु रहित ही है, इसलिये असंयुक्त है; ऐसे आत्माकी प्रतीति और ज्ञान करके अनुभव करना ही परसे एकत्वबुद्धि तोड़नेरूप और स्वभावके एकत्वको साधनेरूप सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान है।

अहा! बड़ा कठिन कार्य है! मूल वस्तु भीतर पड़ी रही और ऊपरसे सब पत्ते–डालियाँ तोड़ने लगे। मूल सुरक्षित है इसलिये वह वृक्ष पुनः अंकुरित हो जायगा; इसीप्रकार जीवने रागकी मन्दताके और शुभभावके आचरण रूपी पत्ते तथा डालियाँ तोड़ीं, किन्तु रागसे भिन्न मेरी वस्तु अबद्धस्पृष्टादिस्वरूप शुद्ध है–उसकी दृष्टि कभी नहीं की। अनन्त कालमें सम्यक्त्व-सन्मुख होनेका जो सच्चा पुरुषार्थ है उसका मूल्य कभी नहीं समझा, किन्तु बाह्य व्रत-तपका मूल्यांकन किया।

वास्तवमें अबद्धस्पृष्टादि-स्वरूप निज शुद्धात्माको जाने तो सम्यक्त्वरूप कार्य हो। वीतरागी निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र ऐसा जो आत्माका कार्य, उसके लिये अन्य साधनोंकी राह नहीं देखना पड़ती। बेनने (२५१वें बोलमें) कहा है ना–'द्रव्य उसे कहते हैं जिसके कार्यके लिये दूसरे साधनोंकी राह न देखनी पड़े।' बेन अभी तक गुप्त थीं, अब बाहर आ गईं। अब ढँका नहीं रहेगा–छिपा नहीं रहेगा। उनके वचन वह भगवानकी वाणी है, उनके घरका कुछ नहीं है। यह शब्द देखो ना! वस्तुस्थिति,..सादी भाषा...गुजराती भाषा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'द्रव्य उसे कहते हैं...' इसमें तो समुच्चय द्रव्य लिया है। छहों द्रव्योंको अपनी पर्यायके लिये किन्हीं विशेष साधनोंकी राह नहीं देखना पड़ती। तदनुसार आत्मामें लिया जाय तो, आत्मद्रव्य उसे कहते हैं जिसके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रके परिणामोंके लिये अन्य साधनोंकी प्रतीक्षा नहीं करना पड़े।

अहाहा! कहाँ है ऐसी बात! 'हम जानते हैं, हम त्यागी–मुनियोंका आदर करते हैं!'–इसप्रकार दुनिया अभिमानमें आकर कहती है कि 'तुम मुनियोंको नहीं मानते!' अरे, प्रभु! **मुनियोंके तो हम दासानुदास हैं; परन्तु ऐसे मुनि होना चाहिये ना!** मुनि किसे कहा जाय? ७१वें बोलमें आया था कि–'धन्य वह निर्ग्रन्थ मुनिदशा! मुनिदशा अर्थात् केवलज्ञानकी तलहटी...' उसमें मुनिदशाका स्वरूप आ गया है।

परसे रागसे एकत्वबुद्धि तोड़कर भिन्न तत्त्वको–अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष और असंयुक्त ऐसे निज आत्माको–जाने तो सम्यग्दर्शनादि कार्य हों। उन कार्योंके लिये दूसरे साधनोंकी बिलकुल प्रतीक्षा नहीं करना पड़ती। रागकी मंदता कारण हो तो सम्यग्दर्शन-ज्ञानादि कार्य हो–ऐसा नहीं है। अहा! इसे पचाना कठिन है! ७७ बोल पूरे हुए। अब ७८वें बोलमें देखो, मुनि सम्बन्धी कथन आया है।

❃

वचनामृत-७८

स्वरूपकी लीला जात्यंतर है। मुनिराज चैतन्यके बागमें क्रीड़ा करते-करते कर्मके फलका नाश करते हैं। बाह्यमें आसक्ति थी उसे तोड़कर स्वरूपमें मंथर–स्वरूपमें लीन–हो गये हैं। स्वरूप ही उनका आसन, स्वरूप ही निद्रा, स्वरूप ही आहार है; वे स्वरूपमें ही लीला, स्वरूपमें ही विचरण करते हैं। सम्पूर्ण श्रामण्य प्रगट करके वे लीलामात्रमें श्रेणी माँडकर केवलज्ञान प्रगट करते हैं॥ ७८॥

'स्वरूपकी लीला जात्यंतर है।'

भगवान आत्माके स्वरूपकी लीला जात्यंतर है। क्या कहा? वीतरागी दृष्टि, वीतरागी ज्ञान, वीतरागी चारित्र, वीतरागी आनन्द–अहा! आत्माकी वह लीला रागकी जातिसे अन्य प्रकारकी है। भगवान आत्माकी स्वरूप-लीला ही सच्ची लीला है। लोग भगवानकी लीला कहते हैं। अरे! वह लीला कहाँ थी? ज्ञान-दर्शन-आनन्दादि अनन्त गुणोंसे परिपूर्ण जो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञायकप्रभु, उसके स्वरूपकी लीला अर्थात् स्वाश्रित दशा वह जात्यंतर है; राग और अजीवकी जातिसे उस ज्ञायक-लीलाकी जाति भिन्न है। आनन्दघनजीके स्तवनमें आता हैं:—

कोई कहे लीला अलख तणी रे, लख पूरे मन आश;
दोष रहितने लीला नवि घटे रे, लीला दोष विलास।

अहा! चैतन्यका जो त्रैकालिक स्वरूप—ज्ञान, आनन्द, प्रभुता, ईश्वरता, शुद्धता, स्वच्छता—उसकी पर्यायमें लीला—स्वाश्रित दशा हो वह रागकी जातिसे जात्यंतर है। उसमेंसे उत्पन्न होनेवाली दशा वह वीतरागी दशा है, राग नहीं। निजस्वरूपमें प्रभु विलसे, क्रीड़ा करे वह लीला ही अन्य प्रकारकी है। भिन्न-भिन्न रागकी लीला वह उसकी लीला नहीं है। यह तो जात्यंतर लीला है।

अहाहा! यह पुस्तक अभी हिन्दुस्तानमें सबके पास नहीं पहुँची है, किन्हीं-किन्हीं लोगों तक पहुँची है। जब पहुँचेगी और पढ़ेंगे तब लगेगा कि—अहा! ऐसी बात है! समझमें आया कुछ? क्या कहा? कि आत्माकी लीला जात्यंतर है। दुनिया एकदम रागमें परिवर्तन करे, तीव्ररागमेंसे मंदराग हो जाय तथा देहके परमाणु एकदम पलट जायँ, परमाणुका रंग हरेसे पीला हो जाय—यह जगतकी जड़ लीला है। अहा! ज्ञायक चैतन्य प्रभुकी लीला कोई और ही प्रकारकी है। अतीन्द्रिय आनन्दका नाथ, ज्ञानका सागर, जिसने दृष्टिमें लिया उसकी पर्यायमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी अद्भुत वीतरागी दशा उत्पन्न होती है वह उसकी जात्यंतर लीला है।

अहा आत्माकी लीला तो देखो! पहले क्षण मति—श्रुत हो और दूसरे ही क्षण अनंत केवलज्ञान प्रगट हो जाय! जगतसे उसकी जाति ही भिन्न है। एक क्षण पहले चक्रवर्ती राज्यमें बैठा हो और दूसरे क्षण देखो तो नग्नदशा और अंतरमें केवलज्ञानकी जगमग ज्योति! ज्ञायकप्रभु पूर्णस्वरूपसे भरपूर हैं; उसमें स्वाभाविक विचित्रताएँ—अद्भुतसे अद्भुत दशाएँ—होती हैं वह उसकी लीला है।

यहाँ विशाल भवन और धनधान्यवाला करोड़पती हो और घड़ीभरमें सातवें नरकका नारकी हो जाता है; गायके पेटसे बछड़ा बनकर जन्म ले, बकरीके पेटसे बच्चा बनकर पैदा हो—यह सब पुद्गलकी लीला है। अहा! इस जड़की लीलासे आत्माकी लीला बिलकुल जात्यंतर है।

❀

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन-२५

ता. ३०-६-७८

वचनामृत-७८

'स्वरूपकी लीला जात्यंतर है।'

क्या कहते हैं? कि—बाह्यमें जो यह शरीर, वाणी एवं कर्मके संयोगकी विचित्रता दिखायी देती है वह सब इन्द्रजाल है, पुद्गलकी लीला है। अतीन्द्रिय ज्ञान एवं आनन्दका सागर ऐसा जो निज भगवान आत्मा, उसकी जिसे दृष्टि हुई, उसका स्वीकार हुआ और वह कोई महान माहात्म्यवाली वस्तु है ऐसी जिसे अंतरमें—सम्यग्दर्शनमें प्रतीति हुई ऐसे जीवको यहाँ मुख्यरूपसे मुनिको लिया है—स्वरूपकी लीला जात्यंतर है। अहा! जगतकी—पुण्य-पापकी सामग्रीकी—लीलासे इस चैतन्यकी लीला कोई अजब-गजब अद्भुत अलौकिक है। यह भगवान आत्मा अपने पूर्ण स्वभावसे एकत्वमय और रागके विकल्पसे भिन्न ऐसा चैतन्यस्वरूप है ऐसी जिसे अंतरमें प्रतीति हुई और यही करने योग्य है ऐसा अंतरसे लगा—उसमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा स्वरूपाचरण आगये—उसकी लीला कोई अलौकिक है।

सम्यग्दृष्टि कदाचित् युद्धमें गया, उस प्रकारका अशुभ राग आया; परन्तु वहाँसे छूटकर जहाँ भीतर अपने ज्ञायक-गृहमें आता है, वहाँ निर्विकल्प ध्यानमें आ जाता है। अहा! देखो उसकी लीला! अंतरमें आनन्द सागर ऐसे स्वयंकी प्रतीति हुई है और रागसे भिन्न शक्तिकी व्यक्ति हुई उसकी लीला जात्यंतर है। जगतकी लीलामें जीव क्षणमें राजा और क्षणमें रंक हो जाता है—यह सब कर्मकी लीला है, अलग बात है। परन्तु जिसके अंतरमें अनन्त आनन्दका सागर भरा है ऐसो जो स्वयंभूस्वरूप भगवान आत्मा उसकी लीला तो कोई अलौकिक है!

अहा! सहजानन्दस्वरूप वस्तु अंतरमें जहाँ खिल उठी, राग और आत्माकी एकत्वबुद्धिका ताला लगा रखा था—अरे! निज सम्पदाको ताला लगा रखा था—वह जहाँ खोल दिया, राग और आत्माको जहाँ भिन्न कर दिया, स्वरूपके साथ एकता और रागसे भिन्नता हुई वहाँ उसके लिये भण्डार खुल गया। वह जीव कदाचित् विषय-वासनामें आगया हो,

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तथापि अंतरमें पूर्णानन्दका नाथ जागृत होनेसे दूसरे ही क्षण वह विकल्प तोड़कर निर्विकल्प हो जाता है। उसके स्वरूप-परिणमनकी लीला कोई जात्यंतर है।

'जागकर देखूँ तो जगत दीखे नहीं, नींदमें अटपटे भोग भासें।' सम्यग्दृष्टि आत्माको अंतरमें ज्ञानकी लीला जागृत हुई है। उस ज्ञानलीलाके बिना जीव चाहे जितने व्रत, तप और भक्ति करे वह सब मिथ्यात्वके बंधनमें जाता है, क्योंकि वह शुभभावको ठीक—धर्म मानता है।

प्रभु! तेरी लीलाका पार नहीं है। भाई! अपने अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्दकी लीलाकी तुझे खबर नहीं है। जगतकी—ईश्वरकी—लीलाएँ तो सब कल्पनाकी बातें हैं। स्वरूपकी लीला जात्यंतर है; जगतकी जातिसे भिन्न जातिकी है। यह बात तूने कभी सुनी नहीं है।

'मुनिराज चैतन्यके बागमें क्रीड़ा करते-करते कर्मके फलका नाश करते हैं।'

जैसे कोई फूलोंकी सुगन्ध लेने बागमें जाये और वहाँ उनकी सौरभमें तल्लीन हो जाय, वैसे ही मुनिराज रागकी क्रीड़ा छोड़कर चैतन्यके बागमें खेलते-खेलते कर्मके फलका नाश करते हैं और अतीन्द्रिय आनन्दके फलका वेदन करते हैं, अनुभव करते हैं। चैतन्यके बागमें क्रीड़ा करनेवाले मुनिराजको सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक चारित्र हुआ है, आनन्दादि अनन्तगुण खिल उठे हैं, अंतर्निमग्नदशा तीव्र प्रगट हुई है। अहा! मुनिपना बड़ी कठिन वस्तु है भाई! जैन परमेश्वर तो मुनिपना उसे कहते हैं कि जिसके वस्त्रका टुकड़ा भी न हो, पात्र न हो, बाह्यमें शरीरकी नग्नदशा हो और अंतरमें मात्र आनन्दके नाथ आत्माका प्रचुर अनुभव हो। ऐसे मुनिराज ज्ञानादि अनन्तगुणोंसे प्रफुल्लित निज चैतन्य उद्यानमें-क्रीड़ा करते-करते विभावका नाश करते हैं; उनको कर्मके फलका नाश हो जाता है; कर्म उदयमें आकर खिर जाते हैं।

बागमें हजारों पुष्पवृक्ष होते हैं, उसीप्रकार मुनिराजको भगवान आत्माके बागमें अनंत गुण निर्मल पर्यायोंरूपसे खिल उठे हैं, क्योंकि चारित्र है ना! मुनिराज आत्म-उद्यानमें खेलते-खेलते, लीला करते-करते, किंचित् दुःख बिना अंतरमें अनन्त आनन्दकी धारामें निमग्न रहकर कर्मके फलका नाश करते हैं। वास्तवमें तो उस समय कर्मफल उत्पन्न ही नहीं होता उसे 'नाश करते हैं' ऐसा कहा जाता है।

'बाह्यमें आसक्ति थी उसे तोड़कर स्वरूपमें मंथर—स्वरूपमें लीन—हो गये हैं।'

बाह्यमें जो राग था—आसक्ति थी उसे तोड़कर, अंतरमें जहाँ अतीन्द्रिय आनन्दादि गुण भरे हैं ऐसे निजस्वरूपमें मुनिराज लीन हो गये हैं। महाव्रतादिके विकल्पसे भी भिन्न होकर अर्थात् शुभरागका भी रस तोड़कर मुनि स्वरूपमें मंथर—अतीन्द्रिय आनन्दमें, स्वरूपके रसमें लीन—हो गये हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वरूप ही उनका आसन, स्वरूप ही निद्रा, स्वरूप ही आहार है; वे स्वरूपमें ही लीला, स्वरूपमें ही विचरण करते हैं।'

स्वरूपमें लीनता वही मुनिका आसन है; बाह्यमें उदासीन हैं, रागमें उनका आसन नहीं है, रागमें वे बैठे नहीं हैं। भीतर जो पूर्णानन्दघन प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्दका सागर भगवान ज्ञायक आत्मा है उसमें मुनिराज बैठे हैं, वहीं विश्राम करते हैं। अथवा स्वरूप-मंथरदशा ही उनका आसन है और वहीं उनका आसन–बैठक है।

प्रभु! तेरे भीतर अनन्त सम्पदा पड़ी है, तू पूर्ण सम्पदाका स्वामी है; नाथ! तू छोटा नहीं है, तू पामर नहीं है; तू पुरुष नहीं है, स्त्री नहीं; तू देव नहीं, मनुष्य नहीं; तू पर्याप्त या अपर्याप्त नहीं; तू राग नहीं, द्वेष नहीं; प्रभु! तुझमें ज्ञान, आनन्द, वीर्यादि प्रभुताका–सम्पदाका पार नहीं है। ऐसी प्रभुतामें जिन्हें लीनता हुई है, अंतर-आनन्दकी केलिमें मस्त हैं ऐसे मुनिराजकी रागमें या व्यवहाररत्नत्रयके विकल्पमें बैठक नहीं है, वे तो निर्विकल्प आनन्दरूप निजस्वरूपमें ही आरामसे बैठे हैं। बेनकी भाषा सादी है किन्तु भाव बहुत ऊँचे हैं। समझमें आये उतना समझना। श्रीमद्‌के एक पत्रमें ऐसा आता है कि–हमारा बैठना और खाना-पीना सब आनन्द है।

ज्ञानीको भले ही रागादि आयें, तथापि उनका आदर नहीं है, आदर तो त्रैकालिक ज्ञायकस्वभावका है; वहीं ज्ञानीका आसन है, ज्ञानी–सम्यग्दृष्टिका आसन तो स्वरूपमें ही है क्योंकि उनको अंतरसे पूर्णानन्दका आदर है, स्वानुभूतिका उपभोग है। यहाँ तो मुनिदशाकी बात चलती है। मुनिराजको विशेष चारित्रदशा होनेसे अंतरमें क्षणमें और पलमें छठवाँ–सातवाँ गुणस्थान आता है। अहा! उन मुनिराजकी दशा अद्‌भुत है! श्रीमद्‌ने 'अपूर्व अवसर'में कहा है :—

एकाकी विचरतो वळी स्मशानमां,
वळी पर्वतमां वाघ सिंह संयोग जो;
अडोल आसन, ने मनमां नहीं क्षोभता,
परम मित्रनो जाणे पाम्या योग जो...अपूर्व०

दिगम्बर संत मुनिराज वनमें विचरते हैं; बाहर वे बाघ और सिंह जैसे हिंसक पशुओंके बीच बैठे होते हैं भीतर आनन्दकी लहरमें मस्त होते हैं। कोई सिंह शरीर खानेके लिये आ जाय तो मुनिको ऐसे भाव होते हैं कि शरीर मेरा है ही नहीं और मुझे उसकी आवश्यकता भी नहीं है, उसे चाहिये हो तो भले ले जाय।–इसप्रकार निर्भयरूपसे आत्माकी साधनामें लीन हैं और गर्जना करते हुए हिंसक पशुओंके बीच अकेले बैठे हैं। शरीर चलायमान नहीं होता किन्तु मन भी नहीं डिगता ऐसी जिनकी दशा है

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ऐसे मुनिराजको अंतरमें स्वरूपकी निद्रा आयी है अर्थात् वे स्वरूपमें–अतीन्द्रिय आनन्दमें–सो रहे हैं। जैसे कोई घोर निद्रामें पड़ा सोता है उसीप्रकार मुनिराज स्वरूप-निद्रामें सो रहे—स्वरूपमें लीन हो गये हैं।

मुनिराजका आहार भी स्वरूप ही है। बाह्य भोजन उनका आहार नहीं है; उनके तो अतीन्द्रिय आनन्दका भोजन है। ऋषभदेव भगवानने मुनिदशामें प्रथम छह महीनेके उपवास किये तब आहारका विकल्प तक नहीं आया; पश्चात् आहारका विकल्प आनेपर आहारके लिये जाते थे किन्तु मिलता नहीं था। लोगोंको आहारदानकी विधिका ज्ञान नहीं था। भगवानका विकल्प टूट जाता और वे पुनः अंतरमें–आनन्दके भोजनमें–चले जाते। छह महीने और बीत गये। लोगोंको विचार आया कि भगवान यह सब क्यों नहीं लेते? परन्तु भगवान दुःखी नहीं थे; त्रिलोकीनाथ तीर्थंकरदेव अन्तरमें अतीन्द्रिय आनन्दका भोजन कर रहे थे। बाह्य आहारके कौर–ग्रास–तो जड़ परवस्तु हैं, उन्हें आत्मा नहीं ले सकता, नहीं खा सकता। मुनिराजको तो अतीन्द्रिय आनन्दका आहार है। यह बात लोगोंको कठिन लगती है क्योंकि कभी सुनी नहीं है।

मुनिराज स्वरूपमें ही लीला और स्वरूपमें ही विचरण करते हैं। वैसे तो सम्यग्दृष्टि भी स्वरूपमें लीला करते हैं, किन्तु उन्हें रागका भाव कुछ विशेष आता है, यद्यपि अभिप्रायमें उसका आदर नहीं है। सम्यग्दृष्टिको भी भक्ति, पूजा, दानादिका शुभराग आता है, व्यवहारनयका विषय आता है, होता है, परन्तु वे उसे हेयरूप जानते हैं। सम्यग्दर्शन धर्मकी पहली सीढ़ी है; वह प्राप्त होनेपर जीव अपने आनन्दस्वरूपमें लीन रहता है; राग आये परन्तु उसमें एकत्वबुद्धिपूर्वक लीनता नहीं है।

पूजा, भक्ति और यात्रा करके लोग मान बैठते हैं कि धर्म होगया, परन्तु वह धर्म तो नहीं है किन्तु पुण्यानुबंधी पुण्य भी नहीं है। जिसे अंतरमें दया-दानादि रागका विकल्प भी दुःखरूप लगे, रागरहित स्वरूपके आनन्दका स्वाद आये–ऐसे जीवको हेयबुद्धिपूर्वक जो शुभभाव आये और पुण्य बंधे उसे पुण्यानुबंधी पुण्य कहा जाता है। पुण्यकी रुचिवालेको जो पुण्य बंधता है उसे पापानुबंधी पुण्य कहा जाता है।

यहाँ तो कहते हैं कि मुनि पुण्य-पापके भावरहित निजस्वरूपमें ही लीला करते हैं; उनकी क्रीड़ा आत्माके स्वरूपमें है, रागकी क्रीड़ासे वे छूट गये हैं।

'निजपद रमे सो राम कहिये।'

आत्मामें रमे उसे राम और राग तथा पुण्यके परिणाममें रमे उसे हराम कहते हैं। वीतराग सर्वज्ञका मार्ग अति अपूर्व...अपूर्व...अपूर्व लाभदायक है। आत्माके अतीन्द्रिय आनन्दका लाभ प्राप्त हो ऐसा लाभदायक है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मुनिराज स्वरूपमें ही विचरण करते हैं, रागमें नहीं विचरते। प्रभु! तेरा स्वरूप तो अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ईश्वरता, अतीन्द्रिय शान्ति, अतीन्द्रिय स्वच्छता तथा अतीन्द्रिय निरोगतासे भरपूर तत्त्व है। धर्मी जीव अपने स्वच्छ स्वरूपमें विचरते हैं। उन्हें व्यवहाररत्नत्रयका राग आये तथापि उसका आदर नहीं है अर्थात् वे उस रागमें नहीं विचरते। रागसे भिन्न चैतन्यकी जिन्हें प्रतीति नहीं है वे सब विषयोंके भिखारी हैं, रंक हैं; भले ही वे अरबपति हों या बड़े देव हों, परन्तु आत्मानुभवरूप चैतन्यप्राणसे रहित होनेके कारण वे चलते हुए मुरदे हैं। पुण्य-पापके रागका जिसमें अवकाश नहीं है—ऐसे त्रैकालिक चैतन्यप्राणमें जिनकी लीनता है—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-रमणतारूप परिणति वर्तती है ऐसे संत-मुनि स्वरूपमें ही विचरण करते हैं।

'सम्पूर्ण श्रामण्य प्रगट करके वे लीलामात्रमें श्रेणी माँडकर केवलज्ञान प्रगट करते हैं।'

भरत चक्रवर्ती सम्यक्त्वी, आत्मज्ञानी, स्वानुभवी थे। वे रागका एक कण भी आदरणीय नहीं मानते थे। उनको छह खण्डके रागकी आसक्ति छूटी वहाँ नवकोटिसे वस्त्रादि परिग्रहका त्याग हो जाता है। पश्चात् ध्यानमें लीन होते हैं—अंतर शुद्धोपयोगदशामें रमते हैं—और केवलज्ञान हो जाता है। वे शीशमहलमें बैठे थे वहाँ अंतरसे निवृति होगई। सम्यग्दृष्टि तो पहलेसे थे ही। शीशमहलके उद्यानमें नवकोटिसे वस्त्रादि छूटकर नग्नदशा होगई। सम्पूर्ण मुनिदशा प्रगट करके अंतरमें रमणता करते-करते अंतरके वीररस द्वारा लीलामात्रमें श्रेणी माँडकर अंतर्मुहूर्तमें केवलज्ञान प्रगट किया।

वीररससे भरपूर ऐसे वीर्यके पिण्डस्वरूप भगवान आत्माका, राग और निमित्तसे पृथक् होकर, जिसे सम्यग्दर्शन हुआ, और स्वरूपकी स्वीकृतिमें अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद आया उसे यहाँ सम्यग्दृष्टि कहते हैं। उस स्वादमें रमण करनेसे चारित्र हो जाता है। सम्पूर्ण मुनिपना प्रगट करके उस स्वादमें एकाग्र होनेपर—विशेष स्थिर होनेपर—लीलामात्रमें केवलज्ञान हो जाता है। भाई! जगत कहाँ खड़ा है यह सब खबर है। दया-दान, व्रत-तप, भक्ति आदि सब शुभराग है। उस व्यवहारके शुभरागमें जो खड़े हैं, उसे धर्म मानते हैं, वे मिथ्यादृष्टि हैं; और जो चैतन्यके उद्यानमें—ज्ञायकस्वभावमें—खड़े हैं वे धर्मात्मा—सम्यग्दृष्टि हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत-७६

शुद्धस्वरूप आत्मामें मानों विकार अंदर प्रविष्ट होगये हों ऐसा दिखायी देता है, परन्तु भेदज्ञान प्रगट करनेपर वे ज्ञानरूपी चैतन्य-दर्पणमें प्रतिबिम्बरूप हैं। ज्ञान-वैराग्यकी अचिंत्यशक्तिसे पुरुषार्थकी धारा प्रगट कर। यथार्थदृष्टि (द्रव्यपर दृष्टि) करके ऊपर आ जा। चैतन्य-द्रव्य निर्मल है। अनेक प्रकारके कर्मके उदय, सत्ता, अनुभाग तथा कर्मनिमित्तक विकल्प आदि तुझसे अत्यंत भिन्न हैं॥७६॥

'शुद्धस्वरूप आत्मामें मानों विकार अंदर प्रविष्ट होगये हों ऐसा दिखायी देता है, परन्तु भेदज्ञान प्रगट करनेपर वे ज्ञानरूपी चैतन्य-दर्पणमें प्रतिबिम्बरूप हैं।'

अज्ञानीको ऐसा भासित होता है मानों शुद्धस्वरूप आत्मामें विकार भीतर प्रवेश कर गया हो। क्या कहना चाहते हैं? कि—दया, दान, व्रत, भक्ति आदिका जो राग होता है वह मानों आत्मामें एकाकार हो ऐसा अज्ञानीको लगता है। भले ही दिगम्बर मुनिपना धारण किया हो, किन्तु राग और विकल्पसे लाभ होगा ऐसी मान्यता यदि हो तो वह मिथ्यादृष्टि है।

भेदज्ञान प्रगट करने पर वे—शुभाशुभ विकार—ज्ञानरूपी चैतन्यदर्पणमें प्रतिबिम्बरूप हैं। दर्पणमें जो अग्नि आदि दिखायी देते हैं वे प्रतिबिम्ब है, वहाँ अग्नि नहीं है; उसीप्रकार आत्माकी प्रतीति होनेपर जो रागका ज्ञान हो वह राग ज्ञानका स्वरूप नहीं है। दर्पणमें जिसप्रकार वस्तु दिखायी देती है उसीप्रकार ज्ञानमें राग ज्ञात होता है। दर्पणमें अग्निका प्रतिबिम्ब दिखनेसे अग्नि दर्पणमें नहीं आ जाती; उसीप्रकार ज्ञानमें राग दिखायी देनेसे, राग ज्ञानमें नहीं आ जाता। 'घट घट अंतर जिन बसै, घट घट अंतर जैन।' अहा! मैं जिनस्वरूपी आत्मा हूँ, राग मेरे आत्मामें नहीं है—यह बात अज्ञानीको नहीं बैठती। दर्पणमें जो प्रतिबिम्ब दिखायी देता है वह उसकी स्वच्छता है; उसीप्रकार ज्ञानमें राग दिखायी देता है वह ज्ञानकी स्वच्छता है। ज्ञानका स्वभाव स्व-परप्रकाशक है, इसलिये राग ज्ञानमें ज्ञात होने—झलकनेसे—ज्ञानमें राग नहीं आ जाता। ज्ञानमें राग ज्ञात होनेसे, ज्ञान रागको जानता है—ऐसा कहना व्यवहार है। वैसे तो राग सम्बन्धी ज्ञान स्वयं अपनेसे प्रगट हुआ है। वास्तवमें तो, ज्ञान अपनेको जाने और रागको जाने—ऐसा ही उसका स्व-परप्रकाशक स्वभाव है। वह स्व-परप्रकाशक ज्ञान रागमें प्रविष्ट नहीं हो जाता, किन्तु रागसे भिन्न रहकर रागको जानता है। रागको जाननेवाला अपना ज्ञान अपनेसे होता है, रागसे नहीं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहा! तीनलोकके नाथ जिनेश्वरदेव तथा दिगम्बर संत जो कहते हैं वही यह वाणी है। देव-शास्त्र-गुरुकी श्रद्धा, पंचमहाव्रतके विकल्प—वह राग कहीं आत्मामें प्रविष्ट नहीं हुआ है।

प्रश्न :—ऐसा विकल्प तो मुनिको होता है ना?

उत्तर :—हाँ, हेयबुद्धिसे होता है। मुनिको जो राग और विकल्प होते हैं वे दुःख है, आकुलता है; परन्तु वे त्रैकालिक स्वरूपमें प्रविष्ट नहीं हो गये हैं ऐसा मुनि जानते हैं। मिथ्यादृष्टिको भी त्रैकालिक आत्मामें राग नहीं है, परन्तु वह राग और आत्माको एक मानता है। भले ही वह साधु हो तथापि अज्ञानी है; और गृहस्थाश्रममें सम्यग्दृष्टि भी, राग और आत्माको स्वरूपसे भिन्न मानता है इसलिये, ज्ञानी है।

रागसे लाभ माननेवाला ऐसा मानता है कि 'राग आत्मामें प्रविष्ट हो गया है,' किन्तु ऐसा है नहीं। उसके ज्ञानमें वे ज्ञेय—ज्ञात होने योग्य पदार्थ—प्रतिसमय ज्ञात हो जाते हैं, किन्तु अज्ञानीको उसका ज्ञान नहीं है।

आत्माकी जो ज्ञानपर्याय वर्तमान है वह पर्याय ज्ञेयपदार्थको जानती है। स्वभावकी ओर देखे तो त्रैकालिक ज्ञायकको जानती है और पर्यायकी ओर देखे तो रागादि हों उन्हें जानती है; क्योंकि ज्ञायकप्रभु तो ज्ञाता...ज्ञाता...ज्ञाताका कार्य करता है। ज्ञानमें प्रतिबिम्ब कहा वहाँ ज्ञेय वस्तुएँ ज्ञानमें नहीं आ जाती; परन्तु सन्मुख जैसे रागादि ज्ञेय हैं वैसा यहाँ ज्ञान होता है। रागकी अपेक्षा रखे बिना, ज्ञानकी पर्याय स्व-परप्रकाशकपनेके सामर्थ्यवाली होनेसे, ज्ञान स्वयं अपनी झलकमें रागादि ज्ञेयको जानता है। 'ज्ञेयको जानता है' ऐसा कहना वह, उस कथनमें ज्ञेयकी—परकी—अपेक्षा आनेसे, व्यवहार है। बड़ा ही कठिन काम है भाई! क्या हो सकता है? जीव अनन्तकालका भटका हुआ है।

'ज्ञान-वैराग्यकी अचिंत्यशक्तिसे पुरुषार्थकी धारा प्रगट कर।'

क्या कहा? कि—भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप तथा रागरहित वैराग्यस्वरूप है; वह परसे उदास और स्वभावसे परिपूर्ण है। उसमें, ज्ञानकी तथा वैराग्यकी अचिन्त्यशक्तिसे भीतर पुरुषार्थकी धारा प्रगट कर। आत्माके शुद्धचैतन्यस्वरूपकी प्रतीतिरूप परिणति वह 'ज्ञान' और रागका अभाव उसका नाम 'वैराग्य'। ज्ञानकी तथा वैराग्यकी अचिंत्य शक्तियाँ दोनों साथ होती हैं। स्त्री-बच्चोंको छोड़ देना वह वैराग्य नहीं है, परन्तु अंतरमें रागसे भिन्न होकर सहज उदासीनरूप वर्तता है उसे सच्चा वैराग्य कहते हैं। स्वरूपमें लीनता सो ज्ञान, और रागसे विरक्तता सो वैराग्य। ज्ञान-वैराग्यकी—किसी कल्पनासे जिसका माप नहीं आ सके ऐसी—अचिंत्यशक्तिसे पुरुषार्थकी धारा प्रगट कर।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रश्न :—वीतरागका मार्ग ऐसा होगा? हम तो यात्रा करो, मन्दिर बनवाओ, पूजा-भक्ति करो, व्रत पालो और उपवास करो–ऐसा उपदेशकोंसे सुनते हैं?

उत्तर :—भाई! 'करना...करना...' यह तो राग है और रागका करना वह आत्माका 'मरना' है। समयसारके निर्जरा-अधिकारमें कहा है कि :—सम्यग्दृष्टि जीवको नियमसे ज्ञान और वैराग्य—ये दो शक्तियाँ होती हैं। चौथे गुणस्थानमें भी स्वरूपके ज्ञानकी और रागके अभावरूप वैराग्यकी अचिंत्यशक्ति प्रगट हुई है। ज्ञान एवं वैराग्यकी अचिंत्यशक्तिसे पुरुषार्थकी जो धारा प्रगट होती है उसे धर्मधारा कहा जाता है, साथमें जितना राग रह जाता है उसे कर्मधारा कहा जाता है। साधकको अभी राग शेष है; उस रागका ज्ञान होता है वहाँ राग ज्ञानमें प्रविष्ट नहीं होता अर्थात् ज्ञानके स्वरूपमें राग नहीं आता। राग सम्बन्धी जो ज्ञान होता है वह रागसे नहीं किन्तु स्वयं अपनेसे होता है।

आत्माका आश्रय करना और रागका आश्रय छोड़ना। 'स्वमें बस और परसे खस।' भले ही भगवानकी भक्ति या स्मरणका राग हो, परन्तु उस रागसे खस, उससे हट, विमुख हो; क्योंकि मार्ग वीतराग है। "स्वभावमें बस और विभावसे खस; यह है टूंका टच, इतना करे तो बस"। उपदेशमें इसका सारा विस्तार और स्पष्टीकरण आता है। संक्षेपमें कहा जाये तो भीतर प्रभु वीतरागस्वरूप ही है, उसमेंसे वीतरागता प्रगट होती है। जिसे अंतरसे ज्ञानकी शक्ति प्रगट होती है। उसीको रागके अभावरूप वैराग्यकी सच्ची शक्ति प्रगट होती है। ज्ञानकी शक्ति बिना वैराग्यकी सच्ची शक्ति प्रगट नहीं होती। सम्यग्दृष्टि जीवको चौथे गुणस्थानमें भी यह स्वरूपज्ञानकी तथा रागके अभावरूप वैराग्यकी अचिंत्यशक्ति प्रगट हुई होती है। वीतराग जिनेश्वर त्रिलोकनाथ परमेश्वर कहते हैं वही यह बात है। भगवान महाविदेहमें यह बात कह रहे हैं।

✾

यह बेनके वचन तो अनंत ज्ञानियोंके वचन हैं। इन्द्रोंके समक्ष वर्तमानमें श्रीसीमंधरदेव जो कह रहे हैं वही यह वाणी है। यह कोई साधारण पुस्तक नहीं है, इसमें तो बहुल-बहुत भरा है। भाषा मधुर है, सरल है; भाव गहरे और गंभीर हैं। दिव्यध्वनिका यह स्वर है। अरे, एकबार मध्यस्थरूपसे यह पढ़े तो सही! भगवानकी कही हुई ॐकार ध्वनि है, जिसे बहिनने प्रगट किया है। *—पूज्य गुरुदेव.*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-२६

ता. १-७-७८

वचनामृत-७६

यह ७६माँ बोल पहले चल चुका है;...फिरसे लेते हैं।

'शुद्धस्वरूप आत्मामें मानों विकार अन्दर प्रविष्ट हो गये हों ऐसा दिखायी देता है, परन्तु भेदज्ञान प्रगट करनेपर वे ज्ञानरूपी चैतन्य-दर्पणमें प्रतिबिम्बरूप हैं।'

आत्मा चैतन्यप्रकाशका पुंज एवं आनन्दरसका कन्द है। उसमें व्यवहार-रत्नत्रयके भाव—दया, दान, व्रत—तपादिके राग—मानों भीतर प्रविष्ट हो गये हों ऐसा अज्ञानीको लगता है; परन्तु उन विभावभावोंने चैतन्यप्रकाशमें कभी प्रवेश किया ही नहीं है। समयसारकी छठवीं गाथाकी टीकामें कहा है ना!—ज्ञायकभाव शुभ-अशुभभावरूप हुआ नहीं है। सम्यग्दर्शनका विषय जो त्रैकालिक ध्रुव ज्ञानरस, उसके प्रकाशके पुंजमें विकार मानों भीतर प्रवेश कर गया हो ऐसा अज्ञानीको दिखायी देता है; परन्तु भेदज्ञान प्रगट करने पर—स्वभाव और राग उन दोनोंका स्वरूप ही भिन्न है; राग है वह नव तत्त्वोंमें आस्रवतत्त्व है; और ज्ञायकस्वभाव है वह नवतत्त्वमें जीवतत्त्व है, त्रैकालिक स्वभाव अविकृत, अकृत्रिम एवं निरुपाधिस्वरूप है और रागादि विभाव क्षणिक, विकृत एवं उपाधिस्वरूप हैं; इसप्रकार उन दोनोंका स्वरूप भिन्न है ऐसा ज्ञान होनेपर—वे मात्र ज्ञानरूपी चैतन्य-दर्पणमें प्रतिबिम्बरूप हैं। ज्ञानके परिणमनकी कोई शक्ति ही ऐसी है कि उसकी स्वच्छतामें रागादि भिन्नरूप ज्ञात हो जाते हैं, चैतन्य-दर्पणमें वे प्रतिबिम्बरूप हैं।

अरेरे! चौरासी लाख योनियोंके अवतारमें जन्म-मरण करके यह जीव दुःख सह रहा है; स्वभावसे स्वयं आनंदस्वरूप होनेपर भी पराधीनता और आकुलतामें घिर गया है। भले ही कदाचित् बाहरसे धनवान और शरीरसे निरोग दिखायी दे, परन्तु अपने शुद्ध स्वरूपकी प्रतीति न होनेसे वह अंतरमें दुःखी है। दुःखसे छूटना हो तो रागादि विकारको चैतन्यसे भिन्न करना। वे अपने-अपने स्वरूपसे भिन्न हैं इसप्रकार भिन्न करने पर ज्ञानरूपी चैतन्य-दर्पणमें रागादि प्रतिबिम्बरूप हैं।

'ज्ञान—वैराग्यकी अचिंत्य शक्तिसे पुरुषार्थकी धारा प्रगट कर।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रभु स्वयं ज्ञानस्वरूप आत्मा–उसका ज्ञान, और रागका–व्यवहारका–जो विकल्प उससे वैराग्य, उस ज्ञान-वैराग्यकी अचिंत्य शक्तिसे भीतर पुरुषार्थकी धारा प्रगट कर। जो रागकी धारामें पड़ा हुआ दिखायी देता है वह तो मिथ्यादृष्टि है। ज्ञानस्वरूप आत्माके ज्ञानकी धारावाही शक्ति और रागसे विरक्ततावाली वैराग्यशक्ति दोनों एक धारामें प्रवाहित हों ऐसा पुरुषार्थ तू कर। अहा! ऐसी बातें हैं!

'यथार्थ दृष्टि (द्रव्यपर दृष्टि) करके ऊपर आ जा।'

अर्थात् क्या? कि–रागके एकत्वसे रागके साथ जो अभेद दिखायी देता है उसे छोड़कर पृथक् हो जा, ऊपर आजा। यह, सम्यग्दर्शनरूपी भूमिकाकी बात है। उसमें अतीन्द्रिय ज्ञान एवं अतीन्द्रिय आनन्दकी उत्पत्ति होती है। उस भूमिके बिना चारित्र नहीं होता, व्रत नहीं होते–कुछ भी नहीं होता।

एक कुएँमें प्राकृतिक विषैली गैस निकली। एकके बाद एक आठ आदमी कुएँमें उतरे और आठों मर गये। 'अरे! जानेवाला आदमी वापिस क्यों नहीं आता?' देखने जाय वहाँ वह भी मर जाय! वैराग्य उत्पन्न हो ऐसी बात है। उसीप्रकार भगवान आत्मा रागको–पुण्य-पापके परिणामको–अपना मानकर देखने जाता है वह विषैली गैस है, उससे वह मर जाता है, उसका भावमरण होता है। परन्तु यदि भीतर चैतन्य भगवानको देखने जाय तो उसे क्रमशः आठों कर्मोंका अभाव होकर सिद्धदशा होती है; वहाँ संसार मर जाता है और जीव जीवित हो जाता है।

भगवान आत्मा दया-दान एवं पूजा-भक्तिके रागमें–उसके भारमें–दब गया है। पर्यायबुद्धिमें जो रागद्वेष होता है उसमें तू दब गया है। जो दब गया है उसे द्रव्यपर दृष्टि करके ऊपर ला, यथार्थदृष्टि करके ऊपर आजा।

रागको ऊपर लाकर 'मैं राग ही हूँ' ऐसा मान बैठा है, रागी होकर हर्ष मानता है; उसके बदले रागसे भिन्न होकर चैतन्यको ऊपर ला। रागका विकास हो वह छोड़ दे। अहा! ऐसी बात है।

प्रश्नः—आत्माको मुख्य करके रागको गौण कर ना?

उत्तरः—मुख्य वस्तु ही आत्मा है। राग आत्माके मूल स्वभावमें है ही नहीं। वस्तु भूतार्थ है और पर्याय गौण करके अभूतार्थ है। रागकी पर्याय है तो उसे जाननेवाली ज्ञानकी पर्याय है ना? पर्याय होनेपर भी त्रैकालिक भूतार्थको–सत्यको–प्रगट करनेके लिये उसे गौण कर दे। 'पर्याय नहीं है' ऐसा कहते हैं वहाँ उसे गौण करके 'नहीं है' कहते हैं। यदि पर्याय 'सर्वथा नहीं है' ऐसा कहे तो एकान्त–वेदान्त हो जाय। यहाँ तो पर्यायका लक्ष छुड़ानेके लिये गौण करके 'नहीं है' ऐसा कहा है, और त्रैकालिक वस्तुको

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मुख्य करके उसे निश्चय कही है, क्योंकि उसकी दृष्टि कराना है। क्या पर्याय नहीं है? राग नहीं है? यदि राग न हो तो अंतर-आनन्दका प्रगट अनुभव होना चाहिये!

'चैतन्यद्रव्य निर्मल है।'

भगवान आत्मा रागस्वरूप तो है ही नहीं। भगवान कहते हैं : हमारा स्मरण करनेसे, हमारे ऊपर दृष्टि करनेसे तुझे जो राग होता है वह तेरा स्वरूप ही नहीं है। चैतन्य प्रभु तो निर्मल है। अहा! आठ-आठ वर्षके चक्रवर्ती राजकुमार हों, वे भी रागसे भिन्न होकर अंतरमें चैतन्यको देखते हैं और सम्यग्दर्शन प्राप्त करते हैं। वे आत्माका विशेष अनुभव करनेके लिये वनमें चले जाते हैं। वे राजकुमार कहते हैं कि—यह सब बाह्य वैभव तथा बाह्य क्रीड़ा छोड़कर हम अपनी अंतरदशामें केलि करने जा रहे हैं; अंतरमें आनन्दका कन्द ऐसा चैतन्य-उद्यान खिल रहा है, उसे अधिक विकसित करनेके लिये हम साधु बनते हैं।

यहाँ कहते हैं कि चैतन्यतत्त्व तो निर्मल है, वास्तवमें निर्मल है। प्रभु! त्रैकालिक द्रव्य तो निर्मल है ही, रागके अंशने भी उसका स्पर्श नहीं किया है। रागका अंश भी जिसके स्वरूपमें नहीं है ऐसा ज्ञायकद्रव्य त्रिकाल निर्मल है।

'अनेक प्रकारके कर्मके उदय, सत्ता, अनुभाग तथा कर्म-निमित्तक विकल्प आदि तुझसे अत्यंत भिन्न हैं।'

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि अनेक प्रकारके कर्म आत्मासे अत्यन्त भिन्न हैं। आत्मप्रदेशोंमें रहे हुए कर्मपरमाणुओंकी सत्ता भी तेरी वस्तुसे भिन्न है। कर्मका जो प्रगट उदय हुआ उससे भी चैतन्यप्रभु तो भिन्न है। प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग—यह जो चार कर्मके बोल हैं उनसे ज्ञायकप्रभु त्रिकाल भिन्न है ऐसा तेरी दृष्टिमें आना चाहिये।

पहले कर्मका उदय, सत्ता और अनुभाग सम्बन्धी कथन किया। अब कहते हैं कि—निमित्तके आश्रयसे जो शुभाशुभ विकल्प होते हैं; वे हुए तो हैं तुझसे; तथापि वे विकल्प आत्माके स्वरूपसे अत्यन्त भिन्न हैं। अहा! दया, दान आदिका राग आता है, परन्तु वह तेरे स्वरूपसे अत्यंत भिन्न है। ऐसी दृष्टि हुए बिना जो सत्यार्थ है वह नहीं बैठेगा। पुण्य-पापके भाव आत्माका परमार्थस्वरूप नहीं है, इसलिये निश्चयसे वह असत्यार्थ है, अपरमार्थ है। अहा! ऐसी बात है! चौरासीके अवतारोंका अन्त कर देनेकी बात है भाई! भीतर आनन्दका नाथ, मात्र चैतन्यप्रकाश है उसे तू देख। उसमें कर्मके उदय, सत्ता और अनुभाग तो नहीं हैं, परन्तु कर्मके लक्षसे होनेवाले पुण्य-पापके विकल्प भी तेरे स्वभावमें नहीं हैं। अहा! भाषा सरल है और भाव अलौकिक हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रभु! पुण्य-पापके रागमें तू भूल गया है; वह तेरा स्वरूप नहीं है; तू शत्रुमें मिल गया है वहाँसे लौट आ। अनंत ज्ञान, अनन्त आनन्दादि तेरा सज्जनतापूर्ण परिवार भीतर बैठा है। आठ वर्षके बालक भी—जो अभी पाठशालामें पढ़ने भी नहीं गये होंगे—यह बात सुनकर रोमांचित हो जाते हैं; उनके आत्मामें परिवर्तन हो जाता है कि अहा! जो पढ़ना था वह पढ़ लिया। भगवान आत्मा विकल्पसे भी न्यारा है—ऐसा जो पाठ अंतरमें पढ़ लिया है वह केवलज्ञानको लायेगा। यह कर्म-निमित्तक विकल्प आत्मासे अत्यन्त भिन्न हैं। तेरा द्रव्य रागरूप नहीं हो गया है, क्योंकि दोनोंमें स्वभावभेद है। दया, दानादिके विकल्प तो अचेतन हैं, और प्रभु! तू चेतन है। चेतन अचेतन कैसे होगा? भाई! वस्तुस्वरूप ही ऐसा है।

*

वचनामृत-८०

विधि और निषेधके विकल्प-जालको छोड़। मैं बँधा हूँ, मैं बँधा नहीं हूँ—वह सब छोड़कर अंदर जा, अंदर जा; निर्विकल्प हो, निर्विकल्प हो ॥ ८० ॥

'विधि और निषेधके विकल्प-जालको छोड़।'

मैं शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, ज्ञायक हूँ, चैतन्यघन हूँ—ये विधिके विकल्प हैं और मैं राग नहीं हूँ, विकल्प नहीं हूँ, बँधा नहीं हूँ—ये निषेधके विकल्प हैं; उस विकल्प जालको छोड़। प्रभु आत्मा तो विधि-निषेधके विकल्प-जालसे पार है। समयसारकी १४२वीं गाथाके शीर्षकमें कहा है कि—'उससे क्या?' मैं शुद्ध हूँ और अबद्ध हूँ—ऐसा नयपक्षका विकल्प आया उससे तुझे क्या लाभ है? 'आत्मा बँधा है' ऐसे व्यवहारके पक्षको तो पहलेसे ही छुड़ाते आये हैं, परन्तु 'मैं बँधा नहीं हूँ, शुद्ध हूँ' ऐसे विकल्प जालसे भी तुझे क्या लाभ है?

अहा! समयसार! वह तो चिदानन्द भूपालकी—चिदानन्द सम्राटकी राजधानी है। उसकी मुद्रा—सिक्का—निर्मलदशा है। अज्ञानदशामें मिथ्यात्वका एकछत्र राज्य है; जहाँ देखो वहाँ मिथ्यात्व ही होगा। साधु बनकर बैठा हो तब भी रागका कर्ता, और मुझे व्यवहार करना चाहिये ऐसी मान्यता;—इसप्रकार मिथ्यात्वका शासन एकछत्र चलता है। राग आये वह अलग बात है, परन्तु 'राग करना चाहिये' यह अभिप्राय मिथ्यात्व है।

यहाँ कहते हैं कि—आत्मा ज्ञान और आनन्दादि अनंत गुणोंका सागर है ऐसा जो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विधिका–'अस्ति'की ओरका विकल्प, और उसमें राग नहीं है, विभाव नहीं है ऐसा निषेधका–'नास्ति'की ओरका विकल्प; उस सब विकल्प-जालको छोड़।

'मैं बँधा हूँ, मैं बँधा नहीं हूँ–यह सब छोड़कर अंदर जा, अंदर जा; निर्विकल्प हो, निर्विकल्प हो।'

'मैं बँधा हूँ' ऐसे व्यवहारका निषेध करते ही आये हैं; परन्तु 'मैं बँधा नहीं हूँ' ऐसे विकल्पकी वृत्ति उठे वह भी रागका अंश है। लोगोंको अभी बाह्य व्यवहार-श्रद्धाका भी ठिकाना नहीं होता, इसलिये यह सूक्ष्म बात समझनेमें कठिन लगती है।

सौराष्ट्रके सरा ग्राममें मेलड़ी माताका स्थान है। वहाँ प्रौषध, प्रतिक्रमण करनेवाले एक प्रमुख भाईने व्याख्यान समाप्त होनेके बाद कहा कि–साहब, एक माताजी हैं, प्रतिवर्ष दो हजार रुपये देती हैं, उन्हें दर्शन देनेके लिये पधारिये ना! मनमें सोचा कि कोई ठकुराइन होंगीं वे दो हजार रुपये खर्च करती होंगीं। हमें वहाँ ले गये। मकानके बाहर लिखा था कि मेलड़ी माता सत्य है। 'अरे, मर गये! अब आये हैं तो देखते ही चलें कि क्या है?' कमरेमें लकड़ीके नोकदार भाले, चूनरी आदि रखे थे। उनपर हाथ रखकर वे भाई बोले : महाराज! इसे मांगलिक सुनाइये वह सुनेगी, सुनेगी!' अरे भाई! जैनकुलमें जन्म लेकर यह क्या करते हो तुम? जैन किसे कहते हैं? ऊपरसे देव आकर कहे कि–तेरा रोग दूर किये देता हूँ, तू मुझे मान; तब भी उसे न मानें। सम्यग्दृष्टि देवको भी नहीं मानता उसके बदले ऐसी भ्रमणा? यह देवी पैसा देगी और रोग मिटायेगी–ऐसी झूठी भ्रमणा! तुम्हें यह क्या हुआ है? जहाँ ऐसी घोर अंधश्रद्धा हो वहाँ आत्माकी बात कैसे समझमें आये?

वीतरागदेव तो कहते हैं कि जो छद्मस्थ प्राणी हमें याद करेगा उसे राग होगा, क्योंकि हम उसके लिये परद्रव्य हैं। 'मोक्षपाहुड़'में कहा है कि—'**परदव्वादो दुग्गई, सद्दव्वादो हु सुग्गई हवइ।**'

परद्रव्यथी दुर्गति खरे, सुगति स्वद्रव्यथी थाय छे;
–ओ जाणी, निजद्रव्ये रमो, परद्रव्यथी विरमो तमे।१६।

यहाँ तो यह भी नहीं लिया। यहाँ तो 'मैं बँधा नहीं हूँ', 'मैं परमात्मा हूँ'–ऐसे जो विकल्प उठते हैं उन्हें भी छोड़। विकल्पसे–रागसे भीतर विराजमान परमात्मा हाथ नहीं आयगा। 'मैं अबद्ध हूँ' ऐसे विकल्प तक आये तथापि उसने भीतर प्रवेश नहीं किया है; वह आँगनमें, रागमें, दुःखमें खड़ा है। विकल्प है वह दुःख है, ज्ञेय है, और भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द है। अहा! 'मैं अतीन्द्रिय आनन्द हूँ' ऐसे विकल्पको भी छोड़। वह सब छोड़कर अन्दर जा, अन्दर जा; जहाँ भगवान आत्मा निर्विकल्परूपसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विद्यमान है वहाँ जा। अनंत तीर्थंकर और केवली ऐसा कहते आये हैं। महाविदेहमें तीर्थंकरका कभी विरह नहीं है; वहाँ भी अनन्तबार गया, किन्तु स्वयं अपनी विपरीत अभिप्रायरूप पकड़ नहीं छोड़ी।

भाई! तेरी महानताका पार नहीं है। यात्रा और व्रतादि क्रियाकाण्डका स्थूल राग और उससे आत्माको कुछ लाभ होगा यह बात तो दूर रही, किन्तु 'मैं बँधा नहीं हूँ' ऐसे विकल्पसे भी आत्मा हाथ नहीं आयगा। वह भी वृत्तिका उत्थान है ना? ऐसी वृत्तिको भी छोड़ तो तुझे अंतरमें अबद्धस्वरूपका अनुभव होगा। विकल्पको छोड़कर अन्दर जा, अन्दर जा; निर्विकल्प हो, निर्विकल्प हो; तब तुझे सम्यग्दर्शन होगा।

✽

वचनामृत-८१

जैसे स्वभावसे निर्मल स्फटिकमें लाल–काले फूलके संयोगसे रंग दिखते हैं तथापि वास्तवमें स्फटिक रंगा नहीं गया है, वैसे ही स्वभावसे निर्मल आत्मामें क्रोध–मानादि दिखायी दें तथापि वास्तवमें आत्मद्रव्य उनसे भिन्न है। वस्तुस्वभावमें मलिनता नहीं है। परमाणु पलटकर वर्ण-गंध-रस-स्पर्शसे रहित नहीं होता वैसे ही वस्तुस्वभाव नहीं बदलता। यह तो परसे एकत्व तोड़नेकी बात है। अंतरमें वास्तविक प्रवेश कर तो (परसे) पृथकृता हो॥ ८१॥

'जैसे स्वभावसे निर्मल स्फटिकमें लाल-काले फूलके संयोगसे रंग दिखते हैं तथापि वास्तवमें स्फटिक रंगा नहीं गया है, वैसे ही स्वभावसे निर्मल आत्मामें क्रोध–मानादि दिखायी दें तथापि वास्तवमें आत्मद्रव्य उनसे भिन्न है।'

लाल-काले फूलोंके संयोगसे स्फटिकमें रंग दिखते हैं तथापि स्फटिक स्वभावसे तो उस समय भी निर्मल है, रंग नहीं गया है। कहा है ना!—

जेम निर्मलता रे रत्न स्फटिक तणी, तेम ज जीवस्वभाव;
श्री जिन वीर रे धर्म प्रकाशियो, प्रबल कषाय अभाव।

रागकी मन्दता और तीव्रता–यह सब कषाय है; उसके अभावको श्री वीर भगवानने धर्म कहा है।

प्रश्न:—उस धर्मका कोई साधन है या नहीं?

उत्तर:—भाई! आत्माको रागसे भिन्न करना–प्रज्ञाछैनी–वह साधन है। 'वह जीव कैसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ग्रहण किया जाय? जीवका ग्रहण होता है प्रज्ञा द्वारा।' यह भगवान आत्मा स्वभावसे निर्मल है, शुद्ध है, पवित्र है, अभेद है, एकरूप है; उसमें क्रोध-मानादि दिखते हैं तथापि वास्तवमें आत्मद्रव्य उसरूप नहीं होगया है। स्फटिकमें रंगकी झलक दिखती है तथापि वह रंग नहीं गया है, स्वभावसे निर्मल—अरंग है; उसीप्रकार आत्मा स्वभावसे निर्मल—अराग है। रागमें माया और लोभ तथा द्वेषमें क्रोध और मान—इसप्रकार राग-द्वेषमें चारों कषाय आजाते हैं। आत्मा राग-द्वेषसे रंगा हुआ दिखता है किन्तु, स्फटिककी भाँति, वह स्वभावसे निर्मल ही है।

आचार्यदेवने समयसारमें कहा है कि—अपने और परके मोहनाशके लिये यह टीका करता हूँ। मुझमें जो अस्थिरताका मोह है वह अनादिका है, नया नहीं है। अनादि ऐसे आत्मस्वभावकी निर्मल प्रतीति तो है; परन्तु पर्यायमें जो अस्थिरताका राग है वह 'है' रूप दिखायी देता है; उसके नाशके लिये—अपने परिणामकी, अनुभूतिकी परम विशुद्धिके लिये—यह टीका करनेका शुभराग है, परन्तु वस्तु स्वयं रागरूप रंगी नहीं है। अहा! भगवान आत्मा तो सदा स्वभावसे निर्मल ही है, उसे रागका रंग कभी स्पर्श ही नहीं करता, विभावका रंग कभी चढ़ता ही नहीं है।

दामनगर (सौराष्ट्र)में एक बाबा था। जातिका राजपूत था। उसने एक औरत रखी थी, जिसका नाम था लक्ष्मी। औरतने उसे छोड़ दिया तो बाबाका कषाय तीव्र हो उठा। उस औरतका अपमान करनेके लिये वह अपने काले कुरते पर 'लक्ष्मी...लक्ष्मी' नाम लिखकर गाँवमें घूमता था। किसीने उससे कहा कि—यह तुझे शोभा नहीं देता। बाबा बोला—'राजपूतको जो रंग चढ़ गया वह कभी उतरता नहीं है।' अरेरे! जीवको कैसा रंग चढ़ गया! यहाँ तो कहते हैं कि—तीनलोकके नाथ अपने चैतन्यप्रभुको, पापके रागकी बात तो दूर रही, शुभरागका भी रंग नहीं चढ़ता।

स्फटिक मणिमें लाल झांईं दिखे तथापि वह स्वभावसे निर्मल ही है, लाल रंगसे रंगा नहीं है; उसीप्रकार भगवान आत्मामें क्रोधादि हों और दिखें, तथापि वह स्वभावसे उनके रंगमें रंगा नहीं है, उसे रागका रंग चढ़ा ही नहीं है। वीतरागस्वभावी आत्मद्रव्य क्रोध-मानादि विभावरंगसे भिन्न है।

'वस्तुस्वभावमें मलिनता नहीं है।'

त्रैकालिक चैतन्यप्रभुमें, जिनस्वरूपी भगवान आत्मवस्तुके स्वभावमें, मलिनता—रागादिकी अशुद्धता—नहीं है। जिसप्रकार स्फटिकमें लाल झांईं दिखती है तथापि वह लालरूप नहीं हो गया है, उसीप्रकार भगवान आत्मामें शुभाशुभ विकार दिखायी देता है तथापि आत्मा उसरूप हो नहीं गया है। रागादि विकल्प और त्रैकालिक स्वभावके बीच संधि—दरार है; वे दोनों कभी निःसंधि—एकमेक नहीं हुए, भिन्न ही हैं। अरे! ऐसी बातें लोगोंको रूखी लगती हैं!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रश्न :—हमें करना क्या?

उत्तर :—वस्तुस्वभावको–ज्ञायक आत्माको–समझकर भीतर जाना, यह करना है। अरेरे! जीवोंको भीतरकी सूझ नहीं पड़ती इसलिये बाहरका–व्रत तथा तपश्चर्यादिका–आग्रह नहीं छूटता। 'शुभभाव आत्माका स्वभाव नहीं है'–ऐसा कहनेसे शुभ छोड़कर अशुभमें आनेका तात्पर्य नहीं है; किन्तु शुभका भी विकल्प छोड़कर निर्विकल्प हो, अंतरमें जा,—इसप्रकार विभावको छोड़कर भीतर स्वभावमें जानेकी बात है; क्योंकि वस्तुस्वभावमें मलिनता नहीं है।

'परमाणु पलटकर वर्ण-गंध-रस-स्पर्शसे रहित नहीं होता वैसे ही वस्तुस्वभाव नहीं बदलता।'

न्याय दिया है। दृष्टांत भी देखो! परमाणु अर्थात् सूक्ष्मसे सूक्ष्म रजकण; उसमें वर्ण-गंध-रस-स्पर्श हैं। परमाणुका चाहे जितना परिवर्तन हो तथापि वह कभी स्पर्श-रस-गंध-वर्णरहित नहीं हो जाता; क्योंकि वस्तुस्वभाव कभी बदलता नहीं है। दृष्टान्त बहुत सरल है। उसीप्रकार भगवान आत्मा जो कि अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत आनन्द तथा अनंत वीर्य–अनंत चतुष्टयस्वरूप है वह बदलकर तीन कालमें कभी रागादिरूप नहीं होता। पुद्गल-परमाणु जिसप्रकार वर्णादि रहित नहीं होता उसीप्रकार भगवान आत्मा भी ज्ञानादिस्वभाव रहित नहीं होता। हो तो आत्मवस्तु ही न रहे। कठिन काम है! श्रीमद् कहते हैं कि :—

अनंतकाळथी आथड्यो, विना भान भगवान;
सेव्या नहि गुरु संतने, मूक्युं नहि अभिमान।

–परन्तु गुरु किसे कहा जाय? संत किसे कहें? इसकी भी खबर नहीं पड़ती। जिसे सत्‌की प्रतीति नहीं है, सत्‌का सम्यग्दर्शन नहीं है उसे गुरु और संत कैसे कहा जायगा? उसका समागम करे और माने कि लाभ होगा; लेकिन लाभ कहाँसे होगा?

यहाँ कहते हैं कि–परमाणु जिसप्रकार अपने गुणसे रहित नहीं होता उसीप्रकार चैतन्य-अस्तिस्वभाव आत्मा अपने गुणस्वभावसे रहित कभी नहीं होता। पर्यायमें भले रागादि हों, परन्तु वस्तुका मूल स्वभाव पलटकर गुणका अभाव होजाय ऐसा कभी नहीं होता। पर्यायमें रागादि हों तो वह एक समयकी दशा है; परन्तु त्रैकालिक वस्तु जो भगवान आत्मा वह पलटकर अनंतज्ञान, अनंतसुख आदि अपने गुणोंसे रहित कभी नहीं होता। परमाणु पलटकर वर्णादि रहित होता है? हो तो परमाणु ही नहीं रहता। इसप्रकार वस्तुस्वभाव कभी पलटता ही नहीं है। अहा! ऐसा उपदेश और ऐसी व्याख्या!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'यह तो परसे एकत्व तोड़नेकी बात है। अंतरमें वास्तविक प्रवेश कर तो (परसे) पृथक्ता हो।'

राग और विभावके साथकी एकताबुद्धि तोड़नेके लिये यह बात है। विभावको और स्वभावको भिन्न करके अंतरमें यथार्थ प्रवेश कर। धारणामें ले लेना कि आत्मा रागसे भिन्न है—ऐसा नहीं; परन्तु अंतर्स्वभावमें प्रवेश कर तो भिन्न हो—स्वभाव एवं विभाव दोनों पृथक् हो जाते हैं।

✾

बेनकी पुस्तकमें बहुत संक्षेपमें माल ही माल भरा है। अन्यमतावलम्बियोंको भी रुचे ऐसी पुस्तक है। अरे! इसमें तो तेरी महिमा और बड़प्पनकी बातें हैं। मुनियोंकी कैसी बात ली है!—'मुनियोंको बाहर आना वह बोझरूप लगता है।' पुस्तक प्रकाशित हुई यह बहुत ही अच्छा हुआ! भीतर थोड़ेमें बहुत बातें हैं। *—पूज्य गुरुदेव.*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-२७

ता. २-७-७८

वचनामृत-८२

'मैं तो दर्पणकी भाँति अत्यन्त स्वच्छ हूँ; विकल्पके जालसे आत्मा मलिन नहीं होता; मैं तो विकल्पसे भिन्न, निर्विकल्प आनन्दघन हूँ; ज्योंका त्यों पवित्र हूँ।'—इसप्रकार अपने स्वभावकी जातिको पहिचान। तू विकल्पसे मलिन होकर–मलिनता मानकर भ्रमणामें ठगा गया है; दर्पणकी भाँति जातिसे तो स्वच्छ ही है। निर्मलताके भण्डारको पहिचान तो एकके बाद एक निर्मलताकी पर्यायोंका समूह प्रगट होगा। अंतरमें ज्ञान और आनन्दादिकी निर्मलता ही भरी है।८२।

यह वचनामृतका ८२वाँ बोल है। ८१वाँ बोल पूरा हो चुका है। विषय जरा सूक्ष्म है। अनंत कालमें, भीतर जो सच्चिदानंद प्रभु शुद्ध आत्मा है उसका, सच्चा ज्ञान और सम्यग्दर्शन जीवने कभी नहीं किया है। दूसरा सब किया; क्रियाकाण्डमें–दया, दान, व्रत, तप तथा भक्ति आदिमें–धर्म माना; परन्तु वे सब तो रागकी क्रियाएँ हैं। भगवान आत्मा तो भीतर रागसे भिन्न चैतन्य आनन्दकन्द ज्ञायकतत्त्व है। उस ज्ञायकतत्त्वका, अंतर्मुख होकर, दृष्टि करके अनुभव करना वह धर्मकी पहली सीढ़ी है।

'मैं तो दर्पणकी भाँति अत्यन्त स्वच्छ हूँ; विकल्पके जालसे आत्मा मलिन नहीं होता; मैं तो विकल्पसे भिन्न, निर्विकल्प आनन्दघन हूँ; ज्योंका त्यों पवित्र हूँ।'—इसप्रकार अपने स्वभावकी जातिको पहिचान।'

यह शरीर, वाणी, मन तथा इन्द्रियाँ और बाह्य विषय तो मिट्टी हैं, धूल हैं, जड़ हैं; अंतरमें हिंसा, झूठ, चोरी, विषय भोगकी लालसा, क्रोध-मानादिके परिणाम हों वह पापभाव है; वह कहीं आत्मा नहीं है। तथा दया, दान, व्रत, तप और भक्ति आदिके भाव भी आत्मा नहीं हैं, वह तो पुण्यतत्त्व है। अजीवसे पृथक् और पुण्य-पापके भावसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रहित ऐसा मैं एक, दर्पणकी भाँति, स्वच्छ ज्ञायकभाव हूँ। सम्यग्दर्शनके लिये प्रथम अंतरमें ऐसा निर्णय करना चाहिये। ऐसी सूक्ष्म बात है भाई! तूने अनंतकालमें ज्ञायक भगवानका परिचय नहीं किया।

विकल्पके जालसे आत्मा मलिन नहीं होता। विकल्प अर्थात् राग। दया, दानादिके विकल्प आयें वह राग है। आत्मा अंतरमें सत्, चिद् एवं आनन्दकी मूर्ति है, चैतन्यरसका कन्द है, चैतन्यरसका गढ़ है, उसमें राग प्रवेश नहीं कर सकता। रागसे आत्मा मलिन नहीं होता। प्रभु! आत्मज्ञानकी बात बड़ी सूक्ष्म है! यात्रा, भक्ति करे या मन्दिर बनवाये उससे धर्म नहीं हो जाता। भाई! धर्म कोई और ही वस्तु है।

अहा! भीतर ज्ञानानन्दका नाथ प्रभु भगवान आत्मा है वह विकल्पके जालमें कभी आया ही नहीं। यह (वचनामृत) तो बेनके शब्द हैं न! गुजरातीमें हैं; हिन्दीमें भी आ गये हैं, लेकिन मूल गुजराती हैं। भाई! अनन्तकालमें मनुष्यभव प्राप्त हुआ। उसमें यह जो ज्ञायकवस्तु भीतर विद्यमान है उसे पहिचानकर अनुभव कर! जिसने अनुमानसे या अनुभवसे उसका मूल्यांकन नहीं किया उसने कुछ नहीं किया। लाख व्रत पाले या उपवास करे, लाख भक्ति करे या करोड़ों रुपये दानमें दे,—वह कोई धर्म नहीं है। पुण्य-पापके विकल्प—राग आता है, परन्तु उस रागमें आत्मा नहीं है, और आत्मामें राग नहीं है। प्रभु आत्माको 'भगवान' कहकर बुलाते हैं; 'भगवान आत्मा,' ऐसा सम्बोधन करते हैं। वह भगवान आत्मा, प्रभुकी भक्ति या णमोकार मंत्रके स्मरण आदि रागसे भिन्न है। पुण्य-पापकी वृत्ति वह तो आस्रवतत्त्व है; आत्मतत्त्व आस्रवतत्त्व नहीं हुआ है। जिसमें दया, दान एवं भगवत्-स्मरणके विकल्पका प्रवेश नहीं है ऐसा मैं चैतन्यप्रकाशका पुंज हूँ, वज्रका पिण्ड हूँ,—ऐसा निर्णय कर। आत्माको जाने बिना करोड़पति सेठ भी बेचारे, रंक, भिखारी और दुःखी हैं। अहा! आत्मामें अतीन्द्रिय आनन्द भरा है, उसका विकल्परहित अनुभव कर तो तुझे आनन्द और सुखका मार्ग हाथ आयेगा।

शुभाशुभ विकल्पसे भिन्न त्रैकालिक ज्ञायक वस्तु भीतर विद्यमान है, उसे कहीं से लाना नहीं पड़ता। उस विकल्प और विकल्पका ज्ञान करनेवाली पर्यायके निकट पूर्णतत्त्व विद्यमान है वह मैं हूँ। मैं विकल्पसे भिन्न, निर्विकल्प आनन्दघन हूँ। अहा! यह बात कैसे बैठे? रागके विकल्पसे भिन्न ऐसा मैं अतीन्द्रिय ज्ञान एवं अतीन्द्रिय आनन्दका पिण्ड हूँ; सहज शुद्ध चैतन्यसत्ताका दल हूँ। धर्मी जीवको सम्यग्दर्शनमें प्रथम ऐसा निर्णय आना चाहिये; तब तो उसे धर्मका प्रथम सोपान कहा जाता है; बाकी सब थोथा है—व्यर्थ है। अरे! गिरनार या सम्मेदशिखरकी यात्रा हजारों या लाखों बार कर ना! वह भाव कोई आत्मा नहीं है। अंतरके प्रभुकी यात्रा कर, अंतरमें आनन्दका नाथ चैतन्यघन है उसपर आरोहण कर ना! वह सच्ची यात्रा है। अहा! तेरी महानताकी बातें कथनमें कितनी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आयँगी? भगवान आत्मा विकल्पसे पृथक्, निर्विकल्प आनन्दघन है; ज्योंका त्यों पवित्र है;—ऐसी अपने स्वभावकी जातिको पहिचान। एकबार रागके विकल्पसे भेदज्ञान कर। भक्ति आदिका राग तेरी जातिमें नहीं है प्रभु! तेरी जाति तो आनंदघन है। जिसप्रकार पत्थरमेंसे मूर्ति कुरेद देते हैं, उसीप्रकार भगवान आत्मा टंकोत्कीर्ण आनन्दकी मूर्ति है। उसमेंसे पुण्य-पापके विकल्पोंको निकालकर वैसा उसे देख, मान और अनुभव कर।

'तू विकल्पसे मलिन होकर—मलिनताकी भ्रमणामें ठगा गया है; दर्पणकी भाँति जातिसे तो स्वच्छ ही है।'

अपने स्वभावकी जातिको पहिचान। तू विभावसे मलिन नहीं हुआ है, मलिनता मानी है। शुभ-अशुभ राग जोकि विकल्प है उससे वस्तु मलिन हो गई है ऐसा मानकर जीव भ्रमसे ठगा गया है। प्रभु! तेरे अस्तित्वमें तो पुण्य-पापके भाव हैं नहीं, परन्तु 'वे भाव मेरे हैं और उनसे मुझे लाभ होगा' ऐसा मानकर तू ठगा गया है। तूने अपनेको ठगा है भाई!

प्रश्नः—क्या सचमुच ऐसा होगा?

उत्तरः—ऐसा वस्तुस्वरूप है भाई! क्या कहें? सर्वज्ञदेव त्रिलोकीनाथ जिनेन्द्रदेव परमात्माकी यह वाणी है। यह वाणी बेन द्वारा यहाँ कही गई है। कहते हैं : पुण्य-पापके भाव मेरे हैं और मैं विकल्पसे मलिन हूँ ऐसा मानकर पवित्र प्रभु आत्मा तू ठगा गया है। अहा! तेरी जाति तो सिद्धकी है। सिद्धोंको जिस प्रकार राग-द्वेष पर्यायमें भी नहीं हैं, उसीप्रकार तेरे ज्ञायकद्रव्यमें विभावकी मलिनता नहीं है। श्रीमद् कहते हैं : 'सर्व जीव हैं सिद्धसम।' सिद्धस्वरूपी वीतरागमूर्ति ऐसा जो निज शुद्धात्मद्रव्य उसमें मलिनता मानकर भ्रमणामें जीव अपने भगवत्स्वरूपको भूल गया है।

पुण्यके भाव करे और उसके फलमें बाह्य धन-सम्पत्तिरूपी धूल मिले, स्त्री-पुत्र-परिवार सब अच्छे प्राप्त हो जायँ तो 'हम तो सुखी हैं' ऐसा मानकर जीव मिथ्यात्वका पोषण करता है; परन्तु भाई! वह वस्तुएँ तेरी नहीं हैं, तेरे कारण नहीं आयी हैं, तुझमें वे हैं नहीं। स्त्री-पुत्र तो कहीं दूर रह गये, यहाँ तो कहते हैं कि राग भी तेरा स्वभाव नहीं है। उसे अपना मानकर तू ठगा गया है। तेरा अपना स्वरूप क्या है उसे जाना नहीं और बाह्यमें स्त्री-पुत्र, बँगला, मोटर आदिमें—स्मशानमें हड्डियोंमें होनेवाले फॉस्फरसकी आतिशबाजी जैसे क्षणभंगुर विषयोंमें—'वे मेरे हैं' ऐसा मानकर तू भरमा गया है भाई! उनमें तू नहीं है और वे तुझमें नहीं हैं। अरे! वे तो नहीं हैं, किन्तु पुण्य-पापके भाववाला भी तू नहीं है। अपनेको विभाववाला मानकर ठगा गया है। संसारके पापोंमें फँसकर जीवको इतनी गहराईमें जानेकी फुरसत कहाँ है? आत्मा चिदानन्दस्वरूप निर्विकल्प

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रभु है, उसे भूलकर विभावके विकल्पमें सन्तुष्ट हो रहा है! वास्तवमें आत्माका संतोष तो पूर्णानन्द है। अनुभवदशा प्रगट करे तब उसे अंतरमें सच्चा संतोष और आनन्द आये।

पूजा करो, भक्ति करो, दया पालो, व्रत-उपवास करो—इसप्रकार रागका कर्ता होकर प्रभु! तूने आत्माके रागरहित ज्ञानस्वरूपका घात कर दिया। ज्ञानस्वभावमें रागकी मलिनता मानकर भ्रमणामें ठगा गया है। दर्पणकी भाँति स्वभावसे तो तू स्वच्छ ही है। स्वभावदृष्टिसे रागादि तेरे नहीं हैं और तुझमें नहीं है। अहा! स्वरूप ऐसा है! उसका परिचय करना चाहिये।

जीव अनादिसे भटक रहा है। बड़े-बड़े सेठ परके अभिमान और ममताकी मूर्च्छामें मरकर छिपकलीके पेटसे जन्म लेते हैं; क्योंकि अंतरमें धर्मकी खबर नहीं है। अपना आत्मा क्या वस्तु है वह सुननेको मिले, ऐसा अच्छा सत्समागम मिले—ऐसा उनका पुण्य भी नहीं है। कभी सुननेको जायँ तो वहाँ व्रत, तप और भक्तिसे—बाह्य क्रियाकाण्डसे—धर्म होगा। ऐसा समझाकर कुगुरु उनका एक घन्टेका समय लूट लेते हैं। संसारमें पापकार्योंमें समय लुटता था यहाँ आया तो धर्मके नामसे शुभरागमें लुट गया। अहा! बड़ा कठिन काम है, भाई! दर्पणकी भाँति तू जातिसे स्वच्छ ही है, विकल्पसे रहित आनन्दघन प्रभु है। सर्वज्ञ त्रिलोकीनाथ जिनेश्वरदेवकी यह पुकार है। अनन्त तीर्थंकरोंका भी अनादिसे यही उपदेश है।

'निर्मलताके भण्डारको पहिचान तो एकके बाद एक निर्मलताकी पर्यायोंका समूह प्रगट होगा।'

यह भगवान आत्मा निर्मलताका नाथ है, ज्ञानादि अनंत गुणोंसे भरपूर चैतन्य-रत्न है। उस निर्मलताके भण्डारको पहिचान, उसकी सच्ची समझ कर, तो एकके बाद एक निर्मल पर्यायका समूह प्रगट होगा। नदीकी बाढ़में जिसप्रकार पानीका प्रवाह ही दिखायी देता है उसीप्रकार जिसने रागसे भिन्न आत्माको देखा, जिसे निर्मलताका महान भण्डार प्रतीति एवं अनुभवमें आया, उसे एकके बाद एक निर्मलताकी पर्याय प्रगट होगी, आनन्दकी धारा प्रवाहित होगी।

प्रश्नः—थोड़ा व्यवहार भी तो चाहिये ना?

उत्तरः—प्रभु! व्यवहार पर तो शून्य रखा है। व्यवहार तो पराश्रितभाव है; उससे स्वाश्रितभाव—आत्माकी निर्मल पर्याय कैसे होगी? प्रभु! तुझे अपने बड़प्पनकी खबर नहीं है, और रागसे तथा व्यवहारसे लाभ होता है ऐसा मानकर तू आत्माको कलंक लगाता है, भ्रममें ठगा जाता है। आत्माके बड़प्पनका—महिमाका पार नहीं है; वह तो स्वभावकी जातिसे ही ज्ञात हो ऐसा है। देव-शास्त्र-गुरुकी श्रद्धा और व्यवहारकी क्रिया वह सब राग है; उससे आत्मा ज्ञात हो ऐसा नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रभु! भ्रमणामें तू अपनेको भूल गया है। अरे! जाग रे जाग, नाथ! बच्चेको पालनेमें सुलाते हुए उसकी माँ गीत गाती है कि 'मेरा मुन्ना बड़ा सयाना, मामाके घर जायगा, दूध-मलाई खायगा;' तब वह सो जाता है। अव्यक्तरूपसे भी उसे प्रशंसा प्रिय है। 'नाश पिटे, सो जा!'—इसप्रकार गुस्सा करेगी तो वह नहीं सोयेगा। बालक भी अपनी प्रशंसाके गीत सुनकर सो जाता है। वहाँ गीत गाकर सुलानेकी बात है और यहाँ गीत गाकर आत्माको जगानेकी बात है। तीन लोकका नाथ, चैतन्य-हीरा, आनन्दका सागर प्रभु, तू राग और व्यवहारमें सो गया है, तुझे शुभराग रुचा है; परन्तु तू स्वयं ही अंतर्स्वभावसे आनन्दका सागररूप प्रसन्न वस्तु है, वह तुझे नहीं रुचती। उसमें रुचि कर भाई! इसके सिवा दूसरे सब हैरान होनेके रास्ते हैं। मार्ग तो ऐसा है भाई!

'अंतरमें ज्ञान और आनन्दादिकी निर्मलता ही भरी है।'

कहा ना! दर्पणकी भाँति जो निर्मलताका भण्डार है ऐसे निज चैतन्यप्रभुको पहिचान तो तुझे निर्मलताकी धारा बहेगी–प्रगट होगी; क्योंकि भगवान आत्मा तो निर्मल ज्ञान एवं अतीन्द्रिय आनन्दसे भरा हुआ पदार्थ है। अहा! उसका ज्ञान और श्रद्धा कर; तुझे निर्मल दशा प्रगट होगी और मलिनताका नाश होगा।

अरे! बाहरकी–सारी दुनियाकी–बात तो तूने जानी, परन्तु जिसका ज्ञान है उसे नहीं जाना। तुझमें जो नहीं है उसे तूने ज्ञानमें जाना, परन्तु तुझमें जो पूर्ण ज्ञातातत्त्व है उसे तूने नहीं जाना। लोग यह तत्त्वकी बात समझ नहीं पाते इसलिये 'निश्चयाभास है' ऐसा कहते हैं। भाई! मार्ग तो यह है। दया-दान तथा व्रत-तपादिके भाव आते हैं, परन्तु वह बंधका कारण है। यथार्थ प्रतीति होनेके पश्चात् भी जबतक वीतराग न हो जाय तबतक राग आता है, व्यवहारका भाव आता है, परन्तु है वह बंधका कारण, दुःखका कारण।

यहाँ तो कहते हैं कि–आत्मामें ज्ञान एवं आनन्दादिकी निर्मलता ही भरी है। ८२वाँ बोल पूरा हुआ। भीतर गंभीर भाव भरे हैं।

❃

वचनामृत-८३

अंतरमें आत्मा मंगलस्वरूप है। आत्माका आश्रय करनेसे मंगलस्वरूप पर्यायें प्रगट होंगी। आत्मा ही मंगल, उत्तम और नमस्कार करने योग्य है—इसप्रकार यथार्थ प्रतीति कर और उसीका ध्यान कर तो मंगलता एवं उत्तमता प्रगट होगी ॥८३॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'अंतरमें आत्मा मंगलस्वरूप है।'

मंगलस्वरूप प्रभु आत्मा अंतरमें है। **'मंग'** अर्थात् पवित्रता और **'ल'** अर्थात् **लाति**–प्राप्ति। जिससे पवित्रताकी प्राप्ति हो उसे 'मंगल' कहते हैं। बाहरी आशासे लोग **'णमो अरिहंताणं'**...आदि मांगलिक सुनते हैं। किस आशासे? कि–मांगलिक सुनाओ तो दुकान अच्छी चले, विवाहादि कार्य निर्विघ्न पूरे हो जायँ। संसारका–घर-व्यापारादिका–कार्य भलीभाँति चले इस आशासे। अरे प्रभु! तूने यह क्या किया? काहेकी भावना की? विष की? विषकी भावना की।

अन्य प्रकारसे **'मंगल'**का अर्थ : **'मम्'** अर्थात् ममता–रागका अभिमान और 'गैल' अर्थात् गला दे, मिथ्यात्व एवं राग-द्वेषके विभावको गला दे, नाश कर दे वह **'मंगल'**। मिथ्यात्व एवं रागादि विभावका नाश करनेवाला भगवान आत्मा स्वयं ही मंगलस्वरूप है।

६० वर्षमें घर पुत्र उत्पन्न हो तो कहता है–करो मांगलिक–चूरमाके लड्डू बनने दो; लड़केका विवाह हो, दो-चार लाख खर्च करना हों वहाँ मानता है–मांगलिक कार्य किया। भाई! वह धूलमें भी मांगलिक नहीं है। तूने विषका प्याला पिया है भाई! अंतरमें तो यह अमृतका प्याला भरा है। कहा है ना!—

गगन-मंडलमें अधबीच कूवा, वहाँ अमीका वासा;
सगुरा होय सो भर भर पीवे, नगुरा जाता प्यासा।
अवधू सो जोगी गुरु मेरा, इस पदका करे निवेरा;
–अवधू सो जोगी गुरु मेरा।

'गगन-मंडलमें अधबीच कूवा'–शरीर एवं रागसे भिन्न भीतर भगवान आत्मा अमृतका कुआँ भरा है। प्रभु स्वयं अमृतका सागर है। अरे! यह बात कैसे बैठे? भाई, एकबार सुन तो सही! दो बीड़ियोंमें सन्तुष्ट हो जाता है; सबेरे पाव–डेढ़ पाव चाय पिये वहाँ तृप्त!! प्रभु! क्या हो गया है यह तुझे? यह पागलपन आया कहाँसे? यह सब पागलपन है भाई! यहाँ तो कहते हैं कि–अंतरमें मंगलस्वरूप आत्मा है, वहाँ तू जा, तो तुझे मंगलकारी दशा प्रगट होगी।

'आत्माका आश्रय करनेसे मंगलस्वरूप पर्यायें प्रगट होंगी।'

भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञानका महासागर है। यदि उसका आश्रय करेगा, उसका अवलम्बन लेगा, तो मंगलस्वरूप पर्यायें प्रगट होंगी–सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और आनन्दकी निर्मल दशाएँ तुझे प्रगट होंगी। पुण्य कैसे होगा और फिर पैसा कैसे मिलेगा–ऐसी धूलकी बातें यहाँ नहीं ली हैं। ऐसा तो अनन्तबार हुआ है भाई! तुझमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आनन्दकी जो अनंतलक्ष्मी मौजूद है उसका आश्रय ले उसके निकट जा, उसकी ओर देख, तो तुझे मंगल पर्यायें—आनन्दकी दशाएँ—प्रगट होंगी; क्योंकि तू अतीन्द्रिय आनन्दका कन्द भगवान है।

'आत्मा ही मंगल, उत्तम और नमस्कार करने योग्य है—इस प्रकार यथार्थ प्रतीति कर और उसीका ध्यान कर तो मंगलता एवं उत्तमता प्रगट होगी।'

शरीर और वाणी तो ठीक, परन्तु पुण्य-पापके भावसे भी भिन्न ऐसा जो भगवान आत्मा वही मंगल है। ज्ञायकस्वभावी निज आत्मा ही मंगल, उत्तम और नमस्कार करने योग्य है। लोग कहते हैं कि—विवाह करने जा रहे हैं, इसलिये मांगलिक सुनाइये; ताकि स्त्री अच्छी तरह रहे। अरेरे! जीवोंको ऐसे ही मिथ्यात्वके महान शल्य होते हैं।

प्रश्न :—लौकिक और लोकोत्तर मांगलिकोंमें अंतर होगा ना?

उत्तर :—लौकिक भी कोई मांगलिक होता है? कुछ दिन पहले अखबारमें नहीं छपा था? कि—लग्नमण्डपमें वर विवाह करने बैठा था और हार्टफेल हो गया! भाई, शरीर तो जड़ है, नाशवान है, उसकी स्थिति पूर्ण होनेका समय निश्चित् हो चुका है। अंतर अविनाशी चैतन्य है वह मंगलस्वरूप है, और वही उत्तम है।

भगवान आत्मा स्वयं आनन्दका नाथ है, अतीन्द्रिय सुखका सागर है, वही जगतमें उत्तम है। बाकी कोई वस्तु उत्तम नहीं है। अहा! कैसे बैठे यह बात? अनंतकालमें यह बात बैठी ही नहीं। साधु हुआ, नग्न हुआ, अरबों वर्षतक पंचमहाव्रत पाले, परन्तु उस रागकी क्रियासे मुझे लाभ होगा ऐसा मानकर आत्माको रागरहित नहीं देखा।

आत्मा मंगल है, आत्मा उत्तम है और आत्मा नमस्कार करने योग्य है। पंचपरमेष्ठी या त्रिलोकीनाथ तीर्थंकरको नमस्कार करनेका भाव वह शुभराग है। स्वद्रव्यका आश्रय छोड़कर परद्रव्यका आश्रय करना, परको नमस्कार करना वह शुभराग है, और शुभराग वह परमार्थतः दुःख है। अंतरमें चैतन्यप्रभुको नमस्कार करना अर्थात् रागको पृथक् करके स्वरूपमें ढल जाना, अतीन्द्रिय आनन्दमें डूब जाना—वह सुख है। नमस्कार करने योग्य तो एक ज्ञायकवस्तु ही है।

प्रश्न :—तो फिर, पंचपरमेष्ठी और भगवानके मंदिर—यह सब क्या हैं?

उत्तर :—भाई! उस प्रकारका शुभराग होता है तब वहाँ लक्ष जाता है; परन्तु वह शुभराग धर्म नहीं है। धर्मी जीवको आत्मज्ञान होने पर भी, अंतर्रमणता पूरी न हो तो उसे भी व्यवहारके शुभभाव आते हैं; परन्तु अभिप्रायमें वे शुभभाव हेय हैं, दुःख हैं; वे हेयबुद्धिसे आते हैं। अज्ञानीको राग उपादेयबुद्धिसे आता है, इसलिये वह मिथ्यादृष्टि है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मुनिव्रत धार अनंतबार ग्रीवक उपजायो।
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो॥

पंचमहाव्रतोंका पालन किया, हजारों रानियाँ छोड़ीं, अंतरमें रागकी मंदता की, परन्तु आत्मा रागरहित है उसका ज्ञान और अनुभव नहीं किया। अहा! उसके बिना जन्म-मरणका अंत नहीं आया। ऐसे द्रव्यलिंग धारण करके भी, ऐसा कोई क्षेत्र बाकी नहीं जहाँ उसने अनंतबार जन्म-मरण न किये हों! भगवान अंतरमें आनन्दका नाथ है उसे नहीं पहिचाना, उसका अनुभव नहीं किया।

आत्मा ही नमस्कार करने योग्य है—ऐसी यथार्थ प्रतीति कर और उसीका ध्यान कर तो मंगलता एवं उत्तमता प्रगट होगी। यह भगवान आत्मा ही नमस्कार करने योग्य है ऐसी अंतरमें श्रद्धा कर और आनन्दस्वरूप उस प्रभुका ध्यान कर। पूर्णस्वरूपको अपने ध्यानमें ध्येय बना। जिसप्रकार तीरको अपने ध्येय—लक्ष—की ओर साधते हैं, उसीप्रकार अपने ज्ञानकी पर्यायमें अपने प्रभुको ध्येय—लक्ष बना। ऐसा करनेसे तुझे मंगल और उत्तमदशा प्रगट होगी; सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र एवं आनन्दकी दशा प्रगट होगी। वही मंगल और उत्तम है।

✽

संवत् २०३०

(भाद्रपद कृष्णा १४के दिन पण्डित श्री हिंमतभाईके घर आहार करने पधारे तब—)

पूज्य गुरुदेव :—हिंमतभाई! देखो न, लोगोंको कैसे भाव हैं बहिनके प्रति! दूजके समय कितने ज्यादा लोग आये थे!

पूज्य बहिनश्री (अति नम्रतासे):—साहेब! मुझे तो आत्माका करना है। यह तो सब उपाधि लगती है।

पूज्य गुरुदेव :—बहिनबा! तुम्हें क्या है? तुम तो सब देखती रहो। मेरे हिसाबसे तो अभी कम हो रहा है। तुम्हारे लिये तो लोग जितना करें उतना कम है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-२८

ता. ३-७-७८

वचनामृत-८४

'मैं तो उदासीन ज्ञाता हूँ' ऐसी निवृत्तिदशामें ही शान्ति है। स्वयं अपनेको जाने और परका अकर्ता हो तो मोक्षमार्गकी धारा प्रगटे और साधकदशाका प्रारम्भ हो ॥ ८४ ॥

"'मैं तो उदासीन ज्ञाता हूँ' ऐसी निवृत्तिदशामें ही शान्ति है।"

सूक्ष्म बात है। जिसे आत्माका कल्याण करना हो, धर्म करना हो, उसकी यह बात है। उसे ऐसा करना चाहिये कि 'मैं तो पर पदार्थसे भिन्न, अरे! दया-दानके शुभरागसे भिन्न, उदासीन ज्ञाता हूँ।' 'मैं ज्ञाता हूँ' वह बात अस्तिसे ली है; और अंतरमें जो शुभ-रागादि उत्पन्न होते हैं उनसे भी मेरा अस्तित्व, मेरी ज्योति भिन्न है, उदासीन है—ऐसी बात नास्तिसे की है। स्वभावसे मैं ज्ञाता हूँ और रागसे मैं उदासीन हूँ, विरक्त हूँ। अहा! ऐसी बात है। आती है समझमें? यह बिलकुल सार है, जैनदर्शनका नवनीत है। मैं अस्तित्व रखनेवाला ज्ञायकपदार्थ परसे—व्यवहाररत्नत्रयके रागसे भी—भिन्न, उदासीन हूँ; मेरा स्थान उसमें नहीं है; मेरा अस्तित्व उसके द्वारा नहीं है; मेरा अस्तित्व तो रागरहित ज्ञातापनेमें है। ज्ञातास्वरूपपनेसे अस्ति और रागसे नास्ति—उदासीन, ऐसी निवृत्ति दशामें ही धर्म और शान्ति है।

पूजा, भक्ति और व्रत-तप आदि शुभरागकी धूम भले हो, परन्तु मैं उससे उदास हूँ, वह मेरा कार्य नहीं है। मैं तो स्वसे ज्ञाता और परसे उदास अति संक्षिप्त। शीतल एवं शान्तस्वरूप ऐसा मैं चैतन्यचन्द्र ज्ञाता हूँ और रागादिभावसे मैं उदास हूँ, भिन्न हूँ, विरक्त हूँ—ऐसी अंतर्मुख निवृत्तिदशामें ही अतीन्द्रिय शान्ति एवं अतीन्द्रिय आनन्द है। बाकी रागादि तो अशान्ति है; दुःख है। भले ही देव-शास्त्र-गुरुकी श्रद्धा, शास्त्रका ज्ञान और पंचमहाव्रतादिके परिणाम हों, वह सब अशान्ति है। उस अशान्तिसे तो मैं विरक्त एवं उदासीन हूँ। अहा! ऐसी बात है। लोगोंको कठिन लगती है; समझते

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं हैं इसलिये एकान्तवादी कहते है। भले कहें! शुभरागका व्यवहार करते-करते धर्म होगा—ऐसा कहते नहीं है और ऐसा मानते नहीं हैं, इसलिये एकान्त लगता है। प्रभु! एकान्तवादी ही हैं, परन्तु सम्यक्-एकान्तवादी। शुभाशुभ रागसे भिन्न—उदास और ज्ञायकस्वभावसे अभिन्न—उसका नाम सम्यक् अनेकान्त है जो कि सम्यक्-एकान्त ऐसे निजपदकी प्राप्तिके लिये उपकारी है।

शान्ति और धर्म तो वहाँ है कि जहाँ व्यवहाररत्नत्रयके रागसे भी उदासीन है। व्रत-तपादिरूप एवं पुण्य-पापके भाव भले हों, परन्तु उसमें मेरा अधिकार नहीं है, मैं उसका स्वामी नहीं हूँ; मैं उससे विरक्त हूँ, उदासीन हूँ, मैं तो ज्ञानानन्द स्वभावसे भरपूर ज्ञाता हूँ, अहाहा! ऐसी निवृत्तिदशामें ही शान्ति और धर्म है।

जैनधर्म वह कोई सम्प्रदाय या बाड़ा नहीं है, वस्तुकी स्थिति है। जैनस्वरूपी आत्माको ज्ञाता कहो या जिनस्वरूपी कहो, वह रागसे उदासीन ज्ञाता है, जिनस्वरूपी है और स्वभावसे भरपूर है। उद्-आसन अर्थात् रागसे निरपेक्ष उसका आसन है। रागमें स्थिर होना वह नहीं; किन्तु स्वरूपमें स्थिर होना वह तेरा आसन है। यह क्रिया करो और वह क्रिया करो ऐसा लोग कहते हैं; परन्तु रागसे भिन्न अपने ज्ञातास्वभावकी अंतर्क्रिया ही सच्ची क्रिया है। उसे सम्यग्दर्शनकी क्रिया कहो या शान्तिकी क्रिया कहो। अहा! ऐसी बात कठिन लगती है; इसलिये इस वस्तुको सुननेवाले कम होते हैं और प्राप्त करनेवाले तो बिलकुल कम।

'मैं हूँ' तो मैं कैसा हूँ? मैं ज्ञाता हूँ; रागादि विकल्पसे रहित और परसे बिलकुल निरपेक्ष—उदासीन हूँ। रागमें और शरीरकी क्रियामें मेरा अधिकार बिलकुल नहीं है, मैं तो उससे उदासीन हूँ। ऐसी निवृत्तिदशामें शान्ति है। अहाहा! संक्षिप्त और सरल भाषामें बारह अंगके सारभूत अनुभूतिका कथन है। वीतरागकी वाणी चार अनुयोगरूप है। उसका सार—तात्पर्य वीतरागता है। वीतरागता ही शान्ति है। 'मैं उदासीन ज्ञाता हूँ' ऐसी जब दृष्टि हो तब वीतरागताका प्रारम्भ होता है।

लोग कहते हैं कि—शुभभाव करो, वह करते-करते शुद्धभाव—धर्म हो जायगा। अरे, प्रभु! जिसप्रकार लहसुन खाते-खाते कस्तूरीकी डकार आ जानेकी बात झूठी है, उसीप्रकार दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति आदि रागकी क्रियाओंके आधारसे निश्चय-वीतराग धर्म—प्रगट होगा यह बात भी मिथ्या है। राग तो अशान्ति है, उसके आधारसे शान्ति—धर्म कैसे प्रगट होगा? भगवान ज्ञाताका जो वीतरागी अस्तित्व है उसके आधारसे शान्ति एवं धर्म प्रगट होगा। रागसे उदास होकर अंतर्मुख दृष्टि लगानेसे जो निवृत्तदशा हो उसीमें सच्ची शान्ति है, वही सच्चा जैनधर्म है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'स्वयं अपनेको जाने और परका अकर्ता हो तो मोक्षमार्गकी धारा प्रगटे और साधकदशाका प्रारम्भ हो।'

मैं तो ज्ञाता हूँ, ज्ञान-दर्शन-आनन्दस्वरूप प्रभु हूँ;—इसप्रकार स्वयं अपनेको अपना आश्रय लेकर, स्वसन्मुख होकर जानना। अहा! शब्द थोड़े हैं किन्तु भाव बहुत गहरे हैं। अपना स्वरूप सत्, चिद् एवं आनन्दरूप शुद्ध है—इसप्रकार अपनेको स्वयं अपनेसे—अपनी निर्मल पर्यायसे जाने, परसे तथा रागसे नहीं। अहा! निर्विकल्पस्वरूप भगवान आत्मा स्वयं निर्विकल्पदृष्टि एवं निर्विकल्पज्ञानसे अपनेको जाने; वह रागसे या परसे जाननेमें नहीं आता; बाह्यसे तथा निमित्तसे जाननेमें नहीं आता; अंतरमें स्वयं अपनेको अपनेसे जाने। ऐसी जिम्मेदारी है भाई! बड़ा कठिन है भाई! परन्तु क्या हो सकता है? ऐसा तत्त्व जाननेको मिला नहीं है इसलिये बेचारे लोग जहाँ स्वयं नहीं है, जो अपना स्वरूप नहीं है, वहाँ अपना अस्तित्व मान बैठे हैं। जहाँ अपना वास्तविक अस्तित्व है वहाँ अंतरमें दृष्टि लगाना; परसे निमित्तसे तथा रागसे उदासीन होकर अपनी दृष्टिको स्वभावमें लगाना—इसप्रकार स्वयं अपनेको अपनेसे जानना; क्योंकि अपना स्वरूप रागसे, निमित्तसे तथा व्यवहारके क्रियाकाण्डसे जाननेमें नहीं आता।

अहा! जन्म-मरणके, चौरासी लाख योनिके दुःखोंसे उबरनेंकी यह बात है। परको अपना मानकर, अपने स्वरूपका अनादर करके, प्रत्येक योनिमें जीव अनंतबार उत्पन्न हुआ। माताके गर्भवासमें अनंतबार वर्षों तक रहा। माताके उदरमें नौ महीने तक रहे वह तो साधारण है, परन्तु शास्त्रमें आता है कि किसी-किसीको गर्भकी कार्यस्थिति बारह वर्षकी होती है। अरे! वह स्थति कैसी होगी प्रभु? जन्म-मरणके दुःखसे उदास हो जा और तू अतीन्द्रिय आनन्दका रसकन्द है, अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख एवं अनंत शान्तिसे परिपूर्ण है—ऐसे अपनेको अपनेसे जान।

देव-शास्त्र-गुरुकी व्यवहारश्रद्धा और दया, दान, व्रतादिके शुभभाव विकल्प हैं, राग हैं, विकार हैं; उनसे तेरा भिन्न अविकारी स्वरूप जाननेमें नहीं आता। समझमें आता है कुछ? शब्द थोड़े हैं परन्तु भाव भरपूर हैं। अहा! जहाँ अंतरकी गहराईमें अनंत ज्ञान और अनंत शान्ति भरी पड़ी है ऐसा जो ज्ञानानन्दका पाताल-कुआँ प्रभु आत्मा, उसमें दृष्टि कर और रागसे दृष्टि उठा ले। भले ही व्यवहारके शुभभाव हों, परन्तु वहाँसे भी दृष्टि उठा ले और व्यवहार तथा रागकी अपेक्षा छोड़कर अपनेको अपनेसे जान। अहा! ऐसा उपदेश है।

व्यवहारके—क्रियाकाण्डके—रसवालोंको यह बात कठिन लगती है, एकान्त लगती है। लगे तो भले लगे। अंतरमें वस्तु कैसी है? चैतन्य-रत्न है, अनंत शक्तियोंका सागर है,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञानादि अनंत गुणोंका भंडार है, अनंत स्वभावका समुद्र है एवं अनंत शान्तिका संग्रहालय है; वहाँ अंतरमें दृष्टि लगा, अंतर्ज्ञानक्रिया द्वारा उसे जान, सम्यग्दर्शनपर्याय द्वारा उसे मान और स्वरूपस्थिरताके परिणाम द्वारा उसका अनुभव कर। स्वरूपको जानना, मानना और अनुभवना–वह मोक्षका मार्ग है।

तू स्वयं अपनेको जान और परका तथा रागादि विभावका अकर्ता–ज्ञाता बन, तो मोक्षमार्गकी धारा प्रगट हो। 'मैं तो उदासीन ज्ञाता हूँ'; कहा था ना! कि–आत्मा शरीर वाणी आदि परका कर्ता तो नहीं है, परन्तु पूजा, भक्ति, व्रत-तप, दान-शीलादि शुभरागका भी अकर्ता है, ज्ञाता है। चिदानन्द प्रभु आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है, वह रागका कर्ता किस प्रकार होगा?

प्रश्नः—यह जो बड़े-बड़े कारखाने बनवाते हैं वे?

उत्तरः—कौन बनाता है प्रभु? सुन तो सही! वह तो पुद्गलकी परिणाम-शक्तिसे होता है। यहाँ तो कहते हैं कि–आत्माको परका तो अकर्ता जान, परन्तु रागका भी अकर्ता–ज्ञाता–जान। अकर्तापना–ज्ञातापना–होगा तब तुझे अंतरमें सम्यग्दर्शन-ज्ञानमें शान्ति होगी, मोक्षमार्गकी धारा प्रगट होगी, बंधनके अभावस्वरूप मुक्ति अकर्तास्वभावसे होगी। स्वभावकी दृष्टिमें जा, तुझे मोक्षमार्गकी धारा–सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्रस्वरूप मोक्षमार्गका प्रवाह प्रगट होगा। थोड़े शब्दोंमें बहुत भरा है।

प्रश्नः—मोक्षमार्गकी धाराका क्या अर्थ?

उत्तरः—मोक्षमार्गकी धारा अर्थात् निर्मल परिणतिका प्रवाह। रागके अकर्तृत्व और स्वभावकी शक्तिकी प्रतीति अंतरमें स्व-आश्रयसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानमें हो तो तुझे मोक्षका मार्ग, बंधनसे छूटनेका मार्ग प्रगट होगा। यह शुद्धिकी निर्मल धारा नित्य बहेगी। ऐसा मार्ग है भाई! भाषा संक्षिप्त किन्तु भाव गंभीर हैं। रागका अकर्तृत्व और ज्ञातास्वभावकी प्रतीति वह मोक्षका मार्ग है, बंधनसे छूटनेका मार्ग है। कठिन लगेगा किन्तु मार्ग तो यही है। व्रत करो, तप करो, भक्ति करो–इसप्रकार दुनिया बाह्यक्रियाओंमें लग गई है और ऐसा माननेवालोंको एकान्ती कहते हैं। लेकिन क्या किया जाये? उन्हें वस्तुस्वरूपकी खबर ही नहीं है, भाई! कहा है कि—

जामें जितनी बुद्धि है, उतनी देय बताय।
वाको बुरो न मानिये, और कहाँसे लाय॥

जिन्हें जैसा भासित होता है वैसा कहते हैं बेचारे! तेरा नाथ तो वीतरागमूर्ति भीतर विराजमान है। समयसार-नाटकमें कहा है कि–'**घट घट अंतर जिन बसै...**' अहा! शाश्वत ध्रुव जो वीतरागमूर्ति है उसे स्वयं, रागकी अपेक्षा छोड़कर जान। परका और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रागका अकर्ता हो तो मोक्षमार्गकी धारा प्रगट होगी, साधकदशाका प्रारम्भ होगा। यह तो साधकदशाकी धाराकी शुरुआत होती है।

वचनामृत पुस्तक हिन्दीमें भी आ गयी है ना? हिन्दी और गुजराती 'आत्मधर्म'के ग्राहकोंको भेट दी गई है। लोग देखें तो सही कि क्या वस्तु है!

त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेवने किस प्रकार मोक्षमार्ग कहा है? साधकदशाका प्रारम्भ कैसे होता है? स्वयं अपनेको अपनेसे उदासीन ज्ञातारूप जाने और परका अकर्ता हो तो साधकदशाकी शुरुआत होती है। पूर्ण केवलज्ञान तो उसका परिणाम है। 'मैं परसे उदासीन ज्ञाता हूँ' ऐसी निवृत्तदशामें ही शान्ति है। उदासीन अकर्ता हूँ, स्वयं अपनेको जाननेवाला हूँ—ऐसी यह मोक्षमार्गकी धारा प्रवाहित होगी तब तो साधकदशाका प्रारम्भ होगा। अहा! ऐसी बात है!

❃

वचनामृत-८५

शुद्ध द्रव्यपर दृष्टि देनेसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्रगट होते हैं। वे न प्रगटें तबतक और बादमें भी देव-शास्त्र-गुरुकी महिमा, स्वाध्याय आदि साधन होते हैं। बाकी तो, जिसमें हो उसमेंसे वह आता है, जो जिसमें न हो वह उसमेंसे नहीं आता। अखण्ड द्रव्यके आश्रयसे सब प्रगट होता है। देव-गुरु मार्ग बतलाते हैं, परन्तु सम्यग्दर्शन कोई दे नहीं सकता॥ ८५॥

'शुद्ध द्रव्यपर दृष्टि देनेसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्रगट होते हैं।'

स्पष्ट शब्द रखे हैं परन्तु उनमें भाव गम्भीर हैं। नित्यानन्द ध्रुव शुद्ध चैतन्यप्रभु ऐसा यह आत्मा अकेले आनन्द और शान्तरससे भरपूर है। ऐसे शुद्ध द्रव्यपर त्रैकालिक पूर्णानन्द प्रभु पर दृष्टि देनेसे—निमित्त पर नहीं, राग पर नहीं, पर्याय पर नहीं, अरे! गुण-भेद पर नहीं—सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्रगट होंगे, धर्मकी साधकदशा प्रगट होगी।

प्रश्न :— व्यवहार-रत्नत्रयसे प्रगट होगी ना?

उत्तर :— व्यवहार-रत्नत्रयके शुभरागसे तीनकालमें कदापि सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान प्रगट नहीं होते; परन्तु अंतरमें पूर्णानन्दके नाथ ऐसे शुद्ध द्रव्यपर दृष्टि देनेसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होंगे, धर्मकी साधकदशा प्रगट होगी।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'वे न प्रगटें तबतक और बादमें भी देव-शास्त्र-गुरुकी महिमा, स्वाध्याय आदि साधन होते हैं।'

त्रैकालिक ज्ञानानन्दस्वरूपकी श्रद्धा और ज्ञान प्रगट न हो तबतक और स्वरूपका श्रद्धान-ज्ञान होनेके बाद भी देव-शास्त्र-गुरुकी महिमा, शास्त्रस्वाध्याय, शास्त्रका श्रवण, गुरुका समागम आदि बाह्य व्यवहार-साधन होते हैं। वे तब व्यवहारसे साधन कहे जाते हैं जब अंतरमें शुद्ध स्वरूपकी साधना की जाती हो। वहाँ, देव अर्थात् सर्वज्ञ-वीतराग परमात्मा; भगवान सर्वज्ञदेवने पूर्वापर अविरोधरूप दिया हुआ उपदेश वह शास्त्र है; अंतरमें और बाह्यमें निर्ग्रंथ एवं निर्वस्त्र जिनकी दशा है ऐसे निर्ग्रंथ मुनिराज वे गुरु हैं। सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान होनेसे पूर्व और पश्चात् भी देव-शास्त्र-गुरुकी महिमाके विकल्प आते हैं। सम्यक् अनुभव हो तत्पश्चात् भी, पूर्ण वीतरागदशा जबतक न हो तबतक, देव-शास्त्र-गुरुकी भक्तिके भाव तथा उनकी महिमाका राग आता है। निमित्तरूपसे वह होता है परन्तु उससे आत्माका कल्याण नहीं होता। उससे धर्म नहीं होता।

प्रश्नः—भले ही निमित्तसे न हो, परन्तु निमित्तके बिना भी तो नहीं होता?

उत्तरः—निमित्तके बिना ही होता है। परन्तु निमित्तसे पृथक् अपनेमें अपनेसे धर्मके जो परिणाम होते हैं उनसे पूर्व और उनके पश्चात् भी देव-गुरु आदि सम्बन्धी भक्ति-महिमाके शुभभाव आते हैं—इतना बतलानेके लिये उसे आरोपसे साधन कहा है। त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञदेवकी महिमा सम्यग्दर्शन होनेसे पूर्व तथा उसके पश्चात् भी आती है। आत्माके आनन्दमें रमनेवाले, अतीन्द्रिय आनन्दका प्रचुर संवेदन करनेवाले ऐसे जो निर्ग्रंथ गुरु उनकी, साधकदशा प्रगट होनेसे पूर्व और साधकदशा प्रगट होनेके पश्चात् भी महिमा आती है। प्रथम भक्ति और महिमाके जो भाव आयें उनसे सम्यग्दर्शन होता है—ऐसा नहीं है; और सम्यग्दर्शन होनेके पश्चात् ऐसे भाव आयें, वहाँ उन भावोंसे सम्यग्दर्शन टिका हुआ है—ऐसा भी नहीं है। अहा! स्वतंत्रताकी कैसी बात है!

'बाकी तो, जिसमें हो उसमेंसे वह आता है, जो जिसमें न हो वह उसमेंसे नहीं आता।'

ऐसा कहकर फिर क्या कहते हैं? कि—व्यवहार-साधनमें कहीं आत्मा नहीं है। व्यवहारके भाव—भक्ति-महिमा तथा स्वाध्यायादिके शुभभाव—साधक जीवको पहले और बादमें भी आते हैं, इसलिये उन्हें आरोपसे साधन कहा जाता है। बाकी तो, जो जिसमें हो उसमेंसे वह आता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी शक्ति आत्मामें है, इसलिये वे आत्मामेंसे आते हैं। भक्ति—महिमा आदिके शुभरागमें वह शक्ति नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है, इसलिये उसमेंसे सम्यग्दर्शनादि नहीं आते। आरोपसे साधन कहा इसलिये 'उनमेंसे आता है'—ऐसा नहीं है। आता है समझमें?

हिन्दी भाषामें सत्ताईस दिनसे प्रवचन चल रहे हैं। अनेक लोग रिकॉर्डिंग करके ले जाते हैं। रिकॉर्डिंग करनेसे बाहर दूर-दूरके लोग सुन सकेंगे। वैसे भी लोग अब विचारने लगे हैं।

'अखण्ड द्रव्यके आश्रयसे सब प्रगट होता है।'

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र एवं अतीन्द्रिय आनन्दादि सब इस अखण्ड द्रव्यके आश्रयसे प्रगट होते हैं। जिसमें जो न हो वह उसमेंसे, उससे तथा उसके आश्रयसे प्रगट नहीं होता। रागसे या रागके आश्रयसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं होते। अहा! यह तो सर्वज्ञ परमात्माकी वाणी है। एकबार सुन तो सही कि अंतरमें यह प्रभु क्या वस्तु है! अखण्ड द्रव्यके आश्रयसे स्वभावकी समस्त विभूति प्रगट होती है। अखण्ड द्रव्य कहनेका तात्पर्य यह है कि—उसके सिवा, निमित्तका, रागका और पर्यायका भी आश्रय नहीं। देव-शास्त्र-गुरुके निमित्तसे सम्यग्दर्शन होता है—ऐसा तो नहीं है, परन्तु उनकी श्रद्धाका जो राग उससे भी नहीं होता; अरे! उस रागको जाननेवाली जो वर्तमान पर्याय उसके आश्रयसे भी नहीं। अहाहा!—

विरल जाणे तत्त्वने, वळी सांभळे कोई;
विरला ध्यावे तत्त्वने, विरला धारे कोई।

—ऐसी वस्तु है!

अखण्ड स्वद्रव्यके आश्रयसे सब प्रगट होता है। मार्ग ऐसा ही है भाई! भले ही जगतको न बैठे; उससे सत् कहीं असत् हो जाता होगा? सत् कभी बदलता नहीं है। उसे माननेवालोंकी संख्या कम हो तो उससे सत्को कोई आँच नहीं आती। सत् तो त्रिकाल सत् ही है। भले एक-दो जन ही मानें; सत्को संख्याकी आवश्यकता नहीं है। लाखों आदमी मानें तभी वह सत् है—ऐसा कुछ नहीं है। पूर्णानन्दरूप सत्का आश्रय करके भले एक जन ही माने तथापि सत् तो सत् ही है। अहा! यह तो जिनेश्वरदेवकी वाणी है। आया कुछ समझमें?

बेनको तो बाहर नहीं आना था, परन्तु इस प्रकार बाहर आगई। देखो ना!....यह वाणी तो देखो! अहाहा! अनुभवीकी अमृतवाणी है। यह पुस्तक अत्यंत सादा—सरल गुजराती भाषामें आगई...आहाहा! समझे कुछ? अरे, अखण्ड द्रव्यके आश्रयसे सब प्रगट होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रश्न :—'सब' यानी क्या?

उत्तर :—अखण्ड द्रव्य जो पूर्ण चैतन्य प्रभु, उसके आश्रयसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, अतीन्द्रिय आनन्द, प्रभुता, स्वच्छता, शुक्लध्यान एवं केवलज्ञान—यह सब प्रगट होता है। अहा! यह तो बच्चोंकी भी समझमें आ जाय ऐसा है।

चौरासी लाख योनिके अवतार करके जीव दुःखी-दुःखी हुआ। उसका कभी विचार नहीं किया। नरकके घोर दुःखोंका वर्णन करोड़ों जिह्वाओंसे करोड़ो भवमें नहीं हो सकता—ऐसा भगवान कहते हैं। आत्माका ज्ञान किये बिना वे सब दुःख तूने अनंतबार सहे हैं। नरकमेंसे पशुमें और पशुमेंसे मनुष्यमें या देवमें उपन्न हुआ। यहाँ एक सामान्य जाननेकी बात यह है कि—कभी एक समयमें असंख्य सम्यक्त्वी देवगतिमें उत्पन्न होते हैं; परन्तु वे एक-सी स्थितिमें उत्पन्न नहीं होते; यदि हों तो एकसाथ स्थिति पूर्ण करके कहाँ जायँ? क्योंकि सम्यक्त्वी देव मरकर मनुष्यमें ही जन्म लेते हैं; और एक समयमें असंख्य देव मरकर मनुष्यमें नहीं आ सकते, क्योंकि गर्भज मनुष्य कुल संख्यात ही होते हैं। सम्यक्त्वी पशु स्वर्गमें एकसाख असंख्य जाते हैं। कभी स्वर्गमेंसे असंख्य मिथ्यात्वी देव तिर्यंचमें जाते हैं, क्योंकि गर्भज मनुष्य तो संख्यात ही होते हैं; तो फिर असंख्य देव निकलकर जायँ कहाँ? देवमेंसे सीधे नरकमें तो जायँगे नहीं। मनुष्यमें आयें तो संख्यात आयँगे...अहा! अखण्ड द्रव्यके आश्रय बिना इस प्रकार जीव अनादिसे भटक रहा है; अखण्ड द्रव्यस्वभावको जानकर उसका आश्रय करे तो भव-भ्रमणके दुःखसे छुटकारा मिले।

'देव-गुरु मार्ग बतलाते हैं, परन्तु सम्यग्दर्शन कोई दे नहीं देता।'

देव-गुरुसे इस आत्मामें क्या आयगा? इसकी सम्यग्दर्शनादि शक्तियाँ उनमें कहाँ हैं? जिसमें शक्ति हो उसमेंसे प्रगट होती है। श्रद्धा नामकी शक्ति भीतर आत्मामें है, अपनी यह शक्ति कहीं देव-गुरुके पास नहीं है; इसलिये उनसे सम्यग्दर्शन नहीं होता—ऐसा यहाँ कहते हैं।

देव, गुरु और धर्म—यह तीनों अपना आत्मा है। बाह्य देव-गुरु तो मार्ग बतलाते हैं किन्तु सम्यग्दर्शन कोई नहीं दे देता; क्योंकि इसके सम्यग्दर्शनकी शक्ति उनके पास नहीं है। आत्मामें श्रद्धा नामका त्रैकालिक गुण विद्यमान है; उस त्रैकालिक अखण्ड आत्मद्रव्यका आश्रय करे तो सम्यग्दर्शन हो। देव-गुरुसे होता है वह तो निमित्तका कथन है।

चावलके साथ बोरेका वजन भी तौलमें आता है। चार मन और एक सेर—ऐसा कहा जाता है। वहाँ चावल तो चार मन हैं और एक सेर पक्का बोरेका वजन है। कीमत तो भीतर जो माल भरा है उसकी है; बोरेकी क्या कीमत? उसीप्रकार देव-शास्त्र-गुरुकी श्रद्धाके पुण्य-परिणाम वह तो बोरा हैं, भीतर जो पूर्णानन्दका नाथ भगवान आत्मा—अखण्ड

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्रव्य–है वह माल है। उसके आश्रयसे सम्यग्दर्शनादि प्रगट होते हैं। देव-गुरु तो निमित्त हैं; वे इस आत्माको सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र नहीं देते।

प्रवचनसारकी चरणानुयोगसूचक चूलिकामें आता है कि गुरु शिष्यको दीक्षा–पंचमहाव्रत एवं नग्नता आदि–देते हैं। वह तो चरणानुयोगकी विधिमें ऐसा निमित्तका कथन आता है। इष्टोपदेशमें कहा है कि–तू अपना गुरु है। निमित्तरूपसे समझानेवाले गुरु हैं परन्तु समझनेवाला तू स्वयं ही अपना सच्चा गुरु है। तूने अपनेको समझाया इसलिये तू अपना गुरु है। आत्मैव गुरुरात्मनः। निश्चयसे तो ऐसा है। बाह्यमें निमित्तरूपसे गुरु होते हैं, देशना होती है, परन्तु वे सब बाहरके बारदान–बोरे हैं, माल तो अंतरमें है। अनंत गुणोंका माल तो भीतर चैतन्यद्रव्यमें भरा पड़ा है। उसके आश्रयसे अंतरमें सब–सम्यग्दर्शनादि–प्रगट होते हैं, निमित्तके आश्रयसे नहीं, व्यवहारके आश्रयसे नहीं और पर्यायके आश्रयसे नहीं। त्रैकालिक भगवान प्रभु ब्रह्मानन्द ऐसा जो अखण्ड आत्मद्रव्य उसके आश्रयसे सब होता है।

✽

बेन तो चैतन्य-हीरा हैं, उनका हीरोंसे क्या सन्मान किया जाय! वे तो स्वयं हीरा हैं। मैं आहार करने उनके घर गया और मैंने कहा कि बेन! लोगोंमें बड़ा उत्साह है। वजुभाई–हिंमतभाई वहाँ बैठे थे। बेन बोलीं : 'मैं तो यहाँ आत्माकी साधना करने आयी हूँ; यह तो बोझ लगता है।' उन्हें बाहरकी कुछ पड़ी ही नहीं है, जितना करो उतना कम है।

–पूज्य गुरुदेव.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-२६

ता. ६-७-७८

वचनामृत-८६

दर्पणमें जब प्रतिबिम्ब पड़े उसी काल उसकी निर्मलता होती है, वैसे ही विभाव-परिणामके समय तुझमें निर्मलता भरी है। तेरी दृष्टि चैतन्यकी निर्मलताको न देखकर विभावमें तन्मय हो जाती है, वह तन्मयता छोड़ दे ॥ ८६ ॥

'दर्पणमें जब प्रतिबिम्ब पड़े उसी काल उसकी निर्मलता होती है, वैसे ही विभाव-परिणामके समय तुझमें निर्मलता भरी है।'

विषय सूक्ष्म है। प्रतिबिम्ब पड़े उसी काल दर्पण स्वच्छ और निर्मल है। उसी दृष्टान्तके अनुसार विभाव परिणामके समय ही तुझमें भीतर निर्मलता भरी है। निर्मल चैतन्यमूर्ति पर दृष्टि दे तो, जहाँ रागादिका प्रतिबिम्ब दिखता है वहाँ उसी समय निर्मलता भरी है वह भी दृष्टिगोचर होता है। परिणाममें पुण्य-पापके विभाव होते हैं उसीसमय आत्मा तो निर्मलानन्द है। अपनेको निर्मल ज्ञान एवं निर्मल आनन्दसे परिपूर्ण जाने और रागादि विभावको परभाव जाने तो जन्म-मरणसे रहित हुआ जा सकता है। जन्म-मरणरहित होनेकी यह रीति कोई अलौकिक है। यों तो जीव अनन्तकालसे जन्म-मरण कर रहा है।

वस्तु कभी विकारमय नहीं हो जाती। उसकी पर्यायमें जब विकार होता है उसी समय उसका द्रव्य तो निर्मलतासे भरपूर है ही। निर्मलानन्द प्रभु अपनेको जानता है और अपनी निर्मलतामें रागको भी 'यह है' ऐसा जानता है। यह वस्तुकी मर्यादा और स्थिति है। अहा! बेनके बोलमें आता है ना! कि ये विभावभाव हमारा देश नहीं। दया, दान और व्रतादिके विकल्प उठते हैं,—ऐसे इस परदेशमें हम कहाँ आ गये? जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्यादि अनंत गुणरूप हमारा परिवार निवास करता है वह हमारा स्वदेश है। अब हम उस स्वरूप-स्वदेशकी ओर जा रहे हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'हम करोड़पति हैं'—ऐसा बड़प्पन माननेवाले सब लक्ष्मीके भिखारी हैं। यहाँ आत्मामें तो निर्मल ज्ञान एवं आनन्दकी लक्ष्मी पूर्ण भरी है। अंतरकी लक्ष्मीकी ओर दृष्टि डालनेवालेको अपनी वस्तु निर्मल दिखायी देती है और जो रागादिक होते हैं उन्हें ज्ञानकी निर्मलतामें, अपने उस समयके ज्ञानकी विकासशक्तिसे, सहज जानता है। सूक्ष्म बात है भाई!

'तेरी दृष्टि चैतन्यकी निर्मलताको न देखकर विभावमें तन्मय हो जाती है, वह तन्मयता छोड़ दे।'

जिसे द्रव्यदृष्टि हुई है उसे आत्मा निर्मल भासता है; 'विकार मैं हूँ' ऐसा नहीं भासता। अहा! तेरी दृष्टि निर्मल चैतन्यको न देखकर अकेले विभावको देखती है; वह दृष्टि ही मिथ्यात्व एवं अज्ञान है। अज्ञानीको परिभ्रमणका कारण भी वही है। विकारमें तन्मयता हो जाती है उसे छोड़।

परमानन्द सत्य प्रभु, जिस पर्यायमें राग दिखायी देता है उसका भी अपनी शक्तिसे ज्ञाता है। रागके अस्तित्वसे रागका ज्ञान होता है—ऐसा नहीं है; परन्तु अपने निर्मल स्वभावके कारण—अपनी स्वपर-प्रकाशक निर्मल शक्तिके कारण—अपने अस्तित्वमें रागका ज्ञान होता है।

आत्माके ज्ञान बिना, वस्तुकी व्यवस्था जैसी है वैसी जाने बिना, दया-दानादि पुण्यरागको अपना मानकर, झूठी दृष्टिका सेवन करके जीव चार गतिमें भटकता है। वह विभावमें तन्मय हो जाता है और 'मैं कौन हूँ' वह भूल जाता है। भीतर निर्मलानन्दका नाथ भगवान आत्मा सुन्दर-सुन्दर है, उसकी सुन्दरताके समक्ष जगतकी कोई सुन्दरता है नहीं।—ऐसे सर्वांग सुन्दर भगवान आत्मा पर दृष्टि नहीं है और जो रागादि विभाव होते हैं उनमें तन्मय हो जाता है! धर्मी जीवको तो निर्मलताकी प्रतीति है; राग आता है उसमें तन्मय नहीं होता।

ज्ञानी तो अपनी ज्ञानपर्यायके स्व-पर प्रकाशक सामर्थ्यसे, व्यवहार-रत्नत्रयका राग आता है उसे—उस रागको छुए (स्पर्श) बिना—जानता है; और अज्ञानी तो रागमें तन्मय हो जाता है। वह तन्मयता छोड़ दे। स्वभावकी दृष्टिके अभावमें पर्याय-बुद्धिसे रागादिका—पुण्य-पाप आदिके जो भाव हों उनमें अज्ञानीको तन्मयता है; पर्यायबुद्धिमें लीनता है; उसे छोड़ दे। अंतरमें प्रभु सत्, चित् एवं आनन्दका—अतीन्द्रिय आनन्दका—धाम है ना! 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम;...' भगवान आत्मा आनन्दका स्थान है, विभाव तो दुःखकी जगह है। चाहे शुभ हो या अशुभ हो, दोनों दुःखदशा हैं। अरे, इसे कहाँसे कहाँ ले जाना है! बाह्य मिठास और प्रेम न छूटे तब तक अंतरमें नहीं जा सकता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिसे अपनेमें परका अस्तित्व भासे, परपदार्थ एवं रागादिकी उपस्थिति भासे, उसे अंतरमें अपनी उपस्थिति नहीं भासती; और अंतरमें जिसे निर्मलानन्द ज्ञायक प्रभुमें अपने अस्तित्वका—अपनी उपस्थितिका—भास हुआ हो वह विभावमें तन्मय हुए बिना, विकारका स्पर्श किये बिना, उसका ज्ञान करके अपने ज्ञानमें तन्मय हो जाता है। अरे! तेरी दृष्टि चैतन्यकी निर्मलताको न देखकर विभावमें तन्मय हो जाती है, वह तन्मयता छोड़ दे!

*

वचनामृत-८७

'मुझे परकी चिन्ताका क्या प्रयोजन? मेरा आत्मा सदैव अकेला है' ऐसा ज्ञानी जानते हैं। भूमिकानुसार शुभभाव आयें परन्तु अंतरमें एकाकीपनेकी प्रतीतिरूप परिणति निरंतर रहती है॥ ८७॥

'मुझे परकी चिन्ताका क्या प्रयोजन? मेरा आत्मा सदैव अकेला है' ऐसा ज्ञानी जानते हैं।''

ज्ञान एवं आनन्दमय ऐसे निजस्वरूपके सिवा मुझे परद्रव्यकी चिन्ताका क्या प्रयोजन है?—क्या लाभ है? जो वस्तु जहाँ है वहाँ रहेगी; मेरे संकल्प-विकल्पसे उसमें कोई परिवर्तन हो ऐसा नहीं है। जिस काल, जिस क्षेत्रमें, जिस द्रव्यकी, जो पर्याय जैसी होना है वह अपने स्वतंत्र परिणमनके कारण होगी ही; उसमें मेरे कारण कोई परिवर्तन हो जाय ऐसा नहीं है। अहा! तो फिर मुझे परकी चिन्ताका क्या प्रयोजन है? परकी चिन्तासे क्या लाभ है? मेरा आत्मा सदैव अकेला है, रागका द्वैतपना भी मुझमें नहीं है।

मेरे स्वरूपमें परद्रव्यका अस्तित्व तो है ही नहीं, किन्तु दया, दान और व्यवहाररत्नत्रयादिका जो शुभराग उसका अस्तित्व भी नहीं है; मैं तो सदा अकेला हूँ। अकेलेमें परसहित या रागसहित—ऐसा द्वैतपना है ही नहीं, इसलिये मैं अद्वैत हूँ। अद्वैतका अर्थ वेदान्त कहता है तदनुसार 'ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या' ऐसा नहीं है। यहाँ तो परवस्तु उसके अपनेमें है, परन्तु उसका मिलन मुझमें नहीं है ऐसा मैं अद्वैत हूँ। यदि अकेला सर्वथा अद्वैत माना जाय तो 'तू दुःखसे मुक्त हो' ऐसा उपदेश किसे और किस कारण दिया जाता है? भीतर कोई दुःखकी दशा है—आत्मा स्वभावसे तो आनन्दघन है तथापि उसकी पर्यायमें राग है, दुःख है—तो उससे सर्वथा मुक्त होनेका उपदेश दिया जाता है। दुःखकी पर्याय पलटकर आनन्दकी पर्याय हो जायगी। इसलिये त्रैकालिक द्रव्य और उसकी वर्तमान पर्याय—इस प्रकार अपेक्षासे द्वैत सिद्ध हो गया।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यहाँ कहते हैं कि मेरा आत्मा सदैव अकेला है, निर्मल है। गुजरातीमें गिनती बोलते हैं कि—'एकडे एक और बगडे बे।' एकडे यानी अकेला बिगड़ता नहीं है, यदि बे अर्थात् दो हों तो बिगड़ते हैं। परद्रव्य और रागके साथ मेरा पारमार्थिक सम्बन्ध है। ऐसा मानना वह 'बिगड़ना' है, मिथ्यात्व है। वहाँ अपनी दशा बिगड़ गई। ज्ञानी धर्मात्मा जानते हैं कि 'मेरा आत्मा सदैव अकेला है।' व्यवहार-रत्नत्रयका राग आता है तथापि मैं तो स्वभावसे अकेला ही हूँ, मैं जहाँ हूँ वहाँ राग नहीं है और राग है वहाँ मैं नहीं हूँ, अर्थात् 'मैं'में शुभाशुभ राग नहीं है और शुभाशुभ रागमें 'मैं' नहीं है—ऐसा ज्ञानी अपनेको सदैव 'अकेला' जानता है।

'भूमिकानुसार शुभभाव आयें परन्तु अंतरमें एकाकीपनेकी प्रतीतिरूप परिणति निरंतर बनी रहती है।'

चौथे, पाँचवें तथा छठवें गुणस्थानमें भूमिकानुसार शुभराग आता है। वह भले आये, परन्तु अंतरमें तो 'मैं अकेला ज्ञायक हूँ' ऐसी एकाकार प्रतीतिरूप परिणति उसे सदा निरंतर बनी रहती है। 'निरंतर' अर्थात् 'मैं अकेला त्रिकाल शुद्ध ज्ञायक हूँ' ऐसी प्रतीतिरूप परिणति 'सदैव अविच्छिन्नरूपसे' बनी रहती है। यह अलग बात है कि—रागादि विभाव पर्यायमें उत्पन्न होते हैं, तथापि ज्ञानी धर्मात्मा समझते हैं कि मैं अंतरंगमें उनसे भिन्न हूँ। उसे एकाकीपनेकी प्रतीतिरूप परिणति—दशा—अवस्था—निरंतर रहती है। अहा! बड़ी बात है!

लोग तो कहते हैं कि दया पालो, व्रत धारण करो, पूजा करो, भक्ति करो; गुरुको माननेवाले कहते हैं कि—गुरुको मानो; परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि—परद्रव्यमें लक्ष जायगा तो तुझे राग होगा, और 'राग मेरी वस्तु है, मुझे हितकारी है' ऐसी जो मान्यता वह मिथ्यात्वभाव है। मैं तो राग होनेपर भी उससे भिन्न, त्रिकाल एकाकी ज्ञायक हूँ, ऐसी एकाकीपनेकी निर्मल प्रतीतिरूप परिणति—सहजदशा सम्यग्दृष्टि—धर्मीको निरंतर वर्तती है।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत-८८

मैं तो लेपरहित चैतन्यदेव हूँ। चैतन्यको जन्म नहीं है, मरण नहीं है। चैतन्य तो सदा चैतन्य ही है। नवीन प्रगट हो तो जन्म कहलाये। चैतन्य तो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावसे चाहे जैसे उदयमें सदा निर्लेप—अलिप्त ही है। फिर चिन्ता काहे की? मूल तत्त्वमें तो कुछ प्रविष्ट हो ही नहीं सकता ॥ ८८ ॥

'मैं तो लेपरहित चैतन्यदेव हूँ।'

नवतत्त्वोंमें राग पुण्यतत्त्व और पापतत्त्वमें जाता है। वह राग भी मेरी वस्तु नहीं है। मैं तो रागके लेपरहित चैतन्यदेव हूँ। समयसारके कलशमें आता है ना!—**अचिन्त्यशक्तिः स्वयमेव देवश्चिन्मात्रचिन्तामणिरेष यस्मात्...'** आत्मा स्वयं ही अचिन्त्य शक्तिवान देव है और चैतन्यरूप चिन्तामणिरत्न है। मैं तो ज्ञान, आनन्दादि अनंत अचिन्त्य दिव्य शक्तियोंका धारक ज्ञायकदेव हूँ। दया, दानादि रागादिका लेप मेरा नहीं है, वह मेरी त्रैकालिक वस्तुमें नहीं है, उससे आत्माकी शान्ति या धर्म नहीं होता।

आजकल तो धर्मके नामपर यह चलता है कि—व्यवहार करो, व्यवहार करो; व्यवहार करते-करते निश्चय अर्थात् धर्म हो जायगा। क्या आकुलता—राग करते-करते अनाकुलता—धर्म हो जायगा? व्यवहार तो पराश्रित राग है, आकुलता है। वह भूमिकानुसार आता है, परन्तु वह है तो आकुलता। अहा! निजस्वभावके—निश्चयके आश्रयमें रागका—व्यवहारका आश्रय बिलकुल नहीं आता।

अहा! मैं तो निर्लेप एकाकी चैतन्यदेव हूँ। लेपका अस्तित्व है अवश्य, परन्तु मैं तो लेपरहित 'यह' वस्तु हूँ। अहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दका निजघर ऐसा जो शुद्ध चैतन्य वह तो लेपरहित है।

'चैतन्यको जन्म नहीं है, मरण नहीं है। चैतन्य तो सदा चैतन्य ही है। नवीन तत्त्व प्रगट हो तो जन्म कहलाये।'

शरीर मिट्टी है, जड़ है; उसके संयोगको जन्म और वियोगको मरण कहा जाता है। भगवान आत्माको जन्म या मरण तीन कालमें नहीं होते। ज्ञायकभावका अस्तित्व त्रिकाल है, उसकी उत्पत्ति कैसी? उत्पत्ति तो पर्यायकी होती है, वस्तुकी नहीं; वस्तु तो अनादि है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप निश्चय-मोक्षमार्ग हुआ ऐसा जो कहा जाता है वह तो पर्यायकी उत्पत्ति है; द्रव्य है वह कभी उत्पन्न नहीं होता। अनंतगुण-रत्नाकर चैतन्यप्रभु आत्मा तो त्रिकाल है, अनादि-अनंत है। भगवान आत्माकी जैसे उत्पत्ति नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होती, उसीप्रकार उसका व्यय भी नहीं होता; वह तो उत्पत्ति तथा व्ययसे—विलयसे रहित है।

चैतन्य तो सदा चैतन्य ही है। ज्ञायकस्वरूप जो अस्तित्व, उपस्थितिवाली चैतन्यवस्तु वह तो सदा है ही; उसकी उत्पत्ति या विनाश नहीं होता। त्रिकाल ध्रुव चैतन्यमय वस्तुको जन्म-मरण है ही नहीं। अहा! भाषा सादी है परन्तु भाव तो भाई! अंतरमें बैठना...अहाहा!....भाषा तो वाचक है।

नवीन तत्त्व प्रगट हो तो जन्म कहा जाता है। नवीन उत्पत्ति हो तो जन्म कहा जाता है। प्रभु आत्मा तो नवीन है ही नहीं; वह तो भूतकालमें था, वर्तमानमें है और भविष्यमें भी होगा। ज्ञान एवं आनन्दका वह वज्रबिम्ब अनादि-अनन्त है, उसकी नवीन उत्पत्ति अथवा सम्पूर्ण प्रलय कभी नहीं होता। अहा! चैतन्यतत्त्व नवीन प्रगट हो तो उसका जन्म हुआ कहा जाय, परन्तु ऐसा तो कभी नहीं होता।

'चैतन्य तो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावसे चाहे जैसे उदयमें सदा निर्लेप—अलिप्त ही है। फिर चिन्ता काहे की?'

चाहे जैसे उदयमें—जगतके संयोगी पदार्थ, जगतके क्षेत्र, जगतके काल—स्थिति—अवस्था, और जगतके भाव चाहे जैसे हों—आत्मा सदा निर्लेप है। निगोदमें भी आत्मद्रव्य स्वभावसे तो निर्लेप ही है। निगोदमें अक्षरके अनन्तवें भाग विकास और केवलज्ञानमें सम्पूर्ण विकास, परन्तु वह तो पर्याय है। केवलज्ञान भी पर्याय है, क्योंकि उसकी उत्पत्ति होती है। जिसकी उत्पत्ति हो वह पर्याय है, गुण नहीं है। गुणकी उत्पत्ति नहीं होती। केवलज्ञान गुण नहीं है।

सोना चाहे जितने वर्षों तक पानीमें पड़ा रहे, कीचड़में पड़ा रहे, तथापि उसे जंग नहीं लगती, वह तो निर्लेप है; उसीप्रकार चैतन्यको चाहे जैसा और चाहे जितना उदय हो परन्तु वह तो निर्लेप एवं अलिप्त ही है। अहा! वस्तु तो वस्तु ही है, वस्तुमें कुछ आया नहीं है। बेनके बोलमें आता है न! कि—'जिसप्रकार कंचनको जंग नहीं लगती, अग्निको दीमक नहीं लगती उसीप्रकार ज्ञायकस्वभावमें आवरण, न्यूनता या अशुद्धि नहीं आती...' आत्मा तो सदा परिपूर्ण भगवान है, पूर्णतासे भरपूर है।

फिर चिन्ता काहे की? वस्तु तो चाहे जैसे उदयमें और चाहे जैसे प्रसंगमें हो, वह तो सदा निर्लेप ही है; तो फिर चिन्ता कैसी? क्या कहते हैं? कि—वस्तु निर्लेप है ऐसी दृष्टि हुई फिर चिन्ता काहे की? 'ऐसा ध्यान रखूँ तो कारखाना बराबर चले, विश्वासपात्र कर्मचारी हों तो काम ठीक हो, चोर नौकर खा नहीं पायेंगे।'—अरे! जीवकी उपाधिका कोई पार है! अरे प्रभु! तू यह क्या करता है? तू तो सदा अकेला है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उदयमें चाहे जो वस्तु आये, परन्तु तेरी वस्तुमें किंचित् लेप नहीं है, न्यूनता—कमी नहीं है भाई! जीव वस्तु जो है वह तो त्रिकाल एकरूप चित्प्रकाशका पुंज और आनन्दघन है, तो फिर परकी चिन्ता क्या? किसकी चिन्ता करना?

'मूलतत्त्वमें तो कुछ प्रविष्ट हो ही नहीं सकता।'

भगवान आत्मा पूर्णानन्दमय प्रभु है। उसमें रागका भी प्रवेश नहीं है, तो कर्म, शरीर तथा अन्य वस्तुओंका प्रवेश कहाँसे होगा? पूर्णम् इदम्...पूर्णम् इदम्। प्रभु स्वयं ज्ञानानन्दस्वभावी पूर्ण है, उसे चिन्ता कैसी? अहाहा! ऐसी द्रव्य-अपेक्षाकी पूर्णताका जिसे स्पष्ट दृढ़ श्रद्धान हो, वही पर्याय-अपेक्षाकी अपूर्णताको टालकर पर्यायमें पूर्ण होता है।

*

राजकोट, सं. २०२७

बेन (चम्पाबेन) तो बहुत ही गम्भीर-गम्भीर! ऐसा आत्मा वर्तमानमें हिन्दुस्तानमें नहीं है। उन्हें पवित्रता-परिणति, और शुद्ध-परिणति सहित जातिस्मरण ज्ञान है। वैराग्य-वैराग्य! शास्त्रमें आता है कि—तीर्थंकर दीक्षा लें तब पहले जातिस्मरण हो ऐसा नियम है। जातिस्मरण हो तब उपयोग लगाना नहीं पड़ता और झट् ज्ञान होता है, एकदम वैराग्य हो जाता है। ऐसा बेनको हो जाता है। बेनको जातिस्मरण होनेपर वैराग्य बहुत बढ़ गया है; उन्हें बिलकुल परकी कुछ पड़ी नहीं है।

—*पूज्य गुरुदेव*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-३०

ता. ७-७-७८

वचनामृत-८६

मुनिराजको एकदम स्वरूप-रमणता जागृत है। स्वरूप कैसा है? ज्ञान, आनन्दादि गुणोंसे निर्मित है। पर्यायमें समताभाव प्रगट है। शत्रु-मित्रके विकल्प रहित हैं; निर्मानता है; 'देह जाय पर माया होय न रोममें'; सोना हो या तिनका—दोनों समान हैं। चाहे जैसे संयोग हों— अनुकूलतामें आकर्षित नहीं होते, प्रतिकूलतामें खेद नहीं करते। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ें त्यों—त्यों समरसभाव विशेष प्रगट होता जाता है।। ८६ ।।

'मुनिराजको एकदम स्वरूप-रमणता जागृत है।'

क्या कहते हैं? मुनिराजको एकदम स्वरूप-रमणता जागृत है—उसमें दो बातोंका समावेश है। (१) तीन कषायोंका अभाव होकर जो वीतरागभाव उत्पन्न हुआ है इतनी स्वरूप-रमणताकी जागृति निरंतर अटूट वर्तती है; (२) निरंतर वर्तती शुद्धिके अतिरिक्त उपयोग भी क्षणमें अंदर तुरन्त लग जाता है। छठवें गुणस्थानमें आते हैं, विकल्प उठता है, साथमें स्वरूपकी रमणता भी है। परन्तु रमणता एकदम बढ़ गई है इसलिये उपयोग बारबार अंतरमें चला जाता है; क्षण—क्षणमें सातवें गुणस्थानमें आ जाता है।

चौथे—पाँचवें गुणस्थानमें स्वरूपकी दृष्टि है, भूमिकानुसार स्वरूप-स्थिरता है, उपयोग अंतरमें जाता है, परन्तु उपयोगको निर्विकल्प होनेमें पुनः पुनः अधिक अंतर पड़ जाता है। मुनि तो क्षणमें छठवें ओर क्षणमें सातवें झूलेकी भाँति झूलते हैं—वर्तते हैं, क्योंकि उनको स्वरूप-रमणता एकदम जागृत है, खूब बढ़ गई है।

'स्वरूप कैसा है? ज्ञान, आनन्दादि गुणोंसे निर्मित है।'

अहा! जैन दर्शनके संत—मुनियोंका स्वरूप भी कैसा है! मुनिको आत्मस्वरूपमें उग्र रमणता है। भगवान आत्माका स्वरूप अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रभुता, अतीन्द्रिय स्वच्छता आदि अनंत गुणोंसे निर्मित है, अनंत गुणोंका बना हुआ है। वह स्वरूप अनंत ज्ञान, अनंत आनन्द, अनंत शांति, अनंत वीतरागता एवं अनंत स्वच्छता आदि अनंत गुणोंका भण्डार है, खजाना है।—ऐसे अपने स्वरूपमें मुनिराजकी परिणति एकदम जम गई है।

'पर्यायमें समताभाव प्रगट है।'

सम्यग्दर्शन होनेपर अतीन्द्रिय आनन्दका अल्प स्वाद आता है; परन्तु मुनिको उसका अतिप्रचुर आस्वादन होता है। समयसारकी पाँचवीं गाथाकी टीकामें भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवका निजवैभव बतलाते हुए कहा है कि—'कैसा है निजवैभव? निरंतर झरते ऐसे सुन्दर आनंदकी मुद्रा—छापवाला जो अतीन्द्रिय प्रचुर स्वसंवेदन उससे उत्पन्न हुआ आचार्य भगवानका निजवैभव है। वस्तुस्वभावसे तो वीतरागस्वरूप है, परन्तु मुनिको पर्यायमें भी खूब वीतरागता—समताभाव आ गया है।

चौथे गुणस्थानमें मिथ्यात्व और अनन्तानुबंधी कषाय दूर हुआ उतने अंशमें वीतरागता है। पाँचवेंमें उससे भी विशेष है। मुनिको छठवें—सातवें तो वीतरागभाव—समताभाव पर्यायमें खूब बढ़ गया है। शक्ति-अपेक्षासे समताभाव त्रिकाल पूर्ण है ही; परन्तु यह तो पर्यायमें भी खूब प्रगट हुआ है।

"शत्रु-मित्रके विकल्प रहित हैं; निर्मानता है; 'देह जाय पर माया होय न रोममें'; सोना हो या तिनका—दोनों समान हैं।"

यह मेरा शत्रु है और यह मेरा मित्र है, भक्त है, मुझे माननेवाला है; यह मुझे प्रतिकूल और यह अनुकूल है;—ऐसे विकल्पके रागसे मुनिराज रहित हैं।

मुनिराजको अंतरमें अत्यधिक निर्मानता प्रगट हुई है। पूर्ण केवलज्ञानदशाकी जहाँ भावना है वहाँ अपनी पर्यायका या पदका अभिमान नहीं होता। तीन कषायके अभावकी वीतरागता होनेपर भी, पर्यायमें अभी पूर्ण वीतरागता एवं सर्वज्ञदशा प्रगट नहीं हुई है, अपनी दशामें अल्पता, पामरता है ऐसा जानते हैं। अंतरमें तो निर्मान....निर्मान हैं।

'देह जाय पर माया होय न रोममें'—यह श्रीमद्के 'अपूर्व अवसर'की पंक्ति है। अहा! भले ही शरीर छूट जाय, किन्तु मुनिराजके एक रोम जितने भागमें भी माया नहीं होती। अहा! मुनिदशा किसे कहते हैं? दिगम्बर संत कि जिनके अंतरमें मुनि योग्य रागरहितभावसे नग्नता और बाह्यमें वस्त्ररहितरूप नग्नता सहज वर्तते हैं, उनकी सहजदशा वह मुनिपना है। अंतरमें आत्माकी प्रतीतिके बिना जीव बाह्यसे वस्त्ररहित नग्न अनंतबार हुआ, वह कोई मुनिदशा नहीं है। अरे! पंचमहाव्रतका शुभराग आये, विकल्पकी वृत्ति उठे, वह भी मुनिपना नहीं है। स्वभावकी प्रतीति करके अंतरमें मुनिदशाको अनुचित

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विकल्परूप वृत्तिसे रहित और बाह्य वस्त्रादिसे रहित सहजदशा हो वह, भावसे तथा द्रव्यसे निर्ग्रन्थ मुनिदशा है। श्रीमद् ने कहा है कि—'द्रव्यभाव संयममय निर्ग्रन्थ सिद्ध है'।

मुनिको अतीन्द्रिय वीतरागी आनन्दका स्वाद प्रचुर होता है। सम्यग्दृष्टिको चौथे गुणस्थानमें वह स्वाद अल्प होता है। सर्वार्थसिद्धिके देव जोकि एकभवमें मोक्ष जानेवाले हैं, उनकी अपेक्षा पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावकको आनन्दका विशेष स्वाद होता है, और मुनिको तो श्रावककी अपेक्षा अधिक आनंदका वेदन है। 'देह जाय पर माया होय न रोममें'—ऐसी सहजदशा होगई है। चौथे—पाँचवें, देह जाय परन्तु देहके साथ एकताबुद्धि होय न रोममें; किंचित् आसक्तिका राग है, इतनी अरुचि प्रतिकूलतामें आ जाती है। ज्ञानीको राग तथा अरुचि—दोनों ज्ञानका ज्ञेय हैं।

ज्ञानीको आत्माके आलम्बनसे जितनी शुद्धता प्रगट हुई है उतना आनन्द है; और अभी जितना परलक्षी राग है उतना दुःख है। पूर्ण आनन्दका वेदन परमात्माको—अरिहंत—सिद्धको है; पूर्ण दुःखका वेदन मिथ्यादृष्टिको है—भले ही वह साधु होकर पंच महाव्रत पालता हो, परन्तु जहाँ रागके साथ एकताबुद्धि है वहाँ पूर्ण दुःख है; और साधकको थोड़ा आनन्द तथा थोड़ा दुःख है।

सम्यग्दृष्टिको अपने स्वरूपके आनन्दका भी वेदन है और जितना राग है उतना दुःखका भी वेदन है। मिथ्यादृष्टिको रागमें एकत्वबुद्धि होनेसे किंचित् भी सुख नहीं है, मात्र दुःख ही है। पैसे वाले मानें कि हम सुखी हैं, परन्तु वे सुखी नहीं हैं दुःखी हैं। पैसेमें धूल भी सुख नहीं है; उसके रागमें मात्र आकुलता है।

प्रश्न :—पैसेमें सुख नहीं है तो क्या फेंक दें?

उत्तर :—अरे, भाई! फेंके कौन और रखे कौन? पैसा तो जड़ वस्तु है। वह उसके कारण आया है, रहता है और चला जाता है। दान देनेवाला माने कि 'मैंने दान दिया'—वह मिथ्या भ्रम है। यहाँ तो मुनिदशाकी बात है। लक्ष्मी तो ठीक, परन्तु **'देह जाय पर माया होय न रोम में'**—ऐसी दशा सहजरूपसे वर्तती है।

सोना हो या तिनका—दोनों मुनिराजको एकसमान हैं; ज्ञानके जड़ ज्ञेय हैं। मुनिको वनमें कहीं हीरोंसे भरा हुआ घड़ा दिखायी दे, उसमें एक-एक हीरा करोड़ोंके मूल्यका हो तथापि उनके मन उसकी कोई महिमा नहीं होती, सड़े हुए तिनके समान तुच्छ जानते हैं। अंतरमें इतनी अधिक वीतरागता प्रगट हुई है कि हीरा हो अथवा विष्टा, दोनों एकसमान ज्ञेय लगते हैं। हीरा देखा तो अच्छा और विष्टा दिखायी दिया तो बुरा—ऐसा नहीं है। धूलके ढेले हों या चिकनी लकड़ीका तख्त—दोनों एकसे लगते हैं। नर्म वह अच्छा और कठोर वह बुरा—ऐसे भावरहित, अन्तरमें आनन्दसहित समताभाव मुनिको प्रगट हुआ है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'चाहे जैसे संयोग हों—अनुकूलतामें आकर्षित नहीं होते, प्रतिकूलतामें खेद नहीं करते।'

भले ही चाहे जैसे बाह्य संयोग हों, मुनि अनुकूलतामें आकर्षित नहीं होते। सम्यग्दृष्टिको किंचित् राग आ जाता है, परन्तु वे संयोग और राग मेरे हैं ऐसी दृष्टि नहीं है। सुन्दर स्त्री, पुत्र, लक्ष्मी,मकान और करोड़ोंकी आमदनी आदिमें—अनुकूल वस्तुओंमें किंचित् राग आ जाता है तथापि, (श्रद्धा-अपेक्षासे) ज्ञानी लुभाते नहीं हैं—आकर्षित नहीं होते। यहाँ तो मुनिकी बात है। मुनिको स्त्री-पुत्रादिका राग तो है ही नहीं; परन्तु शिष्य, संघ, पूजा, प्रतिष्ठा आदि बाह्य अनुकूल संयोगोंमें भी आकर्षित नहीं होते। अहा! मुनि किन्हें कहते हैं भाई! मुनिराज तो चलते-फिरते सिद्ध हैं। एक तो अपने अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद आया हो और तदुपरान्त प्रचुर अतीन्द्रिय रमणता—वीतरागता प्रगट हुई हो; उस वीतराग समताभावमें सोना और तिनका दोनों समान दिखायी देते हैं। वे मुनिराज अनुकूलतामें आकर्षित और प्रतिकूलतामें खेदखिन्न नहीं होते। वे जानते हैं कि समस्त परवस्तुएँ परज्ञेय हैं, जानने योग्य हैं; इसलिये उनमें कोई वस्तु अच्छी है और कोई बुरी है—ऐसा मुनिको नहीं लगता।

मुनिराजको वीतरागता फूलीफली है; जिसप्रकार फूलकी कली खिल उठती है, उसीप्रकार वीतरागता खिल उठी है। श्रेणिक राजाने यशोधर मुनिके गलेमें मरा हुआ सर्प डाल दिया था; करोड़ों चींटियाँ शरीर पर चढ़ गईं और जगह-जगह काटा। ऐसे उपसर्गके समय भी मुनि खेदखिन्न नहीं हुए थे, परन्तु अंतरमें वीतरागी आनन्दमें क्रीड़ा करते थे। चेलना रानी कहने लगी—देखो, ऐसे होते हैं हमारे जैन मुनि! अंतर्-आनन्दकी मस्तीमें उपसर्गके प्रति उनका लक्ष ही नहीं जाता। अंतरमें एकदम अतीन्द्रिय आनन्दकी परिणतिमें लीन हो गये हैं। श्रेणिक राजाको लगा कि—अहो! ऐसा है जैनधर्म? फिर मुनिराजने धर्मका स्वरूप समझाया और श्रेणिकने सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया। पश्चात् महावीर भगवानके समवसरणमें तीर्थंकर-नामकर्मका बंध किया; मुनिको उपसर्ग करते समय सातवें नरककी आयुका बंध किया था, उसमें सम्यग्दर्शनके प्रतापसे परिवर्तन होकर तेतीस सागरकी स्थिति घटकर प्रथम नरकमें चौरासी हजार वर्षकी रह गई! वर्तमानमें वे पहले नरकमें हैं। वहाँसे निकलकर आगामी चौबीसीके प्रथम तीर्थंकर पद्मनाभ होंगे। अहा! सम्यक्त्वकी महिमा अपार है! लोगोंको उसकी खबर नहीं है, मूल्य नहीं है और बाह्यक्रियाओंमें 'यह किया, वह किया' इसप्रकार मिथ्यात्वका पोषण करते हैं। यहाँ तो कहते हैं कि मुनिराजको प्रतिकूलतामें खेद और अनुकूलतामें हर्ष नहीं है।

'ज्यों-ज्यों आगे बढ़ें त्यों-त्यों समरसभाव विशेष प्रगट होता जाता है।'

अतीन्द्रिय आनन्दका समुद्र ऐसा जो भगवान आत्मा, उसमें ज्यों—ज्यों डुबकी मारें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

त्यों—त्यों अंतरमें वीतरागता और आनन्दकी वृद्धि होती जाती हैं। ज्यों—ज्यों आगे बढ़ते हैं त्यों—त्यों समरसभाव—वीतरागभाव विशेष होता जाता है। पूर्ण वीतरागस्वरूप प्रभु तो अंतरमें विद्यमान है; उसका अनुभव करने पर वीतरागताके अंश क्रमशः, स्थिरता बढ़ने पर, वृद्धिको प्राप्त होते हैं। ज्यों—ज्यों आगे बढ़े त्यों—त्यों अतीन्द्रिय आनन्दकी वीतरागी लहर बढ़ती जाती है। अंतरमें पारिणामिकभावसे शक्तिरूप आनन्द था वह पर्यायमें, सम्पूर्ण वीतरागता होकर केवलज्ञान होनेपर, पूर्ण प्रगट होता है। अहा! ऐसा भगवान, इस अस्थि—चर्ममय शरीरमें लिपटा हुआ प्रभु, 'यह शरीर और राग सो मैं'—ऐसी भ्रमणामें कहाँ अटक गया है?

*

वचनामृत-९०

संसारकी अनेक अभिलाषारूप क्षुधासे दुःखित मुसाफिर! तू विषयोंके लिये क्यों तरसता है? वहाँ तेरी भूख शांत नहीं होगी। अंतरमें अमृतफलोंका चैतन्यवृक्ष लगा है उसे देख तो अनेक प्रकारके मधुर फल एवं रस तुझे प्राप्त होंगे, तू तृप्त-तृप्त हो जायगा।। ९०।।

'संसारकी अनेक अभिलाषारूप क्षुधासे दुःखित मुसाफिर! तू विषयोंके लिये क्यों तरसता है? वहाँ तेरी भूख शांत नहीं होगी।'

एक भवसे दूसरा और दूसरेसे तीसरा—ऐसा करते करते, मुसाफिर! तूने अनंत भव किये। वहाँ परिभ्रमण करते-करते विषयकी, पुत्रकी, प्रतिष्ठाकी, लक्ष्मीकी आदि अनेक सांसारिक तृष्णारूप क्षुधासे तू पीड़ित है। तूने स्वपदार्थका आश्रय नहीं लिया और परविषयोंमें सुखके लिये लालायित हो रहा है; परन्तु वहाँ तेरा सुख या शान्ति नहीं है।

भले ही इन्द्रका इन्द्रासन हो, चक्रवर्तीका राज्य हो, वे बाह्य साधन क्या शरणभूत हैं? प्रभु! वे सब क्षणमें बदल जायेंगे। अरे, शरीरको जानेमें क्या देर? नाशवानका भरोसा छोड़ दे, और अविनाशी आनन्दमूर्ति प्रभुका विश्वास कर, उसकी दृष्टि कर, तो तुझे अंतरसे निधान प्राप्त होंगे।

अहा! संसारकी अनंत अभिलाषा! मेरी प्रतिष्ठा बढ़े, पैसा बढ़े, पुत्र बढ़ें—यह जगतकी अभिलाषा! आकुलताकी अभिलाषा! उस विकारमें ऐसी शक्ति नहीं है कि जिसमेंसे अनंत आनन्द और अनंत वीर्य प्रगट हो। अनंत सुख और अनंत पुरुषार्थ, जो कभी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कम न हो ऐसा भण्डार तो भीतर स्वभावमें भरा है। विकार है वह तो मर्यादित है। शुभभाव भी विकार है और मर्यादित है। बाह्य सब कार्योंमें तो सीमा होती है—मर्यादा होती है; अमर्यादित तो अंतर्ज्ञान एवं आनन्द है। वहाँ सीमा—मर्यादा नहीं है। अंतर्-स्वभावमें मर्यादा नहीं होती। जीवको अनादिकालसे जो बाह्यवृत्ति है उसकी यदि मर्यादा न हो तब तो जीव कभी उससे विमुख ही न हो; सदा बाह्यमें ही रुका रहे। अमर्यादित तो आत्मस्वभाव ही है। आत्मा अगाध शक्तिसे भरपूर है। अष्टपाहुड़में आता है कि दर्शन, ज्ञान और चारित्र जो प्रगट होता है वह अक्षय तथा अमेय है।

संसारकी अनेक अभिलाषारूप क्षुधासे पीड़ित हे मुसाफिर! तू विषयोंके लिये क्यों तरसता है? वह सब तो विष है। अंतरमें शांति और सुखका निधान ऐसी जो अपनी वस्तु है उस ओर क्यों उन्मुख नहीं होता? विषयोंके लिये लालायित है, किन्तु वहाँ तेरी भूख शांत नहीं होगी। बाह्यमें इतना मिल जाये, इतना भोग लूँ तो शान्ति हो जाय, वह तेरा भ्रम है। बाह्य भोगोंसे तीनकालमें शांति नहीं मिलती।

प्रश्न :— भोगानन्दको ब्रह्मानन्द कहते हैं वह क्या है?

उत्तर :— यह बात कोई कहता है, अखबारोंमें भी आयी है। वह कहता है कि भोगानन्दमें ब्रह्मानन्द है। खूब रोओ, और रोते—रोते निर्विकल्प हो जाओगे; खूब हँसो, और हँसते—हँसते तुम्हारा विकल्प छूट जायगा, तुम निर्विकल्प हो जाओगे। भाई, यह सब कल्पनाएँ असत्य और मिथ्यात्व हैं। विषय-भोगमें खाक भी आनन्द नहीं है, दुःख है, ज़हर है। भोगका विकल्प वह तो पापराग है। विषयतृष्णाकी प्यास भोगोंसे कभी नहीं बुझती। सम्यग्दृष्टिको तो बाह्य विषयोंके प्रति रागकी वृत्ति उठे वह ज़हर जैसी लगती है। आत्मस्वभावके प्रति जितनी परिणति हुई उतना आनन्द है।

'भोग को भोगूँ' यह भाव तो अशुभराग ही है, पाप ही है; उसकी तो क्या बात, परन्तु 'भोगका त्याग करूँ' वह भी एक शुभविकल्प है, शुभराग है; उसमें भी आत्माका आनन्द नहीं है। शुभरागमें भी आत्माकी अतीन्द्रिय शांति और सुख नहीं है। शुभरागकी लालसासे भी तेरी भूख शांत नहीं होगी। वह भूख कैसे शांत हो वह अब कहते हैं।

'अंतरमें अमृतफलोंका चैतन्यवृक्ष लगा है उसे देखे तो अनेक प्रकारके मधुर फल एवं रस तुझे प्राप्त होंगे, तू तृप्त—तृप्त हो जायगा।'

जैसे आम्रवृक्षपर आमोंकी फसल आती है, उसीप्रकार चैतन्यवृक्षमें अनंत ज्ञान, अनंत आनन्दादि अमृतफल पकते हैं। अहाहा! अमृत-सागर भगवान आत्मा मृतक कलेवरमें मूर्च्छित हो रहा है। प्रभु! अमृतफलका वृक्ष तेरे पास है; उसमें रागकी फसल हो ऐसा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वह नहीं है; परन्तु शरीरकी ओटमें वह तुझे दिखायी नहीं देता और रागकी आसक्तिमें उस अमृतवृक्षकी पहिचान नहीं होती। वृक्षको जितना पानी दिया जाये उतने फल आते हैं, उसीप्रकार चैतन्यवृक्षमें जितनी एकाग्रता करे उतने अमृतफल लगते हैं। जिसमें ज्ञान और आनन्दके अमृतफल लगें ऐसे चैतन्यवृक्षको अंतरमें देख तो तुझे मधुर अमृतफल प्राप्त होंगे और तू तृप्त-तृप्त हो जायगा।

शुभराग और उसका फल पुण्य—बाह्य विषय, वह सब ज़हर है। तू अनुकूलतामें आकर्षित और प्रतिकूलतामें खेदखिन्न हो गया है, भाई! वहाँ देखता है उसके बदलेमें अंतरमें अनादि-अनंत स्वयंसिद्ध वस्तुको कि जिसमें अतीन्द्रिय अमृतके फल लगते हैं उस चैतन्य-कल्पवृक्षको देखा ना!

प्रश्न :—यह तो सब निश्चयकी बातें हैं?

उत्तर :—भाई! व्यवहार तो पराश्रित राग है और वह शुभराग भी ज़हर है। यह चैतन्यवृक्ष ऐसा नहीं है जिसमेंसे व्यवहाररूप ज़हरकी उत्पत्ति हो। भोगानन्द तो कालकूट—विष है और भगवान आत्मा भोगातीत, जिसमें अमृत-आनन्दके फलोंकी उत्पत्ति हो ऐसा चैतन्यवृक्ष है। अहाहा! ज्ञानका आनन्द, श्रद्धाका आनन्द, वीतरागताका आनन्द आदि अनेक प्रकारके आनन्दरूपी मधुर फल कहीं बाहरसे नहीं आते, परन्तु चैतन्यवृक्ष ही वे अमृत-फल देनेवाला है। उस ओर देख, उसकी रुचि—प्रतीति कर तो अमृत-फल प्राप्त होंगे।

अहाहा! भगवान आत्मा तो अमृत-फलोंका वृक्ष है। कल्पवृक्षसे तो जिस वस्तुका वृक्ष हो उसीका चिंतवन करनेसे वह वस्तु प्राप्त होती है। यहाँ आत्मामें तो संख्यासे अपरिमित अनंतगुण भरे हैं; उस अनेक प्रकारके मधुरफल देनेवाले चैतन्यवृक्षकी ओर दृष्टि कर ना! वहाँ देख ना! वहाँ देखनेसे अनेक प्रकारके मधुरफल और रस प्राप्त होंगे और तू तृप्त-तृप्त हो जायगा। विषयोंकी अभिलाषामें कहीं तृप्ति नहीं होती; उससे तो अग्निमें घी होमनेकी भाँति, दुःखकी ज्वाला भड़केगी, वेदनाकी धारा बहेगी। अंदर शुद्ध आनन्दकन्द, अमृतसे भरपूर भगवान आत्मा है, उसकी दृष्टि करनेसे, उसे देखनेसे तथा उसमें एकाग्र होनेसे शान्तिका एवं वीतरागताका फल प्राप्त होगा।

आम्रवृक्ष पर आम लगते हैं, उसीप्रकार चैतन्य भगवानके वृक्षमें तो अतीन्द्रिय आनन्दके अमृतफल पकते हैं। उन्हें तू देख, पहिचान और अंतरमें स्थिरता कर तो तुझे वे अमृत-फल मिलेंगे, तू तृप्त-तृप्त हो जायगा।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन-३१

८-७-७८.

वचनामृत-६१

अहा! आत्मा अलौकिक चैतन्यचन्द्र है, जिसका अवलोकन करनेसे मुनियोंको वैराग्य उछल पड़ता है। मुनि शीतल-शीतल चैतन्यचन्द्रको निहारते हुए अघाते ही नहीं, थकते ही नहीं॥ ६१॥

'अहा आत्मा अलौकिक चैतन्यचन्द्र है, जिसका अवलोकन करनेसे मुनियोंको वैराग्य उछल पड़ता है।'

क्या कहते हैं? कि—अंदर जो यह आत्मा है वह तो शीतल आनन्द एवं शांतरससे भरपूर चैतन्यचन्द्र है। वह आश्चर्यकारी आत्मा, लौकिक चन्द्र-सूर्यके प्रकाशसे रहित अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दके शांत—शीतल प्रकाशमय अलौकिक चैतन्यचन्द्र है।

आत्मा जोकि अंतरमें ज्ञानानन्दसे भरपूर त्रैकालिक वस्तु है वह इस देहसे भिन्न है ही; परन्तु भीतर जो दया—दानादिका राग आता है उससे भी भिन्न है; तथा ज्ञान, आनन्द आदि जो गुणभेद वे भी व्यवहारसे हैं। वास्तवमें जिसे आत्माकी प्रतीति करना हो, आत्माके तलमें जाना हो, उसे व्रतादिके परिणामरूप पुण्यका तथा गुण-गुणीके भेदका भी लक्ष छोड़ना चाहिये।

चैतन्यचन्द्र ऐसा यह भगवान आत्मा वह अस्ति—अस्तित्ववान वस्तु है, अलौकिक वस्तु है, लौकिक वस्तुओंके साथ उसका जरा भी मेल नहीं है। जिसके अस्तित्वमें 'यह शरीर है', 'यह राग है' ऐसा जाननेमें आता है, वह ज्ञाता जाननेमें आये तब चैतन्यचन्द्रका सच्चा अवलोकन होता है। परलक्षी ज्ञानमें—वकालत या डॉक्टरीके ज्ञानमें—आत्मा नहीं आता।

अरे! आनन्दका कन्द ऐसा भगवान आत्मा अंतरमें विद्यमान है उसकी जीवको कहाँ खबर है? यहाँ तो कहते हैं कि निमित्तका, रागका अथवा भेदका लक्ष छोड़कर अंदर जो चैतन्यस्वरूप है उसका अवलोकन करना। जीवकी पर्यायका परकी ओर झुकाव है वह मिथ्याभाव है, दुःखदशा है; उसे अपने अवलोकनमें लगाना।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चैतन्यचन्द्र ऐसा जो ज्ञायकभाव उसका अवलोकन करनेसे मुनियोंको वैराग्य उल्लसित हो जाता है। सम्यग्दृष्टिको अपने शुद्धचैतन्यका अभेद अवलोकन तथा प्रतीति है, परन्तु उसे आनन्द अल्प है; और मुनियोंको आत्माकी प्रतीतिपूर्वक परका एवं रागका सम्बन्ध विशेष छूट गया है, इसलिये आत्माके उग्र अवलोकनमें वैराग्य—उदासीनता उल्लसित हो जाती है। अहा! धर्मका ऐसा उपदेश है।

प्रश्न :—सेवा करना, दया पालना वह धर्म नहीं है?

उत्तर :—परकी सेवा करना, दया पालना वह धर्म है—ऐसा अज्ञानी लोग कहते हैं। भाई! कौन किसकी सेवा कर सकता है? योगसारमें कहा है कि:—

कोण कोनी समता करे, सेवे, पूजे कोण,
कोनी स्पर्शास्पर्शता, ठगे कोईने कोण?
कोण कोनी मैत्री करे, कोनी साथे क्लेश;
ज्यां देखुं त्यां सर्व जीव, शुद्ध बुद्ध ज्ञानेश ॥ ४० ॥

पर जीवकी सेवा कर सकता हूँ या दया पाल सकता हूँ यह मान्यता मिथ्याभ्रम है। यहाँ तो ऐसा कहना है कि—यह आत्मा चिदानन्दस्वरूप वस्तु है ना? शरीर-प्रमाण भले हो परन्तु उससे भिन्न अस्तिस्वरूप—उपस्थितिस्वरूप शाश्वत तत्त्व है ना? तत्त्व है तो उसके सामर्थ्यमें इतना सत्त्व भरा है कि जिसके अवलोकनसे परकी ओरका वैराग्य उल्लसित हो जाता है।

प्रश्न :—स्त्री, पुत्र तथा परिवारको छोड़कर जंगलमें रहे वह वैरागी नहीं?

उत्तर :—नहीं, सच्चा वैरागी उसे कहा जाता है जिसे अपने निज पदार्थका अवलोकन करनेसे, अपने ज्ञानानन्दस्वभावकी महानता भासित होने पर, परसे सहज उदासीनता हो जाय! अपना अवलोकन करे उसे परके प्रति सहज वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। जिसे अपने अवलोकनकी खबर नहीं है और स्त्री, परिवार आदिको छोड़ दे, संन्यासी हो जाय वह सच्चा वैरागी नहीं है; वह परका त्यागी नहीं है किन्तु धर्मका त्यागी है, क्योंकि उसने आत्माका धर्म अनादिसे छोड़ दिया है।

मेरी वस्तुमें शरीर, वाणी आदि कोई परवस्तु तो है ही नहीं, परन्तु परवस्तुके लक्षसे जो रागादि उत्पन्न हों वह भी मेरी वस्तुका स्वभाव नहीं है। तथा यह ज्ञान, आनन्दादि मेरे गुण, और उन्हें धारण करने वाला मैं यह गुणी—ऐसे गुण-गुणीके भेद भी जिसमें नहीं हैं ऐसा यह भगवान आत्मा शीतल-शीतल, शुद्ध प्रकाश एवं आनन्दसे भरपूर चैतन्यचन्द्र है। ऐसी चैतन्यस्वरूप अपनी वस्तुके पूर्ण अस्तित्वकी प्रतीति तो सम्यग्दृष्टिको भी होती है; परन्तु मुनिदशामें अपनी वस्तुका—आत्मस्वभावका—उग्र अवलोकन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करनेसे, उस ओरकी विशेष उन्मुखता रखनेसे, परकी ओरका वैराग्य एवं उदासीनता उल्लसित हो जाते हैं।

अपने पूर्ण स्वरूपका ज्ञान और परवस्तुके रागसे रहितता—इसप्रकार धर्मीको ज्ञान एवं वैराग्य नामकी दो शक्तियाँ होती हैं। अज्ञानी अनादिसे आत्मासे विरक्त और रागमें रक्त है। ज्ञानी आत्मामें रक्त और रागसे विरक्त है। ऐसी बात है भाई! बाह्य संयोगोंका त्याग करके जीवने अभिमान किया है कि 'मैं त्यागी हूँ'; परन्तु भाई! जिसके अवलोकनसे अंतरमें सच्चा त्याग—वैराग्य एवं उदासीनता—परिणमता है ऐसे इस, जन्म-मरणसे रहित शांत–शांत चैतन्यचन्द्रकी दृष्टि अनादिकालमें कभी नहीं की।

'मुनि शीतल-शीतल चैतन्यचन्द्रको निहारते हुए अघाते ही नहीं, थकते ही नहीं।'

सम्यग्दृष्टि गृहस्थको आत्मज्ञान है, परन्तु वह बारम्बार अंतरोन्मुख नहीं हो सकता; मुनि तो बारम्बार अंतर्-आनन्दमें लीन हो जाते हैं; वे तो अतीन्द्रिय आनन्दमें विशेषरूपसे प्रविष्ट हो गये हैं।

लोगोंको वस्तुस्वरूपकी खबर नहीं है; मानते हैं कि बाह्य क्रिया—परका कार्य करे और राग करे, परकी दया पाले वह आत्मा। वह तो खाक भी आत्मा नहीं है। सुन भाई! परकी दया कौन पाले? दयाका भाव भी राग है, स्वरूपकी हिंसा है। जिसके अवलोकनसे संतोंको तृप्ति नहीं होती, थकते नहीं है ऐसे पूर्ण चैतन्यघन प्रभु आत्माका स्वरूप कोई और ही है! अहाहा! अंतर्-आनंद....आनंद....आनंद। यह बात कैसे बैठे? भगवान आत्मा वस्तु भीतर विद्यमान है ना? वस्तु है तो वह स्वयं कोई दुःखरूप नहीं हो सकती; वस्तु कहीं विकृत स्वरूप नहीं हो सकती; वस्तु कभी अपूर्ण नहीं हो सकती और वह कभी पराश्रित नहीं हो सकती कि उसे परके आधारसे रहना पड़े। अहा! वस्तुका निज स्वरूप तो स्वतंत्र, निर्विकार, सम्पूर्ण, सुखरूप और स्वाधीन है। अपना जो निर्मल स्वरूप उसमें जिनकी दृष्टि एवं विशेष स्थिरता हुई है ऐसे मुनि बारम्बार अंतर्आनन्दका अनुभव करते हुए—अपने शांत-शांत चैतन्यचन्द्रको निरखते हुए—तृप्त ही नहीं होते। अंतर्- आनन्दस्वरूप जो भगवान उसका, रागसे भिन्न होकर, जिन्हें अनुभव हुआ वे मुनिराज अनुभव करते हुए थकते ही नहीं; उनका उपयोग बारम्बार अंतरोन्मुख हो जाता है। 'मुनि छठवें-सातवें गुणस्थानमें झूलते हैं' वह शास्त्रभाषा है। पूर्णानन्दका विशेष अनुभव करनेके लिये छठवेंसे एकदम सातवेंमें जाते हैं। पूर्णानन्दका अनुभव करते हुए वे थकते नहीं अथवा तृप्त नहीं होते। अहा! ऐसा मार्ग है।

आत्माका अनुभव करना वह मार्ग है। जीवने वह कभी नहीं किया; अज्ञान सहित चार गतियोंमें भ्रमण कर रहा है। शास्त्रका ज्ञान करे वह भी आत्माके अनुभव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बिना, अज्ञान है। आत्माका ज्ञान करना ही ज्ञान है। आगमका ज्ञान होता है, परन्तु स्वलक्षी होकर हो तो उसे सच्चा आगम-ज्ञान कहा जाता है। प्रवचनसारमें **'आगमचेट्ठा तदो जेट्ठा'**—आगमप्रवर्तन मुख्य है, ऐसा कहा है। परन्तु आगमचेष्टा किसे कहना? अपने स्वरूपका लक्ष करके जो आगमका अभ्यास करता है वह चेष्टा जेट्ठा—ज्येष्ठ-ज्येष्ठ है। आत्माके लक्ष बिना जितना शास्त्रज्ञान और बाह्य जानकारी करना वह तो ज्ञानकी नीचता है, हलकापना है। भगवान आत्मा कौन है और कैसा है, उसकी प्रतीति बिना सब जानकारी अज्ञान और पाखण्ड है। परके ज्ञातृत्वमें सब जानकारी अज्ञान और पाखण्ड है। परके ज्ञातृत्वमें तो ज्ञान रुक जाता है, दब जाता है; रागीको राग उत्पन्न होता है।

प्रश्न :—आत्माको रागरहित कहते हो, परन्तु अभी तो रागको जानना भी कठिन है?

उत्तर :—भाई! भीतर जो विकल्प उठते हैं कि—मैं ज्ञायक हूँ, शुद्ध हूँ, अभेद हूँ, अखण्ड हूँ' वह भी राग है। भगवान 'अस्ति'तत्त्व है वह वीतरागस्वरूप है। जिसे कल्याण करना हो उसे रागका लक्ष छोड़कर अंतरमें चैतन्यप्रभुको देखना। बारम्बार आनन्दका रसास्वादन करनेके लिये मुनि वहीं उपयोगको लगाते हैं। बाह्यमें नग्नता, स्त्री—परिवारको छोड़ देना वह मुनिपना है ही नहीं। अंतरमें चैतन्यचन्द्रको निहारते-निहारते जो अतीन्द्रिय आनन्दकी तृप्तिका वेदन करते हैं, उन्हें मुनि कहा जाता है।

यह चैतन्यचमत्कारमय आत्मा तो रागसे भिन्न तथा अतीन्द्रिय आनन्दका पिण्ड है। जिसप्रकार एक म्यानमें दो तलवारें नहीं रहतीं उसी प्रकार जिसे दया, दानादि शुभरागका प्रेम है उसे आत्माका प्रेम नहीं है, आत्माके प्रति द्वेष है। परमात्म-प्रकाशमें कहा है कि—जिसे शुभरागका प्रेम है उसे आत्मा हेय है, वह पूर्ण आत्मा अनादर करता है। आया कुछ समझमें? धीरे-धीरे समझकर अंतरमें जाना; वस्तु तो यह है बाकी सब थोथे हैं।

प्रश्न :—प्रारम्भमें तो शुभरागका प्रेम करना चाहिये ना?

उत्तर :—बिलकुल नहीं। शुभरागका प्रेम भी अज्ञान है। लोकसेवाका भाव भी राग है। अहा! हिन्दुस्तानकी सच्ची विद्या तो आत्मज्ञान है। आत्मज्ञानकी विद्या अन्य किसी देशमें नहीं है। वर्तमानमें तो आत्मज्ञानकी बात ही भुला दी है। यह करो और वह करो, देशसेवा, रोगियोंकी सेवा आदि परकी तथा रागकी क्रियामें लोग धर्म मान बैठे हैं। मद्रास गये तब राज्यपालने प्रार्थना की थी कि—हमारे राजभवनमें पधारो, हमें आपका स्वागत करना है। वहाँ राजभवनके उद्यानमें हजारों हिरन पाल रखे थे, और मानते थे कि उनकी दया पालनेसे धर्म हो जायगा। भाई! परके लक्षसे तो राग होता है; भले

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पुण्य हो, परन्तु उससे धर्म नहीं होगा। रागसे भिन्न भीतर चैतन्यप्रभु आत्मा है, वह 'वस्तु' है या नहीं? वह वस्तु क्या वर्तमान दशामें जो राग होता है उतनी ही है? राग और रागको जाननेवाली वर्तमान प्रगट दशा—बस इतनी ही क्या आत्मवस्तु है? आत्मवस्तु तो अंदर ध्रुववस्तु है, त्रिकाल आनंदकन्द है।

यहाँ तो यह बात चलती है कि मुनि शीतल-शीतल चैतन्यचन्द्रको निहारते हुए तृप्त ही नहीं होते, थकते ही नहीं।

*

वचनामृत-६२

रोगमूर्ति शरीरके रोग पौद्‌गलिक हैं, आत्मासे सर्वथा भिन्न हैं। संसाररूपी रोग आत्माकी पर्यायमें है; 'मैं सहज ज्ञायकमूर्ति हूँ' ऐसी चैतन्य भावना, यही मनन, यही मंथन, ऐसी ही स्थिर परिणति करनेसे संसार-रोगका नाश होता है॥ ६२॥

'रोगमूर्ति शरीरके रोग पौद्‌गलिक हैं, आत्मासे सर्वथा भिन्न हैं।'

शरीर रोगकी, वेदनाकी मूर्ति है। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव 'अष्टपाहुड'में कहते हैं कि—एक अंगुल जितने भागमें छ्यानवे रोग, तो पूरे शरीरमें कितने? श्रीमद् राजचन्द्रने कहा है कि—'शरीर वेदनाकी मूर्ति है।' डॉक्टर भी पकड़ नहीं पाते कि शरीरमें कौनसा रोग है; वे मात्र अनुमान करके कहते हैं। रोग तो पौद्‌गलिक हैं, शरीरके हैं, जड़के रोग आत्मामें हैं ही नहीं, आत्मासे सर्वथा भिन्न हैं, बुखार आये, केन्सर हो, दिलका दौरा पड़े वे सब शरीरके, पुद्‌गलके, जड़के रोग हैं। प्रभु! वे रोग तेरे नहीं हैं, तुझमें नहीं हैं। तू तो अशरीरी चेतन है ना! ज्ञान, आनन्दादि स्वभावोंका पिण्ड ऐसा यह भगवान आत्मा शरीरके रोगोंसे सर्वथा भिन्न है। कथंचित् भिन्न नहीं किन्तु सर्वथा भिन्न है; क्योंकि रोग तो पुद्‌गलकी—शरीरकी पर्याय है, स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णमय है; और भगवान आत्मामें तो स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण हैं ही नहीं; वह तो अरूपी है।

शरीरके रोग आत्मामें हैं ही नहीं, आत्मामें तो भ्रान्तिका रोग है। आत्मा पूर्ण ज्ञान एवं अखण्ड आनन्दकी मूर्ति ऐसा ज्ञायकतत्त्व है—उसकी खबर नहीं है, श्रद्धा—प्रतीति नहीं है और 'मैं शरीरवाला और शरीरके रोगवाला हूँ, मैं राग हूँ और पुण्य हूँ, मेरी खूब प्रशंसा होती है, मैं सबसे आगे निकल गया'—ऐसी जो मान्यता है वह जीवको भ्रान्तिका रोग है। श्रीमद्‌ने कहा है कि:—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मभ्रान्ति सम रोग नहिं, सद्गुरु वैद्य सुजान;
गुरु-आज्ञा सम पथ्य नहिं, औषध विचार ध्यान।

निज आत्माके स्वरूप सम्बन्धी भ्रान्ति जैसा कोई रोग नहीं है, स्वानुभवी सम्यग्ज्ञानी सद्गुरु जैसा कोई वैद्य नहीं है, सद्गुरुकी आज्ञा अर्थात् उनके द्वारा बतलाये गये वस्तु-स्वरूप जैसा कोई पथ्य नहीं है और 'यह आत्मा ज्ञान एवं आनन्दस्वरूप है' ऐसा जो विचार तथा ऐसा जो ध्यान, उस जैसी कोई औषधि नहीं है। अहा! यह तो दुनियासे कोई बिलकुल भिन्न वस्तु है! अन्य सब क्या कहते हैं उसकी खबर है; अन्य शास्त्र और मत क्या कहते हैं वह सब देखा है। वीतराग सर्वज्ञदेवने कहा है ऐसा आत्माका निर्बाध स्वरूप अन्यत्र कहीं नहीं है।

शरीरमें जो रोग हैं उनकी गंध भी आत्मामें नहीं है। उन रोगोंसे आत्मा रोगी हुआ ही नहीं। डॉक्टरोंका शरीर भी एक क्षणमें छूट जाता है। रोग तो शरीरमें है इसलिये शरीर छूट जाता है; शरीरके रोगोंसे कहीं आत्मा अपने स्वरूपसे नहीं छूट जाता। आत्मा स्वयं अपनेसे छूट जायगा क्या? आत्मा तो नित्य रहनेवाली अपनी नित्यवस्तु है। शरीरके संयोगको जन्म और उसके वियोगको मरण कहते हैं; भगवान आत्मामें जन्म या मरण नहीं होते। वह तो अंतरमें शरीरके रोगोंसे सर्वथा भिन्न, निरामय, चैतन्यशरीरी, ज्ञानानन्द-प्रकाशसे भरपूर, नित्य प्रकाशमान सूर्य है।

'संसाररूपी रोग आत्माकी पर्यायमें है; 'मैं सहज ज्ञायकमूर्ति हूँ' ऐसी चैतन्य भावना, यही मनन, यही मंथन, ऐसी ही स्थिर परिणति करनेसे संसार-रोगका नाश होता है।'

देखो, क्या कहते हैं? राग मैं हूँ, पुण्य मैं हूँ, मैं परका कर सकता हूँ, परकी सहायता कर सकता हूँ, परसे मुझे खुशी होती है—ऐसी भ्रान्तिरूप जो संसाररोग वह आत्माकी पर्यायमें है; उसकी दशामें है; वस्तुमें नहीं है। वस्तु तो त्रिकाल ध्रुव है, पर्याय हलचल करती है—अनित्य है। विचार बदल जाते हैं ना? उस बदलती दशामें भ्रान्ति और रागका रोग है।

अहा! यह विचार करनेका जीवको अवकाश ही कहाँ है? फुर्सत ही कहाँ है? ऐसा मनुष्य भव प्राप्त हुआ, उसमें थोड़ी निवृत्ति लेकर यह आत्मा क्या वस्तु है—उसकी पहिचान और मूल्यांकन नहीं करेगा, तो वह मनुष्य भवका मिलना नहीं मिलनेके बराबर है। **मनुते जानाति इति मनुष्यः**—ऐसा शास्त्रमें कहा है। अपने ज्ञायक स्वभावको जाने वह मनुष्य है और अपनेको न जानें वे सब पशु समान हैं। नीतिवाक्यमें भी आता है ना! कि—**मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति**। भले ही बड़ा राजा हो, अरबपति सेठ हो, महान पण्डित हो या त्यागी हो, परन्तु यदि उसे ज्ञायक आत्माकी प्रतीति नहीं है तो वह भी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मृग समान है, जिसे अपनी नाभिमें कस्तूरी होनेपर भी उसकी खबर नहीं है। अज्ञानीको भी खबर नहीं है कि अतीन्द्रियज्ञान एवं आनन्द अपने आत्मामें हैं।

अज्ञानरूपी रोग—संसाररूपी रोग—आत्माकी पर्यायमें है। 'मैं सहज ज्ञायकमूर्ति हूँ' ऐसी चैतन्यभावना, यही मनन, यही मंथन, ऐसी ही स्थिर परिणति करनेसे संसाररोगका नाश होता है।' मैं तो चिदानंद प्रभु नित्यानन्द, अविनाशी, सहजात्मस्वरूप ज्ञायकमूर्ति हूँ। पर्यायमें जो भ्रान्तिरूप संसाररोग है वह मेरी वस्तु नहीं है। शरीरके रोग तो मुझमें हैं ही नहीं, परन्तु 'राग मेरी वस्तु है' ऐसी जो भ्रान्ति है, रोग है, दुःख है वह भी मात्र मेरी पर्यायमें ही है। संसाररोग मात्र बदलती पर्यायमें ही है इसलिये उसका नाश हो सकता है; यदि त्रैकालिक ज्ञायक वस्तुमें हो तो कभी नाश नहीं हो सकता। बड़ी सूक्ष्म बात है भाई!

'मैं तो ज्ञायकस्वभाव हूँ'—ऐसी चैतन्यभावना और 'मैं शुद्ध....शुद्ध....अत्यन्त शुद्ध हूँ' ऐसा जो शुद्ध उपयोग उसका नाम आध्यात्मिक निरोगता और धर्म है। दया, दान एवं व्रतादिकी क्रिया वह शुभराग है, धर्म नहीं है। ऐसी बात है भाई! यह समझमें नहीं आता इसलिये लोग कहते हैं कि—'एकान्त' है! परन्तु भाई! तू अंतरमें कितना सामर्थ्यवान तत्त्व है, तुझमें कितनी ईश्वरता और प्रभुता विद्यमान है, तुझमें कितना आनन्द और कितना ज्ञान भरा है—उसकी तुझे खबर नहीं है; इसलिये तू इस बातको 'एकान्त' कहता है।

जामें जितनी बुद्धि है, उतनी देय बताय;
वाको बुरो न मानिये, और कहाँ से लाय।

अरे! दुनिया पागल है; वह ज्ञानीको पागल कहती है और ज्ञानी दुनियाको पागल मानते हैं।

मैं चैतन्य ज्ञानानंद हूँ। ऐसी भावना करना, उसीका मनन करना, उसीका मंथन करना, उसीकी निरन्तर एकाग्रता करना। उस एकाग्रतारूपी स्थिर परिणति करनेसे संसार-रोगका नाश होता है। भ्रान्तिके रोगका नाश अंतर्स्वरूपके आश्रयसे होता है। संसार-रोगका नाश होनेपर शरीरका संयोग ही नहीं होगा, तब फिर शरीरके रोग कहाँ से होंगे?

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन-३२

ता.६-७-७८

वचनामृत-६३

ज्ञानीकी दृष्टि द्रव्यसामान्य पर ही स्थिर रहती है, भेदज्ञानकी धारा सतत बहती है ॥ ६३ ॥

क्या कहते हैं? यह आत्मा और परवस्तु—दोनों भिन्न हैं। परन्तु अपनी वस्तुमें तीन प्रकार हैं:— (१) द्रव्यरूप वस्तु, (२) गुण उसकी शक्तियाँ, और (३) पर्यायरूप उसकी अवस्था। द्रव्य-गुण-पर्याय यह तीनों मिलकर आत्मा एक वस्तु है; उसका परवस्तुसे कोई सम्बन्ध नहीं है। शरीर,वाणी और कर्म आत्मासे भिन्न हैं। उनकी पर्याय उनके अपने कारण बदलती है; आत्मा उससे भिन्न है। उसमें तीन प्रकार हैं:— (१) नित्य स्थायी वस्तुको द्रव्य, वस्तु एवं सामान्य कहते हैं; (२) उसमें जो ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि शक्तियाँ हैं वे विशेष–गुण हैं; और (३) उसकी वर्तमान दशारूप जो स्थिति उसे पर्याय कहते हैं।

यहाँ कहते हैं कि—परद्रव्यकी दृष्टि तो छोड़, क्योंकि उसमें आत्मा है ही नहीं; आत्मा है वह अपने द्रव्यमें, गुणोंमें तथा पर्यायोंमें ही है। परन्तु दृष्टि जब तक पर्यायमें लगी रहती है तब तक अपनी जो त्रैकालिक वस्तु है वह ध्यानमें—आश्रय करनेमें—नहीं आती। ज्ञानीकी दृष्टि त्रैकालिक सामान्य पर रहती है।

अपने द्रव्य—गुण—पर्याय क्या हैं वह समझना चाहिये। वस्तुसामान्य क्या है? वस्तुकी शक्तियाँ क्या हैं? और उसकी बदलती दशाएँ क्या हैं? इन तीनोंकी जिन्हें खबर नहीं है उन्हें भेदज्ञान—आत्मज्ञान नहीं होता। ज्ञानी धर्मात्माकी दृष्टि त्रैकालिक वस्तुमें—द्रव्यसामान्य पर ही—स्थिर रहती है। गुण उसमें हैं, परन्तु उन गुणरूप विशेषोंका भी लक्ष छोड़कर भेदरहित तथा पर्यायरहित ऐसे द्रव्यसामान्य पर ही दृष्टि होती है।

प्रश्न:— 'ही' में तो एकान्त हो जाता है! दृष्टिमें सामान्य और विशेष—दोनों आना चाहिये; तब अनेकान्तदृष्टि होगी ना?

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्तर :—ऐसा है ही नहीं। ज्ञानीकी दृष्टि तो सम्यक् एकान्त ऐसे निज द्रव्यसामान्य पर ही पड़ी होती है। साथ वर्तते ज्ञानमें सामान्य और विशेष दोनोंका यथार्थ जानपना होता है वह अनेकान्तज्ञान है।

प्रश्नः—द्रव्यसामान्य अर्थात् क्या?

उत्तर :—जसमें पर्याय नहीं है और गुणभेद नहीं हैं ऐसी जो एकरूप ध्रुव वस्तु उसे 'द्रव्यसामान्य' कहा जाता है। धर्मीकी दृष्टि द्रव्यसामान्य पर ही—ध्रुवतत्त्व पर ही—होती है। दृष्टि स्वयं पर्याय है।

प्रश्न :—परकी सेवा, दया तथा औषधि आदि देना उसमें धर्म है या नहीं?

उत्तर :—नहीं; वह भाव शुभराग है। वह राग भी दृष्टिका विषय नहीं है, और रागको जाननेवाली वर्तमान पर्याय भी सम्यग्दर्शनका विषय नहीं है। त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक स्वभाव, एकरूप सामान्यभाव पर ही धर्मीकी दृष्टि है। अनंतकालमें अनंतबार साधु हुआ; परन्तु अंतरमें यह क्या वस्तु है उसे दृष्टिमें लेनेका प्रयास ही नहीं किया।

वस्तु अर्थात् क्या? जिसमें अनंतगुणोंका वास है ऐसा जो भगवान आत्मा वह वस्तु है। उसकी बस्ती ज्ञान, दर्शन, आनन्दादि अनंत शक्तियाँ हैं। द्रव्यसामान्यरूप वस्तु एकरूप स्थिर है, इसलिये वहाँ दृष्टि लगानेसे दृष्टि स्वयं भी स्थिर रहती है।

समस्त शरीरोंमें चैतन्यप्रभु विराजमान है, अंतरमें भगवानस्वरूप ही है। वह, जिसमें अपूर्णता एवं विपरीतता बिलकुल नहीं है ऐसी अखण्डानन्दस्वरूप वस्तु है। जिसे पूर्ण....पूर्ण....पूर्ण प्रभु कहा जाय, द्रव्य कहा जाय, सामान्य कहा जाय, ध्रुव कहा जाय या एकरूप वस्तु कहा जाय ऐसी जो वस्तु उस पर दृष्टि देनेसे—जो वस्तु स्थिर है, एकरूप है, सामान्य है तो उसपर दृष्टि देनेसे—दृष्टि भी स्थिर हो जायगी।

पर्याय बदल जाती है और गुणोंमें भेद है; इसलिये दृष्टि देनेसे दृष्टि स्थिर नहीं रह सकती। धर्मका प्रारम्भ सम्यग्दर्शनसे होता है। सम्यग्दर्शन-धर्म, सम्यग्ज्ञान-धर्म और स्वरूपाचरणचारित्रधर्म करनेवाले जो धर्मी जीव हैं उनकी दृष्टि त्रैकालिक वस्तुमें स्थिर–टिकी हुई होती है; कभी भी ध्रुवके ऊपरसे दृष्टि नहीं हटती। दृष्टि यदि द्रव्यपरसे हट जाय तो सम्यग्दर्शन नहीं रहता। अहा! भाषा सादी है। डॉक्टर और वकालतकी पढ़ाईमें ऐसी बात नहीं आती। आत्माको चूककर वकालत आदिका ज्ञान सब कुज्ञान है। जो हथियार हाथमें लेनेसे, अपना ही गला काटे, वह हथियार किस कामका? वह ज्ञान आत्महितका प्रयोजन सिद्ध नहीं करता, इसलिये अपनेको हानिकारक है।

अहा! यह वाणी बेनकी (चम्पाबेनकी) है, प्रभु कहते हैं वही बेन कहती हैं। विशाल सभाओंमें व्याख्यान देनेवाले एक व्याख्यानदाताको किसीने यह 'वचनामृत' पुस्तक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दी। उन्होंने पुस्तक देखी; देखकर बहुत खुश हुए और बोले : यह पुस्तक मुझे दो मैं अमेरिका ले जाऊँगा।

यह तत्त्व समझनेके लिये प्रथम तो उसे तत्त्वकी महिमा आना चाहिये। यहाँ तो सम्यग्दृष्टिकी बात चलती है। ज्ञानीकी दृष्टि द्रव्यपर होती है। द्रव्य सदा स्थिर, ध्रुव होनेसे उसके ऊपरकी दृष्टि भी स्थिर—टिकी हुई रहती है। तदुपरान्त मुनिदशामें तो अतीन्द्रिय आनन्दके प्रचुर स्वसंवेदन सहित विशेष स्थिरता है। प्रचुर स्वसंवेदन ही मुनिका भावलिंग है। मुनि असंगरूपसे आत्माकी साधना करते हैं, स्वरूप-गुप्त हो गये हैं।

प्रश्न :—मुनिका लक्षण क्या है?

उत्तर :—निज आत्माका प्रचुर संवेदन, अतीन्द्रिय आनन्दमें रमणता, अतीन्द्रिय आनन्द जो कि स्वभावमें भरा है, उसमेंसे अधिक व्यक्तता वह मुनिका आंतरिक लक्षण है। 'प्रचुर स्वसंवेदन' शब्द समयसारकी पाँचवीं गाथाकी टीकामें है। प्रथम भूमिकामें जीव को,—द्रव्य सामान्य पर दृष्टि करनेसे, शक्तिमेंसे अतीन्द्रिय आनन्दका वेदन हो तब तो वह धर्मी कहा जाता है। पश्चात् अंतरशुद्धिमें वृद्धि होनेपर मुनिको प्रचुर स्वसंवेदन होता है। अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दका प्रचुर वेदन, वीतरागी आनन्दका प्रचुर संवेदन वह मुनिपना है। अहा! मुनिपना तो कोई अलौकिक वस्तु है।

मुनिपनेका—चारित्रका कारण सम्यग्दर्शन है। चारित्र धर्म है और उसका मूल सम्यग्दर्शन है। **'दंसणमूलो धम्मो'**। सम्यक्त्वरूप मूलके बिना—कारणके बिना—चारित्रधर्म नहीं होता। सम्यग्दृष्टिकी दृष्टि कहाँ है?—कि जिसमें पर्याय नहीं है और विशेषके भेद भी नहीं हैं ऐसा जो सत्, चित् एवं आनन्दस्वरूप त्रैकालिक एकरूप सामान्य, उसके ऊपर। धर्मीकी दृष्टि सदैव वहाँ स्थिर—टिकी हुई रहती है। दृष्टि कभी भी वहाँसे हटती नहीं है। अहा! शब्द थोड़े हैं परन्तु भीतर भाव अधिक हैं।

धर्मीको भेदज्ञानकी धारा सतत बहती रहती है, भेदका विकल्प नहीं करना पड़ता। मैं चैतन्य ज्ञायक आनन्दमूर्ति हूँ और इन महाव्रतादिके रागका एक कण भी मेरा नहीं है—ऐसा भेदज्ञान मुनिको निरंतर वर्तता रहता है। मुझे विवाह नहीं करना है, बाल- ब्रह्मचारी रहना है—ऐसे विकल्परूप परिणमन वर्तता हो उस काल भी, 'मैं त्रैकालिक शुद्ध वीतरागस्वरूप हूँ, विकल्परूप राग मेरा नहीं है'—ऐसी भेदज्ञानकी धारा सम्यग्दृष्टिको वर्तती है।

प्रथम जिसने पर्यायके ऊपरकी दृष्टि छोड़कर—परके ऊपरकी दृष्टि छोड़ी यह तो स्थूल बात है—त्रैकालिक ध्रुव द्रव्यसामान्यमें दृष्टि लगायी उसकी दृष्टि स्वभावपर स्थिर रहती है, और इसलिये भेदविज्ञानकी धारा सतत प्रवाहित रहती है। अहा! डेढ़ पंक्तिमें तो बहुत कुछ भरा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। भगवान आत्मा क्या वस्तु है, वह किस प्रकार प्रगट हो, उस पर दृष्टि कैसे देना—उसकी जिसे खबर नहीं है, ज्ञान नहीं है, उसे भेदज्ञान प्रगट नहीं होता।

प्रश्न :—दृष्टि स्थिर रहती है उसका क्या अर्थ?

उत्तर :—दृष्टि स्थिर रहना अर्थात् नजरबन्धी करना धर्मीने त्रैकालिक ध्रुव एकरूप ऐसा जो ज्ञायकभाव उस पर दृष्टि बाँध दी है। उसका नाम धर्मका प्रथम सोपान 'सम्यग्दर्शन' कहा जाता है। सम्यग्दृष्टिको भी जब तक पूर्ण वीतराग न हो तबतक शुभरागका विकल्प आता है, तथापि उस समस्त रागसे भिन्न शुद्ध चैतन्य पर दृष्टि सतत रहती है। राग और आत्मा दोनोंकी एकतारूप मान्यता थी तब तक मिथ्यात्व था। अब, रागसे भिन्न निज द्रव्यसामान्य पर दृष्टि स्थिरकी इसलिये रागसे भेदज्ञान हो गया। उसे वह भेदज्ञानकी धारा अच्छिन्न प्रवाहित रहती है।

प्रश्न :— सामान्य पर दृष्टि और भेदज्ञानमें क्या अन्तर है?

उत्तर :— भगवान आत्मा अंतरमें ज्ञान, आनन्दादि अनंत गुणोंका एकरूप पिण्ड जोकि शुभाशुभादि सर्वपर्यायोंसे तथा गुणभेदसे रहित है, उसे सहज एक ज्ञायकभावरूप सामान्य कहते हैं, द्रव्य कहते हैं। वह ज्ञायकभाव मेरा प्रभु है; उसीको मैं देखता हूँ; और कुछ मुझे दृष्टिगोचर ही नहीं होता!—ऐसा द्रव्य पर श्रद्धारूप जोर आये, द्रव्यकी ही श्रद्धारूप अधिकता रहे, उसे 'सामान्य पर दृष्टि' अथवा 'द्रव्यपर दृष्टि' कहते हैं। तथा शरीर, कर्म आदि परसे, रागादि विभावोंसे और गुणभेदके विकल्पोंसे वह सहज ज्ञायकभाव सदा भिन्न है, ऐसा—ध्रुव स्वभावके वलपूर्वक—भिन्नत्वका ज्ञान वह भेदज्ञान है। ज्ञानीको सामान्यकी दृष्टि तथा भेदज्ञान सदा रहता है। राग उठे वहाँ, 'यह राग सो मैं नहीं' ऐसा नवीन भेदज्ञान करना पड़ता है ऐसा नहीं है परन्तु 'रागादिसे मैं सदैव भिन्न हूँ' ऐसे अभिप्रायरूप भेदज्ञान निरन्तर वर्तता है। धीरेसे समझो भाई! यह तो अपूर्व बात है! अनंतकालके जन्म—मरणका अन्त आये ऐसी यह वस्तु है। किसी क्रियाकाण्डसे या शास्त्रज्ञानसे समझमें आये ऐसी यह बात नहीं है।

प्रश्न :— तो फिर शास्त्र पढ़ना चाहिये या नहीं?

उत्तर :— अनेकों शास्त्र पढ़ डाले, परन्तु स्वभावपर दृष्टि न करे तो क्या लाभ होगा? इसीलिये कहा जाता है कि—'पढ़ ले पर नहीं करे विचार, नहीं समझेगा पूरा सार।' यहाँ तो कहते हैं कि तुझे जन्म-मरणका अन्त लाना हो तो सम्यग्दर्शनका विषय जो ध्रुव सामान्य तत्त्व है उस पर दृष्टि ले जा। उससे तेरी दृष्टि सम्यक् होगी और भवका अन्त आ जायगा। यह विधि तथा यह रीति हो तो एक या दो-चार भवमें मुक्ति हो जायगी।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रश्न :—उसका उपाय क्या? क्या करना चाहिये?

उत्तर :—अंतरमें निवृत्ति लेकर आत्माका स्वरूप समझना वह उसका उपाय है, वही करना है। अहाहा! सर्वत्रसे दृष्टि उठाकर त्रैकालिक स्वभावपर दृष्टि लगानेसे वह स्थिर रहेगी; क्योंकिस्वभाव तो नित्य ध्रुव है ना! इसलिये दृष्टि भी नित्य स्थिर रहेगी। जैसे घंड़ी हिलते हुए 'पेण्डल' पर दृष्टि लगाये तो दृष्टिमें स्थिरता नहीं रहेगी; सामनेवाली वस्तु स्थिर हो तो दृष्टि भी स्थिर रहे; उसीप्रकार पर्यायके ऊपर दृष्टि लगानेसे—पर्याय स्वयं स्थिर नहीं है इसलिये—तेरी दृष्टि भी स्थिर नहीं होगी। सूक्ष्म बात है भाई! यह तो असली—मुद्देकी बात है!

प्रश्न :—एक भाई कटाक्षमें कहते थे : बड़ी ऊँची बात है! करना—धरना कुछ नहीं और आनन्द बहुत!?

उत्तर :—'मैं परका कर दूँ'—ऐसे भाव करना वही क्या करना है? अंतरमें दृष्टि करना वह क्या करना नहीं है? अनादिकालसे जो कभी नहीं किया ऐसा अपूर्व श्रेयरूप करना तो यह है। वास्तवमें करने योग्य कार्य ही यह है; परन्तु अंतरमें द्रव्य क्या है, गुण क्या है, बदलती हुई पर्याय क्या है, जीव क्या कर सकता है और क्या नहीं कर सकता, सामान्यपर दृष्टि करना अर्थात् क्या?—इनकी तो कोई खबर ही नहीं होती, इसलिये ऐसा लगता है कि करनेको तो कुछ कहते नहीं है! वास्तवमें तो यहाँ जो कहा जा रहा है वही सच्चा करना है; उससे स्वसन्मुख परिणमन हो जाता है और वही धर्म है।

*

वचनामृत-६४

ध्रुवतत्त्वमें एकाग्रतासे ही निर्मल पर्याय प्रगट होती है, विभावका अभाव होता है॥ ६४॥

'ध्रुवतत्त्वमें एकाग्रतासे ही निर्मल पर्याय प्रगट होती है।'

यहाँ भी यही आया। अतीन्द्रिय ज्ञान एवं आनन्दका सागर ऐसा जो ध्रुवतत्त्व, उसमें एकाग्रतासे निर्मल पर्याय प्रगट होती है। राग पर्यायमें एकत्व होनेसे दुःख उत्पन्न होता है। नित्यवस्तु पर दृष्टि देनेसे निर्मल वीतरागी दशा प्रगट होती है; रागमें एकाग्र होनेसे आकुलताकी दशा प्रगट होती है। चारों ओरसे दृष्टि हटाकर एक, अखण्ड, ध्रुव-पर दृष्टि लगानेसे, उसमें एकाग्र होने से वीतरागी अतीन्द्रिय आनन्दकी दशा प्रगट होती

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। यह जो अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट हुआ वह धर्म है। अहाहा! ऐसी महँगी वस्तु! आत्मतत्त्व—ध्रुवतत्त्व—है ना? है तो वह नित्य है ना? पलटती पर्याय भले हो, परन्तु त्रैकालिक ज्ञायकतत्त्व ध्रुव है ना?

सोना सोनेरूप रहकर उसकी कड़ा या कुण्डलरूप अवस्थाएँ होती हैं। कड़ा—कुण्डलरूप अवस्था ध्रुव नहीं है; सुवर्णका सुवर्णपना वह ध्रुव है, नित्य है। उसीप्रकार यह आत्मा पर्यायसे पलटता है और वस्तुरूपसे ध्रुव रहता है। अहा! ऐसा उपदेश! मार्ग तो ऐसा है भाई! आजकल तो ऐसा करो, वैसा करो, स्त्री—परिवार छोड़ो तो धर्म हो जायगा—ऐसा उपदेश चलता है। बाह्य ग्रहण—त्याग तो स्वरूपमें हैं ही नहीं। परद्रव्यको कैसे ग्रहण करेगा और किस प्रकार छोड़ेगा! 'पर और विभाव मेरे हैं' ऐसी मान्यता स्वयंकी है; परन्तु ध्रुवतत्त्वपर दृष्टि देनेसे, दृष्टिमेंसे उस विपरीत मान्यताका जो नाश होता है वह त्याग है। बाहरका त्याग आत्मामें नहीं है, क्योंकि आत्मामें त्याग–उपादान–शून्यत्व शक्ति है। उस शक्तिके कारण आत्मामें रजकणको ग्रहण करना या छोड़ना है ही नहीं।

ध्रुवतत्त्वमें एकाग्रतासे ही निर्मल पर्याय प्रगट होती है, रागरूप विकल्पसे कभी निर्मल पर्याय नहीं प्रगटती। दया, दान, व्रत, भक्ति तथा तप आदि व्यवहारके कोई भी विकल्प हों, उनसे निर्मल पर्याय कभी नहीं होती; क्योंकि राग स्वयं ही मलिन है; मलिनतामेंसे मलिन पर्याय होती है। भगवान आत्मा त्रिकाल निर्मल शुद्ध आनन्द है, उसमें एकाग्र होनेसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति आदि निर्मल पर्यायें प्रगट होती हैं। निर्मल पर्याय धर्म है, और जो राग प्रगट हुआ वह अधर्म है।

'...विभावका अभाव होता है।'

ध्रुवतत्त्वमें एकाग्रतासे ही निर्मल पर्याय प्रगट होती है, विभावका अभाव होता है। इस एक वाक्यमें ध्रौव्य, उत्पाद और व्यय—यह तीनों बातें आ गईं। वस्तु 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' है। वस्तुमें नवीन पर्याय उत्पन्न होती है, पुरानी पर्याका व्यय होता है और वस्तुरूपसे वस्तु ध्रौव्यरूपसे नित्य रहती है। अब, ध्रौव्यमें एकाग्र होनेपर जो निर्मल पर्याय उत्पन्न हो वह उत्पाद, रागादि विभावका जो नाश हो वह व्यय और एकाग्रताका जो आश्रय है वह ध्रौव्य है। समयसारके परिशिष्टमें—४७ शक्तियोंमें—उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्व नामकी एक शक्ति भी आत्मामें कही है। बात जरा सूक्ष्म है; चालू परिपाटीसे अलग है।

दृष्टिके विषयमें उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य—यह तीन नहीं हैं; दृष्टिका विषय तो एक ध्रौव्य ही है। दृष्टि मात्र ध्रुवतत्त्वपर होनेसे निर्मल पर्यायका उत्पाद होता है और पूर्वकी मलिन पर्यायका व्यय होता है। जिसप्रकार जंग लगे लोहे पर छैनी मारनेसे जंगका व्यय और चमकका उत्पाद होता है तथा लोहेरूपसे तो वह नित्य रहता है; उसीप्रकार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भगवान आत्माकी ध्रुवतत्त्वमें एकाग्रतासे जो निर्मल पर्याय प्रगट होती है वह उत्पाद है, पूर्वकी मलिन पर्यायका नाश होता है वह व्यय है और जिस पर दृष्टि है वह नित्य रहनेवाली वस्तु सो ध्रौव्य है।

बात सूक्ष्म है। लोगोंको अभ्यास नहीं है, दुनियाके प्रपंच और कमानेके भाव आदि पापका अभ्यास है। पैसे आयें वहाँ 'मैंने कमाये' ऐसा भाव पाप है। पैसे मेरे थे और मैंने दिये—ऐसा भाव भी पाप है। पैसा तो जड़तत्त्व है, वह तेरे कैसे हो गये? गजबकी बात है! कठिन बात है भाई!

प्रश्न :—तो क्या अभी तक हमने पाप ही किया?

उत्तर :—पाप ही किया है। वकालतमें सलाह देनेका भाव भी पाप था। पैसा कमानेका भाव पाप, कमा-कमाकर लड़कों—बच्चोंको देनेका भाव भी पाप और राजनीतिके आन्दोलनमें भाग लेनेका भाव भी पाप है।

प्रश्न :—लौकिक अपेक्षासे तो देशसेवाके भावोंको अच्छा कहो?

उत्तर :—लोग तो पागल हैं, इसलिये उन्हें अच्छा कहते हैं। क्या पागलोंके पाससे प्रमाण-पत्र लेना है? पागल अच्छा कहें उसका मूल्य क्या?

पैसा कमानेका भाव तो पाप है ही; परन्तु पैसा देनेमें जो राग मन्द हुआ, उससे मुझे लाभ होगा—यह मान्यता भी पाप है। अहा! एसी बात है, यह तो मोक्षका कॉलेज है!

ध्रुवतत्त्वमें एकाग्र होनेसे, पर्यायमें एकाग्रतासे नहीं, जो निर्मलदशा प्रगट होती है उसका नाम धर्म है। निर्मल धर्मदशा प्रगट होनेपर रागादि मलिन विभावका अभाव होता है। ऐसा वस्तुका स्वरूप है; उसे समझना होगा।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन-३३

ता. १०-७-७८

वचनामृत-६५

मुनि असंगरूपसे आत्माकी साधना करते हैं, स्वरूपगुप्त हो गये हैं। प्रचुर स्वसंवेदन ही मुनिका भावलिंग है ॥ ६५ ॥

'मुनि असंगरूपसे आत्माकी साधना करते हैं, स्वरूपगुप्त हो गये हैं।

अहो मुनिदशा! मुनि तो शरीरादि परके तथा व्यवहाररत्नत्रयस्वरूप विकल्पोंके संगसे रहित ऐसे असंग आत्माकी असंगरूपसे साधना करते हैं। वस्तु स्वयं असंग है; रागका भी संग उसमें नहीं है। पंचमहाव्रत पालना वह तो आस्रवतत्त्व है, और नग्नरूप रहना वह तो जड़–परवस्तु–है। शरीरादि जड़का संग तो त्रैकालिक आत्माको है ही नहीं परन्तु आस्रवका—शुभरागका भी—संग शुद्धतत्त्वमें नहीं है। मुनिजन असंगरूपसे आत्माकी साधना करते हैं। स्वरूपगुप्त हो गये हैं।

श्री अमृतचन्द्राचार्य देवने समयसारकी 'आत्मख्याति' टीका पूर्ण करते हुए कहा है कि:—'अपनी शक्तिसे जिन्होंने वस्तुका यथार्थ स्वरूप भलीभाँति कहा है ऐसे शब्दोंने यह आत्मवस्तुका व्याख्यान अथवा समयप्राभृत शास्त्रकी टीका की है; स्वरूपगुप्त (–अमूर्तिक ज्ञानमात्र स्वरूपमें गुप्त) अमृतचन्द्रसूरिका उसमें कोई कर्तव्य नहीं है।' मैं तो अतीन्द्रिय ज्ञान एवं आनन्द ऐसे निज स्वरूपमें गुप्त हूँ; समयसारकी टीका मैंने बनाई है ऐसा न समझो, वह तो शब्द-पुद्गलोंसे बनी है। अध्यात्मतत्त्वकी ऐसी उच्च टीका भरतक्षेत्रमें दूसरी कोई नहीं है; तथापि कहते हैं कि यह टीका शब्दोंसे बनी है; उसमें मेरा किंचित् कर्तव्य नहीं है! मेरा स्वरूप तो ज्ञान और आनन्द है, मैं तो उसमें गुप्त हूँ ना!

मुनि कैसे होते हैं उसका सच्चा ज्ञान तो होना चाहिये। पहली बात तो यह है कि—मांस, मदिरा, मधु आदि कि जिनमें त्रस जीवोंकी उत्पत्ति होती है वह आहार जैनोंको नहीं होता; जिस अनाज और फलोंमें त्रस जीव हों वह वे नहीं खाते। तथा त्रसजीवयुक्त आहार नहीं लेते इसलिये धर्म हो जाता है–ऐसा भी नहीं है। त्रस जीवयुक्त आहारका भाव

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मिथ्यात्व सहित तीव्र राग है। यह तो प्रथम भूमिकाके व्यवहारकी बात आयी; परन्तु त्रसका आहार छोड़नेसे धर्म होगया—ऐसा कदापि नहीं है। यहाँ तो आचार्यदेव यहाँ तक कहते हैं कि—त्रसका आहार तो नहीं, परन्तु निर्दोष आहार लेने या टीका रचनेका विकल्प वह भी 'मैं' नहीं हूँ। मैं तो स्वरूपगुप्त—ज्ञानानन्दस्वरूप निर्विकल्प वस्तुमें गुप्त—हूँ।

अहा! मुनिराज स्वरूपगुप्त हो गये हैं; भीतर आनन्दकन्दमें झूलते हैं। कहते हैं: टीका की रचनामें मैं अकिंचित्कर हूँ। वह किंचित् भी मेरा कार्य नहीं है। लोगोंमें तो समझानेकी योग्यता हो, भाषा जरा अच्छी हो, दो–चार ग्रन्थ बनाएँ, तो मान वैठते हैं, कि हमने धर्मकी बहुत प्रभावना की।

अतीन्द्रिय आनन्दका प्रचुररूपसे अनुभव करते हों उन्हें भावलिंगी दिगम्बर मुनि कहते हैं। वस्त्र सहित मुनिपना मानना वह मिथ्यात्वभाव है। मार्ग तो ऐसा है भाई! यह सुनकर किसीको दुःख लगेगा, परन्तु सत्य तो यही है, वस्तुस्वरूप ऐसा ही है प्रभु! वस्त्रसहित मुनिपना माननेवालोंको गुरुके भी सच्चे स्वरूपकी खबर नहीं है; वे तो गृहीत मिथ्यादृष्टि अजैन हैं। किसीको दुःख हो तो क्षमा करना! हम तो वही कहते हैं जो वस्तुका सच्चा स्वरूप है और जो हमारे अंतरसे आ रहा है। पद्मनन्दि-आचार्य ब्रह्मचर्यकी बात विस्तारसे कहकर फिर कहते हैं कि–हे युवको! मैंने तुमसे जो ब्रह्मचर्यकी बातें कही हैं वे अच्छी न लगें तो क्षमा करना। मैं तो मुनि हूँ; मेरे पास प्रभु! और क्या आशा रखोगे? मैं तो वस्तुका स्वरूप जैसा है वैसा कहूँगा।

अहा! स्वरूपगुप्त ऐसे नग्न दिगम्बर मुनिवरको विकल्प आया और उन्होंने ब्रह्मचर्यकी बात समझायी। यह बात किसीको अच्छी न लगे और कहे कि—'विषयमें प्रत्यक्ष आनन्द लगता है फिर भी मुनि यह कैसी बात करते हैं?' परन्तु भाई! तुझे भ्रान्तिके कारण बाह्यवस्तुमें—विषयमें—मिठास लगती है; वास्तवमें मिठास विषयमें नहीं है, किन्तु अंतर्-आनन्दमें है। क्षायिक सम्यग्दृष्टिको भी, जबतक मुनिपना नहीं आया तबतक राग भी है और भोग भी है। सम्यक्त्व होनेपर भी भोग होते हैं, विषयकी वासना भी उठती है; उस विकल्पको ज्ञानी दुःख जानते हैं, जहर मानते हैं। 'अहा! मैं तो अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दामृतका कूप हूँ, सागर हूँ, उससे भ्रष्ट होकर अरेरे! मैं दुःखमें कहाँ आ पड़ा?' सम्यग्दर्शन होनेपर, अतीन्द्रिय आनन्द थोड़ा तो है, परन्तु जितना रागमें आ गया उतना मैं दुःखमें आ गया—ऐसा ज्ञानी मानते हैं।

जैसा श्री पद्मनन्दि आचार्यदेवने कहा है कि—अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप, ब्रह्मचर्यकी बात तुझे अच्छी नहीं लगे तो क्षमा करना, उसीप्रकार श्री अमृतचन्द्राचार्यदेवने कहा है कि—शब्दोंने टीका बनायी है; टीकाकी रचनामें मेरा अकिंचित्करपना है। यह बात तुझे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ठीक न लगे कि—नहीं, नहीं, टीका तो स्वयं रची है और कहते हैं कि 'स्वरूपगुप्त हूँ'! पहले तो ऐसी टीका नहीं थी!—इसप्रकार टीकाकी रचनामें मेरा अकर्तापना होनेकी बात तुझे अच्छी न लगे तो क्षमा करना। हम तो स्वरूपगुप्त मुनि हैं।

'प्रचुर स्वसंवेदन ही मुनिका भावलिंग है।'

मुनिका भाववेश, भावलिंग, भावभेष क्या है? आत्माका रागरहित प्रचुर स्वसंवेदन! समयसारकी पाँचवीं गाथाकी टीकामें 'निजवैभव'की व्याख्या करते हुए कहा है कि—निरंतर झरता–आस्वादमें आता, सुन्दर जो आनन्द उसकी छापवाला जो प्रचुर संवेदनस्वरूप स्वसंवेदन, उससे जिसका (–निजवैभवका) जन्म है। सम्यक्त्वी धर्मात्माको भी प्रथम भूमिकाका अतीन्द्रिय आनंद अंशतः आता है, परन्तु मुनिको तो प्रचुर आनन्दका अनुभव होता है। प्रचुर स्वसंवेदन ही मुनिका भावलिंग है। 'ही' कहकर अबाधित नियम—सम्यक् एकान्त—कहा है। अंतरमें आनन्दका विशेष वेदन वर्तना वह, मुनिका बाह्य नहीं किन्तु अभ्यन्तर भेष है। बाह्यमें नग्नता तथा पंचमहाव्रतादिके विकल्प होते हैं। ऐसा प्रचुर स्वसंवेदन हो और बाह्यमें वस्त्रसहितपना हो ऐसा कदापि नहीं हो सकता। वस्त्ररहितपना और पंचमहाव्रतके विकल्प वह कहीं मुनिका परमार्थ भेष नहीं है, वह तो बाह्य निमित्त है। ऐसे निमित्त होते हैं, परन्तु उनमें उनका प्रचुर स्वसंवेदन रहा है–ऐसा नहीं है। प्रचुर स्वसंवेदन तो मुनिके अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप जो प्रचुर वेदन है, वही है।

*

वचनामृत-९६

आत्मा ही एक सार है, अन्य सब निःसार है। सब चिन्ता छोड़कर एक आत्माकी ही चिन्ता कर। कुछ भी करके चैतन्यस्वरूप आत्माको पकड़; तभी तू संसाररूपी मगरके मुँहमेंसे छूट सकेगा॥ ९६ ॥

'आत्मा ही एक सार है, अन्य सब निःसार है।'

अष्ट पाहुड़की टीकामें यह सार है और यह असार है–ऐसा बहुत आया है। यहाँ तो, निजात्मा ही एक सार है, शरीरकी नग्नता तो सार नहीं है, परन्तु शुभराग या व्यवहार-रत्नत्रयके विकल्प भी सार नहीं हैं; अरे! एक समयकी पर्याय अथवा गुणभेदका भेद भी सार नहीं है। अतीन्द्रिय आनन्दका अभेद पुंज ऐसा जो अखण्ड आत्मा वही एक सार है। सीसमकी लकड़ीमें सार होता है तदनुसार शुद्ध आत्मा एक सार है–कस है। देव–शास्त्र–गुरुकी श्रद्धाका राग भी सार नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा एक ही सर्वोत्कृष्ट वस्तु है; पैसा, वैभव, चक्रवर्तीपद, इन्द्रपद, देवोंको हजारों वर्षमें कण्ठमेंसे अमृत झरता है वह अमृतका आहार आदि बाह्य वस्तुएँ कुछ भी सार नहीं है। अंतरमें दया, दानादिके शुभ विकल्प आते हैं वह भी सार नहीं है; अरे! उन्हें जाननेवाली एकसमयकी पर्याय भी मूल सार नहीं है। अहा! अंतरमें अनन्तगुणोंका बादशाह, ज्ञानादि अनन्तगुणोंका नाथ भगवान आत्मा है वही एक जगतमें सर्वोत्कृष्ट सार है, वही सम्यग्दर्शनका विषय है। उसे प्राप्त किये बिना सब व्यर्थ है–थोथा है। मूल वस्तुकी खबर न हो और 'मैं ब्रह्मचारी बन गया, प्रतिमाधारी हो गया'–ऐसा बाहरका अभिमान करता है! क्या तू बाह्यके विकल्पोंवाला हो गया है? क्या तू परसे और विकल्पसे भिन्न अंतर्ज्ञानस्वरूप आत्मा नहीं है?

अनाकुल आनन्दका कन्द, ध्रुव सामान्य वस्तु जोकि सम्यग्दर्शनका विषय है वह एक ही जगतमें सार है। उसके आश्रय बिना कभी सम्यग्दर्शन नहीं होता। निज आत्माके सिवा अन्य सब, व्यवहार-रत्नत्रयके विकल्प भी, निःसार हैं। यह नास्तिसे कथन किया।

'सब चिन्ता छोड़कर एक आत्माकी ही चिन्ता कर।'

निज आत्मा ही एक सार है तो उसके सिवा अन्य सबकी चिन्ता निःसार है। शरीरादि जितने बाह्य पदार्थ, रागादिके परिणाम दया-दानादि तथा पुण्य–पापके विकल्प—यह सब निःसारकी चिन्ता छोड़कर एक आत्माकी ही चिन्ता कर, अंतरोन्मुख होनेका प्रयत्न कर, ताकि सारमें सार ऐसे निज आत्माका पता लग जाय। व्यवहार-रत्नत्रयकी भी चिन्ता छोड़कर एक आत्माकी ही चिन्ता कर। 'ही' कहकर एकान्त नियम बतलाया—आत्माकी ही चिन्ता, अन्यकी नहीं।

'कुछ भी करके चैतन्यस्वरूप आत्माको पकड़; तभी तू संसाररूपी मगरके मुँहमेंसे छूट सकेगा।'

स्वसन्मुख होकर किसी भी प्रकार चैतन्यस्वरूप आत्मा को पकड़, उसका आश्रय ले। भगवान आत्मा अंतरमें परिपूर्ण विराजमान है, उसके सन्मुख हो और व्यवहारके विकल्पसे भी विमुख हो।

प्रश्न :—तो फिर यह व्यापार–धंधा कब करें?

उत्तर :—स्त्री, पुत्र और यह मँहगाई—यह सब बाहरकी चिन्ता करनेसे उनकी व्यवस्था होती है ऐसा कुछ नहीं है। भाई! तेरी यह सब चिन्ता परमें निरर्थक और तेरा अनर्थ करनेवाली है। अपने स्वरूपकी चिन्ता तुझे सार्थक होगी प्रभु! एकबार सब चिन्ता छोड़ और आत्माकी चिन्ता कर। किसी भी प्रकार वह प्रयत्न कर। तू अपने सहज ज्ञानस्वरूप को पकड़। अनादिसे राग और विकल्पकी 'यह मेरे हैं' ऐसी पकड़

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अभिप्रायमें बना रखी है। तुझमें पकड़नेकी शक्ति तो है, परन्तु वह विपरीत कार्य कर रही है। अब उस पकड़को पलट दे।

मात्र ज्ञायकप्रभुको पकड़ तो एकाकी हो जायगा, परको पकडेगा तो संयोगों से नहीं छूट सकेगा। संयोगोंकी रुचिसे संयोगवाले अवतार लेना पड़ेंगे; और वे संयोग भी कैसे? अरे, यहाँ जो बड़े महलोंमें रहते हैं वे भेड़–बकरोंके या कौए–कुत्तोंके भवमें जन्म लेते हैं; जैसे परिणाम कियें हों वैसी योनियोंमें जन्म लेना पड़ता है। प्रभु! तूने अपनी वस्तुको ग्रहण किये बिना, आत्माका अनुभव किये बिना, अनंतबार ऐसे जन्म-मरण किये हैं।

भले ही पुण्यके परिणाम हों, परन्तु वे भी आत्माके स्वरूपसे पतित हुए भाव होनेसे परमार्थतः पाप ही हैं। पुण्यमें रहनेसे तुझे गतियोंमें भ्रमण करना पड़ेगा और वहाँ संयोगी वस्तुएँ मिलेंगी; क्योंकि पुण्य स्वयं संयोगी भाव है। संयोगी भावके फलमें संयोग प्राप्त होंगे, और असंयोगी स्वभावकी दृष्टि करनेसे स्वभाव प्राप्त होगा। अहा! लोगोंको यह कठिन लगता है।

चैतन्यस्वरूप आत्माको पकड़; तो तू संसाररूपी विशाल मगरके मुँहमेंसे छूट सकेगा। कलकत्ताकी नदीमें एक परिवार नावमें घूमने गया था। दस वर्षके बच्चेने अपना पैर जरा पानीमें डाला कि तुरन्त एक बड़े मगरने पकड़ लिया। नाविक बोला बच्चेको जल्दी नदीमें फेंक दो, यदि मगरने झटका मार दिया तो पूरी नाव उलट जायगी और हम सब मौतके मुँहमें चले जायँगे। अरेरे! माँ-बापको अपने हाथोंसे बच्चेको नदीमें फेंक देना पड़ा। अरे, यह संसार! इसीप्रकार इस संसाररूपी विशाल मगरने चौरासीके अवतारमें तुझे पकड़ रखा है;—'राग मेरा है' इस मिथ्या अभिप्रायमें तू स्वयं पकड़ा गया है। उदाहरणमें तो मगरने पकड़ा है; वह तो नहीं छोड़ता। यहाँ तो 'राग मेरा है, पुण्यभाव अच्छा है' ऐसा मानकर तू स्वयं पकड़ा गया है; इसलिये तू तो उससे छूट सकेगा।

अहा प्रभु! परसे भिन्नरूप और अपनेसे अभिन्नरूप मान्यतारूपसे तथा स्थिरतारूपसे परिणमनेकी तुझमें शक्ति है। तेरा कार्य करनेमें देव–गुरु या शास्त्रज्ञान तथा रागकी मंदता भी सहायक नहीं है। परके कारण अपना कार्य हो ऐसा वस्तुस्वरूप ही नहीं है। अहा! ज्ञानानन्दमय अपने ज्ञायकस्वरूपको पकड़ तो संसाररूपी मगरके मुँहमेंसे निकल सकेगा; छूटकर अकेला आनन्दमें रहेगा। संयोगी भाव छूटनेसे संयोग भी छूट जायँगे; स्वभाव अकेला रह जायगा। उसे पकड़ और अनुभव कर।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत-६७

परपदार्थको जाननेसे ज्ञानमें उपाधि नहीं आ जाती। तीन काल, तीन लोकको जाननेसे सर्वज्ञता—ज्ञानकी परिपूर्णता सिद्ध होती है। वीतराग हो जाय उसे ज्ञानस्वभावकी परिपूर्णता प्रगट होती है।। ६७।।

'परपदार्थको जाननेसे ज्ञानमें उपाधि नहीं आ जाती।'

क्या कहते हैं? कि—अपना आत्मा ज्ञानस्वरूप है; वह परको जाने वह कोई उपाधि नहीं है। 'परका मैं करता हूँ और परसे मुझमें होता है' ऐसा विपरीत अभिप्राय वह मिथ्यात्वकी उपाधि है, परन्तु परपदार्थको जानना वह उपाधि नहीं है। जानना तो तेरा स्वभाव है। जिसप्रकार अपनेको जाननेका स्वभाव है उसी प्रकार परको भी जाने—ऐसा अपना स्व-परप्रकाशक स्वभाव है। जिसप्रकार परपदार्थमें राग करनेसे हानि है, उसीप्रकार उसे जाननेमें भी हानि है—ऐसा नहीं है। अहा! ऐसा कैसा उपदेश है!

श्रीमद् कहते हैं कि:—

'मूल मारग सुन लो जिनका रे, कर वृत्ति अखंड सन्मुख; मूल मारग....।' प्रभुका मूलमार्ग तो यह है कि अपनी परिणतिको स्वभावोन्मुख करो।

प्रश्न :—यह बात तो मुश्किल लगती है?

उत्तर :—प्रभु! मार्ग तो यही है ऐसा पहले स्वीकार तो करो! इसके सिवा दूसरा कोई मार्ग है ही नहीं। उसको माननेवाले भले ही संख्यामें अल्प हों; अरे! कदाचित् बिलकुल न हों, उसका सत्यके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। सत्य तो सदा सत्य ही रहेगा; भले एक माने, दो मानें या चार मानें!

जहाँ–तहाँ लोग कहते हैं कि—भगवान की कृपा है! उसे स्वीकार होगा सो करेगा, उसीकी इच्छासे सब होता है। अरे, भाई! ऐसी अज्ञानता? कत्लखानोंमें जो हजारों गायें कटती हैं—वह सब क्या ईश्वरकी इच्छा होगी?

यहाँ तो सारमें सार बात यह है कि—परपदार्थ को जाननेमें कोई हानि नहीं है; परन्तु परपदार्थ मेरे हैं, उनका मैं कुछ कर सकता हूँ, उनकी व्यवस्था मुझसे होसकती है, मैं वड़ा चतुर हूँ और दूसरोंसे अच्छी तरह काम ले सकता हूँ—यह सब भ्रमणा है, अज्ञान है और अहितकारी है। भाई! तुझे वस्तुस्वरूपकी कुछ खबर ही नहीं है। कोई किसीका कुछ नहीं कर सकता। यहाँ तो कहते हैं कि परपदार्थको जाननेसे ज्ञानमें कोई उपाधि नहीं आ जाती; परन्तु परपदार्थको अपना मानना और पर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पदार्थ ठीक न हो तो उसे मैं ठीक कर सकता हूँ—ऐसा जो अभिप्राय सो भ्रमणा और अज्ञान है; परन्तु परपदार्थको जानना वह अज्ञान नहीं है। स्व-परको जानना वह तो अपना स्वभाव है। परको जानना वह कोई हानि नहीं है। 'परको जानना वह हानिकारक है'—ऐसा माननेवालेने स्व-परप्रकाशक स्वभावको नहीं माना है। परपदार्थको जाननेसे ज्ञानमें उपाधि नहीं आती।

'तीन काल, तीन लोकको जाननेसे सर्वज्ञता—ज्ञानकी परिपूर्णता सिद्ध होती है।'

अपने स्वरूपकी पूर्ण साधना करके जो सर्वज्ञ परमात्मा हुए, वे तीनकाल, तीनलोक तथा अलोक—सबको ('क' बोलनेमें असंख्य समय जाते हैं ऐसे) एक समयमें एकसाथ प्रत्यक्ष जानते हैं। जानना वह कोई उपाधि नहीं है, जानना वह तो आत्माका स्वभाव है। लोकालोकको ज्ञान जानता है, परन्तु तन्मय होकर नहीं जानता इसलिये उसे व्यवहार कहते हैं। अपने सुख आदि स्वरूपको तन्मय होकर जानता है इसलिये उसे निश्चय कहते हैं। अहा! बड़ी बात है भाई! नई-नई बातें! यह मार्ग ही कोई अलग है!

यहाँ तो कहते हैं कि परको जानना वह दुःख नहीं है, उपाधि नहीं है। परन्तु परका बराबर ध्यान रखूँ तो ठीक रहे—ऐसी भ्रमणा वह उपाधि है, दुःख है। तीनलोक और तीनकालको जाननेसे सर्वज्ञता—ज्ञानकी परिपूर्णता सिद्ध होती है। ज्ञानकी परिपूर्णता तब सिद्ध हो कि जब स्वको तथा परको परिपूर्णरूपसे जाने।

'वीतराग हो जाय उसे ज्ञानस्वभावकी परिपूर्णता प्रगट होती है।'

स्वरूपसे जैसा वीतराग है वैसा अंतरमें प्रगट वीतरागस्वरूप हो जाय उसे ज्ञानकी परिपूर्णदशा प्रगट होती है। अहा! ऐसा ज्ञानस्वभाव त्रिकाल तथा त्रिलोकको जाने वह कोई उपाधि नहीं है; वह तो ज्ञानका स्वभाव है।। उसमें अतीन्द्रिय आनन्द आता है।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-३४

ता. ११-७-७८

वचनामृत-९८

दृष्टि एवं ज्ञान यथार्थ कर। तू अपनेको भूल गया है। यदि बतलानेवाले (गुरु) मिलें तो तुझे उनकी दरकार नहीं है। जीवको रुचि हो तो गुरु-वचनोंका विचार करे, स्वीकार करे और चैतन्यको पहिचाने॥ ९८॥

'दृष्टि एवं ज्ञान यथार्थ कर।'

यह भगवान आत्मा अंतरमें ज्ञानादि अनंत सम्पदाका नाथ, पूर्णानन्द-प्रभु, एक समयकी पर्याय तथा गुणके भेदसे रहित अखण्ड, त्रैकालिक ज्ञायकतत्त्व है, उसे यथार्थरूपमें श्रद्धाका श्रद्धेय एवं ज्ञानका ज्ञेय बना। भाषा संक्षिप्त है किन्तु भाव उच्च हैं। दृष्टि और ज्ञान यथार्थ कर अर्थात् दृष्टिका विषय जो भूतार्थ, सत्यार्थ, त्रैकालिक, ध्रुव ज्ञायकवस्तु है उसे श्रद्धामें ले, उसे ज्ञानका ज्ञेय तथा ध्यानका ध्येय बना। अखण्ड ज्ञायक ध्रुव पूर्ण वस्तुकी दृष्टि होनेपर वह पूर्णवस्तु श्रद्धाका विषय होती है, परन्तु उससे दृष्टिके विषयभूत वह त्रैकालिक ज्ञायकवस्तु वर्तमान श्रद्धापर्यायरूप नहीं हो जाती। श्रद्धापर्यायमें पूर्णवस्तुकी प्रतीति आयी, परन्तु त्रैकालिक पूर्णद्रव्य है वह एक समयकी पर्यायरूप नहीं हो जाता। दृष्टि है वह श्रद्धाकी पर्याय है। श्रद्धाकी पर्यायमें ज्ञायक पूर्णवस्तुकी श्रद्धा कर, भीतर जो अनंत गुणकी सम्पदारूप त्रैकालिक वस्तु है उसीका पूर्ण स्वीकार कर, पूर्णानन्दके नाथको दृष्टिका विषय बना दे।

पूर्णवस्तुकी श्रद्धा हुई है, तथापि श्रद्धाकी एक समयकी वर्तमान पर्यायमें पूर्णवस्तु नहीं आ जाती। त्रैकालिक पूर्णवस्तु पर्यायमें कैसे आयगी? त्रैकालिक वस्तुका जितना सामर्थ्य है उसकी प्रतीति पर्यायमें आ जाती है। अहा! मूल वस्तु तो यह है कि वस्तुस्वभावकी यथार्थ दृष्टि एवं ज्ञान करना। परन्तु उसका कहाँ किसीने विचार किया है? इस नीमके वृक्षके एक-एक पत्तेमें असंख्य शरीर हैं और एक-एक शरीरमें एक-एक जीव है। दिखता है वह शरीर, परन्तु भीतर आत्मा शरीरसे भिन्न अरूपी है। अरे!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इस जीवने पूर्वकालमें अनंत अवतार किये हैं। पूर्वभवके माता-पिता मरकर कहाँ गये? वह खबर है तुझे? आत्मतत्त्वकी प्रतीति बिना वे सब एकेन्द्रियादि भवोंमें भटकते हैं।

प्रश्न :—वे कहाँ पैदा हुए, उनका कोई पत्र ही नहीं आया!

उत्तर :—परन्तु ऐसा पत्र तो है ना, कि एक राजाके घर पैदा होता है और दूसरा गरीबके घरमें? यह अंतर किसी पूर्व पुण्य-पापके कारण है ना? भिन्न-भिन्न कारणोंके बिना भिन्न-भिन्न कार्य होते हैं कहीं? यह पत्र तो आया है या नहीं? अरेरे! विचार नहीं आता कि 'जिसके गर्भमें नौ महीने रहा, जिसने प्रेमसे मेरा पालन किया, वह वात्सल्यमयी माता मुझे छोड़कर कहाँ गई होगी! इसे कहते हैं संसार!' रागसे भिन्न धर्म क्या वस्तु है यह बात उसके सुननेमें भी नहीं आयी थी। अहा! ऐसी दुर्लभ बात सुननेको मिली है तो उसका लाभ ले ले भाई! इसीलिये यहाँ कहते हैं कि—पूर्णानन्दका नाथ जो त्रैकालिक ध्रुव निज ज्ञायक आत्मा उसकी यथार्थ दृष्टि एवं ज्ञान कर ले। अपनी रुचि और ज्ञानकी पर्यायको परसे तथा विभावसे—सर्वत्रसे समेटकर अपने पूर्ण ज्ञायक भगवानको ज्ञेय बनाकर उसकी श्रद्धा और ज्ञान यथार्थ कर ले। जन्म-मरणके नाशका यही एक सच्चा मार्ग है।

समयसारकी आठवीं गाथाकी टीकामें कहा है कि—जो दर्शन, ज्ञान और चारित्रको प्राप्त हो वह आत्मा है। वहाँ, रागको प्राप्त हो वह आत्मा—ऐसा नहीं कहा। दर्शन, ज्ञान और चारित्रका भेद भी व्यवहारनयका विषय है। त्रैकालिक भूतार्थ आत्मवस्तु तो अभेद एक ज्ञायकभाव है; उसमें पूर्णानन्द आदि अनंत गुणरूप सम्पदा भरी पड़ी है। बहिनके बोलमें आगे आयगा कि—भगवान आत्मामें अतीन्द्रिय आनंद आदि अनंत गुणरत्नोंके भण्डार भरे हैं। अरेरे! दुनिया तो बाह्य कर्तृत्वके अभिमानमें रुक गई है! परन्तु करने योग्य तो इस जन्म-मरण रहित वस्तुकी पहिचान है। जीवने अपने घरकी यह बात कभी नहीं सुनी, उसकी पहिचान कभी नहीं की।

अनंत गुणके निधान ऐसे इस भगवान आत्माको जीवने कभी पहिचाना नहीं। आत्मामें गुण तो संख्यासे अनंत हैं। आकाशके प्रदेशोंका अंत नहीं है–सिरा नहीं है। हो तो कहाँ? असंख्य योजनमें जगत है; फिर खाली आकाश है। वह आकाश कहाँ समाप्त हुआ? कहीं समाप्त हो तो उसके बाद क्या? अहा! क्षेत्रका ऐसा स्वभाव है! आकाशमें जिसप्रकार क्षेत्रसे अनंतता है उसीप्रकार आत्मामें गुणोंसे अनन्तता है। क्षेत्रके प्रदेशकी अपेक्षा अनंतगुने गुण प्रत्येक आत्मामें हैं। अनंत गुणोंके अभेद पिण्डस्वरूप निज ज्ञायक भगवानको यथार्थरूपसे दृष्टि एवं ज्ञानमें ले।

'तू अपनेको भूल गया है।'

प्रभु, तू कहाँ है? कैसा है? तू अपनेको भूल गया है। 'राग मैं हूँ, पुण्य मैं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हूँ, तथा एक समयकी पर्याय जितना मैं हूँ'—ऐसा मानता है, परन्तु मुख्य वस्तु जो अनंत गुणोंकी सम्पदावान अपना त्रैकालिक ज्ञायक प्रभु, उसे तू भूल गया है। भूलने योग्य वस्तुको—पुण्य और पापको तथा उसके फलको—तू याद रखता है और जिसे याद रखना है उसे भूल गया है।

'यदि बतलानेवाले (गुरु) मिलें तो तुझे उनकी दरकार नहीं है।'

जिसप्रकार आकाशके क्षेत्रका और कालके समयोंका कहीं अंत नहीं है, उसीप्रकार अनंतको अनंतरूपसे जाननेवाले क्षेत्रज्ञके—आत्माके ज्ञानका अंत नहीं है। प्रभु! तू ऐसे ज्ञानादि अनंतगुणोंकी सम्पदावाला है—ऐसा बतलानेवाले गुरु मिले, परन्तु तूने उनकी दरकार नहीं की। जो मुख्य कर्त्तव्य है वह करता नहीं है, और दूसरे कार्योंमें हस्तक्षेप करता है कि—'यह करना और वह करना।' अपने आत्माकी ओरके विचारोंका अवकाश भी नहीं मिलता। जीव अंतरंतत्त्वकी बात समझता नहीं है और बाह्य क्रियाकाण्डमें लग जाता है। ऐसा खाना, ऐसा पीना, निर्दोष आहार लेना आदि;....अरे, इसीमें यह जीव रुक गया है! पूर्णानन्दस्वरूप भगवान आत्मा जो मुख्यवस्तु है उसे तो याद भी नहीं करता, और न श्रद्धामें लेता है। गुरु बतलाते हैं, परन्तु उसे उनकी दरकार नहीं है। 'अरे होगा! बतलाते होंगे!'—ऐसा कहकर बातको छोड़ देता है। यदि कोई व्यापारादि सम्बन्धी उसे रुचती बात करे तो उत्साहसे सुनता है। 'इस धन्धेमें पाँच लाख मिल सकते हैं'—ऐसा सुनकर खुशीसे नाच उठता है। अरे! आत्मस्वरूप बतलानेवाले गुरु मिले तो उनकी दरकार नहीं है।

'जीवको रुचि हो तो गुरु-वचनोंका विचार करे, स्वीकार करे और चैतन्यको पहिचाने।'

जिसप्रकार व्यापारी अपनी रुचिका माल खरीदता है, उसीप्रकार क्या तुझे आत्मा रुचता है? तुझे तो राग रुचता है, निमित्त रुचता है, बाह्यमें स्त्री–परिवार यह सब रुचते हैं; हैरान होकर, दुःख उठाकर भी उनकी रक्षा करता है; परन्तु आत्माकी खबर कभी ली है? कभी उसका विचार किया है?

तेरा आत्मा कौन है? कैसा है? उसका विचार, स्वीकार और पहिचान तो कर ले! जीवको यथार्थ रुचि हो तो गुरु-वचनोंका विचार करे। सर्वज्ञ परमेश्वर अथवा अन्य संतोंके वचनोंका विचार यदि रुचि हो तब करे ना! यदि रुचि न हो तो विचार क्या करेगा? रुचि हो तो विचार करे, स्वीकार करे और चैतन्यको पहिचाने। निमित्त और राग तो दूर रहो, परन्तु एकसमयकी चैतन्यकी पर्यायसे भी दूर ऐसे ज्ञायकस्वभावी, आनन्दस्वभावी भगवान आत्माको पहिचान। अहाहा! क्या वस्तु है!

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत-६६

यह तो पंखीका मेला जैसा है। इकट्ठे हुए हैं वे सब अलग हो जायँगे। आत्मा एक शाश्वत है, अन्य सब अध्रुव है; बिखर जायगा। मनुष्य-जीवनमें आत्मकल्याण कर लेना योग्य है॥ ६६॥

'यह तो पंखीका मेला जैसा है।'

८० वर्षकी उम्र हो; स्त्री, पुत्र, पुत्रवधुएँ, पौत्र, पौत्रवधुएँ और उनके भी पुत्र–पुत्रियाँ—ऐसी तीन चार पीढ़ियाँ हों, तो लोग उसे 'हरीभरी फुलवारी' कहते हैं। अरे, खाक भी 'हरीभरी फुलवारी' नहीं है। तेरा पुण्य सूख गया है, जल गया है। तू मर जायगा तब कौन पूछनेवाला है कि मरकर कहाँ गया? आत्मा तो नित्य है, उसका कभी नाश नहीं होता। वह तो है ही; तो वह गया कहाँ? पूछता है कोई? यह तो पंखीके मेले जैसा है। सायंकाल सब वृक्षपर एकत्रित होते हैं और प्रातःकाल उड़ जाते हैं। इष्टोपदेशमें कहा है कि :–

दिग्देशभ्यः खगा एत्य संवसन्ति नगे नगे।
स्वस्वकार्यवशाद्यान्ति देशे दिक्षु प्रगे प्रगे॥ ९॥

किसीका कोई सम्बन्ध नहीं है। अपने-अपने मार्गपर चले जाते हैं। अहा! यह कुटुम्ब-परिवार पंखीके मेले जैसा है। परिवारमें जन्म लेकर कोई आया, तो क्या पूछते हैं कि तू कहाँसे आया है? मर जानेपर कोई नहीं पूछता कि मरकर कहाँ गया? सब पंखीका मेला जैसा है।

'इकट्ठे हुए हैं वे सब अलग हो जायँगे।'

एकत्रित हुए सब वर्तमानमें भी अलग ही हैं। वे सब क्षेत्रसे भी अलग हो जायँगे। अहाहा! अकेला....! प्रभु आत्मा अकेला आया है, अकेला परिणाम करता है और परिणाम करके परलोकमें अकेला चला जाता है।

"जीव एकलो ज मरे, स्वयं जीव एकलो जन्मे अरे!
जीव एकनुं नीपजे मरण, जीव एकलो सिद्धि लहे।"

तू अकेला ही है; सुख-दुःखका भोगी, स्वर्ग या नरकमें गमन करनेवाला मात्र तू अकेला ही है। तू अकेला ही मोक्ष जानेवाला है; इसलिये तू आत्मदर्शन प्रगट कर। गुरुकी वाणी सुनकर विचार कर, प्रतीति कर और स्थिर हो, तो तुझे अनंतज्ञान एवं सुखका धाम ऐसे निजात्माके दर्शन होंगे। अहाहा! यह तो पंखीका मेला जैसा है। एकत्रित हुए सब बिछुड़ जायँगे।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'आत्मा एक शाश्वत है, अन्य सब अध्रुव है; बिखर जायगा।'

भगवान आत्मा तो शाश्वत तत्त्व है, वह कहाँ जायगा? भविष्यमें भी अनंतकाल रहेगा ही। कहाँ रहेगा? यदि रागमें और पुण्यके प्रेममें दृष्टि की तो मिथ्यात्वमें तथा विकारमें दुःखी होकर रहेगा; और यदि आत्मापर दृष्टि की और उससे प्रेम हुआ तो भविष्यमें आत्मामें रहेगा; क्रमशः रागका नाश होकर केवलज्ञान हो जायगा। आया कुछ समझमें?....आत्मा एक शाश्वत है, अन्य सब मेले जैसा क्षणभंगुर है। प्रवचनसारमें आता है कि—'ध्रुवपनेके कारण शुद्ध आत्मा ही उपलब्ध करने योग्य है....शुद्ध आत्मा सत् एवं अहेतुक होनेके कारण अनादि-अनंत और स्वतःसिद्ध है इसलिये आत्माको शुद्ध आत्मा ही ध्रुव है, उसे अन्य कुछ भी ध्रुव नहीं है.... यह शुद्ध आत्मा ही ध्रुवपनेके कारण उपलब्ध करने योग्य है। मार्गमें चलते हुए मुसाफिरके शरीरके साथ संसर्गमें आनेवाली मार्गके वृक्षोंकी छायाके समान अन्य जो अध्रुव पदार्थ उनसे क्या प्रयोजन है?'

अहाहा! नित्य स्थायी वस्तु तो मैं एक हूँ; अन्य सब वस्तुएँ—रागादि अन्य वस्तुओंकी तो बात ही क्या करना, मेरी पर्याय भी—नाशवान क्षणिक है। उदय और विचार भी दूसरे क्षण दूसरा हो जाता है। मैं एक ध्रुव हूँ और बाकी सब अध्रुव है। मैं और बाकी सब, इसप्रकार स्व और पर—दो हुए ना? आत्मा सर्वव्यापक एक ही है, अन्य सब भ्रम है—ऐसा वेदान्त कहता है वह बराबर नहीं है। आत्मा भी है और पुद्गलादि अन्य भी हैं। मैं एक शाश्वत हूँ, मेरे लिये अन्य सब अध्रुव है, बिखर जायगा, छूट जायगा। परद्रव्यका मेरे साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

लोकमें ऐसा कहते हैं कि—'जीव चला गया'; 'जीव मर गया'—ऐसा थोड़े ही कहते हैं? 'नाड़ी हाथ नहीं आती, जीव चला गया'—ऐसा कहते हैं। आत्मा चला गया तो, जो 'है' वह चला गया ना? परन्तु किसे विचार करना है? जीव चला जाता है और देहपिंजर पड़ा रह जाता है। जीव गया तो कहाँ गया? और उसने कैसे परिणाम किये थे?—ऐसा विचार तूने कभी किया है भाई? 'यह मेरा पुत्र है, मैंने यह किया और वह किया' ऐसे बाह्य सम्बन्धोंमें ही मारा गया! अहाहा! यह सब बिखर जायगा।

'मनुष्य-जीवनमें आत्म-कल्याण कर लेना योग्य है।'

इस दुर्लभ मनुष्यभवमें एक आत्म-कल्याण कर लेना योग्य है, बाकी तो सब थोथा है, धुएँ को भुजाओंमें भरने जैसा व्यर्थ है। निवृत्ति लेकर अपने स्वरूपकी ओरका प्रयत्न करना और अंतरमें आत्माका लाभ लेना, वह कल्याणका सहवास है।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत-१००

'मैं अनादि-अनन्त मुक्त हूँ'—इसप्रकार शुद्ध आत्मद्रव्यपर दृष्टि देनेसे शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। 'द्रव्य तो मुक्त है, मुक्तिकी पर्यायको आना हो तो आये' इसप्रकार द्रव्यके प्रति आलम्बन और पर्यायके प्रति उपेक्षावृत्ति होनेपर स्वाभाविक शुद्धपर्याय प्रगट होती ही है॥ १००॥

"'मैं अनादि-अनन्त मुक्त हूँ'—इसप्रकार शुद्ध आत्मद्रव्य पर दृष्टि देनेसे शुद्ध पर्याय प्रगट होती है।"

आत्मवस्तु अनादि-अनन्त मुक्तस्वरूप ही है। उसका कर्मके साथ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध पर्यायमें है। मूल वस्तुके साथ कोई निमित-नैमित्तिक सम्बन्ध है ही नहीं। अकेले ज्ञानरस, शांतरस, आनंदरस, ध्रुवरस आदि अपने पूर्णरूपसे भरपूर आत्मा सदा मुक्तस्वरूप ही है। वह स्वभावसे अबद्धस्पृष्ट—शरीरादि परपदार्थ तथा कर्मसम्बन्धसे रहित—है, अनन्य—भिन्न-भिन्न नारक–मनुष्य आदि गतिरूप नहीं किन्तु एकरूप—है, नियत—न्यूनाधिक पर्यायरूपसे नहीं किन्तु स्वभावसे नित्य व्यवस्थित—है, अविशेष—ज्ञान, दर्शनादि गुणभेदरूप नहीं किन्तु सामान्य अभेद एकरूप—है, और असंयुक्त—कर्मके निमित्तसे होनेवाले रागादि विकार रहित—है। ऐसे त्रिकाल मुक्तस्वरूप निज आत्माको जो देखता है, अनुभवता है, वह सकल जिनशासनको देखता है—ऐसा समयसारकी १४ और १५वीं गाथाओंमें कहा है।

मेरा द्रव्य तो अनादि-अनंत मुक्त ही है; मुक्ति होगी वह तो पर्यायमें होगी। मैं ज्ञायक एक वस्तु हूँ ना? तत्त्व हूँ ना? तत्त्व 'है' उसका प्रारम्भ कहाँसे? 'है' तो है ही उसका अन्त कहाँ? उसका सिरा कहाँ? जिसका प्रारम्भ नहीं है और जिसका अन्त नहीं है ऐसा मैं अनादि-अनंत मुक्तस्वरूप ही हूँ।—ऐसी दृष्टि करना वह कल्याणका कारण है। व्यवहार–शुभराग करते-करते मुक्तस्वरूप त्रैकालिक ज्ञायककी दृष्टि होगी वह मिथ्यात्वका भाव है, अकल्याणका मूल है। बड़ी सूक्ष्म बात है!

प्रश्न :—जीवका कल्याण कैसे हो?

उत्तर :—मैं अनादि-अनंत मुक्त हूँ, कल्याणका बीज हूँ, अतीन्द्रियज्ञान और आनन्द आदि निजसम्पदासे भरपूर भगवान हूँ—इसप्रकार निज शुद्ध आत्मद्रव्यपर दृष्टि देनेसे शुद्ध पर्याय—कल्याणकी पर्याय प्रगट होती है। उस त्रैकालिक ज्ञायकस्वभावमें दृष्टि देनेसे मोक्षमार्ग प्रगट होता है। आजकल तो सबकी एक ही आपत्ति है कि व्यवहार को भी उपादेय

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मानो, पापकी अपेक्षा पुण्य अच्छा है! भाई, किस अपेक्षासे पुण्यको उपादेय कहा जाय? वे दोनों आत्माके लिये तो बंधन कर्ता हैं। प्रवचनसारमें कहा है कि :—

नहि मानतो—अे रीत पुण्ये पापमां न विशेष है,
ते मोहथी आच्छन्न घोर अपार संसारे भमे॥ ७७॥

जो भी प्राणी शुभ-अशुभ दोनोंमे भेद–विशेष–अंतर मानते हैं—शुभ अच्छा और अशुभ बुरा ऐसा मानते हैं—वे, मोहसे मलिन चित्तवाले वर्तते हुए, घोर अपार संसारमें भ्रमण करते हैं, नरक और निगोदादिमें परिभ्रमण करते हैं। पुण्य-पाप दोनों सामान्यतया दुःखके कारण हैं। परमात्मप्रकाशमें भी कहा है कि शुभ और अशुभ भावमें कोई फेर नहीं है; दोनों बंधके कारण, दुःखके कारण तथा आकुलताके कारण हैं। शुभभाव भी अपना स्वरूप नहीं है और लाभका कारण नहीं है—ऐसा न मानकर जो शुभ-अशुभमें भेद करते हैं, विशेष मानते हैं वे घोर अपार संसारमें भ्रमण करेंगे....भाई! बड़ा ही कठिन कार्य है!

प्रश्न :—जो पापमें पड़े हैं उनसे पुण्य करनेको कहो तो पापसे तो बचेंगे?

उत्तर :—मूल पाप—पापका बाप—तो मिथ्यात्व है। उस महापापसे बचनेकी तो यह बात चलती है। शुभ तो बेचारे अनादिसे कर रहे हैं; ब्रह्मचर्य पालें, व्रत रखें आदि कार्य करके पापसे तो बचते हैं; परन्तु सच्चा पाप तो मिथ्यात्व है। शुभ अच्छा और अशुभ बुरा—ऐसा भेद करनेवाले मिथ्यादृष्टि हैं। लोगोंको यह बात नहीं रुचती, इसलिये इसे 'एकान्त' कहते हैं। प्रभु! यह तो कुन्दकुन्दाचार्यदेवकी स्पष्ट वाणी है कि—पुण्य और पाप दोनों समान हैं, और वे धर्मका कारण बिलकुल नहीं हैं।

मैं अनादि–अनन्त एकरूप हूँ, ध्रुव ज्ञायकतत्त्व हूँ, मुक्त हूँ—इसप्रकार शुद्ध आत्मद्रव्यपर दृष्टि देनेसे शुद्ध पर्याय—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र—प्रगट होती है; नहीं कि किसी पुण्यकी क्रिया अथवा व्यवहार करते-करते सम्यग्दर्शनादि प्राप्त होंगे? शुभसे शुद्ध हो ऐसा है ही नहीं।

'द्रव्य तो मुक्त है, मुक्तिकी पर्याय आना हो तो आये' इसप्रकार द्रव्यके प्रति आलम्बन और पर्यायके प्रति उपेक्षावृत्ति होनेपर स्वाभाविक शुद्धपर्याय प्रगट होती ही है।'

भले ही द्रव्यमें अनन्त गुण हों परन्तु वस्तुरूपसे तो एक है ना? वह वस्तु अनादि-अनन्त एकरूप भिन्न ही है, मुक्त ही है। वस्तु पर्यायमें रागका सम्बन्ध करती है तो मलिन हो जाती है; वहाँ पर्याय रागसे मलिन होती है, उससे कहीं त्रैकालिक ध्रुव द्रव्य थोड़े ही मलिन हो जाता है? जीवद्रव्य चाहे तो निगोदमें हो, चाहे तो सर्वार्थसिद्धि स्वर्गमें हो और चाहे तो सिद्धमें हो, वह तो त्रिकाल शुद्ध, निर्मल ही है, मुक्तस्वरूप ही है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'मुक्तिकी पर्यायको आना हो तो आये' क्या कहते हैं? कि—वस्तु तो मुक्तस्वरूप ही है—ऐसी दृष्टि हुई तो मुक्तिकी पर्याय होगी ही। द्रव्यदृष्टिवानका पर्याय पर जोर नहीं है; जोर तो द्रव्य पर ही है। ज्ञानी की दृष्टि पर्याय पर नहीं है। अमुक पर्याय आये तो ठीक—ऐसा पर्यायपर उसका जोर नहीं है, जोर तो सदा द्रव्यपर ही है। इसप्रकार द्रव्यके प्रति आलम्बन है, झुकाव है। निमित्तका और व्यवहारका आलम्बन तो छूट गया है, परन्तु निर्मल पर्यायका भी आलम्बन नहीं है। अहा! ऐसी मुक्तस्वरूप वस्तुका आलम्बन लेनेसे और 'मुक्तिकी पर्यायको आना हो तो आये' इसप्रकार उसकी उपेक्षा होनेसे मुक्तिकी पर्याय अवश्य आयगी ही।

इसप्रकार ज्ञानीको द्रव्यके प्रति आलम्बन तथा पर्यायके प्रति उपेक्षावृत्ति है। अरे! मुक्तिकी पर्यायके प्रति भी उपेक्षावृत्ति है! मैं कहाँ पूरा पर्यायमें आनेवाला हूँ? मैं तो मुक्त हूँ सो हूँ ही;—इसप्रकार ज्ञानी को द्रव्यके प्रति आलम्बन, त्रैकालिक ध्रुव ध्येयके प्रति जोर कभी नहीं छूटता! अहा! ऐसी बातें लोगोंको कठिन लगती हैं! धर्म तो कोई अपूर्व वस्तु है ना भाई! अनंतकाल बीत गया तथापि एक क्षण भी धर्म नहीं हुआ, तो वह कोई अपूर्व वस्तु होना चाहिये, साधारण नहीं। द्रव्यके प्रति आलम्बन और पर्यायके प्रति उपेक्षावृत्ति होनेपर भी निर्मलपर्याय तो प्रगट होती ही है। वास्तवमें त्रैकालिक वस्तुका आलम्बन लेनेसे, पर्यायके प्रति उपेक्षावृत्ति करनेसे ही मुक्तिकी शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। मोक्षकी इच्छा करनेसे मोक्ष नहीं मिलता—ऐसा यहाँ कहा। इच्छाको तोड़कर द्रव्यका पूर्ण आलम्बन लेनेसे शुद्धपर्याय पूर्ण होती है। वहाँ दृष्टिका जोर तो द्रव्यपर है। जिसे द्रव्यपर दृष्टिका जोर होगा उसीको मोक्षकी प्राप्ति होगी, अन्यको नहीं।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-३५

ता. १२-७-७८

वचनामृत-१०१

सम्यग्दृष्टिको ऐसा निःशंक गुण होता है कि चौदह ब्रह्माण्ड उलट जायँ तथापि अनुभवमें शंका नहीं होती ॥१०१॥

पूर्ण नित्य ध्रुवस्वभावसन्मुख होनेसे जिसे, उसके आश्रयसे सम्यग्दर्शन होनेपर, अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद आया उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। चिदानन्दमूर्ति पूर्ण आत्माका जिसे अंतरमें पता लग गया है, व्यवहारके विकल्पोंसे रहित निर्विकल्प वस्तुका जिसने अंतर्‌अनुभव किया है और द्रव्यस्वभावका निर्विकल्प दृष्टि द्वारा स्वीकार करनेसे जिसे द्रव्यमें जो अनन्तगुण हैं उन सबका एक अंश पर्यायमें व्यक्त—प्रगट हुआ है, वह सम्यग्दृष्टि है। द्रव्यस्वभावकी निर्विकल्प दृष्टि एवं अनुभूति बिना चाहे जितना बाह्यत्याग करे तथापि वह सम्यग्दृष्टि नहीं है। आत्मामें बाह्यवस्तुका तो त्याग ही है। आत्मामें अनादिसे त्याग-उपादान-शून्यत्वशक्ति नामक गुण है, उसके कारण वह परद्रव्यके ग्रहण और त्यागसे सदा रहित ही है। वहाँ थोड़ासा परद्रव्यका त्याग करके अभिमानका वेदन करे कि हम त्यागी हैं, हम दूसरोंकी अपेक्षा आगे बढ़ गये, तो वह सब मिथ्यात्वका पोषण है।

यहाँ तो, पूर्णानन्दके नाथका आश्रय करके रागकी एकता टूट गई और स्वभावमें एकता हो गई ऐसे चतुर्थ गुणस्थावर्ती सम्यग्दृष्टि जीवको ऐसा निःशंक गुण होता है—वह अंतर्‌अनुभवमें ऐसा निःशंक होता है—कि चौदह ब्रह्मांडमें खलबली मच जाय, सारी दुनिया विरोधी हो जाय तथापि उसे स्वानुभवमें कभी शंका नहीं होती। जिसके तलमें अनंत आनन्द एवं शान्ति भरी पड़ी है, जो सुधाका सागर है, उसके आश्रयसे निर्मल दृष्टि और अनुभव हुआ, ऐसे सम्यग्दृष्टि जीवको ऐसी निःशंकता होती है कि सारी दुनिया बदल जाय, विरोध करे, तथापि अनुभवमें कभी शंका नहीं होती। यह बहुत बड़े त्यागी हैं और वस्तुस्वरूपका ऐसा कथन करते हैं, तो क्या उसमें कोई तथ्य होगा?—ऐसी शंका धर्मीको कदापि नहीं होती।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रश्न :—आत्म-अनुभवके बिना स्त्री–परिवारका त्यागी हो जाय, बहुत उपसर्ग तथा परिषह सहन करे, तो उसमें कोई धर्म है या नहीं?

उत्तर :—नहीं, क्योंकि वह ऐसा मानता है कि—परका त्याग मैंने किया है, इसलिये वह मिथ्यादृष्टि है, उसे अंशतः भी आत्मधर्म नहीं है। अंतर्‌स्वभावोन्मुख होनेसे जो अनुभव हुआ वह इतना निःशंक होता है कि—परोन्मुख जीव चाहे जितना विरोध करें तथापि उसको अनुभवमें शंका नहीं पड़ती। समझमें आया कुछ?.... अहाहा! शब्द बिलकुल थोड़े, लेकिन जो पढ़ता है वह प्रसन्न होता है। अरे, यह तो अद्‌भुत वस्तु है भाई! जगतके भाग्यसे बाहर आगयी है। बहुत संक्षेपमें! सरल भाषा! (वचनामृत पुस्तक) पहले गुजरातीमें प्रगट हुई फिर हिन्दी अनुवाद हुआ ना! मूल तो गुजराती है। अहा! यह १०१वाँ बोल है, और यह बात शत-प्रतिशत सत्य है।

*

वचनामृत-१०२

आत्मा सर्वोत्कृष्ट है, आश्चर्यकारी है। जगतमें उससे ऊँची वस्तु नहीं है। उसे कोई ले जा नहीं सकता। जो छूट जाती है वह तो तुच्छ वस्तु है; उसे छोड़ते हुए तुझे डर क्यों लगता है? १०२ ॥

'आत्मा सर्वोत्कृष्ट है, आश्चर्यकारी है।'

आत्मा अनादिसे एकसमयकी जो प्रगट पर्याय है उसमें अपना अस्तित्व मानकर रम रहा है; परन्तु वर्तमान प्रगट पर्यायके निकट अंतरमें भगवान पूर्णानन्द विराजमान है, आश्चर्यकारी कोई सर्वोत्कृष्ट वस्तु है, उसकी उसे खबर और महिमा नहीं है। अहाहा! यह बात तो अंतर्मुख होनेकी है; अति सूक्ष्म लगे, परन्तु उसे करना तो पड़ेगा।

आत्मा सर्वोत्कृष्ट है, स्वतःसिद्ध वस्तु है, स्वयं अपनेसे ही ऐसी कोई अरूपी सत्ता है! भले ही उसका क्षेत्र छोटा—शरीर प्रमाण हो, अरे! एक अंगुलके असंख्यभाग-प्रमाण निगोदके एक शरीरमें अनंत जीव बसते हैं, तथापि उनका आत्मा शरीर और पर्यायसे भिन्न सर्वोत्कृष्ट वस्तु है। अहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप निर्विकल्प मोक्षमार्गकी पर्याय प्रगट हो वह भी त्रैकालिक सर्वोत्कृष्ट प्रभुके निकट तुच्छ है। अपरिमित ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य—ऐसे अनंतचतुष्टय-सम्पन्न और ऐसी अनंत-अनंत शक्तियोंका पिण्ड प्रभु, सर्वोत्कृष्ट आश्चर्यकारी आत्मा अंतरमें विराजमान है उसे जो स्वीकारती है वह दृष्टि सम्यक्–सत्य है, पर्याय या गुणभेदको स्वीकार करे वह दृष्टि सम्यक् नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बनारसमें एक पण्डितजी इसे देखकर बड़े ही प्रसन्न हुए और बोले कि—अहाहा! यह तो बड़ी ही अच्छी पुस्तक है! इसमें तो मुख्य-मुख्य मुद्देकी बातें हैं।

गोम्मटसारमें (टीकामें) कहा है कि—जिसमें अनंत गुणोंका वास है उसे वस्तु कहा जाता है। सादि–अनंतकाल केवलज्ञानकी पूर्ण पर्यायें उत्पन्न हों तथापि जिसका विनाश या कृशता नहीं होती, शक्तिरूपसे जो सदा पूर्ण रहता है ऐसा एक ज्ञानगुण और ऐसे आनंदादि दूसरे अनंत गुणोंका जिसमें वास है ऐसा यह आत्मा सर्वोत्कृष्ट है, आश्चर्यकारी है। कल्पवृक्ष तो जड़ फल देता है, परन्तु इस चैतन्यकल्पवृक्षका स्वीकार करनेसे—रागकी तो क्या बात करें—पर्यायबुद्धि भी छूट जाती है और दशामें अतीन्द्रिय आनन्दका अनुभव आता है। —ऐसी सर्वोत्कृष्ट वस्तु यह भगवान आत्मा है।

'जगतमें उससे ऊँची वस्तु नहीं है।'

केवलज्ञानकी पर्याय भी सर्वोत्कृष्ट निज ज्ञायकवस्तुसे ऊँची नहीं है। अहा! जो पूर्ण वस्तु है उसे भाषा द्वारा कैसे कहा जाय? वह ज्ञायक भगवान अद्भुतसे भी अद्भुत है! उस जैसी जगतमें कोई ऊँची वस्तु नहीं है; केवलज्ञानकी पर्याय भी सर्वोत्कृष्ट प्रभु आत्मासे उच्च नहीं है। बाह्यमें तो पैसेवालोंको ऊँचा कहा जाता है; परन्तु पैसा तो धूल है, जड़ है। पुद्गलादि जड़ वस्तुएँ भी जड़स्वरूप आश्चर्यकारी वस्तुएँ हैं, परन्तु अपने स्वरूपकी उन्हें स्वयंको खबर नहीं है। एक परमाणुमें वर्ण–गंध–रस–स्पर्श गुण हैं वे पलटकर क्या कुछ दूसरे—अन्यरूप हो जाते हैं? अहा! परमाणुकी भी ऐसी अद्भुतता है! तो फिर आत्मामें जो अनंतज्ञान-दर्शन-आनन्दादि गुण हैं वे पलटकर कहाँसे अन्यरूप हो जायँगे? गुण पलट जायँ तो वस्तु ही कहाँ रही? गुण चाहे जितने काल, चाहे जितनी पर्यायोंमें आता हो, परन्तु गुण 'है' तो वह तीनकालमें अन्यरूप नहीं पलटता। पलटती है वस्तुकी पर्याय। जड़ वस्तुमें भी ऐसा ही है; परन्तु उसकी तो उसे स्वयंको खबर नहीं है। उसकी खबर रखनेवाला तो यह सर्वोत्कृष्ट आश्चर्यकारी प्रभु आत्मा है। जगतमें उससे ऊँची कोई वस्तु नहीं है।

'उसे कोई ले जा नहीं सकता।'

कौन ले? किसे ले? अनादि-अनंत ध्रुव वस्तुको कौन ले जायगा? अहा! उसकी एक समयकी पर्याय भी दूसरा कोई ले–दे नहीं सकता, तब जो त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक वस्तु है उसे कौन ले जायगा? त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायककी सम्यक् दृष्टिके बिना सब थोथा है। मूल सर्वोत्कृष्ट आश्चर्यकारी वस्तुकी दृष्टि और खबर तो है नहीं, और बाह्यमें बड़प्पन मानता है कि—हमने ऐसा त्याग किया, हमने आजीवन ब्रह्मचर्य ले लिया; परन्तु उससे हुआ क्या? क्या वह मूल वस्तु है? कायासे ब्रह्मचर्य पालना वह तो शरीरकी क्रिया है,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसमें परिणाम रहे वह शुभराग है; वह कोई आत्मा नहीं है, आत्माको लाभदायक नहीं है। आत्माके लाभस्वरूप जो निर्मल मोक्षपर्याय है उससे भी ज्ञायकवस्तु तो उत्कृष्ट है।

अपने ज्ञायकस्वभावको भूलकर जीव बाहरी दौड़धूप कर रहा है; स्त्री, पैसा, मकान, मोटर आदिमें फँस गया है। अरे! उनमेंसे निकलना भारी पड़ेगा! देहका अन्त होनेपर उसे इन सबको छोड़ना तो पड़ेगा ही। यहाँ तो कहते हैं कि—प्रभु! तू सुन तो सही; तुझे अपनी पर्यायमें जो प्रेम है उसमेंसे निकलकर द्रव्यस्वभावमें आना वह महान पुरुषार्थ है। तेरी पर्यायके सिवा अंतरमें परिपूर्ण वस्तु विद्यमान है, उसे तूने अनंतकालमें कभी देखा ही नहीं है, सुना भी नहीं है। उस सर्वोत्कृष्ट वस्तुको कोई ले जा नहीं सकता। कौन ले जायगा? उसकी एक समयकी पर्यायको भी कोई नहीं ले सकता, तो त्रैकालिक नित्यानन्द प्रभु जोकि अनादि-अनंत ध्रुवतत्त्व है, जो स्वभावसे है....है....है....और है...., जो ज्ञानादि अनंत गुणोंका अपार पुंज है—ऐसी सर्वोत्कृष्ट ज्ञायकवस्तुको कौन ले जा सकता है?

'जो छूट जाती है वह तो तुच्छ वस्तु है; उसे छोड़ते हुए तुझे डर क्यों लगता है?'

यह शरीर, वाणी, इन्द्रियाँ आदि, अरे! राग भी, जो छूट जाता है वे तो साधारण वस्तुएँ हैं; वे आत्मामें नहीं हैं और आत्माकी नहीं हैं तथा आत्मा उनमें नहीं है और उनका नहीं है। इसलिये कहते हैं कि जो छूट जाती हैं वे सब तुच्छ वस्तुएँ हैं। अहा! स्त्री, परिवार, मकान, शरीर और वाणी—सब छूट जाते हैं; मृत्युकालमें बोली बन्द होजाती है; सुनते हैं परन्तु बोल नहीं पाते। इसप्रकार वह सब नाशवान होनेसे छूट जाता है; परन्तु भीतर आत्मामें ज्ञान एवं आनन्दादि निजस्वभाव है वह क्या छूट सकता है? वाणी बन्द हो जाती है, शरीरकी सुन्दरता स्मशानकी राख बन जाती है; वे कहाँ आत्माके थे? वे सब तो तुच्छ हैं। प्रातःकाल स्नान करके, तिलक लगाकर, दर्पणमें देखता है कि मैं कैसा लगता हूँ! क्या लगेगा? वह सब तो नाशवान है प्रभु! वह तो छूटने योग्य तुच्छ वस्तु है; तेरी वस्तु जो अंतरमें ज्ञायक आत्मा है वह तुच्छ नहीं है भाई! अहाहा! भाषा बड़ी संक्षिप्त, परन्तु भाव बहुत गहरे हैं।

अंतरके ज्ञायकस्वभावको तो कोई ले जा नहीं सकता। जो छूट जाता है वह सब तुच्छ है; उसे छोड़ते हुए तुझे डर क्यों लगता है? शरीर तो जब और जहाँ छूटना होगा वहाँ छूट जायगा; उसका डर कैसा? तू डरता क्यों है कि—अरेरे! 'मैं' मर जाऊँगा? 'तू' मर जायगा या शरीर मर जायगा? तू तो अनादि-अनंत त्रैकालिक वस्तु है; वस्तुका जन्म-मरण कैसा? आत्मवस्तु तो अजन्मा है। जन्म-जयन्ती मनायी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जाती है वह किसके जन्मकी? शरीरका जन्म हुआ वह तो जड़–मिट्टीका जन्म है। लोगोंको प्रेम होता है इसलिये मनाते हैं; परन्तु यह तो जयन्ती मनाये जानेसे प्रसन्न हो जाता है! जहाँ अपनी जन्म-जयन्ती नहीं मनायी जाती वहाँ नहीं रहना, और जहाँ मनायी जाय वहाँ जाना—इसका क्या अर्थ हुआ? अरे, जन्म-जयन्तीका उत्सव वह तो तुच्छ वस्तु है, उसमें संतोष कैसा?

रात्रिको सोते समय लड़की जरा देरसे आये तो चिन्ता करता है कि—कहाँ गई होगी? कहाँ गुम हो गई? व उसकी खोज करता है; परन्तु यह तेरा भीतरका भगवान अनादिसे खो गया है उसकी खोज कर ना! भगवान आत्मा अंतरमें जागृत-ज्योति है, वह प्रगट होनेपर भीतर विकास हो जाता है। जिसप्रकार गुलाबकी हज़ारों पंखुरियाँ खिल उठती हैं, उसीप्रकार यह भगवान आत्मा केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि अनंतचतुष्टयस्वरूपसे विकसित हो जाता है—खिल उठता है। जिसका आश्रय लेनेसे विकासका भण्डार खुल जाता है ऐसे इस आश्चर्यकारी चिन्तामणि प्रभुके समक्ष बाह्य चिन्तामणि रत्न या कामधेनु आदि धूलके समान हैं, तुच्छ हैं। लोग कहते हैं कि–स्त्री, पुत्र, लक्ष्मी आदि परवस्तुओंको छोड़ो; परन्तु स्त्री-पुत्र आदि परवस्तुएँ तो पृथक् ही हैं, उनकी बात यहाँ है ही नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि—शरीर, वाणी, इन्द्रियाँ जो बिलकुल निकट हैं वे, छूटनेका समय आनेपर छूट ही जाते हैं; तुझे क्यों उन्हें छोड़नेमें डर लगता है?

कुछ लोग इसका ऐसा अर्थ करते हैं कि—साधु हो जाओ, परवस्तुको छोड़ो, स्त्रीको छोड़नेमें डर क्यों लगता है? क्या छोड़े? परको छोड़नेसे क्या सम्यक्त्व या साधुपना आ जाता है? परको छोड़े तब भी उसमें साधुपना कहाँ है? स्त्री, पुत्रादि बाह्य वस्तुएँ तो पृथक् ही पड़ी हैं, परन्तु निकटमें स्थित यह शरीर और वाणी छूटते हैं तब जो डर लगता है उसे छोड़। मैं तो चैतन्यशरीरी भगवान आत्मा हूँ; जड़ शरीर तीनकालमें मेरा नहीं है। वह तुच्छ वस्तु छूट जाने योग्य है, उसमें तुझे डर कैसा? आत्मा निर्भय एवं निःशंक है। 'शरीर चला जाय, मान-प्रतिष्ठा चले जायँ, सारी दुनिया विरोधी हो जाय, तथापि मैं तो शुद्ध ज्ञानानन्दमय शाश्वत वस्तु हूँ; मुझमें हस्तक्षेप कर सके, विघ्न डाल सके ऐसी कोई वस्तु जगतमें है ही नहीं।'—ऐसी निःशंकता एवं निर्भयता धर्मी जीवको शुद्धात्मानुभूति होनेके कारण वर्तती है। यहाँ कहते हैं कि—शरीर, इन्द्रियाँ आदि छूट जाने योग्य तुच्छ वस्तु हैं, उन्हें छोड़ते हुए तुझे डर क्यों लगता है?

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत-१०३

यदि वर्तमानमें ही चैतन्यमें सम्पूर्णरूपसे स्थिर हुआ जा सकता हो तो दूसरा कुछ नहीं चाहिये, ऐसी भावना सम्यग्दृष्टिके होती है॥१०३॥

क्या कहते हैं? कि—जिन्हें शुद्ध-आत्माका अनुभव हुआ है, अतीन्द्रिय आनन्दका वेदन प्रगट हुआ है और सुखका स्वाद आया है—ऐसे सत्यदृष्टिवन्त स्वानुभवी सम्यक्त्वीको ऐसी भावना होती है कि—'वर्तमानमें सम्पूर्णरूपसे चैतन्यमें स्थिर हुआ जा सकता हो तो हो जायँ, दूसरा कुछ नहीं चाहिये।'

यदि इसी क्षण पूर्ण स्थिर हुआ जा सकता हो तो धर्मीको अन्य किसी वस्तुकी इच्छा–चाह नहीं है। कुछ समय और रहूँ तो लोगोंको उपदेश मिले और लाभान्वित हों–ऐसी भावना सम्यग्दृष्टिके अंतरमें नहीं होती। अहा! बड़ी सूक्ष्म बात है! कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं ना! कि दूसरोंकी भलाईके लिये एकाध भव करना पड़े तो भले करना पड़े!—इसप्रकार दूसरोंकी भलाईके लिये भवकी भावनावाला जीव अनंतभवका अभिलाषी है। भव परवस्तु है, वह मुझे हो यह भावना ही मिथ्यादृष्टिकी है। तीर्थंकर नामकर्म बाँधते हैं वहाँ, मुझे जो ज्ञायकवस्तु प्राप्त हुई है उसे लोग भी समझें—ऐसी भावना और विकल्प आते हैं, परन्तु परको समझानेके लिये 'मैं भव करूँ' ऐसी भावना ज्ञानीको नहीं होती। भव मिले—ऐसी भावना ही कलंक है।

पाण्डव शत्रुंजय पर्वतपर ध्यानमग्न खड़े थे। दुर्योधनके भानजेने धधकते हुए लोहेके गहने पहिनाये। तीन पाण्डव तो ध्यानमें केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष चले गये। दो छोटे भाइयोंको ऐसा विकल्प आ गया कि—'अरे, बड़े मुनि भ्राताओंकी क्या स्थिति होगी?' और उस शुभ विकल्पके कारण वे मोक्ष प्राप्त न करके सर्वार्थसिद्धिमें देव हुए। वहाँसे निकलकर, मनुष्यभव प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त करेंगे; इस प्रकार उनके दो भव बढ़ गये। वहाँ भी भवकी भावना तो थी नहीं, और 'ऐसा विकल्प आना चाहिये' ऐसा अभिप्राय भी बिलकुल नहीं था। सम्यग्दृष्टिको तो आज ही मैं पूर्ण हो जाऊँ, सम्पूर्णरूपसे अंतरमें समा जाऊँ, तो अन्य कुछ नहीं चाहिये—ऐसी ही भावना होती है।

प्रश्न :—पंच महाव्रत पालनेकी भावना तो होती है ना?

उत्तर :—कौन पाले? पालनेका विकल्प तो राग है। आता अवश्य है; परन्तु रागकी भावना होती है? अहाहा! मैं तो अपनी विकल्परहित ज्ञायकवस्तुमें आज ही, इसी समय समा जाऊँ तो मुझे और कुछ नहीं चाहिये—मेरी कोई आकांक्षा नहीं है। वर्तमानमें सम्पूर्णरूपसे निज चैतन्यतत्त्वमें स्थिर हुआ जा सकता हो तो दूसरा कुछ नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चाहिये। अहा! देखो यह सम्यग्दृष्टिकी भावना!

दुनियाका कल्याण होता हो तो उसके लिये एकाध भव भले ही बढ़ जाय—ऐसी भवकी भावनाकी दृष्टि ही मिथ्यात्व है। क्या तेरे भवसे दूसरोंको लाभ होगा? तेरे कारण किसीको लाभ हो सकता है? उसका लाभ तो उसके अपने कारण होता है। अहाहा! मार्ग कोई और है भाई! शुद्ध एक निज ज्ञायकभावमें सम्पूर्णरूपसे जो इसी समय लीनता होती हो तो उसके सिवा मुझे कुछ नहीं चाहिये—ऐसी भावना सम्यग्दृष्टिको होती है। मिथ्यादृष्टिको आत्माकी प्रतीति नहीं होनेसे, ऐसी भावना नहीं होती। उसे तो, भव करूँ, लोगोंको लाभ होता हो तो भले ही मेरा एक भव बढ़ जाय, पुस्तक लिखना प्रारम्भ किया है वह पूरी हो तब तक रहूँ तो अच्छा—ऐसी भावना होती है। भवमें रहनेकी तथा भव बढ़नेकी भावना ही आत्माको कलंक है, दुःखरूप है भाई! अद्‌भुत बात है!

प्रश्न :—माता–पिताकी सेवा करनेकी भावना तो होती है ना?

उत्तर :—सेवा–बेवा कौन कर सकता है भाई! जीवको राग है इसलिये वैसा भाव आता है, परन्तु जहाँ अपने शरीरको भी नहीं रख सकता वहाँ सेवाकी भावना द्वारा दूसरोंका क्या कर सकेगा? प्रिय पत्नी—जिसे लोग अर्धांगिनी कहते हैं वह—पच्चीस वर्षकी छोटी उम्रमें मर जाती है; तो क्या उसे मरने देनेके भाव हैं? क्या उसे सेवा करके रख सकता है? मृत्युका क्षण आनेपर जीव एकदम उड़ जाता है। अहाहा! संसारमें वैराग्यकी कितनी घटनाएँ होती हैं? एक महीने पहले विवाह हुआ हो और गैसकी या स्टोवकी लौ लग जानेसे अकस्मात ही जीवन समाप्त हो जाता है, अल्पायुमें ही हृदयगति रुक जाती है, वहाँ कौन सेवा करके रख सकता है?

प्रश्न :—इतिहासमें आता है ना, कि—मुगल बादशाह बाबरने अपने पुत्र हुमायूँको अपनी उम्र दे दी थी?

उत्तर :—कौन किसे आयु दे सकता है?—कदापि नहीं दे सकता। दे सकता है वह मान्यता ही भ्रम है। देह तो अपनी स्थिति पूरी होनेपर छूट ही जायगी, तीनकालमें उसे कोई रख नहीं सकता। सम्यग्दृष्टिको तो ऐसी भावना होती है कि—यदि इसी क्षण अंतर्‌स्वभावमें पूर्ण स्थिर हुआ जाता हो तो मुझे कुछ नहीं चाहिये। उसे ऐसी भावना नहीं होती कि—अपना प्रारम्भ किया हुआ कार्य पूरा करके मरूँ तो अच्छा।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-३६

ता. १३-७-७८

वचनामृत-१०४

'मैं शुद्ध हूँ' ऐसा स्वीकार करनेसे पर्यायकी रचना शुद्ध ही होती है। जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि॥१०४॥

''मैं शुद्ध हूँ' ऐसा स्वीकार करनेसे पर्यायकी रचना शुद्ध ही होती है।'

सूक्ष्म बात है भाई! जो वस्तु है वह तो त्रिकाल शुद्ध है। 'मैं शुद्ध हूँ' ऐसी दृष्टि करनेसे पर्यायकी रचना शुद्ध ही होती है। मैं निमित्तवाला तथा रागवाला हूँ ऐसा नहीं, परन्तु दृष्टिका विषय जो त्रैकालिक शुद्ध द्रव्य—ज्ञायक ध्रुव आत्मा सो मैं हूँ ऐसी अंतरद्रृष्टि हुई उसी समय शुद्धपर्याय प्रगट होती है। कोई ऐसा माने कि ब्रह्मचर्य पालनेसे, महाव्रत आचरनेसे मेरी शुद्धपर्याय प्रगट होगी, तो वह मिथ्यात्व है।

अहा! यह मुख्य मुद्देकी बात चलती है। निमित्तका, रागका—दया-दानादिके विकल्पका तथा एकसमयकी पर्यायका भी लक्ष छोड़कर मैं तो त्रिकाल रहनेवाली—त्रिकाल कहनेमें भी कालकी अपेक्षा आ जाती है—ध्रुव शुद्धवस्तु हूँ; वर्तमानमें भी मैं परिपूर्ण शुद्ध ध्रुवतत्त्व हूँ—ऐसी दृष्टि जब हो तब पर्यायकी रचना भी शुद्ध ही होती है; शुद्धताकी दृष्टि होनेपर धर्मकी—सम्यग्दर्शन-ज्ञान स्थिरतारूप शुद्धपर्यायकी—रचना होती है। बात सूक्ष्म है। आजकल तो बड़ी गड़बड़ चल रही है—'आत्माको जाने बिना ले लो व्रत और ले लो प्रतिमा; परन्तु सम्यग्दर्शन क्या वस्तु है और उसका विषय क्या है उसकी तो खबर नहीं है। प्रत्येक समयमें—सेकंडके असंख्यवें भागमें—वस्तु तो त्रैकालिक, एकरूप, शुद्ध, चिदानन्द, आनन्दकन्द, अतीन्द्रिय आनन्दका पिण्ड है। ऐसे शुद्ध ज्ञायक प्रभुका आदर करनेसे, शुद्धतत्त्वके सन्मुख होकर शुद्धका आश्रय लेनेसे, दशामें शुद्धताकी रचना होती है। सर्वप्रथम कर्त्तव्य हो तो यह है; अन्य सब थोथा-निःसार है। अरे! व्रत, तप, भक्ति और पूजा—यह सब विकल्प, राग तथा संसार है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अशुभको हटानेकी भी बात नहीं ली है; यहाँ तो 'मैं परिपूर्ण शुद्ध हूँ' ऐसी दृष्टि हुई वहाँ शुद्धपर्याय प्रगट होती है, अशुद्ध ऐसी मिथ्यात्वकी पर्याय उत्पन्न नहीं होती। मैं त्रैकालिक पवित्रताका पिण्ड प्रभु हूँ, अरे! मैं परमात्मा ही हूँ—परम आत्मा अर्थात् परम स्वरूप—इसप्रकार शुद्धका स्वीकार करनेसे पर्यायकी रचना शुद्ध ही होती है; क्योंकि अपनेमें वीर्य नामका गुण विद्यमान है और सम्पूर्ण त्रैकालिक द्रव्यस्वभावका स्वीकार होनेसे परिपूर्ण वीर्यस्वभावकी स्वीकृति भी आगयी तथा वीर्यगुणकी भी शुद्धपर्याय होने लगी। वीर्यगुणका कार्य क्या? वीर्यगुणका कार्य स्वरूपकी रचना करनेका है। यहाँ भी 'रचना' शब्द आया है ना? 'मैं परिपूर्ण शुद्ध परमात्मा हूँ' ऐसा स्वीकार करनेसे वीर्यगुण द्वारा स्वरूपकी रचना, पर्यायकी रचना शुद्ध ही होती है; क्योंकि परिपूर्ण द्रव्यका स्वीकार करनेसे, उसमें वीर्यगुणकी स्वीकृति भी साथ आगयी और वीर्यगुणके स्वाभाविक परिणमन द्वारा शुद्ध पर्यायकी रचनारूप स्वाभाविक कार्य होने लगा। दया, दान और विकल्पकी रचना करे वह उसका स्वभाव नहीं है, वह तो नपुंसकता है। जिसप्रकार नपुंसकको पुत्र नहीं होता, उसीप्रकार शुभभावसे धर्मकी प्रजा नहीं होती। समयसार शास्त्रके अजीव तथा पुण्य-पाप अधिकारमें कहा है कि जो जीव शुद्धकी दृष्टि नहीं करते और रुचिमें शुभसे नहीं छूटते वे क्लीव–नपुंसक हैं। शुभभावके प्रेमकी रचना तो नपुंसकता है, उसे छोड़कर शुद्धस्वभावकी रचना वह पुरुषार्थका कार्य है। अहा! ऐसी बात सुनना कठिन लगती है! दृष्टिमें शुद्ध स्वरूपका स्वीकार करनेसे पर्यायमें धर्मकी रचना होती है। इसके बिना लाखों–करोड़ों क्रियाकाण्ड करे, व्रत, तप, भक्ति और ब्रह्मचर्य पाले, वह सब राग है; वह कोई आत्माकी धार्मिक क्रिया नहीं है। आया कुछ समझमें?

'जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि।'

यह तो सिद्धात कहा है। यदि दृष्टि राग और पर्यायके ऊपर है तो सृष्टि–उत्पत्ति विकारकी होती है। और यदि दृष्टि स्वभावके ऊपर है तो सृष्टि–उत्पत्ति निर्मल पर्यायकी होती है। भाषा सादी है, परन्तु भाव तो जो परमात्माके होंगे वही होंगे ना? यदि दृष्टि त्रैकालिक शुद्धका स्वीकार करे तो सृष्टि यानी उत्पत्ति निर्मल पर्यायकी होती है। दृष्टिमें शुद्धका स्वीकार हुआ वहाँ सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप धार्मिक पर्यायकी उत्पत्ति होती है। जीवकी दृष्टि अनादिसे राग और पर्यायमें है वह मिथ्यात्व है, उससे अशुद्धता उत्पन्न होती है। विपरीत दृष्टिसे पर्यायमें मलिनता और यथार्थ दृष्टिसे निर्मलता होती है।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत-१०५

आत्माने तो परमार्थसे त्रिकाल एक ज्ञायकपनेका ही वेश धारण किया हुआ है। ज्ञायकतत्त्वको परमार्थसे कोई पर्यायवेश नहीं है, कोई पर्याय-अपेक्षा नहीं है। आत्मा 'मुनि है' या 'केवलज्ञानी है' या 'सिद्ध है' ऐसी एक भी पर्याय-अपेक्षा वास्तवमें ज्ञायक पदार्थको नहीं है। ज्ञायक तो ज्ञायक ही है।। १०५ ।।

'आत्माने तो परमार्थसे त्रिकाल एक ज्ञायकपनेका ही वेश धारण किया है।'

बात जरा सूक्ष्म है। आत्मवस्तु द्रव्य है, ज्ञायकभाव....ज्ञायकभाव.....बस, त्रिकाल एक ज्ञायकभाव है; उस ज्ञायकभावने तो एक ज्ञायकपनेका ही वेश धारण किया है। समयसारमें आता है कि संवर, निर्जरा, मोक्ष–यह सब पर्यायवेश हैं, त्रैकालिक ज्ञायकद्रव्यके वह वेश नहीं हैं। ज्ञायक तो उस पर्यायवेशका भी ज्ञाता ही है। आत्मद्रव्यका भेष–स्वरूप तो त्रैकालिक ज्ञायकरूप है। क्या कहते हैं? कि—आत्माने तो परमार्थतः त्रिकाल एक ज्ञायकपनेका ही वेश धारण किया हुआ है। अहा! वस्तुके मूलस्वरूपकी तो खबर नहीं है और ऊपरसे सब डालियाँ–पत्ते तोड़ने लगे; परन्तु मूल–जड़ तो हरीभरी है! सम्यग्दर्शनके बिना व्रत, तपादि करने लगे, परन्तु वह सब शून्य है, मिथ्यात्वकी जड़ हरीभरी रखकर डालियाँ–पत्ते तोड़नेके समान है। समझमें आया कुछ? भगवान आत्मा तो त्रिकाल, नित्यस्थायी एक ज्ञायकभाव ही है; उसने एक ज्ञायकपनेका ही वेश धारण किया हुआ है।

'ज्ञायकतत्त्वको परमार्थसे कोई पर्यायवेश नहीं है, कोई पर्याय-अपेक्षा नहीं है।'

भगवान ज्ञायक आत्मा सर्वोत्कृष्ट अतीन्द्रिय आनन्दका ध्रुवधाम है। नित्यस्थायी उस ज्ञायक तत्त्वको, ध्रुव ज्ञायकस्वभावको परमार्थतः संवर, निर्जरा या मोक्षादि कोई पर्यायवेश नहीं है। संवर, निर्जरा, केवलज्ञान और मोक्ष आदि व्यवहारवेश हैं। ज्ञायकभावस्वरूप मूलवस्तु तो अनादि–अनंत ध्रुव एकरूप 'अस्ति'वान उपस्थित वस्तु है। उसका वेश—स्वरूप तो एक ज्ञायकत्व ही है, उसे परमार्थतः एक ज्ञायकत्वका ही वेश है, इसप्रकार पहले समुच्चयसे अस्तिकी बात कही। अब नास्तिसे स्पष्टीकरण करते हैं कि उसे संवर, निर्जरा, मोक्षस्वरूप पर्यायोंका वेश नहीं है, क्योंकि त्रैकालिक ध्रौव्यमें पर्यायभेद है ही नहीं।

अहा! व्यापार–धन्धेके पापमें पड़कर यह तत्त्वकी बात सुनी ही कहाँ है? सूझी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ही कहाँ है? चौवीसों घन्टे पैसा कमानेकी मजदूरी करता है। अरे! धर्मके बहाने व्रत, तप आदि करे वह भी ज्ञायकतत्त्वकी प्रतीति बिना मजदूरी ही है। समयसारके निर्जरा अधिकारमें आया है ना, कि—कोई जीव जिनाज्ञामें कहे हुए महाव्रत और तपके भारसे दीर्घ काल तक भग्न होते हुए—टूट मरते हुए—क्लेश प्राप्त करते हैं तो करो; परन्तु जो साक्षात् मोक्षस्वरूप है, निरामय (–रोगादि समस्त क्लेश रहित) पद है और स्वयं संवेद्यमान है ऐसा यह ज्ञान तो ज्ञानगुण बिना किसी भी प्रकार वे प्राप्त कर ही नहीं सकते। यहाँ तो कहते हैं कि—क्लेशके अभावस्वरूप जो संवर, निर्जरा और मोक्ष, वह वेश भी ज्ञायकको नहीं है—सम्यग्दर्शनके विषयभूत ध्रुव ज्ञायकद्रव्यमें नहीं है।

अहाहा! यह पुस्तक! अरे, कोई वेदान्ती पढ़े तो उसे भी एकबार ऐसा लग जाये कि यह तो कोई वस्तु है!

अहाहा! जानना, जानना, मात्र जानना—ऐसा ज्ञानरसं जिसका ध्रुव स्वभाव है वह त्रैकालिक एकरूप निज भगवान आत्मा ज्ञायकवस्तु है उसे व्यवहारसे संवर, निर्जरा और मोक्ष आदि वेश भले हों, निश्चयसे तो वह वेश उसको नहीं है। अरे! ज्ञायकत्त्वकी ऐसी बात सुननेको भी नहीं मिले, वह विचार कब करेगा? और समझेगा कब? यह दुर्लभ मनुष्य-अवतार चला जा रहा है; इस समय यह नहीं समझा तो फिर कब समझेगा?

भगवान ज्ञायक आत्मा तत्त्व है ना? वह ध्रुवतत्त्व है, पलटनेवाली पर्यायसे—पर्यायकी हलचलसे—भिन्न है। ऐसे ज्ञायकस्वभावको वास्तवमें कोई पर्यायवेश नहीं है, कोई पर्याय-अपेक्षा नहीं है; संवर, निर्जरा और मोक्षपर्यायकी भी अपेक्षा नहीं है; क्योंकि त्रैकालिक ध्रुव द्रव्यस्वभावमें तो कोई पर्यायभेद है ही नहीं। अहाहा! ऐसी बात है भाई! बड़ी कठिन है! अभ्यास होना चाहिये। यह तो मूल वस्तु है; यहाँसे प्रारम्भ करना है। मूल ज्ञायकवस्तुरहित अन्य किसीप्रकारसे प्रारम्भ करेगा तो अभिमान होगा कि—'हमने यह त्याग किया है', 'हम बालब्रह्मचारी हैं', 'हमने प्रतिमा धारण की'—यह सब मिथ्यात्वका अभिमान है।

अहा! यह पुस्तक! पढ़ी है ना?....पूरी पढ़ी या नहीं? अहाहा! पुस्तक तो पुस्तक! प्रकाशित हुई है ना! अहा! लोग तो ज्यों-ज्यों समय बीतेगा त्यों-त्यों इसे पढ़ेंगे, विचारेंगे तब....भाई! यह तो मूल वस्तु है।

जिसे कोई भी पर्यायवेश नहीं है, ऐसी जो त्रैकालिक ज्ञायक वस्तु वह सम्यग्दर्शनका विषय है। चतुर्थ गुणस्थानमें प्रारम्भमें भी सम्यग्दर्शनका विषय जो ज्ञायकतत्त्व है उसमें पर्यायकी अपेक्षा नहीं है और पर्यायका वेश नहीं है। अहा! भाषा तो सादी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। भगवंत! तेरा स्वरूप तो ऐसी वस्तु है! जिसमें अनेकता और भेद नहीं हैं ऐसा जो एकरूप त्रैकालिक स्वरूप वह सम्यग्दर्शनका विषय है। उसके बिना सब थोथा–निःसार है।

ज्ञायकस्वभावी आत्माकी महिमा अनंतानंत है। प्रथम, क्षेत्र और कालकी अनंतताका ख्याल करो। क्षेत्रका अंत कहाँ है? लोकके क्षेत्रके पश्चात् अलोक। आगे दूर...दूर...दूर—इस प्रकारख्यालमें लेते जाओ, फिर आगे अलोक....अलोक....अलोक....अंत कहाँ है? है कहीं अंत? इसीप्रकार अनादि कालके सम्बंधमें विचार करो—पहले....पहले....पहले....इसप्रकार ख्यालको बढ़ाते जानेपर कालका सबसे पहला समय कौनसा? है कभी कालका आदि? इसीप्रकार भविष्यकालका ख्याल करो—फिर... फिर...फिर....ऐसा करते-करते कालका अन्त कब? अन्तिम समय कौनसा? है कभी कालका अन्त? इसप्रकार जैसे क्षेत्र-कालकी अनन्तता है, उसीप्रकार ज्ञानगुण भी भावसे अनंत–अपार–अगाध–असीम गम्भीर है। ज्ञानगुणकी भाँति सर्व गुणोंकी गंभीरता अनंत है। जो संख्यासे अनंत हैं ऐसे ज्ञानादि अनंत गुणमय अखण्ड एकतत्त्व तो उससे भी महागंभीर है। इसप्रकार ज्ञायकस्वभावी भगवान आत्माकी महिमा अनंतानंत है। उस अगाध महिमावंत ज्ञायकद्रव्यको कोई पर्यायवेश नहीं है, किसी पर्यायकी अपेक्षा नहीं है।

प्रश्न :—आनन्द आया तो आत्माका अनुभव हुआ; उसमें पर्याय-अपेक्षा आयी या नहीं?

उत्तर :—अनुभव आनन्दसहित ही होता है। परन्तु उसमें ध्रुव ज्ञायकतत्त्वको आनन्दपर्यायकी अपेक्षा कहाँ आयी? ज्ञायकको तो आनन्दपर्यायरूप वेश है नहीं, उसकी अपेक्षा है ही नहीं। अहा! ऐसा निरपेक्ष तत्त्व वीतराग जैन परमेश्वरके सिवा अन्यत्र कहाँ है?

प्रश्न :—पर्यायवेश त्रैकालिक ज्ञायक आत्माको नहीं है—इस बातका कोई आधार है? या मात्र बहिनश्रीने ही यहाँ कही है?

उत्तर :—समयसारका नाटकरूपमें वर्णन करते हुए प्रत्येक अधिकारके अंतमें कहा है ना, कि–'यह संवरका वेश पूरा हुआ', 'यह मोक्षका वेश पूरा हुआ'। जहाँ जीवने जान लिया कि यह ध्रुव है और यह तो पर्यायवेश है, वहाँ वह जानते ही संवर, निर्जरा और मोक्ष आदि वेश–स्वांग निकल जाते हैं, और दृष्टिमें परमार्थतः समस्त पर्यायवेशसे रहित ज्ञायक आत्मा रह जाता है। इसप्रकार समयसारमें भी यही कहा है। अहा! ऐसा है निरपेक्ष ज्ञायकतत्त्व!

लोग तो रागकी क्रियासे निश्चय होता है—धर्म होता है—ऐसा मानते हैं। अरे,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रभु! बहुत आगे बढ़ गया। यहाँ तो कहते हैं कि संवर–निर्जराका वेश भी चैतन्य ध्रुव ज्ञायकवस्तुमें कहाँ है?

प्रश्न :—आप कहते हैं ना, कि कुएँमें हो वह हौदमें आता है?

उत्तर :—वह किस अपेक्षासे? वह तो द्रव्य, गुण और पर्याय कोई भिन्न वस्तुएँ नहीं हैं—इस अपेक्षासे कहा जाता है; व्यवहारनयसे, पर्यायनयसे, भेदनयसे कहा जाता है। परमार्थ अभेदनयसे तो जो ध्रुव ज्ञायक तत्त्व है वह मोक्ष तथा मोक्षके कारणरूप पर्यायकी रचना करनेवाला नहीं है।

गजरथ चलांते हैं, मन्दिरोंका निर्माण कराते हैं—वह सब बाह्य वस्तुकी रचना तो आत्मा तीनकालमें नहीं करता, परन्तु जो त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक आत्मा है वह संवर, निर्जरा तथा मोक्षपर्यायकी भी रचना नहीं करता। भाई! तू प्रभु है तो कोई तत्त्व है या नहीं? तेरा तत्त्व अस्ति 'है' ना? 'है' तो वह परिपूर्ण वस्तु है या नहीं? 'है' वह स्वभावसे अपूर्ण कैसे होगा? पूर्णता या अपूर्णता ऐसे भेद तो पर्यायमें आते हैं; वस्तु तो परिपूर्ण एकरूप त्रिकाल ज्ञायकभाव है। वह वस्तु सम्यग्दर्शनका विषय है, परन्तु वह सम्यग्दर्शन पर्याय ध्रुव ज्ञायकमें नहीं है। त्रैकालिक ज्ञायकको सम्यग्दर्शनरूप पर्यायकी अपेक्षा नहीं है। मलिन पर्याय है तो मैं हूँ—ऐसी अपेक्षा तो है ही नहीं, परन्तु निर्मल पर्याय हो तो 'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसा भी नहीं है। पर्याय तो वर्तमान प्रगट दशारूप अंश है; और वस्तु प्रगट अंशरहित त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक है।

अहा! यह भगवानका कहा हुआ भेदज्ञान है; उसे कोई समझा नहीं है और बाहरी माथाकूट करके मर गया भाई! अंतरमें जागृतज्योति—ज्ञायक भगवान—विराजती है वह कभी निस्तेज नहीं होती; न्यूनाधिकता तो पर्यायमें है, ध्रुववस्तुमें न्यूनता–अधिकता है ही नहीं। ज्ञायकतत्त्वको परमार्थः कोई पर्यायवेश अथवा पर्याय-अपेक्षा नहीं है। यह दो बातें हुईं। यह तो सिद्धान्त है, तत्त्व मात्र है। आया समझमें?

'आत्मा 'मुनि है' या 'केवलज्ञानी है' या 'सिद्ध है' ऐसी एक भी पर्याय-अपेक्षा वास्तवमें ज्ञायकपदार्थको नहीं है।'

अहा, मुनिकी दशा! तीन कषायके अभावस्वरूप वीतरागी पर्याय और अंतरमें अतीन्द्रिय आनंदका प्रचुर स्वसंवेदन—ऐसी मुनिपनेकी पर्याय भी ध्रुव द्रव्यस्वभावमें नहीं है। अभी तो, शरीर आत्मामें नहीं है, शरीर शरीरमें है और मैं उससे बिलकुल भिन्न हूँ—यह बात भी नहीं बैठती, वहाँ निर्मल पर्याय भी ध्रुव द्रव्यस्वभावमें नहीं है और ध्रुव द्रव्यस्वभाव पर्यायमें नहीं आ जाता–यह तो बहुत सूक्ष्म लगेगा। परन्तु अब तो लोग यह बात सुनने लगे हैं। अहाहा! त्रिकाल एकरूप ध्रुव ज्ञायकमें मुनिका वेश भी नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

है। बाह्यमें नग्नता और अंतरमें पंचमहाव्रत, समिति आदिके शुभ विकल्प—वह कोई मुनिपनेका परमार्थ वेश नहीं है; परन्तु भीतर आत्माकी प्रतीति सहित तीन कषायका अभाव हुआ और आनन्दके प्रचुर संवेदनरूप दशा प्रगट हुई—ऐसा मोक्षका मार्ग मुनिको 'जो प्रगट हुआ वह भी ध्रुव ज्ञायकमें नहीं है।

प्रश्न :—व्यवहारसे निश्चय होता है ना? नहीं तो एकान्त निश्चयाभास हो जायगा?

उत्तर :—प्रभु! सुन तो सही! अपनी प्रभुता तो देख! व्यवहारके शुभरागकी पर्याय तो कहीं रह गई, परन्तु वीतराग निर्मलदशारूप मुनिपर्यायका भी जिसमें अभाव है ऐसी तेरी ध्रुव ज्ञायकप्रभुता है। निर्मल पर्याय भी व्यवहारनयका विषय है और समस्त पर्यायसे रहित ऐसा ध्रुव ज्ञायक द्रव्य वह निश्चयनयका विषय है। अहा! आत्मा मुनि है अथवा केवलज्ञानी है–ऐसा पर्यायका वेश भी ध्रुव ज्ञायकमें नहीं है। केवलज्ञान भी पूर्ण निर्मल पर्याय है। वह पर्याय ध्रुवद्रव्यका वेश नहीं है। अद्भुत बात है नाथ! यह जैनदर्शन—वस्तुदर्शन है।

प्रश्न :—केवलज्ञान वह पर्याय, परन्तु केवलज्ञानी तो आत्मा है ना?

उत्तर :—नहीं; ज्ञानकी पूर्ण पर्यायवाला भी आत्मा नहीं है। आत्मा तो ध्रुव गुणस्वरूप सहज ज्ञानकी मूर्ति है। जो केवलज्ञान उत्पन्न होता है वह तो पर्याय है। गुण कभी उत्पन्न नहीं होता, गुण तो त्रिकाल ध्रुव है।

यहाँ प्रयोजन यह है कि—एकरूप ज्ञायककी दृष्टि कराना है, पर्यायदृष्टि भी छुड़ाना है। अहा! यह पुस्तक ऐसी निकली है ना! लोग पढ़ें....पढ़ने तो दो। अरे! ऐसा मनुष्यभव चला जा रहा है। इसमें त्रैकालिक सत्यवस्तुकी दृष्टि नहीं हुई, तो उसे कुछ नहीं हुआ, उसने कुछ नहीं किया। भले ही दूकान छोड़ दे, ब्रह्मचर्यका पालन करे, जीवनपर्यंत व्रतोंका पालन करे, परन्तु सब निरर्थक है; वह तो जगतमें भटकनेके लिये सार्थक है। अहाहा! यह तो वस्तु है ना? तत्त्व है ना? हलचलरहित नित्य ध्रुव वस्तु है ना? अहा! जो सुननेमें भी कठिन लगे उसे समझना है....! यहाँ कहते हैं कि—प्रभु! तू रागका वेश धारण करे तथापि वह वेश तेरी त्रैकालिक ध्रुव वस्तुमें नहीं है। अंतरमें आनन्दस्वरूप जो भगवान ज्ञायक जिसमें यथार्थ मुनिपनेका वेश भी नहीं है, उसपर दृष्टि करके जिसे सम्यग्दर्शन हुआ हो और जिसमें मोक्षमार्गकी दशा प्रगट हुई हो वह ऐसा जानता है कि यह मुनिपनेका वेश भी मेरे ध्रुवस्वभावमें नहीं है। अरे! अभी तो, यह नग्नता वह हमारा वेश है, हम दिगम्बर मुनि बने—ऐसा बाह्य वेशका अभिमान होता है! अरे, भगवान! वह वस्तु तो तेरे आत्माकी पर्यायमें भी नहीं है। उस बाह्य वस्तुका अभिमान करना कि 'हम नग्न दिगम्बर हैं',—वह तो मिथ्यात्वका पोषण है। अजब बात है भाई!

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'ज्ञायक तो ज्ञायक ही है।'

अहा! यहाँ तो अमृतकी वर्षा हुई है! प्रभु, तेरी वस्तु जो अखण्ड आनन्द एवं अखण्ड ज्ञायकता है वह सम्यग्दर्शनका विषय है। सम्यग्दर्शन-पर्याय तथा केवलज्ञान-पर्याय भी सम्यग्दर्शनका विषय नहीं है; क्योंकि वह तो पर्यायका वेश है। आत्मा 'मुनि है' या 'केवलज्ञानी है' अथवा 'सिद्ध है' ऐसी एक भी पर्याय-अपेक्षा वास्तवमें ज्ञायक पदार्थको नहीं है। अरे, सुनकर व्याकुल हो जाय ऐसी बात है ना? भगवान! तेरी वस्तु कैसी है? भाई, तुझे खबर नहीं है। परमाणु जितनी सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तुमें भी ऐसी ध्रुवरूप अनंतशक्ति है कि उस शक्तिमें पर्यायका प्रवेश नहीं है।

पर्याय व्यवहारनयका विषय है; त्रैकालिक द्रव्य निश्चयनयका विषय है। दो नय हैं तो दोनोंके विषय भिन्न हैं; परन्तु वीतरागकी वाणी दोनोंके विरोधका नाश कराती है। अहाहा! ज्ञायक तो ज्ञायक ही है; एक भी पर्यायकी अपेक्षा वास्तवमें ज्ञायकको नहीं है। अरे! सिद्धपर्याय भी ज्ञायकभावमें नहीं है। अहा! सुनकर तिलमिला जाय ऐसी बात है। क्या करे? किसीने कभी सुनी न हो ऐसी बात है।

*

बेन तो अद्‌भुत रत्न पैदा हुई हैं। शक्ति अद्‌भुत है, अतीन्द्रिय आनन्दके वेदनमें उन्हें बाहरकी कुछ पड़ी ही नहीं है। हिन्दुस्तानमें उनके जैसा आत्मा नहीं है। यह पुस्तक प्रकाशित हुई उससे कुछ खबर पड़ती है।

—पूज्य गुरुदेव.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-३७

ता. १४-७-७८

वचनामृत-१०५

यह बेनके वचनामृत हैं। १०५वाँ बोल कल हिन्दीमें चला था; आज वह फिरसे.... गुजरातीमें....

'आत्माने तो परमार्थसे त्रिकाल एक ज्ञायकपनेका ही वेश धारण किया हुआ है।'

आत्मा ध्रुवभाव, सामान्यभाव, त्रिकाल एक ज्ञायकभाव है। उसने त्रिकाल एक ज्ञायकपनेका ही वेश धारण कर रखा है। परमार्थसे संवर, निर्जरा या मोक्षका वेश—पर्यायका वेश—द्रव्यस्वभावमें नहीं है। सम्यग्दर्शनका विषय ऐसा जो त्रैकालिक एक ज्ञायकभाव वही उसका सहज वेश है, वही उसका सहजरूप है, ऐसे ध्रुवस्वभावी निज आत्माकी दृष्टि करना, उसका अनुभव करना, उसे सम्यक्त्व कहते हैं। ज्ञायककी श्रद्धा करनेवाली सम्यक्त्वपर्याय भी श्रद्धावान ज्ञायकवस्तुमें नहीं है। उस सम्यग्दर्शनकी पर्यायमें परिपूर्ण अखण्ड ज्ञायकभावकी श्रद्धा आ जाती है, परन्तु वह ज्ञायकभाव वर्तमान पर्यायमें नहीं आ जाता। वह पर्याय ध्रुव ज्ञायकभावमें नहीं आती। अहा! ऐसी सूक्ष्म बातें हैं भाई!

नग्नता, पंच महाव्रतके परिणाम, मुनिधर्मके बाह्य चिह्न आदि तो आत्मामें हैं ही नहीं, परन्तु मोक्षमार्गकी निर्मल पर्यायका वेश भी ध्रुव ज्ञायकमें नहीं है। प्रवचनसारकी, १७२वीं गाथाकी टीकामें अलिङ्गग्रहणके २० बोलोंमें १७वाँ बोल है कि—लिङ्गोंका अर्थात् धर्मचिह्नोंका ग्रहण जिसके नहीं है वह अलिङ्गग्रहण है; इसप्रकार आत्माको बहिरंग यतिलिङ्गोंका अभाव है।

'ज्ञायकतत्त्वको परमार्थसे कोई पर्यायवेश नहीं है, कोई पर्याय-अपेक्षा नहीं है।'

दो बातें कहीं—(१) परमार्थसे भगवान आत्माको ध्रुव ज्ञायकस्वभावके सिवा अन्य क्षणिक वेश नहीं हैं; (२) उसे किसी पर्यायकी अपेक्षा नहीं है कि—संवर, निर्जरा या मोक्षकी पर्याय हो तो ध्रुव ज्ञायकपना रहे।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहाहा! यह तो बेनके मुँहसे ऐसी वाणी निकल गई है! यह तो उनके अंतरसे—अनुभवमेंसे—आयी है। आनन्दमेंसे निकली हुई भाषा है! किसीने लिख ली; नहीं तो बाहर भी नहीं आती!

सम्यग्दर्शनके विषयरूपी–ध्येयरूपी ज्ञायकको किसी भी पर्यायका वेश नहीं है, तथा किसी भी पर्यायकी अपेक्षा नहीं है। आत्मा मुनि है वह भी वेश है। मुनिका भावलिंग वह भी आत्माके ज्ञायकपनेमें नहीं है। परमात्मप्रकाशके ८८वें दोहेमें कहा है कि—आत्मामें द्रव्यलिंग या भावलिंग—दोनोंमेंसे एक भी नहीं है। जिसे निर्विकल्प समाधि और आनन्द उग्र वर्तते हों उसे भावलिंगी मुनि कहते हैं। बाकी सब द्रव्यलिंगी हैं। द्रव्यलिंगी उसे कहा जाता है कि जो अपने लिये बनाया हुआ आहार भी न ले, २८ मूलगुण शुद्ध हों, नग्नदशा स्पष्ट हो, अंतरमें रागकी एकताका मिथ्यात्वभाव भले हो, परन्तु बाह्यमें वस्त्रका टुकड़ा भी न हो, सदोष आहार ग्रहण न करे। —ऐसा जो द्रव्यलिंग, वह ध्रुव ज्ञायकभावमें नहीं है। तदुपरान्त निर्विकल्प ज्ञान, आनन्द, शान्ति, रागरहित स्वरूपस्थिरता—ऐसा निर्विकल्प वीतराग समाधिरूप भावलिंग भी ज्ञायक ध्रुवतत्त्वमें नहीं है; क्योंकि वह पर्याय है।

बेन तो रात्रिचर्चामें बोल गईं और ब्रह्मचारी लड़कियोंने लिख लिया; नहीं तो यह बाहर भी कहाँसे आता? बेन तो संसारसे मानों मर गई हैं! आत्मानन्दके समक्ष बाहरकी उन्हें कुछ पड़ी ही नहीं है। अहाहा!....उनका जन्मदिवस आ रहा है ना! भाद्रपद कृष्णा दूजको जन्मदिन आयगा। उनका हीरोंसे सन्मान करेंगे, खड़ी रहेंगी....! खड़े रहनेकी भी अभी तो शरीरमें शक्ति नहीं है। मैंने तो कहा था कि—वहाँ कुर्सी लाकर बिठाना....शरीर बिलकुल दुर्बल हो गया है... आहार भी अति अल्प...उन्हें तो मात्र आत्मा....आत्मा....और आत्मा, और कुछ नहीं....

प्रभु! तू एक समयमें अनंत-अनंत गुणकी लक्ष्मीसे भरपूर ज्ञायक है, द्रव्य है, अनन्त सम्पदाका नाथ है; सम्यग्दर्शनके विषयस्वरूप ऐसे तेरे ध्रुव ज्ञायकस्वभावमें भावलिंगका भी अभाव है। पूर्णानन्दके नाथ ऐसे ज्ञायकद्रव्यकी प्रतीति, अनुभवमें पूर्णानन्दके नाथका ज्ञान और उसमें स्थिरता—ऐसी तीन दशाएँ भी ज्ञायकमें नहीं है। ध्रुव ज्ञायकभावको किसी भी पर्यायकी अपेक्षा नहीं है। परमार्थसे तो ज्ञायकमें किसी भी पर्यायका वेश नहीं है।

जीवको भावलिंग सद्भूतव्यवहारनयसे (पर्यायकी अपेक्षासे) है। परम सूक्ष्म शुद्ध निश्चयनयसे तो भावलिंग भी जीवमें नहीं है; क्योंकि भावलिंग तो पर्याय है, त्रैकालिक ज्ञायकभावरूप नहीं है। त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकको किसी भी पर्यायवेश या पर्यायकी अपेक्षा नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

“आत्मा ‘मुनि है’ या ‘केवलज्ञानी है’ या ‘सिद्ध है’ ऐसी एक भी पर्याय-अपेक्षा वास्तवमें ज्ञायक पदार्थको नहीं है।”

अहाहा! दया–दानका भाव हो वह तो राग है; वह रागकी पर्याय तो ज्ञायकमें नहीं है, परन्तु उस रागके भावको जाननेवाली वीतरागी पर्याय वह भी ध्रुव ज्ञायकमें नहीं है। अहा! ऐसी सत्यवस्तुकी बात कब मिलती है! सुननेको भी नहीं मिलती। भगवान सर्वज्ञदेवका कहा हुआ परम सत्यतत्त्व तो यह है; उसे संत पुरुष जगतके समक्ष प्रगट करते हैं; आढ़तिया बनकर बतलाते हैं। माल तो सर्वज्ञ भगवानका है; तुझे रुचता हो तो ले; नहीं रुचे तो तू स्वतंत्र है; त्रैकालिक परम सत्यतत्त्व तो यह है।

नियमसारकी ३८वीं गाथामें पर्यायरहित त्रैकालिक ध्रुव वस्तुको निश्चय-आत्मा कहा है। पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष–वे सातों पर्याय हैं। पर्यायकी स्थिति एक समयकी है इसलिये वह नाशवान है। त्रिकाल अविनाशी जो ध्रुव ज्ञायकतत्त्व वही निश्चय-आत्मा, सत्य-आत्मा सत्यार्थ-आत्मा कहा जाता है। त्रैकालिक ज्ञायक पूर्ण सत्ताको अविनाशी सत्-आत्मा कहते हैं; पर्याय वह त्रैकालिक ध्रुव सत्-आत्मा नहीं है, वह नाशवान है। केवलज्ञानकी पर्याय भी प्रतिसमय बदलती होनेसे, नाशवान है।

समयसारकी ३२०वीं गाथाकी श्री जयसेनाचार्यकृत टीकामें आता है कि–त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक भगवान आत्मा बंधके मार्गको, बंधको, मोक्षके मार्गको तथा मोक्षको करता नहीं है; क्योंकि वह पर्याय है। कार्य तो सब पर्यायमें होता है, ध्रौव्य तो त्रैकालिक सादृश्य एकरूप है; उस ध्रौव्यमें कहाँ कुछ कार्य होता है? निश्चयसे तो वह एक परमार्थ-आत्मा है। केवलज्ञानकी या सिद्धकी पर्याय प्रतिसमय पलटती होनेसे, बदलती होनेसे, वह नाशवान है। इस अपेक्षासे त्रैकालिक ज्ञायक ध्रुव वस्तु जो एकरूप सादृश्य है उसे निश्चय सत्य आत्मा कहा है। उसका आश्रय करनेसे सम्यग्दर्शन होता है। निश्चय मोक्षमार्गकी तथा मोक्षकी पर्याय वह व्यवहार आत्मा है और त्रैकालिक ध्रौव्य वह निश्चय-आत्मा है—इसप्रकार एक आत्मामें दो प्रकार कहे हैं।

यहाँ कहते हैं कि—आत्मा ‘मुनि है’ या ‘केवलज्ञानी है’ या ‘सिद्ध है’ ऐसी एक भी पर्याय-अपेक्षा वास्तवमें ज्ञायक पदार्थको नहीं है। इसमें भाव तो बहुत ऊँचे हैं। भाषा तो सादा गुजराती है। बेनके वचनामृत हैं, उनका यह १०५वाँ बोल है। पुस्तक ठीक समय पर प्रकाशित हो गई है। बहुमूल्य वस्तु है!

प्रभु! क्या कहें? अरे, भगवानका विरह पड़ा! यह तो....मार्ग वाणीमें रह गया और प्रभु मोक्षमें चले गये! विदेहक्षेत्रमें सीमंधर भगवान विराजमान हैं। हम वहाँ उनके पास थे। रोज समवसरणमें जाते थे। अन्तिम स्थितिमें परिणाम कुछ अच्छे नहीं रहे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

और इस काठियावाड़में—उमरालामें—पैदा होना पड़ा....भगवानकी वाणी रह गई....अरेरे! त्रिलोकीनाथका विरह हुआ! पंचमकालमें यहाँ भगवानकी उत्पत्ति भी नहीं है! केवलज्ञानकी भी उत्पत्ति नहीं है, परन्तु उनकी वाणी मौजूद है। उसमें आत्मा क्या है, उसका यथार्थ स्वरूप क्या है—वह बतलाया है। अहाहा! अनोखी बात है!

अहा! मुनिपना, केवलज्ञान या सिद्धदशा वह सब एक समयकी पर्याय है। पर्यायकी अवधि एक समयकी है, दूसरे समय दूसरी होती है; अंतरमें ध्रुव ज्ञायक द्रव्य तो त्रिकाल एकरूप सदृश है। ऐसा स्पष्टीकरण तो सामने वह विषय आये तब विस्तारसे होता है, जबरन् नहीं किया है। त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक आत्मामें द्रव्यलिंग तो है ही नहीं, परन्तु भावलिंग—मुनिपना, केवलज्ञान या सिद्धपद भी नहीं है।—ऐसी एकरूप सदृश ध्रुववस्तु उसे हम परमार्थ आत्मा कहते हैं। लोग अंतरकी यह बात समझते नहीं हैं इसलिये बाह्यमें अमुक आहार लेना—नहीं लेना, कपड़े छोड़ देना आदि भ्रममें अटक गये हैं।

त्रैकालिक नित्यानन्द ज्ञायकप्रभु जो सम्यग्दर्शनका विषय है, वह मोक्षके मार्गरूप या सम्यक्त्व-पर्यायरूप भी नहीं होता, वह तो अपरिणामी ध्रुव स्थायी अंश है। वह बदलता नहीं है, पलटता नहीं है, हलचल रहित त्रैकालिक ध्रुव है। सम्यग्दर्शनके लिये आश्रय करने योग्य वस्तु है। सम्यग्दृष्टिकी दृष्टि निज ध्रुव ज्ञायकतत्त्व पर नित्य रहती है। भले ही खान–पान, वाणी-व्यवहार अथवा व्यापार–धन्धा आदि अनेक प्रकारके विकल्प आयें और बाह्यमें तदनुसार क्रिया भी होती हो, परन्तु उसकी दृष्टिमें तो एक ध्रुव ज्ञायक तत्त्व ही है। ज्ञायकतत्त्वकी डोर कभी छूटती नहीं है। जिसमें मोक्षकी पर्याय भी नहीं है ऐसे ध्रुव ज्ञायक पर उसकी दृष्टि लगी होती है। साथमें ज्ञान है वह पर्यायको जाननेका कार्य करता है। यदि ध्रुवतत्त्वके ऊपरसे दृष्टि हटकर पर्याय पर लग जाये तो मिथ्यादृष्टि हो जाये।

अहा! प्रमत्त–अप्रमत्तादि पर्यायें हैं वह व्यवहारनयका विषय है। व्यवहारनयका विषय ही नहीं है—ऐसा नहीं। मोक्षमार्ग, केवलज्ञान तथा सिद्धपद वह सब पर्यायनयका—व्यवहारनयका विषय है। जीववस्तु अनादि-अनंत एकरूप है; उसके पर्यायभेदसे संसारी और सिद्ध ऐसे दो भाग करना वह व्यवहारनयका विषय है। त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकतत्त्वमें परमार्थसे ऐसे दो भेद नहीं हैं। अहा! वीतरागदर्शन कोई अलौकिक है; वह विश्वदर्शन है। वस्तुका स्वरूप सर्वज्ञ भगवानने जैसा जाना वैसा कहा है। तुझे वह यथार्थतत्त्व सुननेको नहीं मिला, इसलिये ऐसा लगता है कि–यह तो दूसरी बात है, नवीन है; परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है; वस्तु तो अनादिकी है, ऐसी ही है; उसमें किसीने कुछ नया नहीं किया है। वस्तुस्थिति ही ऐसी है।

वस्तु जो त्रैकालिक ज्ञायकत्त्व है, उसपर दृष्टि हो सकती है। वही करना है। परका तो कुछ हो ही नहीं सकता। दृष्टिके विषयभूत ज्ञायक आत्मामें स्थिर होना वह चारित्र है, वह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कहीं बाहरसे नहीं आता। आत्मा 'मुनि है' या 'केवलज्ञानी है' या 'सिद्ध है' ऐसी पर्याय-अपेक्षा वास्तवमें ज्ञायक पदार्थको नहीं है। अहा! ऐसी बात है! यह तो सब मूल बात है!

मथुराके व्याख्यानमें 'केवलज्ञान वह पर्याय है'—ऐसा कहा, वहाँ पण्डितोंको आश्चर्य हुआ। केवलज्ञान वह आत्माका गुण नहीं किन्तु पर्याय है भाई! गुण तो नित्य रहता है, पर्यायका स्वभाव उत्पन्नध्वंसी है। केवलज्ञान त्रैकालिक गुण नहीं है, पर्याय है, अवस्था है। अहा! वर्तमानमें तो तत्त्वज्ञानका जो मूल विषय उसीमें सब फेरफार हो गये हैं। सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिका जो कारण उसमें भी गड़बड़ी पैदा हो गई है। भाई! उसमें तेरा हित नहीं होगा। तुझे देह छोड़कर जाना है, वहाँ यदि ऐसी मान्यता हुई कि रागसे धर्म होता है, तो उसके फलस्वरूप तुझे दुःखका वेदन होगा। उस दुःखके वेदनसे भविष्यमें जहाँ जायगा वहाँ भी दुःख होगा। अहा! संत–ज्ञानी तुझे तेरे हितकी बात सुनाते हैं।

'ज्ञायक तो ज्ञायक ही है।'

ज्ञायक पदार्थमें मुनिपनेकी तथा सिद्धकी पर्यायका भी अभाव है। वास्तवमें ज्ञायकपदार्थको एक भी पर्याय-अपेक्षा नहीं है। पर्यायदृष्टि छोड़ और द्रव्यदृष्टि कर। जो पर्याय प्रगट हुई है उस पर दृष्टि न रख; दृष्टि तो त्रैकालिक एकरूप ज्ञायकप्रभुमें लगा; वहीं दृष्टि स्थिर कर दे। अपनी दृष्टिको ध्रौव्यमें ध्रुव कर देना सो सम्यग्दर्शन है। उस सम्यग्दर्शनके बिना भले ही ग्यारह अंगका पाठी हो, तथापि अज्ञानी है। सम्यग्दर्शनके बिना व्रत, तप उपवास करे, परिषह सहन करे, वह सब क्लेश है।

*

वचनामृत-१०६

चैतन्यस्वरूप आत्मा तेरा अपना है इसलिये उसे प्राप्त करना सुगम है। परपदार्थ परका है, अपना नहीं होता, अपना बनानेमें मात्र आकुलता होती है ॥ १०६ ॥

'चैतन्यस्वरूप आत्मा तेरा अपना है इसलिये उसे प्राप्त करना सुगम. है।'

तू स्वयं चैतन्यस्वरूप ज्ञायकभगवान है, उसे कहीं बाहरसे लाना पड़ता हो—ऐसा नहीं है; इसलिये उसे प्राप्त करना वह सुगम–सरल है। तू स्वयं प्रभु है उसे प्राप्त करना है। तू स्वयं त्रैकालिक ज्ञायकस्वरूप आत्मा 'है' उसका विश्वास कर। 'है' उसे प्राप्त करना है। वह चैतन्यस्वरूप आत्मा रागस्वरूप, पुण्यस्वरूप या पापस्वरूप नहीं है। चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा तेरा अपना है; अपनेको अपनेरूपमें प्राप्त करना उसमें दुर्लभ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

क्या है? अपनेको अपनेसे प्राप्त करना सुगम है। श्रीमद् राजचन्द्रमें आता है कि–'सत् सरल है, सुगम है, सर्वत्र है।' किसी भी क्षेत्रमें हो, किसी भी पर्यायमें हो वस्तु तो वस्तुरूपसे नित्य है। चैतन्यस्वरूप आत्मा तू स्वयं तेरा अपना है, इसलिये उसे प्राप्त करना सुगम है। जो 'है' उसे प्राप्त करनेमें विशेषता क्या है?

"परपदार्थ परका है, अपना नहीं होता, अपना बनानेमें मांत्र आकुलता होती है।'

परपदार्थ तो परके हैं ही, वे तेरे कदापि नहीं हो सकते; परन्तु दया, दान, व्रत, तप, भक्तिका जो राग है वह भी परभाव है, उस परभावको यदि अपना बनाना चाहेगा तो वह भी नहीं हो सकेगा। जहाँ रागादि परभाव अपना स्वभाव नहीं हो सकता वहाँ अन्य रजकणोंको तथा शरीरको अपना बनाना वह तो दूरकी बात है। तीन कालमें वे कदापि तेरे नहीं हो सकेंगे।

घर, कुटुम्ब, धन आदि परपदार्थ हैं; वे आत्मासे बिलकुल भिन्न हैं। वे परवस्तु हैं तेरे नहीं हो सकेंगे–नहीं बन सकेंगे। जो अपना है उसे प्राप्त करना हो सकता है। लक्ष्मी, कुटुम्ब, मकानादि पर हैं; उन्हें तू अपना बनाना चाहता है; परन्तु वे तेरे होनेवाले नहीं हैं। परको अपना बनानेमें—अपना बनानेके प्रयत्नमें—तो तुझे आकुलता होगी; तथापि परवस्तु तेरी नहीं हो सकेगी।

चैतन्यस्वरूप आत्मा तेरा है, तू स्वयं ही है, इसलिये उसकी प्राप्ति सरल है। जो स्थान 'हो' वहाँ जाना सुगम है, परन्तु जो स्थान 'हो' नहीं और कोई वहाँ जानेका प्रयत्न करे तो वह सफल नहीं हो सकेगा। स्थान ही नहीं है तो फिर जाना कहाँ? उसीप्रकार राग और पुण्य आदि बाह्य वस्तुओंमें आत्माका स्थान ही नहीं है; उन्हें तू आत्माकी बनाना चाहेगा तो वह किसीप्रकार तेरी होनेवाली नहीं हैं। परको अपना बनाना चाहेगा तो नहीं बन सकेगा। उलटी आकुलता होगी।

परपदार्थ तो परके हैं, उनकी सत्ता उनमें है। शरीर, मकान, कुटुम्ब, माता–पिता आदि अपनी सत्ता–अस्तित्व छोड़कर तेरे नहीं होंगे। वहाँ तेरा पुरुषार्थ काम नहीं कर सकेगा। आत्मा स्वयं अपना है, वह अपनेरूप हो सकेगा दूसरा कुछ नहीं होगा। उसका कारण है कि जो परद्रव्य है वह स्वद्रव्यरूप नहीं हो सकता, पररूप ही सदा रहेगा। अरे! दूसरी बात तो दूर रही, परन्तु पर्यायको तू द्रव्यरूप करने जायगा तो वह भी नहीं हो सकेगा।

यह जो अँगुली है वह इसी अँगुलीकी है, दूसरी की नहीं है। इस अँगुली को दूसरीकी बनाना चाहे तो वह नहीं हो सकेगी। परपदार्थ जो पररूप है उसे अपना बनाना चाहे तो नहीं हो सकता। अपना बनानेमें—उसके प्रयत्नमें—मात्र आकुलता होती है।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन-३८

ता. १५-७-७८

वचनामृत-१०७

शाश्वत शुद्धिधाम ऐसा जो बलवान आत्मद्रव्य, उसकी दृष्टि प्रगट हुई तो शुद्ध पर्याय प्रगट होती ही है। विकल्पके भेदसे शुद्ध पर्याय प्रगट नहीं होती। एकको ग्रहण किया उसमें सब आ जाता है। दृष्टिके साथ रहा हुआ सम्यग्ज्ञान विवेक करता है।। १०७।।

'शाश्वत शुद्धिधाम ऐसा जो बलवान आत्मद्रव्य, उसकी दृष्टि प्रगट हुई तो शुद्ध पर्याय प्रगट होती ही है।'

कैसा सिद्धान्त! आत्मा—जोकि त्रैकालिक शाश्वत वस्तु है वह—उत्पाद और ध्वंस, उत्पत्ति तथा व्यय रहित नित्य वस्तु है। संयोगी वस्तु, राग और एक समयकी पर्यायके ऊपरसे दृष्टि उठाकर, जिसमेंसे अतीन्द्रिय ज्ञान एवं आनन्दकी उत्पत्ति हो ऐसा जो शाश्वत शुद्धिधाम बलवान आत्मद्रव्य उस पर जिसकी दृष्टि हुई उसे शुद्धपर्याय प्रगटती ही है। दृष्टिके विषयभूत त्रैकालिक ज्ञायकद्रव्य संयोगके सम्बन्धसे, रागसे और एकसमयकी पर्यायसे भी रहित है। क्या कहते हैं? कि—नित्य शुद्धिधाम ऐसा भगवान आत्मा तू है, अपने पास है, वह तू ही है। शाश्वत शुद्धिका धाम, पवित्रता एवं आनन्दका स्थान ऐसा जो शक्तिशाली आत्मद्रव्य, उसपर दृष्टि हुई उसका नाम सम्यग्दर्शन है। शरीरके अस्तित्वमें रागकी उपस्थितिमें और एकसमयकी पर्यायमें जिसका 'विद्यमानपना' नहीं है, परन्तु जिसका 'विद्यमानपना' शाश्वत शुद्धिस्थल ऐसे शक्तिवान आत्मद्रव्यमें है ऐसे निज ध्रुव ज्ञायकतत्त्वकी जिसे दृष्टि हुई उसे शुद्ध पर्याय प्रगटती ही है।

एक ओर यह कहना कि आत्मामें अनन्त बल—स्वरूपकी रचना करनेका सामर्थ्य—भरा पड़ा है, ओर दूसरी और ऐसा कहना कि त्रैकालिक ध्रुव वीर्य है वह स्वरूपकी पर्यायको नहीं रचता; अहा! गहन विषय है! सर्वज्ञ....सर्वज्ञ...तू सर्वज्ञ है! जो सर्वज्ञ हुए वह पर्याय कहाँसे आयी? यहाँ कहते हैं कि—शाश्वत शुद्धिधाम ऐसा

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जो बलवान आत्मद्रव्य उसकी दृष्टि हुई तो शुद्ध पर्याय प्रगटती ही है। त्रैकालिक शुद्धका स्वीकार हुआ वहाँ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, अनाकुल आनन्द, शान्ति, ईश्वरता–प्रभुता आदिकी दशामें शुद्धता प्रगटती ही है।

लोगोंने बाह्यमें ऐसा सब कर दिया है कि—त्याग ले लिया इसलिये हो गये हम सम्यग्दृष्टि और हो गये चारित्रवान! अंतरकी आत्मवस्तु है भाई!....उसे कैसे कहा जाय और कैसे समझें? यह तो अलौकिक बात है। शाश्वत शुद्धिधाम ऐसे निज आत्मद्रव्य पर दृष्टि होना वह कोई साधारण बात है? वह कहीं बातोंसे प्राप्त हो सकता है क्या? वह तो अंतर्दृष्टि करे तभी प्राप्त होगा।

देव-शास्त्र-गुरुकी श्रद्धा तथा पंचमहाव्रतके परिणाम वह तो राग है। राग मेरा स्वरूप है ऐसा मानना वह तो मिथ्यात्व है! परन्तु आत्मा तो शुभाशुभ सर्व रागसे रहित त्रिकाल शुद्धिधाम, नित्य आनन्दका पुंज ऐसा बलवान–शक्तिशाली पदार्थ है; उसका जिसने आश्रय लिया, उसपर जिसने दृष्टि दी और उस दृष्टि द्वारा जिसने परिपूर्ण ज्ञायकको स्वीकार किया उसे शुद्ध पर्याय प्रगटती ही है। साधारण जनों को तो कठिन लगेगा, क्योंकि अभ्यास नहीं है।

'विकल्पके भेदसे शुद्ध पर्याय प्रगट नहीं होती।'

विकल्प अर्थात् राग। अंतरमें जितना दयाका, भक्तिका—अरे! परमात्माकी श्रद्धाका—राग उत्पन्न हो या गुणभेदके विकल्पका राग हो उससे शुद्ध पर्याय प्रगट नहीं होती; उससे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, शांति एवं वीतरागता नहीं प्रगटती।

यहाँ 'शुद्धिधाम' शब्द आनेसे श्रीमद्की 'सुखधाम' वाला छन्द याद आगया—

सुखधाम अनंत सुसंत चही,
दिन-रात रहें तद्ध्यान मही;
प्रशान्ति अनंत सुधामय जे,
प्रणमुं पद ते वर ते जय ते।

श्रीमद् राजचन्द्र आत्मज्ञानी हो गये हैं। गृहस्थाश्रममें थे। एक भव करके मोक्ष जायँगे—ऐसी शक्ति थी। हीरे-जवाहिरातका लाखोंका व्यापार था, लेकिन वह सब पर...पर....और अत्यंत पर है—ऐसी अंतर्प्रतीति थी। पूर्णानन्दका नाथ भगवान आत्मा जिनकी दृष्टिमें झलकता था, वे स्वयं कहते हैं कि—"अत्यन्त त्वरासे प्रवास पूर्ण करना था। वहाँ बीचमें सहाराका रेगिस्तान मिला। सिरपर बोझ बहुत था वह आत्मवीर्य द्वारा किसीप्रकार अल्पकालमें वेद लिया जाय; ऐसी प्रघटना करने पर पैरोंने निकाचित उदयमान थकान ग्रहण की। जो स्वरूप है वह अन्यथा नहीं होता यही अद्भुत आश्चर्य है। अव्याबाध स्थिरता है।"

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रश्न :—शुद्धिधाम ऐसे ज्ञायकतत्त्वपर दृष्टि पड़ी है ना ?

उत्तर :—ज्ञायकस्वभाव पर दृष्टि तो है परन्तु अभी अस्थिरताके कारण चारित्रका पुरुषार्थ कुछ शेष है। शुद्धिकी पूर्णता प्रगट करनेकी भावना है। भगवान पूर्णानन्दका नाथ ऐसा जो शुद्धिका धाम उसमें हम गये, परन्तु अभी पूर्ण स्थिर नहीं हो सके। इसलिये कहते हैं कि–

अवश्य कर्मनो भोग छे, भोगववो अवशेष रे;
तेथी देह अेक ज धारीने, जाशुं स्वरूप स्वदेश रे।

बम्बईमें जवाहिरातका व्यापार होनेपर भी जिसप्रकार नरेलीसे नरियलका गोला पृथक् हो जाये, तद्नुसार सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानमें व्यापारसे, शरीरसे एवं रागसे पृथक् हो गये थे। अस्थिरताके कारण गृहस्थदशा थी, व्यापार–धंधा था, परन्तु अंतरमें भावना परमात्मपद प्राप्तिकी थी। देह छूटनेके अवसरपर भाईसे कहा : 'माताजीको खेदखिन्न नहीं होने देना, मैं अपने स्वरूपमें समाता हूँ।' ३३ वर्षकी उम्र थी; आरामकुर्सीमें बैठे थे और अंतर्‌अतीन्द्रियधाममें उपयोग लगा दिया; परन्तु अभी पूर्ण स्थिरता नहीं हुई है इसलिये एकाध भव करना पड़ेगा।

शुद्धिका धाम ऐसा जो निज त्रैकालिक परमात्मस्वरूप उसका अंतरमें स्वीकार करनेसे शुद्ध पर्याय प्रगट होती ही है। उसका पूर्ण आश्रय ले तो पूर्ण शुद्ध पर्याय प्रगट होती है, अल्प आश्रय ले तो सम्यग्दर्शन–ज्ञानकी निर्मल पर्याय प्रगट होती है और मध्यम आश्रय ले तो सम्यक्त्व सहित चारित्रदशा प्रगट होती है। अंतरमें एकदम पूर्ण आश्रय लेनेसे सर्वज्ञ हो जाते हैं, सिद्ध हो जाते हैं।

ऐसा जो भगवान आत्मद्रव्य उसके विकल्पके भेदसे शुद्ध पर्याय प्रगट नहीं होती। 'मैं शुद्ध हूँ', 'मैं पूर्ण हूँ', 'मैं अभेद हूँ', 'मैं अखण्ड हूँ', और 'मैं शुद्धिधाम हूँ'—ऐसी चाहे जितनी वृत्तियाँ उठें उनसे शुद्धि प्रगट नहीं होगी। आया कुछ समझमें ?

'एकको ग्रहण किया उसमें सब आ जाता है।'

अनंत गुणोंके धाम ऐसे भगवान आत्माको दृष्टिमें लिया, उसका आलम्बन लिया, उस एकको ही ग्रहण किया, उसमें सब आ जाता है। उसमेंसे ज्ञान होता है, दर्शन होता है, चारित्र होता है, अतीन्द्रिय निराकुल आनन्द होता है—यह सब होता है। अहाहा! एकको जाना उसमें सब आगया। एक ज्ञायकको जाने बिना तू अन्य लाखों बातें जान—जगतकी या शास्त्रकी—उनमेंसे शुद्धता नहीं आयगी। जिसने एक पूर्णानन्दके नाथको ग्रहण कर लिया उसमें सब आ गया; क्योंकि उससे केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनंतसुख, अनंतवीर्य आदि सब प्रगट होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'दृष्टिके साथ रहा हुआ सम्यग्ज्ञान विवेक करता है।'

क्या कहा? कि—द्रव्यदृष्टिके साथ हुआ ज्ञान विवेक करके जानता है कि पर्यायमें अभी राग है, अभी पर्यायमें मैं पूर्ण शुद्ध नहीं हुआ हूँ। त्रैकालिक पूर्ण शुद्ध ज्ञायकतत्त्वको दृष्टिमें ग्रहण किया है, परन्तु अभी पर्यायमें अपूर्णता है। दृष्टि उसका स्वीकार नहीं करती; दृष्टिका विषय तो त्रैकालिक पूर्णतत्त्व ही है; परन्तु दृष्टि होनेपर जो सम्यग्ज्ञान हुआ वह त्रैकालिक तत्त्वका भी स्वीकार करता है और पर्यायमें अपूर्णता, राग, पुरुषार्थकी कचास आदि हैं उन्हें भी बराबर जानता है। साधकका वह ज्ञान ऐसा नहीं जानता कि–'मैं पर्यायमें पूर्ण होगया हूँ'। अहा! आया कुछ समझमें? भाई! यह तो मार्ग ही दूसरा है!

जिसमें 'करना', 'करना'—ऐसे विकल्पका भी अवकाश नहीं है अरे! गुण-गुणीके भेदका जो विकल्प है उससे भी जो प्राप्त नहीं हो सकता, वह अन्य किस प्रकार प्राप्त होगा? पंचम काल हो या चौथा, नरकका भव हो या तिर्यंचका, शाश्वत शुद्धधाम ऐसा भगवान आत्मा स्वयं तो सर्वत्र विद्यमान है। उस शुद्ध ध्रुवधाममें जानेसे निर्मलदशा प्रगट होती ही है; परन्तु अन्य किसी विकल्पसे शुद्ध पर्याय प्रगट नहीं होती।

प्रश्न :—सम्यग्दर्शन है या नहीं—यह खबर दूसरोंको किसप्रकार पड़ेगी?

उत्तर :—प्रभु! क्या कहें? अरे, श्रुतज्ञान क्या वस्तु है! श्रुतज्ञान तो केवलीको भी परख लेता है। श्रुतज्ञानने तो केवलीका अंतर निकाला है। कहाँ और किसे सम्यग्दर्शन होगा या नहीं होगा—श्रुतज्ञान वह सब जान सकता है। अवधिज्ञान तथा मनःपर्ययज्ञान हो तभी वह जाना जा सकता है—ऐसा कुछ नहीं है। इसलिये कहा है ना, कि एकको ग्रहण किया उसमें सब आ जाता है। उसके ज्ञानमें सब विवेक आ गया। वह ज्ञान अपनी अपूर्णदशा है, उसे जानता है, सामनेवालेकी दशा सम्यक्त्वरूप या मिथ्यात्वरूप कैसी है वह भी जानता है। भगवान आत्माकी सच्ची दृष्टि होनेसे जो ज्ञान हुआ वह सब विवेक करता है।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत-१०८

जगतमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो चैतन्यसे बढ़कर हो। तू इस चैतन्यमें–आत्मामें स्थिर हो, निवास कर। आत्मा दिव्यज्ञानसे, अनन्त गुणोंसे समृद्ध है। अहा! चैतन्यकी ऋद्धि अगाध है॥ १०८॥

'जगतमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो चैतन्यसे बढ़कर हो।'

अहाहा! सिद्ध भी चैतन्य द्रव्यसे बढ़ जायें ऐसी वस्तु नहीं हैं; क्योंकि वह पर्याय है ना? बारह अंगका ज्ञान, नवतत्त्वोंका श्रद्धान आदि हो, तथापि वह चैतन्यवस्तुसे बढ़ नहीं जाता। अहा! चैतन्यवस्तु तो कोई अलौकिक है! संसारमें उससे कोई बड़ी वस्तु नहीं है। है ऐसी कोई वस्तु जगतमें?—ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो चैतन्यसे चढ़ जाय। केवलज्ञानकी पर्याय भी एक समयकी स्थितिवाली है और यह चैतन्यतत्त्व तो त्रैकालिक अनंतगुणोंका सागर है। उस ध्रुव ज्ञायकतत्त्वमें दृष्टि देना चाहिये; क्योंकि उस जैसी माहात्म्यवाली वस्तु जगतमें कोई नहीं है।

यह सब निश्चयकी बातें लोगोंको—अजान आदमियोंको—ऐसी लगेंगी कि यह क्या? यह किस प्रकारका धर्म है? वीतरागका धर्म क्या ऐसा होगा? छहकायके जीवोंकी दया पालना, व्रत–उपवास करना, रात्रिभोजन नहीं करना, चौविहार करना आदि धर्म है ऐसा तो हमने सुना है। अरे प्रभु! सुन तो सही! अंतरमें पर्यायदृष्टिका त्याग और द्रव्यदृष्टिका ग्रहण करना वह मूल वस्तु है। बाह्य वस्तुओंका तो वस्तुमें अभाव ही है। कर्म, शरीरादि बाह्य वस्तुओंने तो आत्माका स्पर्श भी नहीं किया है; आत्मामें उनकी नास्ति है। जिनकी स्वभावसे ही नास्ति है उनका त्याग कैसा? परन्तु आत्माकी पर्यायमें जो रागादि मलिनता है उसकी, त्रैकालिककी दृष्टि करनेसे उत्पत्ति ही न हो उसका त्याग किया—ऐसा व्यवहारसे कहा जाता है। अहा! इस वस्तुकी प्रतीतिके बिना बाह्यत्यागका अभिमान चढ़ जाय कि—'हमने त्याग किया और तुमने नहीं किया; हम एक बार नीरस निर्दोष आहार लेते हैं, हमारे लिये बनाया गया–उद्दिष्ट आहार–हम नहीं लेते।'—ऐसी स्थितिका हो, तथापि वह कहीं धर्म नहीं है।

केवलज्ञान भी जिस चैतन्यद्रव्यके समक्ष अधिक नहीं है—ऐसा भगवान तू स्वयं ही है ना, प्रभु! तुझे हीन मानना वह बड़ी भ्रमणा है; तुझे चार गतिवाला मानना वह भी भ्रमणा है। तू भगवान स्वरूपमें विराजमान है उसे देख। यदि परद्रव्यका माहात्म्य आये तो स्वद्रव्यका माहात्म्य तुझे नहीं रहा है प्रभु!

'तू इस चैतन्यमें—आत्मामें स्थिर हो, निवास कर!'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निज चैतन्यके समान जगतमें कोई उच्च वस्तु नहीं है। जिसकी उपस्थिति ज्ञान, आनन्दादि पूर्ण स्वभावसे भरपूर है ऐसा जो अपना भगवान आत्मा, अस्तिस्वरूप वस्तु, द्रव्य, पदार्थ, तत्त्व—उस जैसी महान कोई वस्तु जगतमें नहीं है। इसलिये उस महान वस्तुमें रुचि लगा, उसका माहात्म्य कर। उस सर्वोत्कृष्ट प्रभुके निकट अनुभूति, सम्यक्त्व या चारित्रपर्यायका भी कोई माहात्म्य है ही नहीं। वह त्रैकालिक चैतन्यवस्तु अंतरमें है। उसे अंतरमें यथार्थरूपसे ग्रहण करना तथा दृष्टिमें विषय बनाना चाहिये। इस हेतु तू वहाँ अंतरमें जा, वहाँ स्थिर हो, वहाँ निवास कर, तो तुझे शाश्वत शान्ति प्राप्त होगी। जिस चैतन्यवस्तुको पहले दृष्टिमें देखा है और ज्ञानकी पर्यायमें जाना है, उसमें अब स्थिर हो। उसीका नाम चारित्र है।

अहाहा! यह वस्तु तो आठ-आठ वर्षके छोटे राजकुमार भी प्राप्त कर लेते हैं। भरतेश वैभवमें कहा है ना, कि—भरत चक्रवर्तीके रविकीर्ति आदि गेंद-बल्ला खेलते थे। उन्हें समाचार मिला कि सेनापति जयकुमार मुनि हो गये हैं। समाचार मिलते ही राजकुमारोंके अंतरमें वैराग्य उल्लसित हुआ। अंगरक्षकोंसे कहा कि—चलो, आदिनाथ भगवानके दर्शन करने चलें। समवसरणमें पहुँचते ही बोले : “हे प्रभु! हमें दीक्षा दो!’ अहाहा! चक्रवर्तीके राजकुमार अर्थात् पुण्यकी मूर्तियाँ! मणि-रत्न जैसे तो जिनके शरीर हैं! सर्व सुविधाओंमें जिनका लालन-पालन हुआ है! लेकिन उन बाह्य सुख—सुविधाओंकी महत्ता क्या? अंतरमें अनन्तानन्त महाआनन्दका धाम अनंत-अनंत अमर्यादित ज्ञानका स्थान, अनन्तान्त प्रभुता—ईश्वरतासे परिपूर्ण भगवान आत्मा विराजता है; उसकी महत्ताके निकट सर्व बाह्य वस्तुएँ तुच्छ हैं; उनका मूल्य क्या?

प्रभु! बड़ी मूल्यवान वस्तु तू है। जिसमेंसे अतीन्द्रिय आनन्दका ज्वार उठे, अतीन्द्रिय केवलज्ञानकी पर्याय प्रगट हो, ऐसा महान सुधासागर तू स्वयं ही है। समयसार-नाटकमें कहा है कि—

कहै विचच्छन पुरुष सदा मैं एक हौं।
अपने रससौं भर्यो आपनी टेक हौं॥
मोहकर्म मम नाहिं नाहिं भ्रमकूप है।
सुद्ध चेतना सिंधु हमारौ रूप है॥

शुद्ध चेतनाका विशाल समुद्र अंतरमें है। यह दृष्टि जबतक न हो तबतक दूसरे सब भटकनेके मार्ग हैं। उस महाप्रभुके समक्ष अन्य साधारण वस्तुओंका माहात्म्य क्या? अरे! ग्यारह अंगका ज्ञान भी उसके समक्ष कुछ नहीं है! अंतरमें चैतन्य महाप्रभु, कि जिसमेंसे केवलज्ञान उछलता है, अनन्त आनन्दका ज्वार आता है, उस स्वभाव सागरमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दृष्टि कर और वहाँ जाकर स्थिर हो ना! वही करना है। वहाँ स्थित हो, उसीमें निवास कर। उसीको निवास-स्थान बना। भाषा देखो तो बिलकुल सादी और भाव बहुत गहरे!

'आत्मा दिव्यज्ञानसे, अनन्त गुणोंसे समृद्ध है।'

भगवानकी दिव्य-ध्वनिमें जो आया है कि भगवान आत्मा अक्षय, अनन्त, अमेय, ज्ञानादि अनन्त दिव्य गुणोंसे समृद्ध है, वही बात बेनकी वाणीमें आयी है। अहाहा! क्या कहें? दिव्यध्वनिमें भगवान जो कहते थे वही यहाँ बेन (बहिनश्री चम्पाबेन) कहती हैं। अहा! केवलज्ञान पर्यायका भी जिसके निकट कोई मूल्य नहीं है, ऐसी ध्रुवज्ञानकी डली, ज्ञानका सनातन सागर, ज्ञानस्वभावका पुंज ऐसा तू प्रभु है ना! उसकी अनंतता एवं अचिंत्यता तूने कभी सुनी नहीं है। भगवान आत्मा दिव्यज्ञान और अनन्त गुणोंकी सम्पदावान है; यह शरीर, लक्ष्मी, पुण्य और पाप—सब आपदा है। चैतन्य आत्मा अपने अनन्त दिव्यगुणोंसे सदा भरपूर है।

'अहा! चैतन्यकी ऋद्धि अगाध है।'

बाह्यकी सर्व ऋद्धियाँ धूलके समान हैं, स्मशानकी राख हैं। तुझमें जो ऋद्धि है ऐसी अलौकिक ऋद्धि अन्यत्र कहीं नहीं है। मालाके १०८ मनके होते हैं ना? यह १०८वाँ बोल भी बहुत अच्छा आया है! भगवान आत्मा चैतन्यकी अगाध ऋद्धियोंसे भरपूर है। यहाँ हम आत्माको भगवान कहते हैं—यह बात बाहर सारे देशमें पहुँची। व्यवहारके रसवान क्रियाकाण्डी लोगोंको यह बात नहीं बैठी, तो कहने लगे कि—'वर्तमानमें भगवान कहा जाता होगा? जब अरिहंत—सिद्ध होंगे तब भगवान कहलाते हैं।' अरे, भाई! सुन तो सही! यहाँ पर्यायसे भगवानकी बात नहीं है, त्रैकालिक आत्माकी बात है। त्रैकालिक भगवान आत्माको कोई काल लागू नहीं होता। कोई रौद्रध्यानकी पर्याय हो, आँसूकी धारा निरंतर बहती हो ऐसी दुःखदशा हो, तथापि वस्तुस्वभाव तो जो है वह है; उसके मूल स्वभावमें कोई परिवर्तन नहीं होता। उसकी स्वाभाविक ऋद्धि उस समय भी परिपूर्ण विद्यमान है। अरे! यह बात सुननेको न मिले, उसके विचारमें न आये, विचार स्वभावकी ओर न ढले, वहाँ उसका कल्याण कैसे हो? चैतन्यऋद्धिसे भरपूर स्वभावको समझे, उसमें ढले तो कल्याण हो, मोक्ष हो जाये।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत-१०६

आत्मारूपी परमपवित्र तीर्थ है उसमें स्नान कर। आत्मा पवित्रतासे भरपूर है, उसके अन्दर उपयोग लगा। आत्माके गुणोंमें सराबोर हो जा। आत्मतीर्थमें ऐसा स्नान कर कि पर्याय शुद्ध हो जाय और मलिनता दूर हो॥१०६॥

'आत्मारूपी परमपवित्र तीर्थ है उसमें स्नान कर।'

सम्मेदशिखर, गिरनार और शत्रुंजय आदि बाह्य तीर्थोंकी यात्राके भाव हों वह शुभभाव है, पुण्य है, धर्म नहीं है।

प्रश्न :—सम्मेदशिखर तीर्थके दर्शन करे तो ४९वें भवमें मोक्ष होता है ना?

उत्तर :—भाई! यह भगवानका वचन नहीं है। लाख बार सम्मेदशिखरके दर्शन करे तो उससे क्या? परिणामोंमें मन्दकषाय हो तो वह शुभराग है, शुभरागसे कभी मोक्ष नहीं होता, बंध होता है। अरे! जीवोंको कहाँसे कहाँ धर्म मनवा दिया है!

आत्मारूपी परमपवित्र तीर्थ तू ही है; जिससे तिरनेका उपाय प्रगट होता है ऐसा तेरा तीर्थ तो तेरे पास ही है। केवलज्ञान प्राप्त करनेका जो उपाय उसे तीर्थ कहते हैं। तीर्थफल अर्थात् केवलज्ञान तो स्वरूपका आश्रय करनेसे प्रगट होता है। जो त्रैकालिक ज्ञायकस्वरूपमें आरूढ़ हुआ उसने आत्मारूपी परमपवित्र तीर्थकी यात्रा की। अहाहा! श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने—पंचमकालके वीतरागी संतने—विदेहकी यात्रा की थी, सदेह श्री सीमंधर भगवानके समवसरणमें गये थे। वह भी शुभभाव था। वास्तवमें तो यह आत्मा ही अंतरमें परम तीर्थ है कि जिसमें आरूढ़ होनेसे पवित्रताकी धारा प्रगट होती है। अतीन्द्रिय आनन्दकी वर्षा हो ऐसा भगवान आत्मा परम पवित्र तीर्थ है, उसमें तू स्नान कर; उसमें जा....उसमें जा.... तो तेरा संसार-मल धुलकर साफ हो जायगा और अंतरमें परमपवित्रता प्रगट होगी।

शत्रुंजय पर्वतकी ९९ यात्राएँ करते हैं और इतनी महिमा करते हैं मानों हम तिर गये! वह शुभभाव है, धर्म नहीं है। अशुभसे बचनेकी अपेक्षा उसे यात्रा कहा जाता है। वैसे सच्चा तीर्थ तो समताका सागर, समताका पर्वत, वीतरागभावोंसे भरा हुआ सम्मेदशिखर तो स्वयं अकेला है। वहाँ एकबार जानेसे तेरा पवित्रताका कार्य हो जायगा। इसमें ऐसा आता है, वहाँ लोगोंको लगता है कि—अरे! हमारे तीर्थ और यात्राको यह उड़ा रहे हैं, देव-शास्त्र-गुरुकी भक्तिको राग कहते हैं। भाई! तेरा नाथ तो भीतर वीतरागभावसे भरपूर है ना! आत्मा अंतरमें वीतरागस्वरूप, जिनस्वरूप ही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। उस जिनस्वरूप निजात्मामें आरूढ़ हो, उसकी यात्रा कर, उसमें स्नान कर।

'आत्मा पवित्रतासे भरपूर है, उसके अन्दर उपयोग लगा।'

पहले कहा ना, कि—आत्मा एकमात्र पवित्रताका पिण्ड है, पवित्रताका तीर्थधाम है, पवित्रतासे भरा हुआ भगवान है; उसमें डुबकी लगा। भाई! रागमें रुँध गया है, वहाँसे निकलकर यहाँ आत्मारूपी पवित्र तीर्थमें जा और उसमें स्नान कर तथा जानने-देखनेका जो उपयोग रागमें वर्तता है, वह वर्तता तो है ही; उस उपयोगको आत्मामें लगा दे। तेरी पवित्रता तुझमें विद्यमान ही है, उसमें उपयोग लगा। आत्माके गुणोंमें सराबोर हो जा, आत्मतीर्थमें ऐसा स्नान कर कि पर्याय शुद्ध हो जाय, मलिनता मिट जाय।

*

ता. १६-८-८०

बहिनको खबर नहीं कि कोई लिख लेगा। उन्हें बाह्य प्रसिद्धिका जरा भी भाव नहीं। धर्मरतन हैं, भगवती हैं, भगवतीस्वरूप माता हैं। (उनके यह वचन) आनन्दमेंसे निकले हैं। भाषा मीठी आ गयी है।

—पूज्य गुरुदेव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन-३६

ता. १६-७-७८

वचनामृत-१०६

इस १०६वें बोलकी दो पंक्तियाँ कल चली थीं। आज फिरसे...

'आत्मारूपी परम पवित्र तीर्थ है उसमें स्नान कर।'

अशुभसे बचनेके लिये ज्ञानीको भी शुभभाव आते हैं, परन्तु वे हैं तो अशुचि और दुःखरूप, और भगवान आत्मा तो पवित्र है, सुखरूप है। जो ज्ञान एवं आनन्दादि अनन्त गुणोंका पिण्ड है, पवित्रताका पुंज है उसे प्रभु आत्मा कहते हैं। वह निजात्मा ही परमपवित्र तीर्थ है। उसमें स्नान कर। अहा! पूर्ण शुद्ध आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा जोकि पवित्र, अतीन्द्रिय आनन्दका रसकन्द है उसमें स्नान कर। उसमें एकाग्रता करके आनन्दका स्वाद ले।

'आत्मा पवित्रतासे भरपूर है, उसके अन्दर उपयोग लगा।'

रुचि बाह्यमें होनेसे वर्तमान ज्ञानका व्यापार जो राग, पुण्य तथा परमें केन्द्रित है उसे, रुचि पलटाकर पवित्रताके पूर्ण धाम ऐसे निज ज्ञायक भगवानमें लगा दे। अहा! ऐसी बात है! आत्मा अंतरमें परमात्मस्वरूपसे बिराजमान है, स्वयं जिनस्वरूपी है। उस पवित्रताके धाममें—उस तीर्थमें जा, उसमें एकाग्रतारूपी स्नान कर, तो पर्यायमें शुद्धता प्रगट होगी और मलिनता मिट जायगी, निर्मलता एवं अतीन्द्रिय आनन्दकी दशा प्रगट होगी। अहा! उस पवित्र धाममें उपयोग लगा।

शुभ और अशुभ तो बाह्य उपयोग है, मलिन उपयोग है। अंतरमें भगवान आत्मा—उसका स्वभाव, उसकी शक्ति, उसका सत्त्व, उसके गुण—पवित्र है। अहा! ऐसा परम पवित्र प्रभु भीतर विद्यमान है, उसमें उपयोग लगा।

जिसप्रकार लैंडीपीपल रंगमें काली तथा स्वादमें थोड़ी चरपरी लगती है, परन्तु उसे घोंटनेसे रंगमें हरापन तथा स्वादमें चौंसठपुटी चरपराहट जोकि शक्तिरूपसे अन्दर पड़ी थी वह बाहर प्रगट होती है; उसीप्रकार भगवान आत्मा अंतरमें शक्तिरूपसे पूर्ण ज्ञान, पूर्ण

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दर्शन, पूर्ण शान्ति, पूर्ण आनन्द, पूर्ण ईश्वरता एवं पूर्ण स्वच्छता आदि अनन्त पवित्रताका एक परमधाम है, उसमें रुचि कर, उसीपर उपयोग लगा। ऐसा करनेसे तुझे पर्यायमें पवित्रता एवं आनन्द प्रगट होगा।

यदि तुझे आत्मकल्याण करना हो तो अंतरमें कल्याणमूर्ति प्रभु आत्मामें दृष्टि केन्द्रित कर। धर्मके नाम पर आजकल तो बहुत फेरफार हो गया है। स्वयं ही सत्, चिद् एवं आनन्दस्वरूप प्रभु है, और वह झाँक रहा है बाहर! अरे, शरीरमेंसे, स्त्रीमेंसे या पैसेमेंसे आनन्द आयगा—ऐसी मूर्खताका सेवन करके चार गतियोंमें चौरासीके अवतार कर रहा है।

इस आत्मामें अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द शक्तिरूपसे भरे पड़े हैं। लैंडी पीपलमें हरा रंग और चौंसठपुटी पूर्ण चरपराहट भरी है, बाहरसे काली और कम चरपरी लगती है; उसीप्रकार आत्माकी पर्यायमें पुण्य-पापरूप मलिनताकी कालिमा है, परन्तु मूल वस्तुस्वभावमें वह नहीं है। भगवान आत्मा उस मलिनतासे भिन्न शुद्ध ज्ञायकमूर्ति आनन्दघन है। प्रभु! वहाँ उपयोग लगा, परिणामको वहाँ जोड़ दे। अहा! वीतरागकी ऐसी वाणी है!

'आत्माके गुणोंमें सराबोर हो जा।'

अतीन्द्रिय ज्ञान एवं आनन्दादि अनन्त गुणस्वरूप पवित्रताका जो परमधाम है ऐसा सर्वोत्कृष्ट तत्त्व आत्मा स्वयं ही है। उसमें एकाग्र होकर निमग्न हो जा। उस ज्ञायक आत्मामें परिणाम लगानेसे, उसमें निमग्न होनेसे अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दका झरना झरेगा। उससे मलिनता दूर हो जायगी और निर्मलता प्रगट होगी।

प्रश्न :—यह निश्चयाभासकी बातें नहीं कही जायँगी?

उत्तर :—भाई! यह निश्चयकी बातें ही सत्यार्थ हैं। बाह्य तीर्थोंकी और यात्राके शुभभावकी बातें वह तो व्यवहार एवं राग है। अहा! तुझे अपने परमार्थतत्त्वकी, अपने बड़प्पनकी खबर नहीं है, उसका माहात्म्य नहीं है, इसलिये यह तुझे निश्चयाभास जैसा लगता है।

'आत्मतीर्थमें ऐसा स्नान कर कि पर्याय शुद्ध हो जाय और मलिनता दूर हो।'

भीतर शुद्ध चैतन्यधाममें जा, एकाग्र हो तो पर्यायमें जो मलिनता है उसका नाश हो जायगा और निर्मल दशा प्रगट होगी; उसका नाम धर्म है।

प्रश्न :—ऐसा धर्म कहाँसे निकला? या फिर नया बनाया है?

उत्तर :—प्रभु! नया नहीं है। भाई! तुझे धर्मके स्वरूपकी खबर नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निज परमानन्दका नाथ ऐसे त्रैकालिक ज्ञायकतत्त्वपर दृष्टि डालनेसे अंतरंग निर्मलदशा प्रगट हो और रागादि अशुद्धताका नाश हो जाय वह सच्चा वीतराग धर्म है। भाई! आत्मा कितना है, कैसा है, कौन है, उसकी तुझे खबर नहीं है। सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव दिव्यध्वनि द्वारा पुकारते हुए जगाते हैं कि—जाग रे! जाग! तू आनादिकालसे राग और पुण्य-पापके भावमें एकत्वबुद्धिपूर्वक सो रहा है; अपने आपको तूने कभी जगाया नहीं है। अरे! पुण्य-पापके दुःखभावमें जागृत रहकर अनादिसे दुःखके वेदनमें कराह रहा है; अब यदि तुझे अपना निर्मल वेदन–अनुभवन करना हो तो अंतरमें जहाँ पूर्ण शुद्ध चैतन्यवस्तु है वहाँ एकाग्रता कर! अहा! भाषा इतनी सरल! परन्तु भाव तो भाई, बहुत गहरे!... इसमें बाहरी पाण्डित्य या पढ़ाई काम नहीं आ सकती! अहा! अपनी वर्तमान पर्यायको त्रैकालिक स्वभावमें जोड़कर, भले ही ज्ञान अल्प हो, परन्तु त्रैकालिक ज्ञायकभावकी रुचि करनेसे, पर्याय उसमें ढलती है और उस समय जो निर्मल ज्ञानानन्द दशा प्रगट होती है उसे यहाँ धर्म तथा मोक्षमार्ग कहते हैं।

❃

वचनामृत-११०

परम पुरुष तेरे निकट होनेपर भी तूने देखा नहीं है। दृष्टि बाहरकी बाहर ही है॥११०॥

‘परम पुरुष तेरे निकट होनेपर भी तूने देखा नहीं है।’

शब्द अल्प हैं, परन्तु भाव बड़े ऊँचे हैं। तेरी चलती हुई विचारधारास्वरूप जो पर्याय है उसके समीप ही भीतर पूर्ण ध्रुवतत्त्व विद्यमान है; परन्तु उस बदलती पर्यायने उस ध्रुवतत्त्वको कभी देखा नहीं है। वह पर्याय परको, रागको तथा पुण्य-पापको देखती रहती है। मात्र परको देखनेका कार्य वह तो मिथ्याज्ञान और मिथ्याश्रद्धा है। अहाहा! अंतरमें देखना है। द्रष्टाको देखनेसे, ज्ञाताको जाननेसे, जिसकी सत्तामें—अस्तित्वमें—लोकालोक ज्ञात होते हैं वह सत्ता ज्ञान है।

किसी बड़े सेठसे मिलनेके लिये राजा आया हो, वहाँ सेठ अपने बच्चेको खिलानेमें समय गँवाये तो राजा उठकर चला जायगा। उसीप्रकार यह तीन लोकका नाथ चैतन्यप्रभु पर्यायके समीप विराजता है, परन्तु जीव रागके खेलमें रुकर उसे नहीं देखता। कहते हैं ना! कि—‘मारां नयणांनी आळसे रे, न नीरख्या हरिने जरी’। यहाँ हरिका अर्थ आत्मा लिया है। मिथ्यात्व, राग-द्वेष, प्रीत-अप्रीति आदि विभावभावोंको जो हरे, नाश करे, उस

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भगवान आत्माको हरि कहा जाता है। ऐसा आत्मा अंतरमें निकट ही है; परन्तु बहिरात्मबुद्धिने अंतर परम पुरुष ऐसे निज आत्माको कभी देखा नहीं है। निधान तो ऐसा है जो दृष्टिगोचर हो, परन्तु उसपर कभी दृष्टि ही नहीं डाली। अहा! वस्तु अनादिसे जाने बिना यों ही रह गई।

पुण्य-पापके भाव वह तो अचेतनमय अंधकार तत्त्व है। रंग—रसवाला अचेतनतत्त्व है; और पुण्य-पापके भाव वह रंग-रसवाला तत्त्व नहीं है, परन्तु उसमें चैतन्यका अंश न होनेसे वह अचेतन है। उस अचेतनके समक्ष भगवान पूर्णानन्दका नाथ, पूर्णप्रकाशमय चैतन्यचन्द्र—ऐसा तेरा तत्त्व तेरे निकट है। एक समयकी पर्यायके निकट पूर्ण ध्रुव ज्ञायकतत्त्व है, परन्तु तूने उसे कभी देखा नहीं है।

भाई! अनंतकालमें ऐसा मनुष्यभव तुझे प्राप्त हुआ। भीतर ज्ञायक भगवान तेरी वर्तमान पर्यायके समीप ही विराज रहा है। अरे, बैठा है ना! परन्तु तेरी दृष्टि दोषके कारण वह तुझे दिखायी नहीं देता। तेरी दृष्टि रागमें, पुण्यमें और उसके फलमें लगी है; उसमें तू अटक गया है। अहाहा! एकसमयकी पर्याय और रागकी रुचिकी ओटमें, निकट बैठा हुआ भगवान तुझे दिखायी नहीं देता।

अनंतबार दिगम्बर मुनि हुआ; वहाँ व्रतादिके शुभपरिणामोंमें संतुष्ट हो गया कि 'हमने बहुत कर लिया।' परन्तु वह तो अज्ञान है।

'दृष्टि बाहरकी बाहर ही है।'

अहा! यह तो मंत्र हैं प्रभु! बेनने अपनी सरल भाषामें यह प्रगट किये हैं। भगवान पूर्णानन्दस्वरूप है उस ओर देखनेका अवकाश नहीं निकालता; और उसे देखे बिना कभी धर्म नहीं होता; क्योंकि—'ज्ञाता स्वयं परिपूर्ण है' वह दृष्टिमें न आये तो 'काहेमें और कहाँ स्थिर होना?' यह बात ही नहीं रहती। रागकी क्रिया करके रागमें स्थिर हो वह तो अज्ञान है। अहा! बड़ा काम है भाई!

आत्माको परम पुरुष कहा। पुरुषका अर्थ **पुरुषार्थसिद्धयुपायमें** कहा है कि—**पुरौ शेते इति पुरुषः** ज्ञान, आनन्दादि अपने गुणोंके पुरमें—नगरमें शयन करे, निवास करे वह पुरुष है। पुरुषरूप शरीरके लिंगकी यहाँ बात नहीं है; वह तो मिट्टी, जड़, पुद्गल है। भगवान परमपुरुष चैतन्य एवं आनन्दादि अपने स्वरूपमें रमे उसीको राम कहते हैं; अपने चैतन्यस्वरूपसे च्युत होकर रागमें रमे उसे हराम कहते हैं। समझमें आया कुछ? कठिन लगेगा भाई! लेकिन क्या किया जाये? मार्ग ही ऐसा है।

भाई! जन्म-मरण कर-करके हैरान हो गया! वह दुःख कैसा कैसा होगा? ऐसे जन्म-मरण एकबार नहीं किन्तु अनंतबार हुए हैं। तेरा अस्तित्व, उपस्थिति अनादिकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। तू कोई नया नहीं हुआ है। उस अनंतकाल तक तू कहाँ रहा है भाई? ऐसे भवभ्रमणके दुःखोंमें रहनेपर भी मानता रहा कि हम सुखी हैं। दस-बीस लाख रुपये हो गये हों, लड़के अच्छे हों, बँगला—मोटर हो, तो मान बैठता है कि—'हम सुखी हैं!' सुखकी व्याख्या क्या है भाई? यह रुपया–पैसा, स्त्री–परिवार हर प्रकारकी सुविधा होना क्या सुख है? लाखोंकी सम्पत्ति और सुन्दर स्त्री मिलनेसे सुख होता है?—अरे, परवस्तुका तो यह जीव स्पर्श भी नहीं करता। अज्ञानी अपने आनंदस्वरूपको भूलकर स्त्री, पुत्र, धन-धान्यादिकी सुविधा मिलनेसे 'यह अच्छा है'—ऐसा विकल्प करके उस विकल्प–रागका अनुभव करता है। अरूपी आत्मा स्त्रीके मूर्तिक शरीरका कैसे उपभोग करेगा? स्त्रीके विषयमें स्त्रीके शरीरको नहीं भोगता, किन्तु उस प्रकारके अपने रागको भोगता है। उसीप्रकार बिच्छूके काटनेपर बिच्छूके डंकको नहीं अनुभवता परन्तु 'यह ठीक नहीं है' ऐसे द्वेषका अनुभव करता है। क्या ज्ञानमूर्ति आत्मा लड्डू, रसगुल्ले या आइसक्रीम आदि खा सकता है? वे सब तो रूपी पुद्गल हैं प्रभु! और तू अरूपी है। अरूपी रूपीका स्पर्श कैसे कर सकता है? वे सब तो ज्ञानके ज्ञेय हैं। उन्हें ज्ञेयरूप न जानकर 'यह मुझे अनुकूल हैं', 'इनमें मुझे आनन्द मिलता है',—ऐसा इष्टपना मानकर तू अपने रागको वेदता है। उनमें कहीं तेरा सुख नहीं है, सुख तो भीतर तेरे स्वभावमें है। आया कुछ समझमें?

शास्त्रमें विशल्याकी बात आती है। पूर्वभवमें चक्रवर्तीकी पुत्री थी। पूर्वभवके बैरके कारण एक विद्याधर उसे उठा ले जाता है और जंगलमें छोड़ देता है। वहाँ उसे अजगर निगल जाता है। समाधिपूर्वक देहत्याग करनेसे ऐसा पुण्य बँधता है—ऐसी लब्धि प्रगट होती है कि—उसके स्नानका जल छिड़कनेसे किसीकी भी मूर्च्छा उतर जाय। रावणने जब लक्ष्मणको शक्ति मारी और वे मूर्च्छित हो गये। पुरुषोत्तम पुरुष रामचन्द्रजी ज्ञानी महात्मा हैं, उसी भवमें मोक्ष जानेवाले हैं; वे भी रागदशाके कारण विह्वल हो जाते हैं और विलाप करते हैं कि—हे भाई लक्ष्मण! जागो; यह क्या हो गया तुम्हें?....क्या तुम मुझे छोड़कर चले जाना चाहते हो?....माताएँ पूछेंगी तब मैं क्या जवाब दूगाँ?.... उन्हें कैसे अपना मुँह दिखाऊँगा?.....

आये थे हम तीन, अकेला कैसे मैं जाऊँगा?
मताओंको अपना मुँह कैसे मैं दिखलाऊँगा?
कुछ तो मुझे बताओ.....जागो भाई जागो!

रामचन्द्रजीको विशल्याकी लब्धिका पता चलता है और उसे बुलवाते हैं। विशल्याके आते ही उसके शरीरका स्पर्श करके आती हुई वायुके स्पर्शमात्रसे हजारों

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मूर्च्छित सैनिक सचेत होने लगते हैं तथा उसका पानी छिड़कते ही 'कहाँ गया रावण?' कहते हुए लक्ष्मण मानों निद्रासे जाग उठे हों! फिर तो लक्ष्मणने रावणको मारा। अहा! ऐसा जन्म-मरणका चक्र तो अनादिसे चल रहा है; परन्तु अंतरमें भगवान आत्माको कभी जागृत नहीं किया। चैतन्यकी जगमगज्योति, शान्तिकी शीतलतासे भरपूर वीतराग जिनचन्द्र प्रभु, भीतर तेरे पास ही है भाई! तूने उसे कभी देखा नहीं है। दृष्टि बाहरकी बाहर ही है। आया कुछ समझमें?...

अरे! दिगम्बर मुनि हुआ, पंचमहाव्रतादिका पालन भी किया किन्तु दृष्टि राग तथा परके ऊपर ही रही। दौलतरामजीने छहढालामें कहा है कि—

मुनिव्रत धार अनंतबार ग्रीवक उपजायो;
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।

पंचमहाव्रतके परिणाम भी शुभराग है और दुःख है। भगवान अतीन्द्रिय आनन्दका सागर अंतरमें लहराता है, उसका स्पर्श—अनुभव नहीं किया और ब्रह्मचर्यादि व्रतोंके रागका वेदन किया, दुःखका वेदन किया; आत्माका सुख लेशमात्र भी प्राप्त नहीं किया। सच्चिदानन्दस्वरूप ज्ञायक आत्माकी ओर उसने नहीं देखा। ज्ञाताने अपनेको जाना नहीं और दूसरोंको जाननेमें अटक गया। ज्ञातातत्त्वमें अनंत निधान हैं। राग एवं पर्यायके समीप ही ध्रुव चैतन्यनिधान विद्यमान है। साधु बना तथापि तूने अपना निधान नहीं देखा। अभिमान किया कि—'हम साधु हैं, त्यागी हैं'; भाई! अभी आत्माकी ही खबर नहीं है वहाँ त्यागी कैसा?

शुद्धचैतन्यको ग्रहण करनेपर अंतरमें शान्तिकी उत्पत्ति हो और 'रागकी उत्पत्ति न हो', तब 'रागका नाश किया' ऐसा व्यवहारसे कहा जाता है। वास्तवमें तो नाश किया ही नहीं है। अंतर्स्वरूपमें स्थिर हो तो वहाँ इस प्रकारका भाव उत्पन्न ही नहीं होता। समयसारकी ३४वीं गाथामें कहा है कि—ज्ञान प्रत्याख्यान है। स्वरूपपर दृष्टि जानेसे मिथ्यात्व एवं रागद्वेषकी उत्पत्ति न हो उसे व्यवहारसे प्रत्याख्यान अथवा नाश कहा जाता है। निश्चयसे उत्पन्न ही नहीं हुआ तो नाश किया कहाँसे? आया कुछ समझमें?

परम पुरुष तेरे समीप ही होनेपर भी तूने देखा नहीं है। दृष्टि तथा वृत्ति बाहर ही रह गई। मुनि हुआ तथापि राग एवं पुण्यकी क्रियामें अटक गया और माना कि 'मैंने बहुत किया'। सम्यग्दृष्टिको आत्मा हाथ लगा, ज्ञात हुआ, अनुभवमें आया; वह कहता है कि मुझे अभी बहुत करना शेष है। मुझे तो अभी स्वरूपस्थिरताका तीव्र पुरुषार्थ करना है। अहा! ऐसी बात है! सुनना भी कठिन लगे ऐसा है। बहुत

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

फेरफार हो गया है भाई! जिससे जन्म-मरणरहित दशा प्रगट हो ऐसा जो सम्यग्दर्शन—आत्मदर्शन, उसके विषयभूत पूर्णानन्दके नाथको जानकर जिसने प्रतीतिमें लिया कि—'यह भगवान आत्मा है' उसको कल्याणका प्रारम्भ हो गया, दुःखके अभावकी शरूआत हो गई। उसे मोक्ष अर्थात् पूर्ण परमानन्दकी प्राप्ति होगी। आया कुछ समझमें?

*

वचनामृत-१११

परमात्मा सर्वोत्कृष्ट कहलाता है, तू स्वयं ही परमात्मा है ॥ १११ ॥

'परमात्मा सर्वोत्कृष्ट कहलाता है।'

इस जगतमें परमेश्वरको सबसे ऊँचा कहते हैं। बात भी सच है; परन्तु वह है कौन?

'तू स्वयं ही परमात्मा है।'

कैसे बैठे यह बात? अतीन्द्रिय ज्ञान, दर्शन, आनन्दादि अनंत गुणोंका पिण्ड ऐसा जो तेरा स्वरूप वही सर्वोत्कृष्ट है, परमात्मा है। तू यदि परमात्मा न हो तो सर्वज्ञस्वरूप परमात्मदशा आयगी कहाँसे? क्या वह कहीं बाहरसे आने जैसी है? प्राप्तकी प्राप्ति होती है; है उसमेंसे प्रगट होती है।

अहा! महाविदेहमें प्रभु समवसरणमें बिराज रहे हैं। सौ-सौ इन्द्र और जंगलमेंसे सैकड़ों बाघ तथा केसरी सिंहोंकी टोलियाँ वाणी सुनने आते हैं। अहा! परमात्माकी वह वाणी कैसी होगी? सर्वज्ञ परमात्मा ऐसा कहते हैं कि—इस जगतमें जो परमात्मा कहा जाता है वह कौन है? तो कहते हैं कि तू स्वयं ही परमात्मा है। पर्यायमें प्रगट परमात्मा हुए हैं; परन्तु वह पद आया कहाँसे? स्वयं शक्ति-अपेक्षासे परमात्मस्वरूप है, उसमेंसे परमात्मपर्याय आयी है।

अहा! जीवने अपनेको पामररूपसे स्वीकार किया है कि—मैं दयाका पालन करता हूँ। अरे, प्रभु! तू रागकी क्रिया करनेवाला है? ज्ञायक चैतन्यज्योतिको रागका कर्तृत्व सौंपना वह तो अज्ञान तथा मिथ्याभ्रम है। सर्वोत्कृष्ट जो परमात्मा कहलाता है वह तू स्वयं है—ऐसी श्री जिनेश्वरदेवकी घोषणा दिव्यध्वनि द्वारा गणधरों और इन्द्रोंके समक्ष हुई है।

अहा! भगवानकी वह वाणी कैसे बैठे? आनन्दधाम ऐसी अपनी वस्तुको तूने दृष्टिमें नहीं ली। वह वस्तु स्वयं परमात्मा है, परमस्वरूप है, वही तेरा स्वरूप है। उस स्वरूपसे तू भिन्न नहीं है। शरीर और राग-द्वेष तो दूर रह गये, परन्तु उन्हें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जाननेवाली पर्याय भी आत्माका त्रैकालिक ध्रुवस्वरूप नहीं है। अहा! यह तो अंतरकी बातें हैं भाई! कहा है ना!—

थिरता एक समयमें ठाने, उपजै-विनसै तब ही;
उलट-पुलट ध्रुव सत्ता राखे, या हम सुनी न कब ही।

पर्यायमें उत्पाद-व्यय हैं, वस्तुरूपसे जो त्रिकाल है वह ध्रुव है। चौदह ब्रह्माण्डरूप नगरमें आत्मारूपी नट चार गतियोंमें भटकता फिरा।

'अवधू! नटनागरकी बाजी, जानै न ब्राह्मण काजी।'

ब्राह्मण अर्थात् वेद, और काजी अर्थात् कुरान। भगवानकी देखी हुई यह बात वेदमें या कुरानमें कहीं नहीं है। अहाहा! यह तो त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेवको एकसमयमें तीनकाल और तीनलोक एकसाथ ज्ञात हुए, उसमें यह बात आयी है। दूसरोंने जाना ही कहाँ है? भाई! भगवानने जिसे देखा वह परम पुरुष तू स्वयं ही परमात्मा है। अहाहा! 'मैं तो वस्तुरूपसे पूर्ण परमात्मा हूँ, वर्तमानमें जो पर्याय है वह भले अल्प हो परन्तु वस्तुस्वरूप तो सदा पूर्ण है'—ऐसी दृष्टि अंतरमें होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है।

*

यह (वचनामृत) पुस्तक ऐसी आयी कि चाहे जितने शास्त्र हों, इसमें एक भी बात बाकी नहीं है। थोड़े शब्दोंमें द्रव्य-गुण-पर्याय, व्यवहार-निश्चय आदि सब आ गया है। जगतके भाग्य हैं कि ऐसी सादी भाषामें यह पुस्तक प्रकाशित हो गई। वीतरागताके भावका रटन और मंथन है। सारे देशमें ढिंढोरा पिटेगा। ज्यों ही पुस्तक हाथमें आयी त्यों ही कहा कि एक लाख छपना चहिये।

—पूज्य गुरुदेव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन-४०

ता. १७-७-७८

वचनामृत-११२

सहज तत्त्व अखण्डित है। चाहे जितना काल गया, चाहे जितने विभाव हुए, तथापि परम पारिणामिक भाव ज्योंका त्यों अखण्ड रहा है; कोई गुण अंशतः भी खण्डित नहीं हुआ है॥११२॥

'सहज तत्त्व अखण्डित है।'

क्या कहते हैं? कि आत्मा—स्वाभाविक वस्तु—अखण्ड है। उसमें राग और ज्ञानकी खण्ड-खण्ड दशा नहीं है। वस्तु अखण्ड है, अभेद है, अनादि-अनंत ध्रुव पूर्ण एक वस्तु है। उस पर चाहे जितना काल गया, चाहे जितने विकार हुए—अगृहीत मिथ्यात्वके तथा ३६३ पाखण्डवाले गृहीत मिथ्यात्वके और अनेक प्रकारके पुण्य-पापके विभाव हुए—तथापि त्रैकालिक सहज अखण्ड तत्त्वमें वह कुछ नहीं है; वे विकार तो उसकी पर्यायमें थे। अरे! 'मैं आत्मा नहीं हूँ' ऐसे नास्तिकताके मिथ्यात्वभाव पर्यायमें हुए; परन्तु सहज अखण्ड आत्मतत्त्वमें उनका प्रवेश नहीं हुआ है।

सम्यग्दर्शनका जो विषय है, सम्यग्दृष्टिका जो आलम्बन है, ध्यानीके ध्यानका जो ध्येय है, वह तो अनादि-अनंत एक अखण्ड है। चाहे जितना काल गया और चाहे जितना विभावभाव हुआ, वस्तु तो जो है वह सहज अखण्ड है। मिथ्यात्व एवं अज्ञानकी पर्याय है तो उसकी; परन्तु वह पर्यायअंश है, अखण्ड तत्त्वमें वह नहीं है। सूक्ष्म विषय है भाई! कैसे बैठे?

अनन्तकालमें, अनन्तभवमें उस अखण्ड तत्त्व पर जीवकी दृष्टि ही नहीं गई है। वर्तमान पर्यायके खेलोंमें उसने हजारों रानियाँ छोड़ीं, घरबार छोड़े, मुनिपनेकी क्रियाएँ कीं, छह-छह महीनेके उपवास किये; वे सब क्रियाएँ तो रागकी मन्दता की हैं, उन्हें धर्म मानना मिथ्यात्व है। पर्यायमें मिथ्यात्व, रागादि होनेपर भी त्रैकालिक अखण्ड तत्त्वमें उनका प्रवेश नहीं हुआ। अहा! ऐसी वस्तु है!

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'चाहे जितना काल गया, चाहे जितने विभाव हुए, तथापि परम पारिणामिकभाव ज्योंका त्यों अखण्ड रहा है; कोई गुण अंशतः भी खण्डित नहीं हुआ है।'

परमपारिणामिकभाव अर्थात् ज्ञायकभाव, स्वाभाविक सहज परमस्वभावभाव है, और औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक तथा क्षायिक वे तो पर्यायभाव हैं। औदयिक राग-द्वेष, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, औपशमिक सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व और केवलज्ञान आदि सब पर्यायें हैं। त्रैकालिक ध्रुव अखण्ड वस्तुमें वे पर्यायें हैं ही नहीं।

चाहे जितने विभाव हुए, तथापि परम पारिणामिकभाव प्रभु ज्योंका त्यों अखण्ड रहा है; क्योंकि अनन्त-अनन्त गुणमय ध्रुवधाम तो चाहे जितना काल बीत गया और चाहे जितने विभाव हुए तथापि, जो है वही है। विभावके खेल पर्यायमें हैं द्रव्यमें नहीं हैं। उस पर्यायरहित द्रव्यको पकड़ना सो द्रव्यदृष्टि; अर्थात् द्रव्यको पकड़कर अनुभव करना उसका नाम सम्यग्दर्शन वह धर्मका प्रारम्भ है; उसके बिना सब थोथा अर्थात् व्यर्थ है।

यहाँ परमपारिणामिकभाव अर्थात् परम ज्ञायकभाव। उसरूप जो तत्त्व है वह अखण्ड है। वैसे परमपारिणामिकपना तो परमाणुमें भी होता है। यहाँ तो जीवके सहज स्वाभाविक पारिणामिक भावकी बात है। पंचास्तिकायकी ५६वीं गाथाकी टीकामें कहा है—**'परिणामेन युक्तः पारिणामिकः'** वस्तुके स्वरूप-लाभका जो हेतु है वह परिणाम है। पारिणामिक अर्थात् पर्याय सम्बन्धी—ऐसा नहीं। द्रव्यके स्वरूप-लाभका अर्थात् द्रव्यके सहज तत्त्वका—अस्तित्वका हेतु उसे परिणाम कहते हैं। ऐसे सहज अस्तित्वस्वरूप परिणामसे जो युक्त हो उसे पारिणामिकभाव कहते हैं। उस परम पारिणामिकभावमें बिगाड़ या सुधाररूप कोई पर्याय नहीं है। वह तो पवित्र अखण्डानन्दमय प्रभु एकस्वरूप शुद्ध है।

दूसरी ओर ऐसी व्याख्या की जाती है कि—**'द्रवति इति द्रव्यम्।'** जिसप्रकार पानीमें तरंगें उठती हैं उसीप्रकार जो पर्यायको द्रवित करे वह द्रव्य है। तथा श्री पंचास्तिकायमें आता है कि—स्वभाव-पर्यायरूपसे या विभाव-पर्यायरूपसे परिणमित हो वह द्रव्य है। वस्तुके सामान्यगुणोंके वर्णनमें भी आता है कि—द्रव्यत्वगुणके कारण वस्तु द्रवित होती है अर्थात् बदलती है, परिणमती है, उथलपुथलरूप होती है।—यह तो वस्तुकी पर्याय-अपेक्षासे बात की है, वस्तुकी पहिचान करानेके लिये पर्याय-अपेक्षासे उसका वर्णन किया है। वैसे निश्चयसे तो ऐसा है कि—वस्तु परिणमनमें नहीं आती। विकारकी या स्वभावकी पर्यायमें वस्तु नहीं आती। सम्यग्दर्शनके ध्येयभूत ध्रुववस्तु है वह स्वयं नहीं परिणमती; वह तो त्रिकाल ध्रुव अखण्डस्वरूप है। सम्यग्दर्शनके विषयभूत अखण्ड तत्त्वकी यह बात है। पर्यायकी चाहे जितनी उपाधि गई, वस्तुमें कोई खण्ड नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हुआ। उसपर दृष्टि देनेसे सम्यग्दर्शन होता है; तब धर्मका प्रारम्भ होता है।

ऐसा अखण्ड द्रव्य है उसमें कोई गुण अंशतः भी खण्डित नहीं हुआ है। विकार वह तो पर्यायकी बात है। भाषा बड़ी मीठी है, सादी गुजराती है। समझनेके लिये थोड़ा समय निकालना चाहिये। वह अखण्ड वस्तु स्वभावसे सहज है, अकृत्रिम है, अनिर्मित है। उस वस्तुको चाहे जितना काल गया, परन्तु उसे काल लागू नहीं होता।

काल अनादि है, केवली भी अनादिसे हैं। तीनकालमें त्रिकाल ज्ञाताओंका कभी विरह नहीं होता। इसलिये अनादिकालसे केवलज्ञानी और सिद्ध होते आ रहे हैं। इसप्रकार अनेक सिद्ध अनंतकाल पहले हुए, कुछेक सिद्ध कुछ काल पहले ही हुए हैं। जो अनंतकाल पूर्व सिद्ध हुए हैं उनका कुछ काल विभावमें—अशुद्धिमें गया और जो कुछ काल पहले सिद्ध हुए उनका बहुत काल विभावमें—अशुद्धिमें गया, तथापि जो जल्दी सिद्ध हुए उनके द्रव्यमें अल्प खण्डितता हुई और जो बादमें सिद्ध हुए उनके द्रव्यमें अधिक खण्डितता हुई ऐसा कदापि नहीं है। सबका द्रव्य तो परिपूर्ण एकसमान अखण्ड रहा है। कुछ जीव अभी भविष्यमें दीर्घकाल तक संसारमें विभावका खेल खेलकर सिद्ध होंगे; उनका द्रव्य भी ज्योंका त्यों अखण्ड रहेगा।

सम्यग्दर्शन और उसका विषय अलौकिक है। लोगोंको वर्तमानमें उसका खयाल ही नहीं आता। बस, कर्तृत्वबुद्धिसे परको ग्रहण करना और छोड़ना! कर्तृत्वबुद्धि तो मिथ्यात्व है। ऐसे मिथ्यात्वके भाव अनंतकालमें सिरपर बीत गये तथापि मूल वस्तु तो अखण्ड अभेद विद्यमान है; है वह है। क्या कहते हैं? आता है यह कुछ समझमें? यह पर्याय पारिणामिक भावके—द्रव्यस्वभावके ऊपर तैरती है। चाहे जितना काल और चाहे जितनी विकारी दशाएँ बीत गई और अभी भी वर्त रही हैं, तथापि सहज भगवान आत्मा वस्तु—तो अखण्ड है। अहा! कैसे बैठे यह बात?

'मैं आत्मा हूँ ही नहीं' ऐसा नास्तिकताका तीव्र मिथ्यात्वभाव भगवान आत्मामें हुआ, तथापि वस्तु तो अखण्ड है। 'भग' अर्थात् अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत आनन्द और अनंत वीर्य आदि स्वरूपलक्ष्मी; 'वान' अर्थात् वाला। ऐसी स्वरूपलक्ष्मीवाला भगवान आत्मा—द्रव्य—तो अनादि अनंत अखण्ड ही है। उसमें विभावपर्यायके अनेक भेद बीत गये तथापि वस्तुमें भेद आ गया, खण्ड हो गया—ऐसा नहीं है। उस सहज अखण्ड तत्त्वपर दृष्टि करना—उसमें अनंत पुरुषार्थकी आवश्यकता है। जो वीर्य पुण्य-पापमें उन्मुख होकर नपुंसकरूपसे कार्य करता है उस वीर्यकी वर्तमान पर्यायको अंतरमें अखण्ड स्वभावोन्मुख करना चाहिये। ऐसा करनेसे दृष्टिमें अखण्डका पता लगेगा, और तब तुझे आनन्द एवं शान्ति प्राप्त होगी।

धर्मको प्राप्त जीवका लक्षण यह है कि—अखण्ड ज्ञायक तत्त्वपर दृष्टि जानेसे उसकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर्यायमें अनन्तकालमें नहीं आयी ऐसी अपूर्व शान्ति आती है। अशान्ति थी तब, तथा अपूर्व शान्ति प्रगट हुई तब, ध्रुववस्तु तो अखण्ड एकरूप ही है। परम-पारिणामिक भाव सदा अखण्ड है अर्थात् औदयिकादि चार भावोंका उसमें प्रवेश नहीं है; द्रव्यस्वभावका वे स्पर्श नहीं करते। द्रव्य रागका स्पर्श नहीं करता; अरे! केवलज्ञानकी एक समयकी पर्यायको भी ध्रुवतत्त्व स्पर्शता—छूता नहीं है।

प्रश्न :—अखण्ड ज्ञायक तत्त्वपर अपूर्वतासे दृष्टि जाय उसी क्षण आनन्द आता है या बादमें?

उत्तर :—उसी क्षण आता है, तथापि आनन्दकी पर्यायको अखण्ड ध्रुवतत्त्व स्पर्शता नहीं है। मिथ्यात्व दूर होकर सम्यग्दर्शन हुआ और दुःखका अल्प अंश दूर होकर पर्यायमें आनन्दका अंश आया, तथापि वस्तु तो अखण्ड ही है। असंख्यातप्रदेशी द्रव्यमें उसकी पर्याय ऊपर-ऊपर है, वह पर्याय भीतर ध्रुवमें प्रविष्ट नहीं हुई है।

प्रश्न :—ज्ञानी तीन-तीन रेशमी कोमल गद्दों पर सोये तब भी वह सम्यग्दृष्टि, और हम दरी बिछाकर नीचे सोयें फिर भी मिथ्यादृष्टि?

उत्तर :—भाई! यह वस्तु कोई भिन्न है। गद्दे आदि बाह्य वस्तुओंके साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं है। चक्रवर्तीको ९६ हजार रानियोंका संयोग हो, इन्द्रको करोड़ों अप्सराओंका संयोग हो परन्तु उससे आत्माको कोई सम्बन्ध नहीं है; क्योंकि ज्ञानीकी दृष्टि मात्र द्रव्यस्वभाव पर पड़ी है; अंतरमें निरन्तर भेदज्ञानकी धारा बहती है। धर्मीकी वह भेदज्ञान धारा रागका भी स्पर्श नहीं करती। अहा! ऐसी बातें हैं! अभी मूल वस्तुको समझे बिना ऊपरी बातोंसे तत्त्व कहाँसे पकड़में आयगा?

यहाँ तो कहते हैं कि कोई गुण अंशतः भी खण्डित नहीं हुआ है। उसकी पर्यायमें चाहे जो विकार हो परन्तु गुणमें खण्ड नहीं है। विकार पर्यायमें है। गुण कहो या गुणी—द्रव्य कहो, दोनों ध्रुव हैं। द्रव्य अखण्ड है उसीप्रकार गुण भी अखण्ड है। पहले कहा—'सहज तत्त्व अखण्डित है', और अब कहते हैं कि—उसका 'कोई गुण अंशतः खण्डित नहीं हुआ है।' गुण है सो है। जिस प्रकार वस्तु एकरूप अनादि है उसीप्रकार गुण भी अनादि एकरूप है; उसमें विकृत अवस्था प्रविष्ट नहीं हुई है। विकृत अवस्था हुई इसलिये गुण हीन हो गया है—ऐसा नहीं है। शक्तिका मूल सत्त्व अंशतः भी खण्डित नहीं हुआ है। आया कुछ समझमें?

ऐसा यह गहन तत्त्व है! शब्द हैं सादा! मेरे विचारसे तो लोग मध्यस्थ होकर पढ़ेंगे, तो उन्हें लगेगा कि यह बात तो कोई विशेष है! बिलकुल सादी भाषामें सम्पूर्ण तत्त्व अंदर समा गया है।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत-११३

मुनि एक-एक अन्तर्मुहूर्तमें स्वभावमें डुबकी लगाते हैं। अंतरमें निवासके लिये महल मिल गया है, उसके बाहर आना अच्छा नहीं लगता। मुनि किसी प्रकारका बोझ नहीं लेते। अन्दर जायँ तो अनुभूति और बाहर आयें तो तत्त्वचिन्तन आदि। साधकदशा इतनी बढ़ गई है कि द्रव्यसे तो कृतकृत्य हैं ही परन्तु पर्यायमें भी अत्यन्त कृतकृत्य हो गये हैं ॥११३॥

'मुनि एक-एक अन्तर्मुहूर्तमें स्वभावमें डुबकी लगाते हैं।'

मुनि उन्हें कहते हैं जो अन्तर्मुहूर्तमें—अल्पकालमें—छठवेंसे सातवें—भीतर अप्रमत्तदशामें चले जाते हैं। गुणोंके अगाध समुद्रमें उसके धरातलमें जो पहुँच गये हैं, जिनकी दृष्टि ध्रुव ज्ञायकतत्त्वको प्राप्त हो गई है, तदुपरान्त जिन्हें आनन्दकी स्थिरता जम गई है ऐसे मुनि एक-एक अन्तर्मुहूर्तमें स्वभावमें—आनन्दकी दशामें—डुबकी लगाते हैं, अर्थात् उन्हें उग्र आनन्द प्रगट होता है। अतीन्द्रिय आनन्दका अनुभव हुआ है उनको भी जब पंचमहाव्रतका विकल्प आता है तब वह भी बोझ है, दुःख है। बाह्यमें आयें तब भी दृष्टि तो ध्रुव पर लगी है। दूसरे ही क्षण फिर भीतर चले जाते हैं, दृष्टि जहाँ है उस द्रव्यमें लीनता करते हैं।

मुनिपनेमें छठवें-सातवें गुणस्थानका काल अंतर्मुहूर्त है वह सामान्य कथन है, परन्तु श्रेणी चढ़नेसे पूर्वके अंतर्मुहूर्तमें तो हजारों-हजारों बार छठवें-सातवें जायें–आये ऐसा पाठ 'धवला' टीकामें है। अंतरमें विकल्प आया परन्तु फिर उसे छोड़कर भीतर डुबकी लगाते हैं। पंचमहाव्रतका विकल्प आये, परन्तु वहाँ उन्हें अच्छा नहीं लगता, रुचता नहीं है; व्रतका विकल्प उठता है वह दुःख है।

४८ मिनिटमें २८८० सेकंड होते हैं। हजारों बार छठवें-सातवें जानेमें यदि २८८० सेकंड लगें तो एकबार जानेमें कितना समय लगेगा। पौन सेकण्डसे भी कम समय लगेगा। मुनि छठवेंमें आते हैं और एकदम सातवेंमें घुस जाते हैं– अतीन्द्रिय आनन्ददशामें डुबकी लगाते हैं; उसे मुनिदशा कहा जाता है। उन्हें **'णमो लोए सव्वसाहूणं'**में नमस्कार किया जाता है। जिनके अंतर्दृष्टि हुई है, अनुभवमें आनन्दका नाथ आया है और आनन्दमें चरना–रमना ऐसा चारित्र जिनके हुआ है ऐसे संत बाह्यसे विमुख होकर स्वभावमें डुबकी लगाते हैं। वे चलते-फिरते दिखें, घन्टा–पौन घन्टा बोलते दिखाई दें, तथापि उसी समय भी क्षण-क्षण अंतर्आनन्दमें डुबकी लगाते रहते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रश्न :—मुनिको तो बहुत सरल हो गया है?

उत्तर :—सरल किस प्रकार हुआ है? स्वयं पुरुषार्थसे चारित्र प्रगट किया है, इसलिये सरल हो गया है सम्यग्दर्शनके उपरान्त स्वरूपका उग्र–तीव्र आश्रय लेकर जिन्होंने अंतरमें चारित्र प्रगट किया है ऐसे सन्तोंको–मुनियोंको बारह अंग तथा चौदह पूर्वकी अंतर्मुहूर्तमें रचना करनेवाले गणधरका भी नमस्कार पहुँचता है। अहा! वह मुनिदशा कैसी होगी भाई!

केवलज्ञानी भगवान राजा हैं और गणधर उनके मंत्री, भगवानके मंत्रीका वंदन जिनको पहुँचता हो वे संत कैसे होंगे भाई! कोई कहते हैं कि—'णमो लोए सव्वसाहूणं' में 'सर्व'के अर्थमें अन्यमतके साधु भी लेना चाहिये। वह बात झूठी है; उसमें अन्यमती साधुओंकी बात ही नहीं है। लोकमें सर्व भिन्न-भिन्न क्षेत्रमें वर्तते हों उन सबको नमस्कार करता हूँ—ऐसा अर्थ है। इसलिये जैनदर्शनके संत जो भिन्न-भिन्न क्षेत्र और कालमें हों उन्हें यह नमस्कार लागू होता है; अज्ञानियोंको लागू नहीं होता।

मुनि शीघ्र-शीघ्र स्वरूपमें डुबकी लगाते हैं—आनन्दमें सराबोर हो जाते हैं। विकल्पके कालमें भी आनन्द तो है, परन्तु अन्तरोन्मुख हों तब तो आनन्द....! आनन्द....! विशेष आनन्द है। आनन्दका वेदन करते हैं परन्तु 'आनन्दको वेदता हूँ, अनुभवता हूँ'—ऐसा भी विकल्प वहाँ नहीं है। जबतक स्वभावकी महिमा न आये तबतक रागके—बाह्य दया–दानके—विकल्पकी महिमा नहीं छूटती।

अरे! द्रव्यकी ऐसी शक्ति और ऐसा सत्त्व अखण्ड है, उसकी महिमा एवं आश्चर्यकारी स्थिति जिसके ख्यालमें न आये उसकी पर्यायबुद्धि नहीं टूटती, पर्यायके प्रति महिमा नहीं छूटती। अहा! एक समयकी पर्यायके निकट, उसी क्षेत्रमें अखण्ड तत्त्व विद्यमान है। उस क्षेत्रमें भले ही विकारका अथवा पर्यायका अंश भिन्न हो; परन्तु दूसरा स्वभावका अंश उसी क्षेत्रमें वहींका वहीं है; उसीमें मुनि विराजमान हैं। उसमें जो स्थिर होता है उसे बाहर आना अच्छा नहीं लगता।

४०१वें बोलमें आता है कि–ज्ञानीका परिणमन विभावसे विमुख होकर स्वरूपकी ओर ढल रहा है। ज्ञानी निजस्वरूपमें परिपूर्णरूपसे स्थिर हो जानेको तरसते हैं। इसी समय स्वरूपमें पूर्णरूपसे स्थिर होकर केवलज्ञान होता हो तो हमें और कुछ नहीं चाहिये। जिसने दृष्टिमें निज भगवानको लिया, पूर्णानन्दका नाथ ऐसे अचिन्त्य अखण्ड तत्त्वकी जिसे प्रतीति हुई और ज्ञानमें प्रत्यक्षरूपसे उसका स्वाद आया वह ज्ञानी अंतरमें जानेको तरसता है। यह विभावभाव हमारा देश नहीं है। पंचमहाव्रतादि शुभका विकल्प उठे वह हमारा देश नहीं है। इस परदेशमें हम कहाँसे आ पहुँचे? हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यग्दृष्टिको रागमें आना अच्छा नहीं लगता। यह तो परदेश है। यहाँ हमारा कोई नहीं है। दया, दान, व्रत और भक्ति आदिके परिणामोंमें हमारा कोई नहीं है। वह बोल आयगा तब विस्तार करेंगे। जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्यादि अनंतगुणरूप हमारा परिवार निवास करता है वह हमारा स्वदेश है। अनंत आनन्द एवं ज्ञानादि अनन्तगुणका धाम हमारा स्वदेश है। अब हम स्वरूप-स्वदेशकी ओर जा रहे हैं। उस ओर हमारा झुकाव हो गया है। हमें शीघ्र ही अपने मूल वतनमें जाकर आरामसे रहना है जहाँ सब हमारे-अपने हैं। वतन यानी देश, रहनेका मूल स्थान। यह असंख्यप्रदेशी अनंतगुणोंका धाम ही हमारा वतन, स्थान और देश है। वहाँ हमारा गुणपरिवार निवास करता है। अहा! ऐसी वस्तु है! उसका जहाँ अनुभव हुआ वहाँ आनन्दमेंसे बाहर निकलते हुए उसे क्या हुआ?....कि अरे! हम तो परदेशमें आ पहुँचे! यह सारा विभावभावका देश हमारा नहीं है, यह हमारा परिवार नहीं है; हमें तो शीघ्र ही मूल वतनमें जाकर शान्तिसे—आरामसे रहना है, जहाँ सब हमारे हैं—अपने हैं।

श्री नियमसारमें भी आता है कि—

निधि पामीने जन कोई निज वतने रही फल भोगवे,
त्यम ज्ञानी परजन संग छोड़ी ज्ञाननिधिने भोगवे ॥ १५७ ॥

ज्ञानी ज्ञाननिधि प्राप्त करके, स्वयं गुप्त रहकर, उसे भोगता है। कोई मनुष्य परदेशसे दो-पाँच करोड़ रुपये कमाकर लाया हो तो उसका ढिंढोरा नहीं पीटता, परन्तु स्वदेशमें आकर गुप्तरूपसे रहता है। उसी प्रकार ज्ञाननिधिको पाकर ज्ञानी, आत्मा—आनन्दका नाथ—प्राप्त हुआ है उसे पाकर, स्वयं भीतर एकान्तमें उसका अनुभव करता है। उसका बाहर ढिंढोरा नहीं पीटता। कोई हमें जाने, माने और हमारी प्रतिष्ठा बढ़े—ऐसी सब भावनाएँ तो अपना प्रचार करने की हैं, अंतरमें जानेकी नहीं हैं। समझमें आया? यह तो दृष्टान्त दिया है। अपने इस अधिकारमें तो यह चलता है कि—

'अंतरमें निवासके लिये महल मिल गया है, उसके बाहर आना अच्छा नहीं लगता।'

कहाँ निवास करना उसकी खबर नहीं थी। जहाँ प्रतीति हुई कि इस आत्मामें रहने जैसा है, यही अच्छा निवास-स्थान है; अंतरमें आनन्दधाममें निवास करना अच्छा है, वहाँ अब उसके बाहर आना अच्छा नहीं लगता।

'मुनि किसी प्रकारका बोझ नहीं लेते।'

प्रवचनसारकी चरणानुयोगसूचक चूलिकामें आया है ना, कि—मुनिको कर्मप्रक्रम

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं होता—मुनि कोई कार्य सिरपर नहीं लेते। 'पाठशालाका ध्यान रखना पड़ेगा; पैसा उगाहनेके लिये तुम्हें जाना पड़ेगा। तीर्थके लिये चन्दा ईकट्ठा करना पडेगा।'—ऐसे कोई कार्य मुनि सिरपर लेते ही नहीं। किसी भी प्रकारका बोझ मुनि अपने सिरपर नहीं रखते।

'अन्दर जायें तो अनुभूति और बाहर आयें तो तत्त्व-चिन्तन आदि।'

आत्मध्यान और स्वाध्याय यह दो काम मुनिको होते हैं। ध्यानमें रहते हैं; ध्यानमें न रह सकें तो स्वाध्याय करते हैं। है वह शुभभाव। इन दोके सिवा अन्य कोई कार्य मुनिको नहीं होते। 'हमें पंचकल्याणकपूर्वक जिनबिम्ब-प्रतिष्ठा करना है, उसमें आपको आना पड़ेगा।' ऐसा आग्रह मुनिको नहीं होता। उनके अंतरमें तो आनन्द वर्तता है। मुनि योग्य विकल्प उठे वह भी बोझरूप लगता है, तब फिर 'आपको आना पड़ेगा और ध्यान रखना पड़ेगा'—ऐसी जिम्मेवारी मुनि क्यों अपने सिर लेंगे?

'साधकदशा इतनी बढ़ गई है कि द्रव्यसे तो कृतकृत्य हैं ही परन्तु पर्यायमें भी अत्यन्त कृतकृत्य हो गये हैं।'

वस्तु तो स्वभावसे अखण्ड है, पूर्ण है; परन्तु साथ ही मुनिको पर्यायमें तीन कषायके अभावकी आनन्ददशास्वरूप अत्यन्त कृतकृत्यता—वीतरागी प्रचुर स्वसंवेदनदशा प्रगट हुई है। पूर्ण कृतकृत्यता तो केवली को है, परन्तु मुनिको भी अत्यंत कृतकृत्यपना हुआ है। अंतरमें रहना वह मुनिका सहज निवास है, बाहर आना उन्हें बोझरूप लगता है।

*

वढवाण, वि. सं. १९८९, चैत्र

[भाई हिम्मतभाई!]

संसार दुःखमय है। अतः आत्माको पुरुषार्थ करके उसमेंसे तार लेनेकी जरूरत है। प्रमाद करना योग्य नहीं है। जैनदर्शन सत्य है ऐसा मैंने तो जाना है। तुम भी प्रमाद छोड़कर, वैराग्य बढ़ाकर विचारोगे तो ऐसा ही जाननेमें आयेगा। प्रमाद कर्तव्य नहीं है।

लि०

बहिन चम्पाका वन्दन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-४१

ता. १८-७-७८

वचनामृत-११४

जिसे भगवानका प्रेम हो वह भगवानको देखता रहता है, उसीप्रकार चैतन्यदेवका प्रेमी चैतन्य-चैतन्य ही करता रहता है॥११४॥

भगवान, परमात्मा, ईश्वर अथवा अपने जिनेन्द्रदेव—उनका जिसे प्रेम है वह भगवानको देखता ही रहता है; उसीप्रकार जिसकी पर्यायबुद्धि गई है, रागबुद्धि एवं निमित्तबुद्धि दूर हो गई है, चैतन्यदेवको जिसने देखा है, जाना है, और जिसे उसका प्रेम है वह चैतन्यदेवका प्रेमी चैतन्य-चैतन्य ही करता रहता है। जैसे भगवानका प्रेमी भगवान-भगवान रटता है वैसे ही अहाहा! चैतन्यका प्रेमी चैतन्य, चैतन्य, त्रैकालिक ज्ञायकस्वरूप हूँ—ऐसा रटन करता है। वर्तमानमें त्रैकालिक एकस्वरूप जो चैतन्य वह रागमें भी नहीं है और पर्यायमें भी नहीं है। वह तो अपने ध्रुव चैतन्यस्वरूपमें है; उसकी जिसे दृष्टि हुई अर्थात् उसका जिसे प्रेम हुआ वह तो चैतन्य...चैतन्य....चैतन्य—इसीप्रकार परिणमता रहता है। इसका यह अर्थ है कि—'अहाहा! मैं चैतन्यस्वरूप हूँ, ज्ञायक ध्रुवतत्त्व हूँ'—ऐसे भावरूप परिणमता रहता है।

श्री समयसारकी ३२०वीं गाथाकी श्री जयसेनाचार्यकी टीकामें आता है कि—ध्याता पुरुष ऐसी भावना करता है कि—'जो सकलनिरावरण-अखण्ड-एक-प्रत्यक्ष-प्रतिभासमय-अविनश्वर-शुद्ध-पारिणामिक-परमभावलक्षण निजपरमात्मद्रव्य वहीं मैं हूँ, परन्तु ऐसी भावना नहीं करता कि 'खण्डज्ञानरूप मैं हूँ'। आत्मा द्रव्य है वह सकल निरावरण अखण्ड एक वस्तु है; उसमें भेद नहीं है और वह प्रत्यक्षप्रतिभासमय है—ज्ञानकी दशामें प्रत्यक्ष आये, प्रतिभास हो—ऐसी वह वस्तु है। जिस प्रकार दर्पणमें बिम्बके प्रतिबिम्ब दिखायी देते हैं उसीप्रकार ज्ञानदर्पणमें ज्ञेयके प्रतिज्ञेय झलकते हैं। ज्ञानकी पर्यायमें सम्पूर्ण भगवान प्रत्यक्षप्रतिभासमय है। सामने अग्नि हो वह बिम्ब है और दर्पणमें है वह उसका प्रतिबिम्ब है। प्रतिबिम्ब है वह दर्पणकी स्वच्छता है। उसीप्रकार जैसा सकल निरावरण अखण्ड एक ज्ञायक द्रव्यस्वभाव है वैसा ज्ञान पर्यायमें प्रत्यक्ष भासता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहा! ऐसे चैतन्यस्वभावका जिसे प्रेम जागृत हुआ है वह तो चैतन्य-चैतन्य करता ही रहता है, अर्थात् अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभावलक्षण 'जो निज परमात्मद्रव्य वही मैं हूँ—ऐसा उसे निरंतर बना ही रहता है। अहा! त्रिकाल-निरावरण, अखण्ड, एक, प्रत्यक्ष-प्रतिभासस्वरूप, अविनाशी, शुद्ध, पारिणामिक सहजभाव जिसका स्वरूप है ऐसा जो परमात्मद्रव्य है वही मैं हूँ—ऐसा उसे बना रहता है। अहा! मार्ग तो यह है, भाई! वह व्यवहारसे—रागके विकल्पसे या निमित्तसे प्राप्त नहीं होता, वह तो प्रत्यक्ष प्रतिभासमय ज्ञानकी पर्यायमें सीधा भासता है। ऐसा जो परमात्मद्रव्य वही मैं हूँ। 'ऐसा हो' ऐसा नहीं, परन्तु 'वही मैं हूँ' 'यही मैं हूँ' ऐसा कहा है।

जिसे ज्ञायकके प्रति ऐसा प्रेम हुआ और एकाग्र होकर दृष्टिका विषय जिसने ग्रहण किया उसे तो चैतन्य ज्ञायक हूँ....ज्ञायक हूँ—ऐसा ही रटन ज्ञानधारामें निरंतर होता है।

अहा! भूमिकानुसार चाहे जो विकल्प हो, अन्य वस्तु हो, परन्तु अपनी ध्रुवधारा हटती नहीं है। जिसे ध्रुवस्वरूप भगवान आत्माका रस लगा, ज्ञायकको बहुमूल्य ज्ञेय बनाकर जिसे ज्ञायकका प्रेम जागृत हुआ, उसे अंतरमें चैतन्य-चैतन्य ही लगा रहता है। मैं राग नहीं हूँ, पुण्य नहीं हूँ—ऐसी अस्वीकृति मात्र नहीं; चैतन्य हूँ ऐसी सहज स्वीकृति वर्तती ही रहती है।

जिसप्रकार माताकी ऊँगलीसे छूटा हुआ छोटा बच्चा उसकी यादमें खूब रोता हो, उससे पूछो तो एक ही रटन—'मेरी माँ, 'मेरी माँ', बस, माँ, माँ, माँ और माँ। उसीप्रकार आनन्दका नाथ ऐसा जो निज ज्ञायक आत्मा, उसे जिसने जाना है उस भव्य जीवको 'मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ' ऐसा रटन बना ही रहता है।

प्रभु! ज्ञायकके सिवा बाह्य वस्तुएँ कहाँ तेरी हैं? वे तो पर हैं; उनके अपने कारण आयी हैं, अपने कारण संयोगरूपसे स्थित हैं और अपने कारण चली जायँगी। वे तेरे कारण तेरे पास आयी हैं—ऐसा वास्तवमें है ही नहीं। वे जगतकी वस्तुएँ तुझसे भिन्न हैं। उन्हें अपनी मानना वह कल्पना है, भ्रमणा है। ध्रुव चैतन्यस्वरूप भगवान आत्माको रागके एक अंशका भी सम्बन्ध नहीं हुआ है, वह एक समयकी पर्यायमें नहीं रहता, एक समयकी पर्यायका नहीं होता। अहा! यह तो सर्वज्ञ वीतरागदेवका कहा हुआ मार्ग है।

प्रश्न :—सर्वज्ञपर्याय प्रगट कहाँसे हुई?

उत्तर :—प्रत्येक आत्मा सर्वज्ञपरमात्माकी भाँति अंतरमें शक्तिरूपसे पूर्ण सर्वज्ञस्वभावी है। सर्वज्ञस्वभावी आत्माओंकी तो पंक्ति लगी है। चैतन्यस्वभावी कहो अथवा सर्वज्ञस्वभावी कहो, ज्ञायक कहो अथवा दृष्टिके विषयभूत अभेद द्रव्यसामान्य कहो—उस पूर्णज्ञानस्वभावी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञायकमेंसे सर्वज्ञपर्याय प्रगट होती है। अरेरे! जीव यों ही चौरासीके अवतारोंमें भटक मरा! भाई! तेरी जातिमें क्या है? तेरी जातिमें सर्वज्ञस्वभाव एवं आनन्द भरा है। पर्यायमें वही झलक होती है जैसा रूप हो। 'मैं सर्वज्ञस्वभावी हूँ' ऐसी झलक पर्यायमें हो, ऐसा प्रतिभास हो, तब उसे ज्ञायक....ज्ञायक...ज्ञायकका रटन होता है, अर्थात् उसकी दृष्टि त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक पर ही होती है।

*

वचनामृत-११५

गुणभेद पर दृष्टि करनेसे विकल्प ही उत्पन्न होता है, निर्विकल्पता—समरसता नहीं होती। एक चैतन्यको सामान्यरूपसे ग्रहण कर; उसमें मुक्तिका मार्ग प्रगट होगा। भिन्न-भिन्न ग्रहण करनेसे अशान्ति उत्पन्न होगी ॥११५॥

'गुणभेद पर दृष्टि करनेसे विकल्प ही उत्पन्न होता है, निर्विकल्पता—समरसता नहीं होती।'

क्या कहते हैं? सुन, भाई! तूने अपनी कथा नहीं सुनी है, नाथ! प्रभु! तू कौन है? कहाँ है? कितना है? तुझे अपनी खबर नहीं है। आत्मा ज्ञानादि अनन्त गुणोंका पिण्ड है। उसमें, यह गुण इस गुणीका है—ऐसा विकल्प उत्पन्न करनेसे दुःख है। अहा! तेरी अभेद प्रभुतामें 'यह ज्ञान सो आत्मा' यह भी एक विकल्प है, अशान्ति है, दुःख है। परकी दयाका भाव हो वह भी राग तथा अपनी हिंसा है। प्रभु! तू तो रागरहित चैतन्यस्वरूप है ना! उसमें परकी दयाका पालन करूँ—ऐसा विकल्प उठता है वह भी दुःख और राग है। आत्माके सिवा परवस्तु—देव-शास्त्र-गुरुके ऊपर दृष्टि करनेसे भी राग होगा; जो परवस्तु है उसपर दृष्टि जानेसे भी राग ही होता है। इसप्रकार गुण-गुणीका भेद करनेसे भी विकल्प और राग ही होगा।

दुनिया अनादिसे अंधी चाल चल रही है। चार गतियोंमें भटकते हुए अंधोंको खबर नहीं है कि वस्तुस्वरूप क्या है? यहाँ तो कहते हैं कि—अपने सिवा तू देव-शास्त्र-गुरुकी दृष्टि करेगा तब भी राग होगा। क्योंकि वहाँ पराश्रित हुआ एक समयकी पर्यायपर दृष्टि कर तो भी राग होगा। **पज्जयमूढा दु परसमया।** पर्यायकी व्याख्या भले मनुष्यगति, नरकगति आदि माने परन्तु वास्तवमें तो वह एक समयकी पर्याय है और परिणमनका अंश है; उसमें जो एकाग्र है वह पर्यायमूढ़ है। पर्यायका आश्रय लेने जाय

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तब भी राग होता है। अरे! उससे आगे चलें तो, 'मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, दर्शनस्वरूप हूँ' ऐसा गुणका भेद विचारमें उठे–वह भी एक विकल्प है, दुःख है, राग है, विष है। प्रभु! तुझे अपनी खबर नहीं है; अरे! तू विषके प्याले पी रहा है।

अहा! जन्म-मरणरहित होनेका पंथ कोई अलौकिक है! अनंत गुणोंका धारक भगवान आत्मा वस्तु है, अभेद एकरूप वस्तु है। उसमें भी गुणभेदपर दृष्टि करनेसे विकल्प और रागकी ही उत्पत्ति होती है। अभेद ज्ञायकस्वभावको देखनेपर उसमें भेद दिखायी नहीं देता। भीतर भले ही भेद हों, परन्तु सम्यग्दर्शनरूपी दृष्टि करनेपर अभेदमें वह भेद दिखायी नहीं देता। उस अभेदको भेद करके भिन्न देखना चाहे, तो कहते हैं कि–तूने विकल्प किया; तू दुःखी है। यदि तुझे पर्यायके ऊपरकी दृष्टिसे हट जाना हो, कल्याण करना हो और जन्म-मरणका अंत लाना हो तो अंतरमें अभेद ज्ञायककी रुचि कर।

प्रश्नः—गुण भी द्रव्यके ही भेद हैं, अवस्तु तो नहीं हैं?

उत्तरः—वह तो ठीक है, परन्तु यहाँ तो द्रव्यदृष्टिसे अभेदको प्रधान करके कहा है। अभेददृष्टिमें भेदको गौण कहनेसे ही अभेद भलीभाँति समझा जा सकता है। यहाँ अभिप्राय ऐसा है कि भेददृष्टिमें निर्विकल्पदशा नहीं होती और सरागीको विकल्प बना रहता है; इसलिये जब तक रागादिक न मिटें तब तक भेदको गौण करके अभेदरूप निर्विकल्प अनुभव करवाया गया है। वीतराग होनेके पश्चात् भेदाभेदरूप वस्तुका ज्ञाता हो जाता है।—ऐसा समयसारकी सातवीं गाथाके भावार्थमें कहा है। रागी प्राणी है, इसलिये भेदपर दृष्टि करेगा तो उसे राग होगा। सर्वज्ञ परमेश्वर तो भेद तथा अभेद सब जानते हैं, परन्तु वे तो वीतराग हैं। वीतराग होनेसे उन्हें जाननेमें किसी प्रकारका विकल्प नहीं होता। परन्तु यह तो रागी प्राणी है; वह यदि अभेदकी दृष्टि छोड़कर भेदका विकल्प उठायेगा तो वहाँ उसे राग ही होगा। रागी है इसलिये राग होगा ही।

अरे! प्रभु, सुन! तू चैतन्यस्वरूप है ना? वह जाननेके सिवा और क्या काम करेगा? उसमें गुणभेद करना वह भी रागका कारण है। भेद और अभेद इस प्रकार दोनोंको एकसाथ देखने जाय तब भी, रागी है इसलिये, राग होगा। अखण्ड अभेद पर सहज दृष्टि करेगा तो रागरहित निर्विकल्पता होगी; और तब उसे सम्यग्दर्शन होगा।

गुणभेदका विचार करनेपर भी निर्विकल्पता–समरसता नहीं होती। प्रभु आत्मा ज्ञानादि अनन्त गुणोंका अभेद पिण्ड है। उसे 'आत्मा ज्ञान है' इसप्रकार गुणका भेद करके देखनेपर विकल्प और अशान्ति उत्पन्न होती है, निर्विकल्पता, शांति या समरसता नहीं होती। अहाहा! सर्वज्ञ त्रिलोकीनाथ जिनेश्वरदेवकी यह दिव्यध्वनि है। निर्विकल्पता अर्थात् समरसता। गुणी–आत्मवस्तु–एक अभेद वस्तु है; उसमें गुणका भेद उत्पन्न होनेसे समरसता–

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

समता प्रगट नहीं होती, परन्तु विषमता यानी राग प्रगट होता है। अरेरे! कहाँसे उठकर कहाँ जाना?—उसकी खबर नहीं है बेचारेको! इसलिये उसे निर्विकल्पता अर्थात् राग और भेदके विकल्परहित, विषमतारहित, समरसता प्रगट नहीं होती।

'एक चैतन्यको सामान्यरूपसे ग्रहण कर; उसमें मुक्तिका मार्ग प्रगट होगा।'

भगवान ज्ञायक आत्माकी त्रैकालिक ध्रुवताको पकड़; भेदको पकड़ना छोड़कर अभेद सामान्यको पकड़; एक चैतन्यको सामान्यरूपको ग्रहण कर। गुण-गुणीका भेद न करके अखण्ड गुणीपर—सामान्य पर दृष्टि कर, तो तुझे सम्यग्दर्शन एवं समरसता प्रगट होगी। धर्मका प्रथम प्रारम्भ वहाँसे होगा। उसके बिना कहीं धर्मका होना असम्भव है। अनंतबार दिगम्बर मुनि हुआ, परन्तु भेदके रागसे रहित प्रभु चैतन्य भगवान अतंरमें पूर्णानन्द अभेद तत्त्व है, उसकी दृष्टि नहीं की, उसका आश्रय नहीं लिया और मात्र व्रत-तपके रागमें रुक गया। उसके फलरूप स्वर्गकी प्राप्ति हुई; वहाँ से मरकर, रागका प्रेम है इसलिये, पशु योनिमें जाकर नरकादि चार गतियोंमें परिभ्रमण करेगा। अहा! एक चैतन्यको अभेदरूपसे ग्रहण कर, तुझे मुक्तिका मार्ग प्रगट होगा।

यहाँ तो जिसे आत्मकल्याण करना हो उसे क्या करना और कैसे करना उसकी बात है। उसे तो अपनी वर्तमान ज्ञानपर्यायमें त्रैकालिक ज्ञायक आत्मा जो निर्विकल्प एकरूप वस्तु है उसका आश्रय लेना। द्रव्य, गुण और पर्याय—यह तीन तो जैन परमेश्वरकी प्रारम्भकी बातें हैं। जहाँ वर्तमान पर्यायका भी आश्रय नहीं है, गुण-गुणीके भेदका भी लक्ष नहीं है, ऐसे अभेद एकरूप चैतन्य ध्रुव भगवान आत्माका ग्रहण कर तो तुझे सम्यक्त्व होगा, आनन्द होगा और दुःखका नाश हो जायगा। अहा! उसमें मुक्तिका मार्ग प्रगट होगा।

शरीर, धन, मकान आदि समस्त बाह्य सामग्री तो स्मशानमें जलती हुई हड्डियोंके फोस्फरसकी क्षणिक चमक जैसी है, अलोप हो जायगी। वह तो आत्मासे बिलकुल भिन्न ही वस्तु है; परन्तु यहाँ कहना है कि वर्तमान पर्याय जितना ही तू नहीं है और गुणभेदका विकल्प भी तेरे स्वरूपकी अभेद वस्तुमें नहीं है। प्रभु! तू अंतरमें चैतन्यामृतका सागर है। वहाँ तू जा, उसे देख, उसकी दृष्टि कर, तुझे धर्म प्रगट होगा और मुक्तिका मार्ग मिलेगा। अरे! विकारसे और दुःखसे छूटनेका पंथ तुझे हाथ आ जायगा।

'भिन्न-भिन्न ग्रहण करनेसे अशान्ति उत्पन्न होगी।'

यह क्या कहा? कि—ज्ञायक आत्मा अभेद एकरूप है; उसमें यह ज्ञान है, यह दर्शन है, यह आनन्द है और यह वीर्य है—ऐसे भिन्न-भिन्न भेद करके ग्रहण करने जायगा तो विकल्प उठेंगे और अशान्ति होगी। परकी दयाका अथवा पंचमहाव्रतादिके पालनका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भाव तो राग और अशान्ति है ही; परन्तु भाई! तुझे खबर नहीं है कि—अंतरमें चैतन्यके अभेदस्वरूपको छोड़कर भेदका ग्रहण करनेसे भी अशान्ति और दुःख है। प्रभु! तू तो गुण-गुणीके भेदरहित अभेद वस्तु है ना! वहाँ दृष्टि लगा तो तुझे शान्ति और धर्म होगा।

* * *

वचनामृत-११६

चाहे जैसे संयोगमें आत्मा अपनी शान्ति प्रगट कर सकता है ॥११६॥

इसमें क्या कहते हैं? कि—शरीर रोगसे घिर गया हो, स्वयं निर्धन हो, पुत्र-पुत्री कोई न हों, जंगलमें अकेला पड़ा हो, अहाहा! ऐसे संयोगोंमें होनेपर भी यदि आत्मापर दृष्टि करेगा तो तुझे वहाँ भी शान्ति प्राप्त हो सकेगी; आत्माको कोई संयोग बाधक नहीं होते। चाहे जैसे और चाहे जितने संयोग हों परन्तु आत्मा उनमें अपनी शान्ति प्रगट कर सकता है।

नीचे सात नरक हैं। सातवें नरकके नारकीरूपमें यह जीव अनन्तबार उत्पन्न हो चुका है। यह सब लॉजिकसे सिद्ध हो सकता है। मांस, शराब आदिका खान-पान करनेवाले राजा आदि अपने अति संक्लेश परिणामोंके कारण वहाँ जाते हैं। वहाँ तेतीस सागरकी स्थिति है। एक सागरमें दस क्रोड़ाक्रोड़ी पल्योपम और एक पल्योपमके असंख्यवें भागमें असंख्य अरब वर्ष जाते हैं। भगवान! वहाँ तू अनन्तबार उपजा है। प्रभु! तू अनादि कालका है भाई! तूने अपनी जातिको नहीं जाना। जातिको जाने बिना कुजातिको अपनी मानकर तू यह परिभ्रमण कर रहा है। सातवें नरकमें जानेवाला जीव मिथ्यादृष्टि होता है; परन्तु वहाँ जानेके पश्चात् किसी-किसीको सम्यक्त्व होता है। वहाँ उन्हें पानीकी बूँद नहीं मिलती, आहारका कण नहीं मिलता, सोनेका स्थान आदि कुछ नहीं मिलता और जन्मते ही शरीरमें १६ महारोग होते हैं। ऐसे संयोग भले हों, संयोग कहाँ बाधक हैं? जीव संयोगको कहाँ स्पर्शता है?

चाहे जैसे प्रतिकूल संयोग हों, भाई! वह तो संयोगी वस्तु है। उसके रहनेकी अवधि है; अवधि पूरी होनेपर वह चली जायगी। वह कोई तेरी वस्तु नहीं है। इसलिये ऐसे प्रतिकूल संयोगोंमें भी आत्मा अपनी शान्ति प्रगट कर सकता है। स्वयं जो संक्लेश परिणामरूप भाव किया वह भी संयोगी भाव है। वह उसका स्वाभाविक भाव कहाँ है? संयोगमें संयोगका भाव न करके स्वभावका भाव करे तो बस....!

यहाँ तो चाहे जैसे संयोग कहे हैं। संयोग तो स्वरूपसे पृथक् बाह्य वस्तु हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अंतर्मुखदृष्टि करके उनका लक्ष छोड़ दे तो सम्यग्दर्शन और शान्ति हो। वह सम्यग्दर्शन सातवें नरकके नारकीको भी होता है। उसकी बातें बड़ी हृदयद्रावक हैं भाई! क्या कहें? रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें कहा है कि—नरकके एक क्षणका दुःख तूने अभी सुना नहीं है भाई! उस दुःखका तूने वेदन किया है, लेकिन खबर नहीं रही, भूल गया है। एक क्षणका दुःख करोड़ों जिह्वाओंसे और करोड़ों भवोंमें नहीं कहा जा सकता—ऐसा दुःख सागरोपम काल तक तूने सहन किया है। कैसे बीते होंगे वे दिन?

चाहे जैसे संयोगोंमें तेरा तत्त्व भीतर भिन्न ही है; उसपर दृष्टि करे तो तुझे शान्ति प्राप्त हो, वे संयोग तुझे बाधक नहीं होते। अहा! स्वरूपकी सच्ची समझ वह कोई और ही है! भगवान सर्वज्ञदेव जिसे शान्ति कहते हैं वह कोई अलौकिक वस्तु है! उस शान्तिसे तो तू भरपूर है; इसलिये संयोगोंका लक्ष छोड़कर अंतरमें जा, तुझे अपूर्व शान्ति प्राप्त होगी। अहा! तेरा सहज तत्त्व तेरे सन्मुख खड़ा है। संयोगके समय भी अंतर्दृष्टि करे तो वह तत्त्व उपस्थित है; दूर नहीं हो गया। संयोग संयोगमें रहा, वह तुझे नहीं स्पर्शता, तू उसे नहीं छूता। अहा! चाहे जिस संयोगमें—शरीरमें आठ डिग्री बुखार हो तब भी—यदि अंतरमें जा, तो तुझे शान्तिका अनुभव होगा; वह संयोग तुझे बाधक नहीं होगा।

*

ता. १६-६-८०

अहाहाहा! बहिनकी योग्यता!....यह (बहिनकी यह वाणी) तो अंकित होना है पत्थरोंमें। ढाई लाख रुपये उस दिन (भाद्रपद कृष्णा दूजके दिन) हो गये। (वचनामृतका) मकान बनाया जायगा।

—पूज्य गुरुदेव

४३

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-४२

ता. १६-७-७८

वचनामृत-११७

निरालम्ब चलना वह वस्तुका स्वभाव है। तू किसीके आश्रय बिना चैतन्यमें चला जा। आत्मा सदा अकेला ही है, आप स्वयंभू है। मुनियोंके मनकी गति निरालम्ब है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्रकी निरालम्बी चाल प्रगट हुई उसे कोई रोकनेवाला नहीं है ॥११७॥

'निरालम्ब चलना वह वस्तुका स्वभाव है।'

भगवान आत्मा जोकि निजवस्तु है, वह प्रभु! वह किसी बाह्य अवलम्बनसे प्राप्त हो—ऐसा नहीं है। वह वस्तु निरालम्ब है, किसी आलम्बन–कारण की उसे आवश्यकता नहीं है। ऐसी रागकी मन्दता हो तो उसके अवलम्बनसे आत्माका धर्म हो सकता है—ऐसा है ही नहीं। आत्माका स्वभाव ही ऐसा है कि रागके कारण धर्मका कुछ कार्य हो—ऐसा उसके स्वरूपमें ही नहीं है।

आत्मामें अनन्त शक्तियाँ उछलती हैं। उसमें भाव नामकी एक शक्ति है। उस शक्तिके कारण आत्माका भवन—विद्यमानअवस्थायुक्तपनेरूप निर्मल परिणमन—होता रहता है, उसमें उसे परकारणकी आवश्यकता नहीं होती। दूसरी एक 'उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्व' नामकी शक्ति भी आत्मामें है। उस शक्तिके कारण उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञानादि पर्यायकी उत्पत्ति होती है; किसी पर-कारणसे उत्पन्न हो ऐसी वस्तु नहीं है। एक 'अकार्य-कारणत्व' नामकी शक्ति है, जिसके कारण वस्तुको अपने कार्यके लिये परके आलम्बनकी अपेक्षा नहीं है।

परके आलम्बन बिना चैतन्यस्वरूपका सीधे स्वावलम्बनसे चलना–परिणमना वह तो वस्तुका सहज स्वभाव है।

प्रश्न :—देव-गुरुकी सहायता से आत्मा समझमें आता है ना?

उत्तर :—देव-गुरुकी श्रद्धा निमित्तरूपसे होती है, परन्तु उस पर-निमित्तसे आत्मा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्राप्त हो ऐसा वस्तुस्वरूपमें है ही नहीं। वे हों, परन्तु उनके आलम्बनसे, उनकी सहायतासे आत्माका धर्म नहीं हो सकता। देशनालब्धिके कालमें देशनाका श्रवण करे, उसका ज्ञान भी अपने कारण होता है, तथापि उस देशनालक्षी ज्ञानके आलम्बनसे अंतर्स्वभावकी दृष्टि हो—ऐसा वस्तुका स्वरूप नहीं है। अहा! बड़ी कठिन बात! धर्म तो कहीं रह गया और आजकल तो लोग बाहरी मान-सम्मानमें मर रहे हैं! वहाँ इस अंतरकी वस्तुको लेकर अंतरमें चलने, स्वभावका अवलम्बन लेकर परिणमन करने, तथा निरालम्बन चालरूप वस्तुस्वभावको समझनेकी बात कठिन लगती है।

देव-शास्त्र-गुरुकी श्रद्धा करे, व्यवहार अर्थात् रागकी मंदतारूप क्रिया हो, तो आत्माका अवलम्बन—धर्म—प्रगट हो ऐसा वस्तुका स्वरूप ही नहीं है। वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है कि उसे अपने कार्यके लिये किसी बाह्य कारणके अवलम्बनकी आवश्यकता नहीं है। अहा! चैतन्यद्रव्य ऐसी ही कोई निरालम्बी वस्तु है! छहों द्रव्योंमें ऐसा ही है, परन्तु यहाँ आत्माकी बात है।

'तू किसीके आश्रय बिना चैतन्यमें चला जा।'

यह निरालम्बनका अर्थ कहा है। रागकी मन्दतारूप व्यवहार, देव-शास्त्र-गुरुकी महिमारूप शुभभाव आदि किसी भी रागके आश्रय बिना, सहायता बिना, सीधा स्वरूपमें चला जा। अहा! भगवान निज आत्मा अंतरमें आनन्दका—सुखका धाम है; परके आश्रय बिना उसमें चला जा। परके आश्रय बिना स्वभावमें जाना वह निरालम्बीपना है।

चक्रवर्तीको छह खण्डका राज्य, ९६ हजार रानियाँ, ९६ करोड़ पायदल तथा ९६ करोड़ ग्राम होते हैं—उनके अवलम्बनसे तो अंतरमें प्रवेश नहीं हो सकता, परन्तु उनका अवलम्बन छोड़कर सच्चे देव-शास्त्र-गुरुके आश्रयसे भी चैतन्यमें प्रवेश नहीं होता; क्योंकि परके आश्रय बिना ही प्रगट हो ऐसा वस्तुका स्वरूप है। अहा! समझमें आता है कुछ? तू किसीके आश्रय बिना आत्मामें प्रविष्ट हो जा। अरे! भगवानकी वाणी सुननेको मिली तो अंतरमें प्रवेश हुआ, सुने बिना नहीं होता—ऐसा पराश्रय स्वरूपमें है ही नहीं। किसीके आश्रय बिना—परालम्बन अर्थात् परका लक्ष छोड़कर—अंतर्चैतन्यमें प्रविष्ट हो जा। परका कुछ आलम्बन लें—राग खूब मन्द किया हो, खूब उपवास करें, अल्प-आहार लिया जाय—तो उससे सम्यक्त्वकी प्राप्ति होगी, ऐसा है ही नहीं। तू किसीके आलम्बन बिना—आश्रय बिना—अंतर्में जहाँ आनन्दनिधान भगवान चैतन्यबिम्ब विराजमान है, वहाँ चला जा।

'आत्मा सदा अकेला ही है, आप स्वयंभू है।'

भगवान आत्मा पूर्णानन्दका नाथ स्वयं रागके सम्बन्धरहित एकाकी ही है; उसे द्वित्वकी, दूसरेके आलम्बनकी आवश्यकता नहीं है। एकाकी तत्त्व दूसरेका आश्रय लेने

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जाय तो वह बिगड़ेगा। गुजराती में कहते हैं कि–'एकड़े एक और बगड़े बे।' दो होंगे तो बिगड़ेंगे। त्रिलोकीनाथ जिनेन्द्रदेव तो कहते हैं कि तू हमारी श्रद्धा करेगा तब भी उस शुभभावसे तेरे चैतन्यकी गति बिगड़ेगी। **'परदव्वादो दुग्गई'** (मोक्षपाहुड़ गाथा–१६)। प्रभु ऐसा कहते हैं कि— तेरे लिये मैं परद्रव्य हूँ। मुझपर तेरा लक्ष जायगा तो तेरी दुर्गति—विभावरूप शुभराग—होगी; सुगति—चैतन्यकी अरागी, शुद्धपरिणति—मेरे आश्रयसे नहीं होगी; राग होगा, और राग वह चैतन्यकी सुगति नहीं है।

श्री समयसारमें (२००वें कलशमें) कहा है ना!—**नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः परद्रव्यात्मतत्त्वयोः।'** आत्मा सदा अकेला ही है। उसे परका संग या रागका सम्बन्ध है ही नहीं। परसंगके आलम्बनसे असंग चैतन्यप्रभुमें प्रवेश किया जा सके ऐसा वस्तुस्वरूप ही नहीं है। अहा! बड़ा कठिन लगे ऐसा है।—क्या किया जाय?

अन्यमतमें कहते हैं कि—'जागीने जोउँ तो जगत दीसे नहीं, ऊँघमां अटपटा भोग भासे'। वे कहते हैं ऐसा नहीं है। मैं जागकर देखता हूँ तो अंतरमें यह जो निरालम्बी चैतन्यतत्त्व है उसमें बाह्य जगत है ही नहीं। अभेद चैतन्यको देखने पर उसमें पर्यायका भी भेद नहीं दिखता, तो वहाँ बाह्य जगत कहाँसे आयगा? इसका यह अर्थ नहीं है कि जगत जगतमें नहीं है। जगत आत्मामें नहीं है; परन्तु जगत जगतमें तो है—यह बात वे भूल जाते हैं। इस आत्मासे भिन्न छह द्रव्यस्वरूप जगत, देव-शास्त्र-गुरु, निगोदके जीव, सिद्धके जीव, त्रस-स्थावर जीव आदि सब अपने-अपनेमें हैं; परन्तु किसी परके अवलम्बनसे आत्मा अपने स्वरूपमें जा सके ऐसा उसका स्वरूप नहीं है।

प्रश्नः—आप मूर्तिका आलम्बन लेते हो ना? क्या उस आलम्बनकी आवश्यकता नहीं है?

उत्तरः—भाई! वह तो शुभभावके निमित्तकी बात है। 'मैं शुद्ध परिपूर्ण स्वावलम्बी तत्त्व हूँ' ऐसी निश्चयकी प्रतीति होनेपर स्वरूपमें स्थिर नहीं हो सकता तब वीतराग पूर्ण परमात्माकी महिमाका शुभभाव आता है; और तब जिनप्रतिमाके दर्शनको शुभभावका मात्र निमित्त कहा जाता है। उस मात्र शुभभावके निमित्तरूप आलम्बनका उत्थापन करे तो वह मिथ्यादृष्टि है, और उस आलम्बनसे आत्मा प्राप्त होता है ऐसा माने तो वह भी अज्ञानी है।

तीनों काल आत्मा अपने द्रव्य-गुण-पर्यायमें सदैव अकेला ही है, स्वयंभू है। स्वयं=अपनेसे, भू=है। अपने द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप अपना सब अपनेसे है। धर्मकी निर्मल पर्याय भी अपनेसे है, उसमें किसी दूसरेका आश्रय नहीं है। परके आलम्बनसे धर्मपर्याय प्रगट हो ऐसा उसका स्वभाव ही नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहा! थोड़े शब्दोंमें बहुत भर दिया है।

प्रश्न होता है कि—हमने स्त्री, पुत्र, परिवार, व्यापार सब छोड़ दिया, कपड़े बदल लिये, फिर भी उसमें कोई लाभ नहीं?

उत्तर:—भाई! उन बाह्य पदार्थोंको तूने ग्रहण कब किया था कि उन्हें छोड़ दिया? आत्मामें त्याग-उपादानशून्यत्व नामकी एक शक्ति है। एक रजकणमात्रके ग्रहण-त्यागसे रहित तेरा स्वभाव है, तथापि इस परवस्तुका 'मैं ग्रहण-त्याग करता हूँ' यह बात लाया कहाँसे? वस्तुके स्वरूपमें वह है ही नहीं, तथापि तूने माना है वह तेरी भ्रमणा है। जब स्वयं अपनेसे है, तब स्वयंभू द्रव्यका आलम्बन लेनेसे जो निर्मल दशा हो वह भी अपनेसे होती है। परका अवलम्बन, परका आश्रय—आधार मिले, देशना प्राप्त हो, तब स्वयंभू है–ऐसा नहीं है।

प्रश्न:—निमित्तके आधार बिना नहीं होता है ना?

उत्तर:—उसके बिना ही अर्थात् उससे अलग ही आत्माकी पर्याय होती है। स्वयं भगवान आत्मा है उसके बिना पर्याय नहीं होगी। लोग कहते हैं कि—यह बड़ी ऊँची बात है। भाई! यह तो अभी सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेके लिये प्राथमिक–प्रारम्भकी बातें हैं। अहा! सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेके लिये परके किसी आलम्बनकी आवश्यकता नहीं है।

'मुनियोंके मनकी गति निरालम्ब है।'

मुनियोंकी सहजदशा, मनकी गति अर्थात् उनका परिणमन, निरालम्बी है। व्यवहारके भाव होते हैं, परन्तु वह व्यवहार है तो मुनिपनेकी शुद्ध परिणति हुई है—ऐसा नहीं है। मुनियोंके मनकी गतिने—शुद्धपरिणतिने तो अंतर्-आत्मा को—अनाकुल आनन्दके नाथ सच्चिदानन्द प्रभुको—ग्रहण किया है। वह ज्ञानकी परिणति निरालम्बी है, परके आलम्बनवाली नहीं है। मुनिको ऐसी निश्चय-परिणति परिणमी है उसके साथ योग्य व्यवहार होता है, परन्तु वह निश्चय-परिणति व्यवहारसे निरालम्ब है।

भूमिकानुसार शुभराग आता है, इसलिये कहीं व्यवहारके कारण निश्चय टिकता है—ऐसा नहीं है। जिसका व्यवहार भ्रष्ट होगा उसका निश्चय भी भ्रष्ट होता ही है। उसका ऐसा अर्थ नहीं है कि व्यवहार है इसलिये निश्चय है। यह तो भूमिकानुसार निरालम्बी तत्त्वके आश्रयसे आनन्दकी निश्चयदशा प्रगट हुई है, किन्तु अपूर्णता है इसलिये उस भूमिकाके योग्य रागकी मन्दताका व्यवहार होता है। और उस प्रकारका व्यवहार न हो और उससे भ्रष्ट हो जाय तब तो वह निश्चयसे भी भ्रष्ट होता है, परन्तु उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि—व्यवहार गया इसलिये निश्चयसे भ्रष्ट होता है और व्यवहार था इसलिये निश्चय टिकता है। उसकी भूमिकानुसार—निरालम्बी तत्त्वके आश्रयसे जो वीतरागदशा हुई

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है उसके प्रमाणमें—उसको रागकी मन्दता होती है। यदि वह नहीं है तो समझना कि स्वका अवलम्बन छूट गया है। अहा! स्याद्वाद-मार्ग है; बड़ी अटपटी बात!

भाई! तूने उस मार्गको देखा नहीं है। मुनियोंके मनकी गति निरालम्ब है। उनके ज्ञानकी तथा आनन्दकी दशाको किसी व्यवहार या निमित्तके आलम्बनकी अपेक्षा है ही नहीं। श्री नियमसारकी दूसरी गाथा की टीकामें कहा है ना, कि–स्वद्रव्यके आश्रयसे हुई निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी परिणति परम निरपेक्ष है, जिसमें निमित्त और भेदकी किंचित् अपेक्षा नहीं है।

'सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्रकी निरालम्बी चाल प्रगट हुई उसे कोई रोकनेवाला नहीं है।'

अंतरमें जो त्रैकालिक सत् वस्तु है उसके आश्रयसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी जो निरालम्बनदशा प्रगट हुई वह व्यवहारकी अपेक्षा रखकर हुई है ऐसा नहीं है। स्वके आश्रयसे हुई उस निर्मल दशाको रोकनेवाला कोई नहीं है।

प्रश्न :—कर्म तो रोकते हैं ना?

उत्तर :—कर्मका कोई ऐसा उदय आ जाय तो जीव इस रत्नत्रयस्वरूप निरालम्बन दशासे भ्रष्ट हो जाय—ऐसा है ही नहीं। त्रैकालिक ध्रुवद्रव्यस्वभावके अवलम्बनसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप निर्मलता प्रगट हुई उसे अब कौन रोक सकता है? द्रव्यका अभाव हो तो उस पर्यायका अभाव हो। द्रव्यका अभाव यदि कभी नहीं होता तो उसके आश्रयसे प्रगट हुआ जो निर्मल परिणमन उसका कभी अभाव नहीं होता; उसे रोकनेवाला, विघ्न करनेवाला कोई नहीं है।

प्रश्न :—शास्त्रमें आता है ना, कि—'नय'से भ्रष्ट हो तो उसे कर्म बँधते हैं?

उत्तर :—वह तो स्वयं स्वका अवलम्बन छोड़ता है इसलिये भ्रष्ट होता है, कोई परवस्तु उसे भ्रष्ट करती हो ऐसा नहीं है। समयसारमें **'णयपरिहीणा'** शब्द है। 'बहुविध बाँधे कर्म, जो जीव शुद्धनयपरिच्युत बने।' जिन्होंने अपने शुद्धस्वरूपका आलम्बन छोड़ा वे जीव—**'णयपरिहीणा'**—शुद्धनयसे भ्रष्ट हुए; परन्तु वे स्वयं अपने कारणसे स्वका आलम्बन छोड़ा इसलिये भ्रष्ट हुए हैं; परका आलम्बन नहीं रहा इसलिये भ्रष्ट हुए हैं ऐसा नहीं है।

अहा! वीतरागमार्ग अलौकिक है। अरे! वह वीतरागमार्ग अर्थात् तेरा मार्ग। भगवान आत्माका मार्ग। भीतर पूर्ण ज्ञानानन्दस्वरूप भगवान आत्मा है, उसके आलम्बनसे जो निर्मल दशा हुई उसे रोकनेवाली, विघ्न करनेवाली जगतमें कोई वस्तु नहीं है। अहा! द्रव्यको कौन रोक सकता है? वैसे ही द्रव्यके आश्रयसे हुई निर्मल पर्यायको कौन रोक सकता है? यह तो वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वरका मार्ग है; यह कोई साधारण बात है?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बाहरसे मान बैठे कि—सामायिक की, प्रोषध किया, प्रतिक्रमण किया और '**मिच्छामे दुक्कडं**' कर लिया; बस, हो गया धर्म। भाई! ऐसा तो अनन्तवार किया है। 'मुनिव्रत धार अनन्तवार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' अनंतबार नग्न दिगम्बर मुनि हुआ, हजारों रानियाँ छोड़ी, परन्तु स्वस्वभावका आलंबन नहीं लिया। परके आलम्बनकी जितनी क्रिया है वह सब साफ–स्वच्छ हो, पंचमहाव्रतादिका पालन अतिचार रहित हो, तथापि अंतरमें जो निरालम्बी वस्तु है उसका आलम्बन नहीं लिया। जिसने स्वका आलम्बन लिया है उसके निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रको रोकनेवाला कोई नहीं है। पाँच पंक्तियाँ हैं उनमें इतना भरा है!

बाहुबलिमें एक भट्टारकने यह पुस्तक देखी तो कहने लगे—'यह मुझे दो।' लोगोंको पढ़नेके बाद महिमा आती है कि 'इसमें कुछ है!' इसमें तो लाखों शास्त्रोंका निचोड़ है। समझमें आया कुछ? लाखों शास्त्रोंको स्वका आश्रय कराना है। लाख या करोड़ चाहे जितने शास्त्र हों, सबको स्व-चैतन्यप्रभुका आश्रय—जिसका आश्रय करनेके लिये अन्य आलम्बनकी आवश्यकता नहीं है—कराना है। अहा! बारह अंगमें और चारों अनुयोगोंमें जो कहना है वह यहाँ कहा है।

* * *

वचनामृत-११८

जैसा कारण दे वैसा कार्य होता है। भव्य जीवको निष्कलंक परमात्माका ध्यान करनेसे मोक्षपदकी प्राप्ति होती है। शुद्धात्माका ध्यान करे उसे शुद्धता प्राप्त हो ॥११८॥

'जैसा कारण दे वैसा कार्य होता है।'

जैसा आश्रय ले वैसा कार्य होगा। द्रव्यका आश्रय ले तो कार्य भी वैसा निर्मल होगा। आत्मामें एक अकार्यकारणत्व नामक शक्ति है। रागकी मन्दता या निमित्तकी अपेक्षा रहकर धर्मरूप कार्य हो ऐसा उसमें गुण नहीं है; तथा आत्मा रागरूप कार्य करे ऐसा कोई गुण उसमें नहीं है। आत्मा दया, दान और राग करे—ऐसा कोई आत्माका गुण नहीं है।

परके या रागके अवलम्बनरूप कारण दे तो राग होगा और स्वके अवलम्बनरूप कारण दे तो उसे निर्दोष कार्य होगा। कारणपरमात्मामें जो दृष्टि देगा उसे कार्य शुद्ध हुए बिना नहीं रहेगा। जैसा कारण दे वैसा कार्य होता है। क्या कहा? कि—शुद्ध

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चैतन्यवस्तु जो कारणपरमात्मास्वरूप है उसका मंद आश्रय करे तो कार्य विशेष हो। यहाँ ऐसा नहीं कहना है कि परके अथवा रागके आश्रयरूप कारण दे और आत्मामें वीतराग-कार्य हो। समझमें आया कुछ? निर्मल कारणपरमात्माका जितना आश्रय ले उतने प्रमाणमें भीतर निर्मलताका कार्य होगा।

'भव्य जीवको निष्कलंक परमात्माका ध्यान करनेसे मोक्षपदकी प्राप्ति होती है।'

जिसके मोक्षमार्ग होनेकी योग्यता हो वह भव्य जीव है। भव्यपना अभव्य जीवके नहीं होता, और सिद्ध होनेके पश्चात् तो भव्यपना रहता नहीं है। वहाँ तो भव्यता और अभव्यतासे रहित सिद्धदशा है।

जिसमें कलंक नहीं है, मैल नहीं है, राग नहीं है, **'णमो अरिहंताणं'** इत्यादि भगवानके स्मरणरूपी विकल्प भी जिसमें नहीं है—ऐसे निष्कलंक निज चैतन्य परमात्माका ध्यान करनेसे, ध्यानकी दशामें उसे ध्येय बनानेसे, मोक्षपदकी प्राप्ति होती है। राग, पुण्य और व्यवहार वह तो कलंक है; व्यवहाररत्नत्रयका विकल्प भी मैल है। पवित्रताका पिण्ड ऐसा जो निष्कलंक निजपरमात्मा उसका ध्यान करनेसे, उसमें एकाग्र होनेसे मोक्षदशा प्राप्त होती है। जीव स्वभावसे मुक्तस्वरूप है। भव्य जीवको उसका ध्यान करनेसे पर्यायमें मुक्तदशा प्राप्त होती है। त्रैकालिक शुद्धका ध्यान करनेसे राग होता है, अरागी निजपरमात्माका ध्यान करनेसे परमात्मदशा होती है। अहाहा! सिद्धान्त बहुत संक्षिप्त, परन्तु भाव गंभीर हैं।

'शुद्धात्माका ध्यान करे उसे शुद्धता प्राप्त होगी।'

सिद्ध भगवानका, तीर्थंकरका, केवलीका या पंचपरमेष्ठीका ध्यान करे तब तो विकल्प होगा, राग होगा। समाधितंत्रमें दो श्लोक आते हैं:—

भिन्न परात्मा सेवीने तत्सम परम थवाय;
भिन्न दीपने सेवीने बत्ती दीपक थाय।९७।
अथवा निजने सेवीने जीव परम थई जाय;
जेम वृक्ष निजने मथी पोते पावक थाय।९८।

'इनके जैसा मैं हूँ' इसप्रकार भिन्न परमात्माका ध्यान करके आत्मा परमात्मा होता है। अथवा जिस प्रकार वृक्ष अपने घर्षणसे स्वयं अग्नि होता है, उसीप्रकार आत्मा आत्माके घर्षणसे—अपनेमें एकाग्र अवलोकनसे—परमात्मा बन जाता है; उसे परके अवलम्बनकी कोई अपेक्षा नहीं है।

श्री प्रवचनसारकी ८०वीं गाथामें कहा है कि—जो कोई अरिहंतके द्रव्य-गुण-पर्यायको

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जाने वह अपने आत्माको जानता है। वहाँ अरिहंत तो पर हैं, निमित्त हैं, परन्तु वे जैसे हैं वैसा ही अपना आत्मा है; इसप्रकार जिसने गुणके भेदको निकालकर, पर्यायको निकालकर, मात्र निज अभेद आत्माकी दृष्टि की, उसे स्वयंको आत्मा ज्ञात होता है। अरिहंतका ज्ञान तो निमित्तका—परका ज्ञान है। परके ज्ञानसे निज आत्माका ज्ञान हो ऐसा नहीं होता। परन्तु वहाँ ऐसी बात ली है कि–अरिहंत भगवानके स्वरूपका जिसे श्रद्धान एवं ज्ञान हुआ वह अपने आत्माके साथ मिलान करने जाता है, वहाँ उसका लक्ष छोड़कर.... अहा! मेरा द्रव्य भी उनके जैसा, मेरे गुण भी उनके जैसे—ऐसा निर्णय करके स्वोन्मुख होता है। पर्याय उनके जैसी व्यक्त नहीं है, इसीलिये स्वभावकी ओर उन्मुख होता है और उनके जैसा हो जाता है। अहाहा! शुद्धात्माका ध्यान करे उसे पर्यायमें प्रगट शुद्धता हो जाये।

*

वचनामृत-११६

गुरुकी वाणीसे जिसका हृदय विंध गया है और जिसे आत्माकी लगन लगी है, उसका चित्त अन्यत्र कहीं नहीं लगता। उसे एक परमात्मा ही चाहिये, दूसरा कुछ नहीं ।।११६।।

'गुरुकी वाणीसे जिसका हृदय विंध गया है और जिसे आत्माकी लगन लगी है, उसका चित्त अन्यत्र कहीं नहीं लगता।'

प्रश्न :—गुरुकी वाणी कैसी होती है?

उत्तर :—गुरुकी वाणी अभेद ज्ञायक आत्माका आश्रय लेना बतलाती है और वीतरागता प्रगट हो ऐसी होती है; रागसे तेरी वस्तु भिन्न है, तू वीतरागस्वरूप है, वीतरागता निज वीतरागस्वभावके आश्रयसे प्रगट होती है, देव-गुरुके अथवा व्रतादि व्यवहारके आश्रयसे नहीं—ऐसा स्पष्ट कथन करनेवाली होती है।

प्रश्न :—यह तो वाणीकी—निमित्तकी—प्रशंसा हुई?

उत्तर :—इसमें निमित्तकी प्रशंसा कहाँ आयी? निमित्तके आश्रयसे होता है ऐसा कहाँ कहा है? यह तो गुरुका उपदेश कैसा होता है—उसका स्वरूप बतलाया है। गुरु द्वारा दिया गया वीतरागताका उपदेश जिसने सुना उसका हृदय विंधता तो अपनेसे है, परन्तु व्यवहारसे ऐसा कहा जाता है कि गुरुके उपदेशसे हृदय विंध गया। 'मैं भगवान आत्मा रागसे भिन्न हूँ' ऐसा भेद किया है स्वयंने; परन्तु वह सुनाया है गुरुने।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'मेरी ज्ञायक वस्तु रागसे भिन्न है' इस प्रकार जिसका हृदय विंध गया है और जिसे आत्माकी लगन लगी है, उसका रस चढ़ा है, उसका चित्त अन्यत्र कहीं नहीं लगता। 'स्वभावका आश्रय लेकर वीतरागता कर' ऐसा जो गुरुने कहा था उसका जिसने स्वीकार किया उसे एक आत्माका ही रस लगा है। आत्माका—आनन्दका—रस लगा वह अब नहीं छूटेगा। आता है ना!—

लागी लगन हमारी, जिनराज सुजस सुन्यो में...लागी०
काहूके कहे कबहूँ नाहिं छूटे, लोकलाज सब डारी;
जैसे अमली अमल करत समै, लाग रही ज्यों खुमारी। जिन०

जिसे अंतरमें वीतराग पूर्णस्वरूप जिनराजका माहात्म्य आया है, और जिनराज समान ही मैं अंतरमें शक्तिरूपसे परमात्मा हूँ 'लगन लगी अपने नाथ की' इसप्रकार अपने स्वभावका रस लगा है, उसने दुनिया परवाह छोड़ दी है कि दुनिया उसे क्या कहेगी, क्या मानेगी! अफीमचीको जिसप्रकार अफीमका नशा चढ़ता है उसीप्रकार जिसे आत्माकी लगनी लगी है उसे अंतरमें आत्माका ऐसा खुमार चढ़ जाता है कि कोई कुछ भी कहे या करे, आत्माकी—आनन्दकी—खुमारी कभी नहीं उतरती।

आत्मावलोकनमें आता है कि—गुरु बारम्बार वीतरागताका उपेदश देते हैं। **'मुहु मुहु गणदि वीयरायं, सो गुरुपयं भासदि सया'** जीवका अपना स्वरूप वीतराग है ऐसा मुहु मुहु–बारम्बार जो कहते हैं, वे ही गुरुपदवी पर शोभते हैं। राग करो, ऐसी क्रिया करो—यह उपदेश गुरुका नहीं है, ज्ञानीका नहीं है, अज्ञानीका है। धर्मात्मा संत एवं चारों अनुयोगोंका तात्पर्य यह है कि—वीतरागताकी दशा प्रगट कर। जिसे आत्माकी लगन लगी है और बाह्य सन्मानादि दुनियाकी आकांक्षा छूट गई है, रागसे भिन्न ज्ञायक आत्माका आश्रय करानेवाली गुरुकी वाणीसे जिसका हृदय विंध गया है, आनन्दधाम भगवान आत्माकी जिसे अंतरमें प्रीति लगी है, उसका चित्त अन्यत्र कहीं नहीं लगता। जिसे आत्माका रस लगा उसका मन और कहीं—रागमें या व्यवहारमें—नहीं लगता।

जिसने मिसरीका स्वाद चख लिया उसे दूसरी मिठास अच्छी नहीं लगती; उसीप्रकार 'मैं शुद्ध चैतन्य आनन्दघन हूँ' ऐसी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता प्रगट हुई, स्वरूपकी लीनताकी लगन लागी, उसका चित्त और कहीं नहीं लगता। व्यवहारके विकल्प आयें तथापि वहाँ चित्त एकाग्र नहीं होता। उससे भेदज्ञान करके ज्ञानको रागसे भिन्न रखते हैं। धर्मी अपनी ज्ञानधाराको रागसे भिन्न रखते हैं।

'उसे एक परमात्मा ही चाहिये, दूसरा कुछ नहीं।'

उसे मान-सन्मान चाहिये—ऐसा तो नहीं है, परन्तु व्यवहारकी इच्छा है, अरे!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

साधकदशाकी इच्छा है—वह भी नहीं। साधकदशा भी अपूर्ण है; उसे तो एक पूर्ण परमात्मा बननेकी ही इच्छा है, परमस्वरूपकी पूर्णप्राप्ति ही चाहता है, और कुछ नहीं। दुनिया माने या न माने, सन्मान दे या न दे, उसे कुछ नहीं चाहिये। हमारी पदवीके अनुसार लोग हमारा सन्मान करें—ऐसा मान-सन्मानका इच्छुक धर्मी नहीं होता। अहाहा! धर्मीको एक परमात्माकी ही इच्छा है अन्य कुछ नहीं चाहिये।

*

फाल्गुन वदि दशमीके माँगलिक दिन हुई

स्वानुभूति सम्बन्धी पू. बहिनश्रीकी नोंध

फाल्गुन वदि दशमीका अपूर्व दिवस — **वांकानेर, सं. १९८९ (चैत्र मासमें लिखा गया)**

स्वस्वरूपका लक्ष आने पर, फाल्गुन वदि दशमी और सोमवारको दोपहरमें ज्ञाताधाराकी वृद्धि होने पर, उस स्वरूपका ध्यान होने पर, उसमें एकाग्र होने पर, उस स्वरूपमें वेग तीव्रतासे आकर उपयोग परलक्षसे छूटकर अपने स्वस्वरूपमें स्थिर होकर, चैतन्यभगवान उस स्वरूपका अनुभव करते थे, अपने निर्विकल्प सहज स्वरूपमें खेल रहे थे, रम रहे थे। अनुपम और अद्भुत ऐसे आत्मद्रव्यकी महिमा कोई अपार है! चैतन्यदेव आनन्दतरंगोंमें डोलते थे।

अहा! अनन्तकालसे छुपे हुये आत्मभगवान प्रगट हुये; उनका छुपा हुआ ऐसा अनुपम अमृतस्वाद वेदनमें आया, अनुभवमें आया।

हे श्री सद्गुरुदेव! वह आपका ही प्रताप है।

अपूर्व आत्मस्वरूप प्रगट हुआ वह परमकृपालु सद्गुरुदेवका ही प्रताप है।

भारतखंडमें अपूर्व मुक्तिमार्गके प्रकाशक परम उपकारी गुरुदेवको नमस्कार!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-४३

ता. २०-७-७८

वचनामृत-१२०

पंचपरमेष्ठीका ध्यान करता है, परन्तु ठेठ तलमेंसे शान्ति आना चाहिये वह नहीं आती। अनेक फल-फूलोंसे मनोहर वृक्षके समान अनन्त गुणनिधि आत्मा अद्भुत है, उसके आश्रयमें रमनेसे सच्ची शान्ति प्रगट होती है ॥१२०॥

'पंचपरमेष्ठीका ध्यान करता है, परन्तु ठेठ तलमेंसे शान्ति आना चाहिये वह नहीं आती।'

ध्रुव ज्ञायकतत्त्वकी दृष्टि करे तो सच्ची शान्ति आये; पंचपरमेष्ठीका—अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा साधुका—ध्यान करे उसमें शुभभाव होता है, परन्तु आत्मशान्ति नहीं आती।

प्रश्न :—पंचपरमेष्ठीका ध्यान करे तब भी शान्ति नहीं आती?

उत्तर :—नहीं। पंचपरमेष्ठी जगतमें सर्वोत्तम हैं, अलौकिक हैं; उनका मंत्र भी अलौकिक है। परन्तु उनका ध्यान वह शुभराग है, आकुलता है। उनका स्मरण भले करे, परन्तु यदि ध्रुवतलमें दृष्टि न जाये तो सम्यक्त्व नहीं होगा, शान्ति नहीं होगी और धर्म नहीं होगा।

प्रश्न :—परमेष्ठीका स्मरण वह धर्मका कारण नहीं है?

उत्तर :—नहीं। स्मरणका भाव शुभराग है। शुभराग धर्मका कारण कदापि नहीं होता; धर्म तो वीतरागभाव है। अहाहा! मार्ग ऐसा है। ज्ञानादि अनन्तानन्त गुणोंका भण्डार अतीन्द्रिय आनन्द एवं शान्तिका महासागर, सर्वोत्कृष्ट वस्तु, प्रभु भगवान आत्मा है—उसपर दृष्टि न करे और पंच परमेष्ठीका ध्यान करे, उससे धर्म नहीं है। शुभ भाव वह धर्म नहीं है; अधिक कठोर भाषामें कहा जाय तो वह अधर्म (–राग) है। वह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

धर्म है ऐसा व्यवहार कथन करता है, परन्तु वह बात नहीं है। 'व्यवहार धर्म है' उसका अर्थ 'धर्म नहीं है'।

४६ वर्ष पहले जब बोटाद-सम्प्रदाय (स्थानकवासी)में हमारी स्थिति थी तब, कहा था कि—'जिस भावसे तीर्थंकर गोत्रका बंध हो वह भाव धर्म नहीं है। धर्मसे बंध नहीं होता, धर्मसे अबंध परिणाम होते हैं। जिस भावसे बंध हो वह भाव धर्म नहीं है।'—ऐसा व्याख्यानमें कहा था।

अहाहा! पंचपरमेष्ठी हुए वे तो अंतरमें जो ध्रुव महाप्रभु, अनन्त अमृतसागर है उसके अवलम्बनसे हुए हैं। मूल धरातल जो ध्रुव ज्ञायक परमस्वभावभाव, उसपर दृष्टि न करे तो तब तक उसे सम्यक्त्व नहीं होता, शान्ति नहीं होती, पंचपरमेष्ठीके ध्यानरूप शुभभावमें सम्यक्त्व, शान्ति या धर्म नहीं है। मूल धरातलमेंसे अर्थात् ध्रुवमेंसे शान्ति आना चाहिये।

आँखें मींचकर, अन्य बाह्य लक्ष छोड़कर, पंचपरमेष्ठीका ध्यान करे तथापि वह आकुलता है, दुःखरूप भाव है। पर्यायके निकट—तलमें, ध्रुवमें—भीतर अमृतसागरकी अनन्त बावड़ी भरी है, उसमें दृष्टि न डाले तो उसे शान्ति नहीं होगी और तब तक सम्यक्त्व नहीं होगा। उसकी दृष्टि परके ऊपर है इसलिये लाखों, करोड़ों या अनन्तबार पंचपरमेष्ठीका ध्यान करे तथापि तलमेंसे शान्ति नहीं आती।

आज कल तो सब परसे धर्म मनवाते हैं—पूजा करो, भक्ति करो, धर्म होगा। परन्तु तू स्वयं कौन है? उसपर तो लक्ष ही नहीं करवाते। क्या किया जाय?

प्रभु! तू कौन है? तेरी त्रैकालिक वस्तु क्या है? तुझपर मिथ्यात्वके, पुण्य-पापके, अधर्मके अनन्त भाव बीत गये, किन्तु प्रभु! तू चैतन्यचमत्कारी, अतीन्द्रिय आनन्दका सागर ज्योंका त्यों है। तेरी परमेश्वर-शक्ति भरपूर है; उस परमेश्वरस्वरूप भावमें कहीं न्यूनता नहीं आयी है, हानि नहीं पहुँची है—ऐसी वह वस्तु है। परन्तु प्रभु! तुझे अपनी प्रभुताकी खबर नहीं है, इसलिये उस प्रभुता पर तेरी दृष्टि नहीं जाती। उसकी दृष्टि बिना पंचपरमेष्ठीका मात्र ध्यान करते रहनेसे तेरा परिभ्रमण नहीं मिटेगा।–ऐसी बात है।

'अनेक फल-फूलोंसे मनोहर वृक्षके समान अनन्त गुणनिधि आत्मा अद्‌भुत है, उसके आश्रयमें रमनेसे सच्ची शान्ति प्रगट होती है।'

आत्मा अनन्त गुणोंकी निधि, खान है। उसमेंसे अनंत आनन्द प्रगट हो तथापि उसमें कोई कमी नहीं होती—ऐसा स्वरूप है। रागकी क्रियाएँ करनेसे पर्यायमें अनन्त दुःख आये उससे अनन्त आनन्दके नाथको कोई हानि पहुँचे या उसमें कोई कमी आ जाये—ऐसा नहीं है। अहा! भगवान आत्मा तो ज्योंका त्यों विराज रहा है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रश्नः—भीतर प्रवेश न हो सके तो बीचमें शुभभाव विश्राम तो है?

उत्तरः—नहीं। विश्रामस्थल तो आत्मा है। व्यवहारके पक्षपाती कोई कहते थे कि—पहले शुभरागरूप व्यवहारमें विश्रान्ति मिलती है और पश्चात् भीतर शान्ति एवं आनन्दमें पहुँचते हैं। परन्तु यह बात बराबर नहीं है।

यहाँ कहते हैं कि—अनेक फल-फूलसे सुशोभित वृक्षकी भाँति अनन्त गुणसागर, अनन्त गुणोंकी खान, अनन्त गुणोंका निधान ऐसा भगवान आत्मा अद्वितीय है। अहाहा! आत्मा अर्थात् क्या, भाई! वह तो साक्षात् परमात्मस्वरूप ही है। उसका आश्रय लेनेसे, भीतर ध्येयमें एकाग्र होनेसे अतीन्द्रिय शान्ति झरे ऐसा अनुपम वृक्ष है। अरे, यह बात अन्यत्र कहाँ है? प्रभु! यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकीनाथकी सीधी वाणी है। आया कुछ समझमें? अहाहा! यह बेनके वचन हैं यह भगवानकी वाणी है। उनके घरका कुछ नहीं है; यह तो दिव्य-ध्वनि है।

भाई! जिस प्रकार वृक्ष अनेक फल-फूलसे भरा होता है, उसीप्रकार यह भगवान आत्मा जिसमें अनन्त गुणोंके फल उत्पन्न हों ऐसा अनुपम वृक्ष है। अहा! अद्भुत है आत्मा! भगवान भी जिसका पूर्ण गुणगान न कर सकें—न कह सकें।

प्रश्नः—भगवान सब जानते हैं, तो फिर सब कह नहीं सकेंगे?

उत्तरः—नहीं। जानते सब हैं; यह बात ठीक हैं; परन्तु वाणीकी अमुक सीमा होती है—मर्यादित है, इसलिये वाणीमें सब नहीं आता। समयसारकी ५वीं गाथाकी टीकामें शब्दब्रह्मको समस्त वस्तुका कथन करनेवाला भी कहा है। वहाँ बतलाया है कि—शब्दब्रह्म कुछेक धर्मोंका कथन करता है और कुछेकका अनुमान कराता है—इस प्रकार प्रयोजनभूत सर्व वस्तुको कहता है; इसलिये वाणीमें सब आता है ऐसा भी अपेक्षासे कहा जाता है। गोम्मम्टसारमें ऐसा आता है कि–वाणी जड़ है–अजीव है; उसमें सर्वज्ञने देखा है उतना सब. नहीं आता। वाणी तो जड़ है। जड़में क्या इतनी शक्ति है कि केवलज्ञानमें ज्ञात हुई सर्व बात कह सके? उसमें अमुक बात ही आती है।

ऐसा तू तीनलोकका नाथ, चैतन्य-आनन्दकन्द, कल्पवृक्ष-समान प्रभु है। तुझसे बड़े अरिहंत या सिद्ध कोई नहीं हैं। अरिहंत और सिद्ध तो पर्याय है; तू तो ऐसी अनन्त पर्यायोंका समुद्र। जैसा भगवानका द्रव्य है वैसा ही तेरा है। अहाहा! भगवानकी बात बैठती है, किन्तु अपनी महानताकी बात बैठना जीवोंको कठिन लगता है!

अहा! चैतन्य-चमत्कारसे भरपूर आत्मद्रव्य अमाप है। उसमें अनन्तानन्त चमत्कारी गुण भरे हैं। अनन्तका कोई माप नहीं है, कोई सीमा नहीं है। अनन्तका अनन्तके साथ अनन्तबार गुणा करो तथापि जिनका पार नहीं आता—इतने अनन्तानन्त—अपार—असीम

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गुणरत्न आत्मामें भरे हैं। ऐसे अनन्त गुणोंकी शक्तिवान जो निज आत्मद्रव्य उसके समक्ष देखना नहीं है, उसका आदर नहीं करना है, उसका आश्रय नहीं लेना है और 'धामधूमे धमाधम चली, ज्ञान-मारग रहा दूर रे....!' इस प्रकार बाहरी दौड़धाम करना है मानों हम कोई धर्म कर रहे हैं! भाई! उसके आश्रयसे शान्ति नहीं मिलती। अनन्त आनन्द एवं अनन्त शान्तिका भण्डार अद्‌भुत सर्वज्ञशक्तिवान भगवान आत्मा भीतर विराजमान है, उसके आश्रयमें रमनेसे सच्ची शान्ति प्रगट होती है।

जिस प्रकार अनेक फल-फूलसे प्रफुल्लित वृक्ष फलाच्छादित दिखता है, उसीप्रकार यह भगवान आत्मा अनन्त गुणोंकी शक्तिवाला—ज्ञान, दर्शन, सुख आदि एक-एक गुण अपनी अनन्त शक्तिसहित—मनोहर चैतन्यवृक्ष है। सब बातें छोड़कर एक चैतन्यके आश्रयमें रमनेसे—वस्तु है उसे जानकर उसमें क्रीड़ा करनेसे—शान्ति प्रगट होती है। आत्माश्रित सम्यग्दर्शन प्रगट होता है उसे सच्ची शान्ति प्राप्त होती है।

अहाहा! इसमें (बहिनश्रीके वचनामृतमें) शब्द संक्षिप्त हैं किन्तु भरा बहुत है। अभी तो लोग पढ़ेंगे तो इसकी महत्ता समझमें आयगी कि कितना सारतत्त्व भरा है इसमें!

*

वचनामृत-१२१

आचार्यदेव करुणा करके जीवको जगाते हैं:—जाग रे! भाई, जाग! तुझे निद्रामें दिशा नहीं सूझती। तू अपनी भूलसे ही भटका है। तू स्वतंत्र द्रव्य है; भूल करनेमें भी स्वतंत्र है। तू परिभ्रमणके समय भी शुद्ध पदार्थ रहा है। यह कोई महिमावान वस्तु तुझे बतला रहे हैं। तू अन्दर गहराईमें उतरकर देख, असली तत्त्वको पहिचान। तेरा दुःख टलेगा, तू परम सुखी होगा॥१२१॥

'आचार्यदेव करुणा करके जीवको जगाते हैं:—जाग रे! भाई, जाग!'

चैतन्यकी जागृत-ज्योतिको जगाते हैं।

प्रश्न:—जागृत-ज्योति अर्थात् क्या?

उत्तर:—चैतन्य जागृत-ज्योति है, अंधी नहीं। दीपक या सूर्य अपने प्रकाशको नहीं जानते। यह चैतन्य जागृत-ज्योति तो अपने तथा सूर्यादिके प्रकाशको—दोनोंको

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जाननेवाली है। नियमसारके शुद्धोपयोग–अधिकारमें लिया है ना, कि—ज्ञानमें स्व-परको जाननेकी शक्ति–स्वभाव–त्रिकाल है। उस त्रैकालिक सहज ज्ञानस्वभावको, आनन्दकन्द प्रभुको, आवरण या आवरणका अभाव—वह कुछ भी नहीं है। व्यक्त होनेवाली केवलज्ञानकी पर्याय भी सावरण है, क्योंकि उसमें—क्षायिकभावमें—कर्मके अभावकी अपेक्षा आती है। स्वपर-प्रकाशक वस्तुस्वभाव तो वास्तवमें त्रिकाल निरावरण एवं निरपेक्ष है। एक ओर मोक्षमार्ग प्रकाशकमें मतिज्ञानको भी स्वभावका अंश कहा है और दूसरी ओर नियमसारमें केवलज्ञानको भी सावरण कहा; परन्तु वह किस अपेक्षासे? केवलज्ञान पर्यायमें निमित्तकी—कर्मके अभावकी—अपेक्षा आती है उस अपेक्षा से। परन्तु त्रैकालिक द्रव्यको तो—जो ज्योंका त्यों चैतन्यके चमत्कारसे भरपूर प्रभु है ऐसे परमस्वभावभावरूप भगवान आत्माको तो—किसी कर्मकी अथवा कर्मके अभावकी कोई अपेक्षा है नहीं। अहाहा! ऐसी जागृत-ज्योति जिसका स्वभाव है उससे कहते हैं कि—जागरे! जाग। जगाते हैं कि—प्रभु! अरे भाई! जाग रे! जाग। अपनी अंतरकी जागृत-ज्योतिको जगा। बाह्यमें शुभभाव और अशुभभाव आदि तूने बहुत किया। अब तो जागृत हो!

'तुझे निद्रामें दिशा नहीं सूझती।'

तू अज्ञानमें सोता है; उसमें तेरी दिशा कौनसी है वह तुझे नहीं सूझता। अंतरमें किस प्रकार जाना और निर्मल दशा कहाँसे प्रगट हो—वह कुछ नहीं सूझता। अन्य मतमें भी कहते हैं ना! कि :—

जागकर देखूँ तो जगत दिखता नहीं,
नींदमें अटपटे भोग भासें।

वे ऐसा मानते हैं कि सर्वत्र अकेला चैतन्य ही है, अन्य कोई वस्तु नहीं। परन्तु वस्तुस्वरूप ऐसा नहीं है। चैतन्यतत्त्व एक समयकी पर्यायमें छह द्रव्योंको—उनके सर्व गुणों एवं पर्यायों सहित—जानने की शक्तिवाला द्रव्य है। यदि छह द्रव्योंको न माने तो उन्हें जाननेकी जिसकी एकसमयकी शक्ति है ऐसे निज चैतन्यतत्त्वको ही उसने नहीं माना।

वीतराग जैनदर्शनमें कहा हुआ आत्माका स्वरूप न समझे और कहे कि उपवास करो, व्रत करो, यह करो और वह करो, सामायिक करो और प्रतिक्रमण करो; परन्तु भाई! आत्माके परिचय बिना तेरे व्रत, सामायिक और प्रतिक्रमण कैसे? निद्रामें तुझे अपनी चैतन्यशक्तिके ,सामर्थ्यकी खबर नहीं है। तुझे नींदमें अंतरकी सच्ची दिशा नहीं सूझती।

'तू अपनी भूलसे ही भटका है।'

कर्म जीवको परिभ्रमण कराते हैं यह बात भी तीन कालमें सत्य नहीं है। तू

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अपनी भूलसे ही भटका है। दर्शनमोहनीय नामक कर्मसे आत्मामें भ्रान्ति अर्थात् भूल हुई है—ऐसा नहीं है। भ्रान्तिको कर्मसे भिन्न, स्वयं ही पैदा की है। श्री चन्द्रप्रभ भगवानकी पूजाकी जयमालामें आता है ना!

करम बिचारे कौन, भूल मेरी अधिकाई;
अग्नि सहैं घनघात, लोहकी संगति पाई।

तेरी भूल तूने अपनेसे की है, कर्मने तुझे भूल नहीं करायी। ज्ञानावरणीय कर्म ज्ञानको रोकता है—ऐसा शास्त्रमें आता है, वे निमित्तका ज्ञान करानेवाले व्यवहारके कथन हैं। परमार्थतः कोई परद्रव्य किसीको नहीं रोकता, लाभ–हानि नहीं करता। श्रीमद्ने भी कहा है कि—अपनी भूलसे तू भटका है; तेरी भूल इतनी कि स्वको भूल गया और परको अपना माना। शरीर मेरा, राग मेरा, दया–दानादि भाव मेरे; ऐसा जो तू मानता है वह तेरी भूल है;—ऐसा संत कहते हैं।

आत्मा भूल करता है उसमें कारणरूप ५०% प्रतिशत कर्म और ५०% प्रतिशत जीव है—ऐसा एक पण्डित कहते थे। सम्प्रदायके एक सेठ ऐसा कहते थे कि—५१% प्रतिशत जीवके और ४९% प्रतिशत कर्मके मानों। यह चर्चा कई वर्षसे चलती है। आत्मा भूल करता है उसमें वास्तवमें कर्म एक अंश भी कारणरूप नहीं है। अपनेको भूलकर भूल करता है, कर्म तो निमित्तमात्र परवस्तु है। क्या उसने भूल करायी है? क्या उससे तेरी भूल हुई है? अरे! भूल करनेवाला—पर्यायमें भूलका रचनेवाला—तू स्वयं और डालता है कर्मके सिर! पं. टोडरमलजी मोक्षमार्ग प्रकाशकमें कहते हैं कि—'जिनाज्ञामें ऐसी अनीति सम्भव नहीं है।'

जैनके तीनों सम्प्रदायोंमें कर्मकी ऐसी कील—मिथ्या अभिप्राय—घुस गई है कि ज्ञानावरणीय कर्मके तीव्र उदयसे ज्ञान नहीं हो सकता, क्षयोपशम हो तो कुछ विकास होता है। वास्तवमें तो यह सब बातें बिलकुल असत्य हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि—तू अपनी भूलसे ही भटका है, परसे नहीं।

'तू स्वतंत्र द्रव्य है; भूल करनेमें भी स्वतंत्र है।'

सीधा चलनेमें तथा विपरीततामें भी तू स्वतंत्र है; क्योंकि तू स्वयं स्वतंत्र द्रव्य है। अपने परिणाम करनेमें तू सम्पूर्ण स्वाधीन है, उसमें परकी या निमित्तकी कोई अपेक्षा है ही नहीं। वि. सं. २०१३में सम्मेदशिखरकी यात्राके समय ईसरीमें चर्चा होनेपर ऐसा कहा था कि—जीव विकार करता है उसमें परमार्थसे बाह्य कारककी अपेक्षा है ही नहीं। पंचास्तिकायकी ६२वीं गाथाकी टीकामें आता है कि—आत्मा भूल करे उसमें परकी—कर्मके कारककी—अपेक्षा बिलकुल नहीं है, और कर्म कर्मरूपसे बँधे उसमें आत्माकी—जीवके

४५

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कारकोंकी—बिलकुल अपेक्षा नहीं है। जीव विकार अपनेसे—अपने परिणमनभावसे—करता है और कर्म उसके अपनेसे बँधते हैं, दोनों अपने-अपने परिणमनमें बिलकुल स्वतंत्र हैं। यहाँ भी ऐसा ही कहते हैं कि—तू स्वतंत्र द्रव्य है; भूलमें भी स्वतंत्र है। किसी अन्यके कारण भूल होती है—ऐसा है ही नहीं।

मुनिपना ग्रहण किया हो और अंतरमें ऐसी मान्यता हो कि—'हम कपड़े छोड़कर तो बैठे हैं, परन्तु भीतरसे कर्म हटें तो लाभ हो; कर्म हटे बिना कैसे लाभ होगा?' अरेरे! यह कैसी भ्रमयुक्त मान्यता है, भाई। भूल तो तुझसे हुई है उसमें कर्मादि पर-द्रव्य बेचारे क्या करेंगे? अपनी भूलसे तू भटका है; भूलमें भी तू स्वतंत्र है।

'तू परिभ्रमणके समय भी शुद्ध पदार्थ रहा है।'

'मैं नहीं हूँ' ऐसी मिथ्यात्वकी भयंकर भूल की; तथापि वह भूल पर्यायमें ऊपरी है, वस्तुमें वह भूल–अशुद्धता–प्रविष्ट नहीं हो गई है। भूलके समय भी तू स्वतंत्र है और भटकते समय भी शुद्ध पदार्थ रहा है। नरक–निगोदके भव किये परन्तु तेरी वस्तु—त्रैकालिक सच्चिदानन्दमय ज्ञायक वस्तु—ज्योंकी त्यों शुद्ध ही रही है। अरे! दोष करता है स्वयं और डालता है कर्म के सिर! यह कैसे चलेगा? यदि दोष स्वयं स्वतंत्र करता हो तो स्वयं टाल सकता है; कर्मके कारण होता हो तो जब कर्म टलेगा तब दोष दूर होगा, आत्माके हाथमें कुछ नहीं रहा! परन्तु वस्तुस्वरूप ऐसा है ही नहीं। भूल करनेमें भी तू स्वतंत्र है और टालनेमें भी। भूलके समय भी पदार्थरूपसे तो तू शुद्ध ही रहा है।

प्रवचनसारकी १८६वीं गाथाकी टीकामें कहा है कि—मिथ्यात्व एवं रागादि परिणामोंका कर्त्ता तू ही है; उसका करनेवाला और टालनेवाला तू ही है;—यह शुद्धद्रव्यके निरूपणस्वरूप निश्चयनय है। कर्मके कारण रागादि परिणाम होते हैं ऐसा कहना वह अशुद्ध द्रव्यके निरूपणस्वरूप व्यवहारनय है। वहाँ, निश्चयनय मात्र स्वद्रव्यके परिणामको दरशाता है इसलिये उसे शुद्ध द्रव्यका कथन करनेवाला कहा है और व्यवहारनय कर्म आदि परद्रव्यके परिणामके कारण आत्मपरिणाम दरशाता होनेसे उसे अशुद्ध द्रव्यका कथन करनेवाला कहा है। वहाँ, शुद्धद्रव्यका कथन एक द्रव्याश्रित परिणामकी अपेक्षासे जानना और अशुद्ध द्रव्यका कथन एक द्रव्यके परिणाम अन्य द्रव्यममें आरोपित करनेकी अपेक्षासे जानना।

यहाँ कहते हैं कि उस परिभ्रमणके समय भी तू शुद्ध पदार्थ रहा है। अनन्तानन्तकाल जीव निगोदमें रहा। जिसप्रकार कन्या पीहरमें बड़ी होती है उसीप्रकार जीवका पीहर स्थान निगोद है। वहाँ पहले अनन्तकाल रहा है। नित्यनिगोदके जीव तो अभी त्रस भी नहीं हुए हैं, लट और चींटी भी नहीं हुए हैं, वहाँ मनुष्य तो कहाँसे हों? ऐसे अनन्त जीव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निगोदमें पड़े हैं, तथापि उनका द्रव्य तो शुद्ध ही है। द्रव्य अर्थात् वस्तु, स्वतःसिद्ध वस्तु; उसे क्या आँच आयगी? वस्तु तो त्रिकाल शुद्ध, अतीन्द्रिय आनन्दका सागर है। उसने पर्यायमें अनन्त दुःख सहे, तथापि उसके आनन्दस्वभावमें कोई कमी, हानि या न्यूनता नहीं हुई। निगोदके दुःख और सातवें नरकके दुःख—करोड़ों जीभसे तथा करोड़ों भवमें नहीं कहे जा सकते ऐसे वे क्षण-क्षणके दुःख—अनन्तवार सहे, तथापि वस्तुरूपसे तो प्रभु! तू शुद्ध ही रहा है। उस परिभ्रमणके कालमें भी तू शुद्ध ही है।

अहाहा! यह तो अलौकिक बात है। दिगम्बर जैनधर्म अर्थात् कोई अलौकिक चमत्कारी चैतन्यवस्तु बतलाने वाला धर्म! सर्वज्ञने वस्तुका स्वरूप है वैसा जाना है और है वैसा कहा है।

यहाँ कहते हैं कि—तू स्वतंत्र द्रव्य है। तेरी महिमावान वस्तु तुझे बतलाते हैं। तू अंतरकी गहराईमें उतरकर देख, मूल तत्त्वको पहिचान; तो तेरा दुःख दूर होगा और अतीन्द्रिय नित्य सुखकी तुझे प्राप्ति होगी।

*

भाद्र० शुक्ला ११, सं. २०२६

बेन बोलतीं तो बहुत कम हैं। पुत्रियोंके वड़े भाग्य हैं। यदि मौन रहें तब भी उनके दर्शनसे तो लाभ ही है। हमें तो बहुत दिनोंसे पता था—बहिनकी शक्ति बड़ी है।

—पूज्य गुरुदेव.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-४४

ता. २७-८-७८

वचनामृत-१२१

१२१वाँ बोल चलता है। पहले थोड़ा आ चुका है।

आचार्यदेव करुणा करके जीवको जगाते हैं—जाग रे! भाई, जाग! तुझे निद्रामें दिशा नहीं सूझती। जिसप्रकार निद्रामें दिशा नहीं सूझती उसीप्रकार इस अज्ञानमें तुझे दिशा नहीं सूझती। तू अपनी भूलके कारण ही भटका है। तू स्वतंत्र द्रव्य है; भूलमें भी स्वतंत्र है। तू परिभ्रमणके समय भी शुद्ध पदार्थ रहा है। नरक–निगोदके परिभ्रमण-कालमें भी आनन्दकन्द चैतन्यपदार्थ तो शुद्ध ही रहा है।

शुभ और अशुभ भाव वास्तवमें भव हैं। शुद्ध चैतन्य भगवान भीतर उन भवके भावोंसे भिन्न है। सर्वज्ञ जिनेश्वरने जो आत्मा देखा—मात्र अपने ही आत्माको देखा ऐसा नहीं, परन्तु अन्य समस्त आत्माओंको देखा—वह बिलकुल शुद्ध, आनन्दका नाथ और चैतन्यपिण्ड देखा है। 'मैं आत्मा नहीं हूँ' ऐसी नास्तिकपनेकी मान्यताके कालमें भी वह शुद्ध चैतन्यघन है। वह नास्तिकताकी पर्याय उसके ध्रुवस्वरूपमें प्रविष्ट नहीं हुई है।

'यह कोई महिमावान वस्तु तुझे बतला रहे हैं।'

सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव और मुनि—दिगम्बर संत—ऐसा कहते हैं कि—हम तुझे कोई महिमावान पदार्थ भीतर बतलाते हैं, वहाँ तू दृष्टि डाल; तुझे शुद्ध चैतन्यकी प्रतीति एवं प्राप्ति होगी। तब तुझे सम्यग्दर्शन होगा। इसके सिवा दूसरे लाख उपाय करे तथापि तुझे सम्यग्दर्शन अर्थात् धर्मका प्रारम्भ नहीं होगा।

अहाहा! ऐसी बातें हैं! सम्प्रदायमें यह बात नहीं मिल सकती। वहाँ तो ऐसा मिलेगा कि बाह्य तप करो, उपवास करो और भक्ति करो। परन्तु वे तो सब रागकी क्रियाएँ हैं। वे भी अनन्तबार की हैं; परन्तु अंतरमें त्रैकालिक शुद्ध चैतन्यघन वस्तु क्या है वह दृष्टिमें नहीं आयी, उसकी महिमा ख्यालमें नहीं आयी। अहा! यह कैसे बैठे? सर्वज्ञ जिनेश्वर तो ऐसा कहते हैं कि तुझे परिभ्रमणके कालमें शुभाशुभभाव अनन्तबार हुए, तथापि अंतरमें तो तू शुद्ध ही है। ऐसी कोई महिमावान वस्तु तुझे बतलाते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'तू अन्दर गहराईमें उतरकर देख, असली तत्त्वको पहिचान।'

भीतर तलमें अतीन्द्रिय आनन्दका नाथ विद्यमान है। पुण्य-पापके विकल्पोंसे हटकर अंतरकी गहराईमें उतर। भाई! सर्वज्ञ वीतरागदेव द्वारा कहा गया मार्ग कोई अलग ही है। परिभ्रमणके कालमें तूने अनन्तबार साधुपना लिया, परन्तु पंचमहाव्रतादि शुभपरिणामोंकी क्रिया तो आस्रव है, दोष है, उस दोषके समय भी आनन्दघन वस्तु तो शुद्ध ही है। पर्यायमें अशुद्धताके समय भी ध्रुव चैतन्यवस्तु भीतर त्रिकाल शुद्ध ही है। वह महिमावान वस्तु तुझे बतलाते हैं। उसे तू गहरे उतरकर देख।

प्रश्नः—'गहरे उतरकर' यानी क्या?

उत्तरः—शुभाशुभभाव तो ऊपरी–उथले हैं। वहाँसे हटकर, भीतर गहराईमें आनन्दका नाथ, सिद्धस्वरूप चैतन्यप्रभु कोई अद्भुत महिमावान वस्तु है उसे देख। समयसारमें कहा है कि—'चेतनरूप अनूप अमूरत, सिद्धसमान सदा पद मेरो।' मलिन दशाके कालमें भी वस्तु तो भीतर शक्तिरूपसे सिद्धसमान शुद्ध ही है। अहा! यह बात कैसे बैठे? अपनेको अभ्यास नहीं और बाहर यह बात कभी सुननेको मिलती नहीं है। बाह्यमें तो यह करो और वह करो, व्रत करो और तप करो यही सुननेको मिलता है। परन्तु भाई! 'करने'में क्रियाके कर्तृत्वमें तो चैतन्यका भावमरण है, उसमें शुद्ध चैतन्य प्रभुका अनादर है। इसलिये आचार्य और संत कहते हैं कि—उस शुभाशुभके कर्तृत्वरूप विभावसे हटकर भीतर गहराईमें जा। वहाँ भगवान आत्मा सिद्धस्वरूपकी शक्तिसहित शुद्ध विराजमान हैं उसे देख, तो तेरे परिभ्रमणका नाश हो जायगा और परम सुखकी प्राप्ति होगी।

परकी दया पालनेका भाव भी शुभराग है। वह शुभराग स्वरूपकी हिंसा है, क्योंकि रागके पीछे भीतर अरागी, त्रिकाल शुद्ध सिद्धस्वरूपी ध्रुव चैतन्यप्रभु विराजमान है उसका अनादर किया और रागका आदर किया। परकी दयाके कालमें कोई जीव किसी दूसरेको नहीं बचा सकता, क्योंकि एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कुछ नहीं कर सकता; और बचानेका जो शुभभाव हुआ वह भी शुद्ध द्रव्यसे भिन्न जाति है। उन शुभाशुभके भावोंरूपसे त्रैकालिक शुद्ध चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा कभी नहीं होता।—ऐसा भीतर गहरे उतरकर देख।

अंतरमें शुद्ध तत्त्व विद्यमान है उसे देख। असली तत्त्वको पहिचान। सर्वज्ञ जिनेश्वर भगवानने जैसा कहा है वैसा बन; सर्व अन्यमत कहते हैं तदनुसार नहीं, क्योंकि उन्होंने सच्चा तत्त्व नहीं जाना है। त्रिलोकीनाथ वीतराग परमात्माके बतलाये हुए शुद्ध चिदानन्द एवं सिद्धस्वरूपी ऐसे निज आत्मतत्त्वको पहिचान। उसके बिना तेरे चौरासीके अवतार नहीं मिटेंगे। उन अवतारोंमें जीव दुःखी हैं; भले ही करोड़पति सेठ हों या बड़े राजा हों, तथापि वे बेचारे रंक, भिखारी और दुःखी हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहा! जीव रागके चक्करमें फँस गया है! अंतरमें चैतन्यतत्त्व रागसे भिन्न है उसकी खबर नहीं है। स्वर्गके सुखोंकी कल्पनाके समय भी भगवान आत्मा भिन्न रहा है। स्वर्गमें या उस कल्पनामें सुख है वह मान्यता भ्रम है। सुख तो भीतर निज आत्मामें है। हिरनकी नाभिमें कस्तूरी है परन्तु उसका उसे पता नहीं है, उसीप्रकार यह भगवान आत्मा, दया–दानादि ऊपरी रागभावके पीछे, शुद्ध चिदानन्द है उसकी अज्ञानी को खबर नहीं है और न उसकी कीमत है।

प्रश्न :—वह कैसे हो?

उत्तर :—आनन्दघन अमृतका सागर–प्रभु भीतर विराज रहा है उसे समझनेसे होगा। मध्यलोकमें अन्तिम स्वयंभूरमण समुद्र असंख्य योजनके विस्तारवाला है। उसके तलमें मात्र रत्न भरे हैं। इस ओरके समस्त द्वीप-समुद्रोंकी चौड़ाईका जोड़ करने पर उस अन्तिम समुद्रकी चौड़ाई तीन योजन अधिक है। वहाँ नीचे धरातलमें रेत नहीं है किन्तु रत्न भरे हैं। उसीप्रकार यह 'स्वयंभू' चैतन्य भगवान पुण्य-पापके इन ऊपरी विकल्पोंके पीछे, भीतर गहराईमें ज्ञान एवं आनन्दादि अनन्त गुणरत्नोंसे परिपूर्ण चैतन्यरत्नाकर है। उसे तू अंतरमें देख। बाह्य दृष्टि छोड़कर तूने कभी अंतरमें नहीं देखा। मैंने यह किया और वह किया, इस प्रकार बाह्यमें भटकता फिरा; व्यापार किया और स्त्री–बच्चोंका पालन किया वह पाप भाव हो और दया-दान, पूजा-भक्ति तथा यात्रा आदि पुण्यभाव–दोनों विकारी भावोंमें एकाकाररूपसे बाहरका बाहर ही भटकता रहा। उसे छोड़कर, सर्वज्ञ भगवानने अंतरमें जो निर्विकारी भगवान देखा है उसे पहिचान। श्रीमद् कहते हैं :—

'सर्व जीव हैं सिद्ध सम, जो समझे वो होय।'

कुछ करे तो वह सिद्ध हो—ऐसा नहीं किन्तु भीतर समझे तो वह सिद्ध होता है। यही यहाँ कहते हैं कि—तू गहरे उतरकर देख, असली तत्त्वको पहिचान।

'तेरा दुःख टलेगा, तू परम सुखी होगा।'

आत्मा स्वयं आनन्द-निधान है प्रभु! इन्द्रिय-विषयोंमें सुखकी कल्पना होती है, भोगमें आनन्द आता है, करोड़–दो करोड़की सम्पत्ति हो अथवा आमदनी हो उसमें आनन्दका वेदन होता है, वह तो सब जहर है। उसमें जिसकी रुचि है वह जहरके प्याले पीता है।

प्रभु! तू अपना अंतर देख; तेरी दुःखकी दशा, जो पुण्य-पापके विकार हैं वे दूर हो जायँगे और उसके बदले तुझे सुखकी अपूर्व दशा प्रगट होगी। उसका नाम धर्म और मोक्षका मार्ग है।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत-१२२

तू आत्मामें जा तो तेरा भटकना मिट जायगा। जिसे आत्मामें जाना हो वह आत्माका आधार लेता है ॥१२२॥

'तू आत्मामें जा तो तेरा भटकना मिट जायगा।'

भगवान आत्मा चैतन्यके अनंत गुणरत्नोंसे भरपूर, आनंदसे छलाछल भरा हुआ महान पदार्थ है; उसकी तुझे खबर नहीं है। उसे पहिचानकर तू वहाँ जा, तो तेरा यह चौरासीका परिभ्रमण मिट जायगा।

परसे हट, आत्मामें बस;
यह है सच, इतना कर तो बस!

यह संक्षिप्त बात है। पुण्य और पाप—अरे! दया–दान, भक्तिके भाव आदि भी राग है, दुःख है, आकुलता है; यह तुझे खबर नहीं है। हिंसा, झूठ, चोरी आदि पाप तो दुःख है ही, परन्तु देव-शास्त्र-गुरुकी भक्तिका भाव भी राग होनेसे दुःख ही है। अहा! कठिन लगे ऐसा है भाई!

भगवान तो कहते हैं कि हमारे सन्मुख देखेगा तो तुझे राग होगा। अपने सन्मुख देख! जहाँ अनन्त आनन्दसे भरपूर तेरा भगवान आत्मा है वहाँ जा। अंतर्दृष्टि होनेके पश्चात् भी देव-शास्त्र-गुरुके प्रति श्रद्धा तथा भक्ति आदि शुभभाव आयँगे, परन्तु हैं वे दुःखरूप। इसलिये उन्हें छोड़कर तू भीतर आत्मामें जा, तो बाहर भटकनेमें—विकल्पमें—तू जो रुका है वह भटकना मिट जायगा। सूक्ष्म बात है। जिनमार्ग ही ऐसा सूक्ष्म है। कई बार कहते हैं कि :—

घट घट अंतर जिन बसै, घट घट अंतर जैन;
मत-मदिराके पानसौं, मतवाला समुझै न।

अपनी मान्यतामें पागल हुए जीव अंतरमें जिनस्वरूप भगवान आत्मा विराज रहा है उसे नहीं जानते। अनंत वीतरागता एवं अनंत ज्ञान-आनन्द-शान्तिकी दशा आयी कहाँसे? कहीं बाहरसे आती है क्या? भाई! तू भीतर वीतराग और जिनस्वरूप ही है। उस वीतराग जिनस्वरूपसे परिणमने पर तुझे अंतरसे वीतराग सम्यग्दर्शन होगा, वीतरागी ज्ञान होगा और जिनस्वरूपमें वीतरागी रमणता होगी; तेरा भटकना मिट जायगा। उसके लिये तू आत्मामें जा। समझमें आया कुछ? इस बोलमें मात्र दो पंक्तियाँ होनेपर भी भाव गहरे हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भूमिकानुसार देव-गुरु आदिके प्रति शुभ भाव होना चाहिये—आते हैं। ज्ञानीको भी राग होता है; परन्तु है वह दुःखरूप तथा हेयरूप। मोक्षपाहुड़की १६वीं गाथामें **'परदव्वादो दुग्गइ'** कहा है। भगवान कहते हैं कि–हमारे प्रति भी यदि तेरा लक्ष जायगा तो वह चैतन्यकी दुर्गति है, दुःख है। अहा! भारी कठिन काम!

जीव स्त्री–पुत्र और व्यापारमें मूर्च्छित पड़ा है वहाँ २२-२३ घन्टे पापमें व्यतीत करता है; एकाध घन्टा सुनने आये तो वहाँ 'तुम हमारी भक्ति करो, व्रत करो, तुम्हारा कल्याण हो जायगा'—ऐसा सुनानेवाले बेचारेका घन्टा भी लूट लेते हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि—तू आत्मामें जा, हमारी ओर देखना छोड़ दे। विदेहक्षेत्रमें वर्तमानमें त्रिलोकनाथ श्री सीमंधर भगवान विराजते हैं, समवसरण है। वहाँ उनकी दिव्यध्वनि छूटती है। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव वहाँ गये थे। आठ दिन तक वह वाणी सुनकर पश्चात् यहाँ आये और इन समयसारादि शास्त्रोंकी रचना की। उनमें कहा है कि—भाई! तू अपनेको देख ना!

अहाहा! तू कोई वस्तु है या नहीं? तू स्वयं वस्तु तो है। वस्तु जिसप्रकार स्थायी है उसी प्रकार उसके ज्ञान, आनंद आदि स्वभाव भी स्थायी हैं या नहीं?—यह कभी देखा है? विचार किया है कभी? आत्मा जिसप्रकार स्थायी–ध्रुव–नित्य–अविनाशी तत्त्व है उसीप्रकार साथ रहे हुए उसके अनन्तगुण भी अविनाशी हैं। अहा! ऐसे निज आत्मामें जा।

'जा' का अर्थ है पर्यायको उसमें उन्मुख कर। द्रव्य और गुण तो हैं सो हैं, परन्तु वर्तमान पर्यायको वहाँ ले जा। इसमें द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों सिद्ध हो गये। यह तो जैन परमेश्वरकी प्रारम्भिक शिक्षा है। द्रव्य और गुण तो त्रैकालिक ध्रुव हैं। तेरी वर्तमान दशा जो बहिर्मुख है उसे अंतर्मुख कर। उसे बहिर्मुख रखेगा तो तेरी पर्याय अशुद्ध होगी।

भाई! सिरपर मौतकी नौबत बज रही है। देहावसानका समय तो आना ही है। वह क्षण अचानक एकदम आयगा। उससे पूर्व 'यह तत्त्व क्या है' उसे नहीं समझा तो यह अवतार पशु समान है भले ही तू लखपती, करोड़पती या अरबपति हो। अहाहा! यह बात दुनियासे निराली कही जा रही है!

यहाँ तो शरीरको ८६ वर्ष हुए है, बहुत-कुछ जाना और देखा है, प्रत्येक सम्प्रदायमें देखा है। भाई! यह वस्तु कोई अलग ही है! किसीने कहीं व्रतमें लगा दिया और किसीने तपमें तथा भक्तिमें,—वह सब एक ही प्रकार है।

प्रश्न :—आप काहेमें लगाते हो?

उत्तर :—यहाँ कहा ना, कि तू आत्मामें लग जा। अनादिसे जो तू रागमें लगा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हुआ है, उसके बदले इसमें—आत्मस्वभावमें—लग जा। अपूर्व बात है भाई! अनन्तकालमें कभी एक क्षण भी 'सम्यग्दर्शन और उसका विषय क्या वस्तु है'—वह नहीं जाना।

'तू आत्मामें जा।' परन्तु आत्मा कौन है—उसे लोग जानेंगे, उसकी महिमा आयगी, तब आत्मामें जायँगे ना? अन्यथा बाह्य महिमामें तो—अनादिका परिभ्रमण तो पड़ा ही है। आत्मामें–ज्ञायक स्वभावमें जा, तो तेरे भटकनेका अन्त आ जायगा। भटकना अर्थात् परिभ्रमण।

'जिसे आत्मामें जाना हो वह आत्माका आधार लेता है।'

परके आधारसे, देव-शास्त्र-गुरुकी भक्तिके भावसे भी, अंतरमें प्रवेश नहीं होगा, क्योंकि वह राग है। वस्तुस्वरूप—भगवान आत्मा—शुद्ध ज्ञानघन एवं आनन्दकन्द है, उसमें जिसे 'जाना है वह निज आत्माका आधार ले। जिसमें जाना है उसका आधार ले, उसके आश्रयसे उसमें प्रवेश कर। किसी भी रागकी वृत्ति, चाहे वह भक्तिका या नामस्मरणका शुभ-विकल्प हो, उसके आधारसे अंतर्‌स्वरूपमें प्रवेश नहीं हो सकेगा। ऐसी बात है प्रभु!

प्रश्न :—सामायिक, प्रोषध और प्रतिक्रमण द्वारा आत्मामें नहीं पहुँचा जा सकता?

उत्तर :—भाई! आत्मा कौन है कैसी वस्तु है—वह दृष्टिमें तथा अनुभवमें नहीं आया, वहाँ सामायिक, प्रोषध और प्रतिक्रमण कहाँसे लाया? सामायिक है कहाँ तेरे? खाक भी नहीं है। आत्मा वीतराग जिनस्वरूप है ऐसा जिसे अंतरमें जानेसे अनुभव हो, बाह्यसे हटकर अंतर्मुख हो—स्वरूपमें स्थिरता करे तब उसे अंतरमें जो समताका—वीतरागताका—लाभ होता है उसे सच्ची सामायिक कही जाती है। अहा! आजकल तो पहाड़ा पढ़ लेनेको सामायिक मान बैठे हैं।

त्रिलोकीनाथ वीतराग सर्वज्ञदेवके सिवा अन्यत्र कहीं ऐसा पंथ नहीं है। उन्होंने जाना, देखा ऐसा त्रैकालिक वस्तुस्वरूप दूसरे पंथमें है ही नहीं। ऐसे सर्वज्ञ वीतराग जिनेन्द्रभगवानका आदेश है कि—प्रभु! तू अपनेमें प्रवेश कर ना! तेरा परिभ्रमण मिट जायगा; क्योंकि परिभ्रमण और परिभ्रमणका भाव आत्माके स्वभावमें है ही नहीं। सच्चे सन्तको भी महाव्रतादिके जो विकल्प उठें वह भी जगपंथ है, बंधका कारण है। अरेरे! दुनिया बाहरकी—व्यावहारिक क्रियाकाण्डकी—बातमें मूर्च्छित हो गई है।

प्रश्न :—उसमें आनन्द आता है न?

उत्तर :—खाक भी आनन्द नहीं है; व्यर्थ ही मान बैठा है। कुछ भी समझे बिना हाथमें झांझ, तबला, और ढोलक लेकर नाचते हैं और उसमें भक्तिका आनन्द मानते हैं; परन्तु भाई! भक्ति किसे कहते हैं उसके अर्थकी कोई खबर है? जो अज्ञान एवं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पुण्य-पापके विकल्पको हरे, दूर करे और कर्मको टाले, नाश करे—ऐसा जो आनन्दमूर्ति निजात्माका भजन, श्रद्धा–ज्ञानपूर्वक अतीन्द्रिय अनुभवन, वह सच्ची भक्ति है। सम्यग्दृष्टि जीव तो अपने ज्ञानस्वरूपमें होता है; राग आये परन्तु उसमें वे नहीं होते, उसके ज्ञाता रहते हैं। देव-शास्त्र-गुरुकी भक्तिका विकल्प आये, परन्तु उससे भिन्न भीतर भेदज्ञानकी धारा अटूट वर्तती रहती है। शुभरागका विकल्प है वह कर्मधारा है, धर्मधारा नहीं है। मार्ग अपूर्व है भाई! चैतन्य कौन है, उसे पहले कभी देखा-जाना नहीं है, और बाहरी माथापच्चीमें जिन्दगी गँवा दी हैं।

आज दिव्यध्वनिका दिवस है। महावीर परमात्माको वैशाख शुक्ला दसवींके दिन केवलज्ञान हुआ, परन्तु वाणी नहीं निकली थी; वाणीको झेलनेवाला पात्र जीव वहाँ नहीं था। ६६ दिनके बाद श्रावण कृष्णा एकमके दिन, जो जातिसे ब्राह्मण और वेदोंमें पारंगत थे उन इन्द्रभूति गौतमको इन्द्र ले आये।

प्रश्नः—किसी जैनको क्यों नहीं लाये?

उत्तरः—गौतमकी योग्यता महान थी। गणधर होनेकी उनमें विशेष योग्यता थी। वेदके प्रखर पंडित, प्रकृति शांत और कषाय मंद। समवसरणमें आये और मानस्तंभ देखते ही उनकी विद्वत्ताका अभिमान गल गया। भगवानकी दिव्यध्वनि खिरने लगी। अहा! भगवानकी वाणी सुनकर अंतर्मुहूर्तमें आत्मज्ञान एवं संयम प्राप्त करके गौतम गणधरने बारह अंगकी रचना की; वह आजका दिन है।

मुख ओंकार धुनि सुनि, अर्थ गणधर विचारैं;
रचि आगम उपदिशै, भविक जीव संशय निवारैं।

—वह आजका दिन है।

श्वेताम्बरमें ऐसा कहा है कि भगवानको प्रथम दिन वाणी खिरी, किन्तु उसे झेलनेवाला गणधर उपस्थित न होनेसे—'अभाविया पुरिसा'; इसलिये पश्चात् वाणी रुक गई। वह बात कल्पित है।पूर्वकालमें जब तीर्थंकर नामकर्म बँधा तब ऐसा विकल्प आया था कि जगतके सर्व जीव इस आत्मतत्त्वको समझें; उससे जो पुण्य बँधा उसके उदयकालमें वाणी खिरे तब सामने समझनेवाले होते ही हैं; तीर्थंकरकी वाणी कभी निष्फल जाती ही नहीं। जबतक झेलनेवाले नहीं थे तबतक वाणी प्राकृतिकरूपसे खिरी ही नहीं थी।

चार ज्ञानके धारी गौतम गणधरने बारह अंग और चौदह पूर्वकी रचना आजके दिन की थी। समयसार उसका अंश है; उसमेंसे कहा गया यह—बहिनश्रीके वचनामृत—सार है। आया कुछ समझमें? जरा कठिन लगेगा।

'जिसे आत्मामें जाना है वह आत्माका आधार ले।' रागका और निमित्तका आधार ले

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तो अंतरमें प्रवेश कैसे होगा? थोड़े शब्दोंमें बड़े गंभीर भाव भरे हैं। आजकल तो सम्प्रदायमें भी गड़बड़ी चल रही है। अन्यके मार्गको जैनमार्ग मान बैठे हैं। शुभरागमें धर्म मनवाते हैं उन्होंने अन्यमें धर्म मनवाया है। अरे! देव–गुरुकी भक्तिमें भी धर्म मनाये वह जैनधर्म नहीं है। जैनधर्म तो शुभाशुभ रागसे रहित—मोह क्षोभरहित—वीतरागभाव है।

*

वचनामृत-१२३

चैतन्यरूपी आकाशकी रम्यता सदाकाल जयवन्त है। जगतके आकाशमें चन्द्रमा और तारामण्डलकी रम्यता होती है, चैतन्य-आकाशमें अनेक गुणोंकी रम्यता है। वह रम्यता कोई और ही प्रकारकी है। स्वसंवेदनप्रत्यक्ष ज्ञान प्रगट करनेसे वह रम्यता ज्ञात होती है। स्वानुभूतिकी रम्यता भी कोई और ही है, अनुपम है॥१२३॥

इसमें ('बहिनश्रीके वचनामृत' पुस्तकमें) बेनके वचनामृतोंके ४३२ बोल हैं। एक-एक बोल अमूल्य है, परन्तु समझनेकी तैयारी होना चाहिये। क्या किया जाय?

'चैतन्यरूपी आकाशकी रम्यता सदाकाल जयवंत है।'

भगवान चैतन्यस्वरूप आकाशकी रमणीयता सदाकाल जयवंत है। चैतन्य प्रभु ज्ञानकी रमणीयता, आनन्दकी रमणीयता आदि अनन्त गुणोंकी रमणीयतासे भरा हुआ ध्रुव पदार्थ है; वह क्षणिक पर्यायमें नहीं आ जाता, वह तो अपनी ध्रुव रम्यतासे सदाकाल वर्तता है। उस चैतन्यरूपी आकाशमें ज्ञानकी, दर्शनकी, आनन्दकी तथा वीर्यकी रमणीयता अर्थात् अनंत शक्तियोंकी रम्यता सदाकाल जयवंत वर्तती है।

'जगतके आकाशमें चन्द्रमा और तारामण्डलकी रम्यता होती है, चैतन्य-आकाशमें अनेक गुणोंकी रम्यता है।'

जगतके आकाशमें सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और तारामण्डलकी रम्यता होती है, चैतन्य-आकाशमें ज्ञानादि अनन्त गुणोंकी रम्यता है। जिसप्रकार चन्द्र और तारामण्डलसे आकाश रमणीक लगता है, उसीप्रकार यह चैतन्य-आकाश भी भीतर अपने अनंत गुणोंकी रम्यतासे भरपूर है। आकाशमें चन्द्र और तारोंकी तो संख्या है, आत्मामें तो गुण अनन्त हैं। ऐसा रमणीय आत्मा 'स्वयंज्योति सुखधाम' है। उसे प्राप्त करनेके लिये किसीके आलम्बनकी आवश्यकता नहीं है ऐसा वह निरालम्बी तत्त्व है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'वह रम्यता कोई और ही प्रकारकी है। स्वसंवेदनप्रत्यक्ष ज्ञान प्रगट करनेसे वह रम्यता ज्ञात होती है।'

तारे हैं परन्तु आँख खोलकर देखे तो पता चले ना? आदमी सोता हो, कमरेमें अँधेरा हो, आँखोंमें कीचड़ लगा हो और कमरेका द्वार एक हो तो उसे आकाशकी रम्यता नहीं दिखेगी; उसीप्रकार जिसे, रागसे धर्म होता है ऐसा मिथ्याश्रद्धान है, मिथ्याज्ञान है वह अज्ञानरूपी कमरेमें सोता है, उसे आत्माकी रम्यता नहीं दिखेगी। उससे कहते हैं कि—भाई, जाग रे! जाग।

यहाँ कहते हैं कि—स्वसंवेदनप्रत्यक्ष ज्ञान प्रगट करनेसे निज आत्माकी रमणीयता ज्ञात होती है। यहाँ क्या कहा? कि—आँख खोलकर देखे तो आकाशमें तारोंकी रम्यता दिखती है; उसीप्रकार भगवान आत्मामें अनंत गुणोंकी रमणीयता स्वसंवेदनप्रत्यक्ष ज्ञान अर्थात् स्वयंके वेदनमें आये ऐसे प्रत्यक्ष वेदनसे ज्ञात होने योग्य है; परसे ज्ञात हो ऐसी नहीं है। आत्मा परसे ज्ञात हो ऐसा तो नहीं है, परन्तु परके लक्षसे उत्पन्न हुआ जो राग उससे भी ज्ञात हो ऐसा नहीं है। राग कहीं आत्माका स्वरूप नहीं है, किन्तु विकार–विभाव है।

चैतन्य-आनन्दामृत सागरसे विपरीत ऐसा राग जहर है। उसके द्वारा आत्माकी रम्यता—एकत्वविभक्तस्वरूप सुन्दरता—ज्ञात नहीं होती। आनन्दधाम आत्माकी रमणीयता कोई अद्भुत है, और ही प्रकारकी है। जहाँ परकी अपेक्षा नहीं है, इन्द्रियों तथा मनकी अपेक्षा नहीं है, देव–शास्त्र–गुरुकी अपेक्षा नहीं है, अरे! देव–शास्त्र–गुरुकी वाणी सुनकर जो ज्ञान हुआ उसकी भी जहाँ अपेक्षा नहीं है—क्योंकि वह ज्ञान परलक्षी हुआ है—परन्तु जहाँ मात्र स्वतत्त्वका ही आलम्बन है—ऐसे स्वसंवेदनप्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा आत्माकी आश्चर्यकारी रमणीयता अनुभवमें आती है।

प्रश्नः—स्वसंवेदनप्रत्यक्ष ज्ञानका 'अर्थ क्या?

उत्तरः—स्व अर्थात् अपना, अपने स्वरूपकी रम्यताका स्वसंवेदनप्रत्यक्ष ज्ञान अर्थात् अनुभवयुक्त ज्ञान। वह स्वसंवेदन अपनी पर्यायमें अपने स्वयंसे अपने आधारसे हुआ है। देव-शास्त्र-गुरु निमित्त हैं वे पर हैं। परलक्षी ज्ञान तो परोक्ष है, परावलम्बी है, परतंत्र है, स्वतंत्र नहीं है। स्वकी रम्यताके आश्रयसे परिणमित स्वसंवेदनज्ञान प्रत्यक्ष है, स्वावलम्बी है, स्वतंत्र है; उसमें इन्द्रिय–मनकी या देव-गुरु आदि अन्य किसीकी अपेक्षा ही नहीं है। भगवान आत्माकी ज्ञान और आनन्दादिसे भरपूर रम्यता स्वानुभवप्रत्यक्ष ज्ञानसे ही ज्ञात हो ऐसी है।

अरेरे! अनंतकाल बीत गया परिभ्रमणमें; जीव कहीं न कहीं अटकनेके स्थानोंमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पड़ा है। अटकनेके साधन अनंत और छूटनेका साधन एक—स्वकी रम्यताका आधार लेना वह। ऐसी वस्तु है। अहो! प्रभुकी रम्यता! आकाशकी रम्यता आँख खोले तो ज्ञात हो ना? उसीप्रकार आत्माकी रम्यता स्वानुभवप्रत्यक्ष करे—अंतरमें सम्यग्ज्ञानरूपी नेत्र खोले—तो वेदनमें आये।

'स्वानुभूतिकी रम्यता भी कोई और ही है, अनुपम है।'

जिसके द्वारा त्रैकालिक वस्तुकी रम्यता ज्ञात होती है वह स्वानुभवरूप निर्मल निर्विकल्प स्वसंवेदनकी रम्यता भी कोई और ही है, अनुपम है। जिस निर्मल दशामें अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद आये उसकी भी अचिंत्यता है। सम्यग्दर्शन होनेपर जो स्वानुभूति प्रगट हुई, सिद्ध जैसे आनन्दका अंशतः स्वाद आया उसकी जाति कोई और ही है, अनुपम है; उसे कोई उपमा नहीं दी जा सकती।

*

भाद्रपद कृष्णा १४, सं. २०३०

बेनबा! तुम्हें क्या करना है? तुम तो सब देखती रहो। मेरे हिसाबसे तो अभी कम हो रहा है। तुम्हारे लिये तो लोग जितना करें उतना कम है।

—पूज्य गुरुदेव।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-४५

ता. २२-७-७८

वचनामृत-१२४

शुद्धात्माका स्वरूप बतलानेमें गुरुके अनुभवपूर्वक निकले हुए वचन रामबाण जैसे हैं, उनसे मोह भाग जाता है और शुद्धात्माका प्रकाश होता है ॥ १२४ ॥

शुद्ध आत्माका स्वरूप! सूक्ष्म बात है भाई! उसका अभ्यास नहीं है ना! भीतर जो आत्मा है ना, वह वस्तुरूपसे शुद्ध आनंदकन्द प्रभु है।

प्रश्न :—है तो दिखायी क्यों नहीं दोता?

उत्तर :—भीतर आत्मामें दृष्टि कहाँ डालता है? उसकी दृष्टि तो अनादिसे इन दया, दान, व्रत भक्ति एवं पुण्य-पापादि बाह्य संसारभावमें लगी है; वहीं वह भटकता है। भीतर जो स्वभाव है उसे नहीं देखता, और उसके स्वभावमें नहीं है उसे देखकर अटक गया है।

प्रथम तो मात्र शुद्धात्माका स्वरूप...

प्रश्न :—शुद्धात्माका स्वरूप यानी क्या?

उत्तर :—यह आत्मा, पुण्य-पापके विकल्प जोकि अशुचि हैं, मलिन हैं, अशुद्ध हैं, उनसे भिन्न शुद्ध वस्तु है, त्रिकाल पवित्र वस्तु है। भगवान आत्मा स्वयं अंतरमें सच्चिदानन्दस्वभावी वस्तु है भाई! तुझे खबर नहीं है कि वह अतीन्द्रिय आनन्दका भण्डार है; ज्ञान, दर्शन आदि अनंत अतीन्द्रिय गुणों—शक्तियों—स्वभावों का वह विशाल भण्डार है। स्वयं गुणोंका भण्डार है, लेकिन खबर किसे है? कभी उसके सामने भी नहीं देखा!

अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत अतीन्द्रिय आनन्द, अनंत निर्मलता, स्वच्छता, प्रभुता, ईश्वरता—ऐसी अनंतानंत शक्तियोंका—शक्ति कहो, गुण कहो या स्वभाव कहो—वह (भगवान आत्मा) संग्रहालय है। उसकी अनंत शक्तियाँ असीम हैं, भाई! वह स्वयंसिद्ध वस्तु आनन्दादि अनंत शक्तियोंका सागर है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उस शुद्ध आत्माके स्वरूपको बतलानेके लिये अनुभवपूर्वक निकले हुए गुरुके, ज्ञानी धर्मात्माके वचन रामबाण जैसे हैं। जिस प्रकार रामका बाण छोड़ा हुआ वापिस नहीं आता, उसीप्रकार अनुभवी धर्मात्माके कहे हुए वचन कभी फिरते नहीं हैं।

अहा! ऐसी बात है! यह धरम! दुनिया बेचारी कहाँ मानकर बैठी है! एक तो सांसारिक झंझटोंमें अवकाश नहीं मिलता—व्यापार-धंधा, स्त्री-बच्चे और परिवारको सँभालना, खेतीवाडीकी देखभाल करना, बच्चे हों तो उनकी सगाई–सम्बन्ध अच्छी जगह करना, अहाहा! मात्र पाप और अधर्म! और उनसे उसकी दुर्गति होगी।

प्रश्न :—तो हमें क्या करना वह बतलाइये?

उत्तर :—वही तो यहाँ कहते हैं। जो कर रहा है वह करना छोड़ दे। दया, दान, व्रतके परिणाम धर्म हैं, करने योग्य हैं—यह मिथ्या मान्यता छोड़ दे, क्योंकि वस्तुके मूलस्वरूपमें वे पुण्य-पापके भाव हैं ही नहीं। अनादिसे विकारी दशा नई-नई उत्पन्न की है; इसलिये वे उत्पन्न किये भाव दशामें हैं, वस्तुमें नहीं है।

भगवान आत्मा स्फटिक जैसा निर्मल शुद्ध है उसमें दृष्टि कर। जो भी परमात्मदशा होती है वह भीतर जो शक्ति है, स्वभाव है, उससे होती है। अहा! 'मैं परमात्मस्वरूप हूँ' ऐसे गुरु-धर्मात्माके स्वानुभव सहित निकले हुए वचन रामबाण जैसे हैं, उनसे मोहका नाश होता है, अंतरमें भगवान आत्माका प्रकाश होता है।

प्रश्न :—यह मनुष्य है, यह पशु है, इसप्रकार बाहरका सब तो दिखायी देता है, परन्तु आत्मा परमात्मस्वरूप है यह कहाँसे निकाला?

उत्तर :—भाई तुझे खबर नहीं है। यह आत्मा स्वरूपसे भगवान है, आनन्दका नाथ है और शुद्ध चैतन्यघन है। वस्तु है ना? तत्त्व है ना? वह उपस्थिति–अस्तित्व दर्शाती एक वस्तु है या नहीं? यदि है तो उसे नित्यपना है या नहीं? नित्यपना है तो नित्यपनेका स्वभाव क्या है? अरे! यह विचारनेका उसे अवकाश ही कहाँ मिलता है? उस नित्यपनेमें अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत आनंदादि गुण भरे पड़े हैं। उनका अपनी वर्तमानदशामें उसे भान कहाँ है? वह तो वर्तमान दशामें पुण्य-पापके भावोंको अपना मानकर चौरासीके अवतारमें भटक मरता है। पाप करे तो नरक और पशुगतिमें, तथा पुण्य करे तो देव और मनुष्यगतिमें जाता है।

अनेक वणिक–व्यापारी तो मरकर पशु होंगे। क्यों?—क्योंकि उन्हें आत्माकी प्रतीति तो है नहीं, और सारी जिन्दगी लोभ तथा माया आदि कषायभावोंमें गँवा दी हो, वहाँ उन्हें और कौनसी गति मिल सकती है? अनेक वणिक–व्यापारियोंको माँस और शराब खाने-पीनेके भाव नहीं होते, इसलिये वे नरकमें नहीं जायँगे। सत्समागमसे प्रतिदिन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चार-पाँच घन्टे अध्यात्म तत्त्वका पठन-मनन होना चाहिये। तब तो पुण्य होगा और मनुष्य भव मिलेगा, स्वर्गमें भी जाते हैं, परन्तु वह तो है नहीं। पच्चीस, पचास लाख या करोड़ रुपये इकट्ठे कर लिये उससे तुझमें क्या हुआ? वह तो जड़–धूल है। 'मैंने इकट्ठे किये' वह सब अभिमान और मिथ्यात्वयुक्त भ्रम है।

यहाँ तो कहते हैं कि—रागसे और दया–दानके शुभविकल्पोंसे रहित, अतीन्द्रिय आनन्दका नाथ प्रभु शुद्धात्मा भीतर विराजमान है; उसके स्वरूपको बतलानेवाले गुरुके अनुभवपूर्वक निकले हुए वचन रामबाण जैसे हैं; उनसे मोह चला जाता है। गुरुवचन उसे शुद्ध आनन्दनाथकी पहिचान करायें और यदि स्वयं वहाँ दृष्टि डाले तो मोहका नाश हो, मिथ्यात्व–भ्रमणका नाश हो जाये।

जीव अनादिसे भटक रहा है वहाँ अज्ञान और पुण्य-पापके भाव करता है, परन्तु परका कुछ भी नहीं कर सकता। एक पत्ता भी हिला नहीं सकता; एक तिनकेके दो टुकड़े भी आत्मा नहीं कर सकता; क्योंकि वह जड़ परवस्तु स्वतंत्र है। शुभ एवं अशुभ परिणामोंका कर्ता होकर उस मिथ्यात्वभावके सेवन द्वारा चतुर्गतिमय संसारमें भटकता है। बाह्यमें लोग मान–सन्मान करें उससे क्या हुआ? वस्तुस्वरूपकी अथवा धर्मकी तो कोई खबर नहीं है!

मद्रासमें मांगलिक प्रवचनके बाद वहाँके गवर्नरने 'राजभवनमें पधारिये, हमें मद्रास राज्यकी प्रजाकी ओरसे आपका स्वागत करना है'—ऐसी विनती की। वहाँ गये थे। राजभवनके विशाल उद्यानमें तेरहसौ हिरन और कई सौ खरगोश मुक्त होकर विचरते हैं। शासनका प्रतिबन्ध होनेसे कोई उनका शिकार नहीं कर सकता। वहाँ गर्वनरसे भी यही बात की थी कि—जीवदयाके भाव—अंतरमें रागकी मन्दता हो तो—शुभराग हैं, पुण्यभाव है। शुभराग धर्म नहीं है। मैं परको बचा सकता हूँ या जीवित रख सकता हूँ ऐसी मान्यता साथ होनेसे वह शुभराग पापानुबंधी पुण्य—मिथ्याभ्रांतियुक्त पुण्य है। शुभ और अशुभ रागरहित वीतरागभाव वह सच्चा धर्म है। जिन्होंने वीतरागकी यह बात नहीं सुनी हो उन्हें कठिन लगती है। धर्मी जीव तो ऐसा मानता है कि—मैं परका कर्त्ता तो नहीं ही हूँ; किन्तु पुण्य-पापके भावोंका भी परमार्थसे कर्त्ता नहीं हूँ; क्योंकि मेरा मूल स्वरूप तो शुद्ध ज्ञानघन है, ज्ञाता–द्रष्टा है, प्रज्ञाब्रह्म एवं आनन्दब्रह्म है।

प्रभु प्रज्ञाब्रह्म अंतरमें शुद्धस्वरूपसे विराजमान है—ऐसा गुरु बतलाते हैं। यदि जीव शुद्ध स्वरूपमें दृष्टि करे तो मिथ्यात्वरूप भ्रान्तिका नाश हो जाता है। भ्रान्ति नाश होनेका दूसरा एक भी उपाय नहीं है। ब्रह्मचर्य पालन करूँ तथा व्रतादि करता रहूँ तो भ्रान्ति टल जायगी—ऐसा नहीं है। मात्र रामबाण जैसे गुरुवचनों द्वारा बतलाये

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गये निज शुद्धस्वरूपमें दृष्टि करे तो उससे मोहका नाश और निज शुद्धात्मतत्त्वका प्रकाश होता है।

आत्मा शुद्ध चैतन्यप्रकाशकी मूर्ति है। सूर्यका प्रकाश जड़ है। आत्मा चैतन्यतेजसे परिपूर्ण प्रकाशित है। अहा! उसे देखना है आत्मामें। आत्माके भीतर दर्शन करनेसे, उसके समीप जानेसे, भ्रान्तिका नाश होकर पर्यायमें शुद्धात्मप्रकाश प्रगट होता है। रागका अंधकार था उसके स्थानपर शुद्धात्मतत्त्वकी दृष्टि हुई इसलिये शुद्धात्मतत्त्व जैसा है वैसा प्रकाश पर्यायमें उदित हुआ। ऐसा होनेपर उसकी दशामें आनन्द एवं शान्तिका संचार होता है।

प्रश्न :—लेकिन उसका कोई और भी साधन होगा या नहीं?

उत्तर :—शुद्धात्मतत्त्वकी दृष्टि करना वह एक ही साधन है; दूसरे सब साधन थोथे हैं।

*

वचनामृत-१२५

आत्मा न्यारे देशमें निवास करनेवाला है; पुद्गलका या वाणीका देश उसका नहीं है। चैतन्य चैतन्यमें ही निवास करनेवाला है। गुरु उसे ज्ञानलक्षण द्वारा बतलाते हैं। उस लक्षण द्वारा अंतरमें जाकर आत्माको ढूँढ़ ले॥ १२५॥

'आत्मा न्यारे देशमें निवास करनेवाला है; पुद्गलका या वाणीका देश उसका नहीं है।'

क्या कहते हैं? कि—आत्मा तो अतीन्द्रिय ज्ञान एवं आनन्दमें निवास करनेवाला है, शरीर या वाणीमें रहनेवाला नहीं है। शरीर और वाणी तो पुद्गल, मिट्टी, धूल है, उसमें आत्मा नहीं है। जिसप्रकार शरीर आत्माका क्षेत्र नहीं है उसीप्रकार वाणी भी आत्माका क्षेत्र नहीं है, वह भी जड़ तथा धूल है। भाषावर्गणा पुद्गलकी दशा है। उसमेंसे ध्वनि उठती है। कानोंसे वाणी सुनायी देती है ना? इसमें (टेप–रिकॉर्डमें) उतरती है ना? वह जड़ है या आत्मा?

बात बड़ी सूक्ष्म है भाई! भगवान आत्माका देश–क्षेत्र–धाम शुद्ध चैतन्यमय है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसमें ज्ञानादि अनन्त गुणरत्न भरे हैं। भाई! अंतरके उन गुणरत्नोंकी तुझे खबर नहीं है, उनकी तुझे कीमत नहीं है, और इस बाहरी धूलकी—शरीर, मकान, बँगला, मोटर, हीरा-माणिक आदि जड़ पुद्गलकी—तुझे कीमत है; परंन्तु वे सब चौरासीके चक्करमें भटकनेके रास्ते हैं।

पुद्गलका या वाणीका देश आत्माका नहीं है। क्या कहा? कि—शरीर और वाणी आत्माके नहीं हैं और आत्माके कारण नहीं हैं। यह जो वाणी निकलती है वह आत्माके कारण नहीं है, परन्तु भाषा-वर्गणाके जड़ परमाणुओंके कारण भाषा निकलती है। अहा! कुछ भी खबर नहीं है! ऐसा विचार भी कभी नहीं किया है।

श्री अमृतचन्द्राचार्यदेवने समयसारकी 'आत्मख्याति' टीका रची है। अहा! अद्भुत है वह टीका! उसमें अमृतके सागर उछाले हैं। वर्तमानमें भरतक्षेत्रमें उसके जैसी अध्यात्मरसमय ऊँची कोई टीका उपलब्ध नहीं है। ऐसी अद्भुत टीका पूर्ण होनेपर अन्तिम कलशमें टीकाकार कहते हैं कि—यह टीका मैंने नहीं रची है, वाणीके शब्दोंकी रचना मेरी नहीं है; शब्द-रचना तो जड़—पुद्गलसे हुई है।

प्रश्न :—महान पुरुष निर्मानता बतलानेके लिये ऐसा ही कहेंगे ना?

उत्तर :—निर्मानता बतलानेके लिये नहीं, परन्तु वस्तुका स्वभाव जैसा है वैसा बतलानेके लिये वह कहा है। वास्तवमें आत्मा वाणी नहीं कर सकता। आत्मा बहुत प्रेरणा—प्रयत्न करे तथापि लकवा हो तब शरीरको नहीं चला सकता। उस समय जड़की पर्याय जड़के कारण नहीं होती। शरीर, वाणी आदि परपदार्थके देशमें आत्मा है ही नहीं।

'चैतन्य चैतन्यमें ही निवास करनेवाला है।'

चैतन्य अर्थात् भगवान आत्माका ज्ञाता—द्रष्टा स्वभाव। प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप जो यह निज चैतन्य, उसीमें चैतन्यप्रभु निवास करता है।

एक भाई कहते थे—अमुक वकील इतने होशियार हैं कि प्रभावशाली दलीलें करके न्यायाधीशको भी दिनमें तारे दिखा देते हैं। परन्तु यह बात असत्य है। वाणी कौन बोले? तुझे पता नहीं है भाई! वाणी तो जड़ भाषाके पुद्गलोंकी पर्याय है। होंठोंका हिलना वह भी जड़की दशा जड़के कारण है। भाषाके पुद्गलोंको कहाँ भान है कि उनका वाच्य क्या है? भानस्वरूप चैतन्यभगवान तो चैतन्यस्वभावमें है; वह कहीं रागमें, भाषामें, शरीरमें तथा अन्य पुद्गलोंमें नहीं आता। अहा! यह सब बैठना कठिन है भाई! स्मशानमें हड्डियोंका फॉस्फरस जलनेसे चमक दिखती है, उसीप्रकार यह सुन्दर शरीर, मधुर वाणी, मन, धन और मकान—सब हड्डियोंके फॉस्फरसकी चमक समान हैं, क्षणिक हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उनमें अविनाशी आत्मा नहीं है, आत्माने उन्हें किया नहीं है। प्रभु वे आत्माके नहीं हैं और आत्मा उनमें आया नहीं है। आत्माने उनकी रचना नहीं की है, वह जड़–धूलकी रचना है। चैतन्य तो चैतन्यमें रहनेवाला है।

'गुरु उसे ज्ञानलक्षण द्वारा बतलाते हैं।'

जो ज्ञाता है, जिसमें ज्ञात होता है—ऐसा जो ज्ञान, उस ज्ञानस्वरूप आत्मा है; जो शरीर, राग, पुण्य और पाप हों वह आत्मा नहीं है। जिसकी सत्तामें–अस्तित्वमें यह शरीर, वाणी, मकानादि दिखते हैं, ज्ञात होते हैं, वह ज्ञानसत्ता ही आत्मा है। अरे! कहाँ किसी दिन विचार किया है कि यह ज्ञानस्वरूप सत्ता अंतरमें क्या वस्तु है? चैतन्यसत्ताके अस्तित्वमें ही तो यह सब ज्ञात होता है। चैतन्य चैतन्यप्रकाश द्वारा परको प्रकाशित करता है, किन्तु परका ग्रहण नहीं करता, परके साथ तन्मय होकर नहीं प्रकाशता। उस काल भी चैतन्य चैतन्यरूपसे ही रहता है।

प्रभु! तू कौन है? तेरा लक्षण क्या है? लक्षण अर्थात् स्वरूप। जो जानता है वह ज्ञान और ज्ञान वह आत्मा। राग और पुण्य–पापके भाव कुछ जानते नहीं हैं; शरीर अंधा है; उसे क्या खबर कि 'मैं शरीर हूँ'; वह तो मिट्टी है। जिसकी सत्तामें यह सब ज्ञात होता है वह जाननेवाला ज्ञान तेरा स्वरूप है। बाकी यह जो शरीरादि ज्ञात होते हैं, तथा जो रागादि विभाव हैं वह तेरा स्वरूप नहीं है। अहा! ऐसा स्वरूप है। परन्तु उसका निर्णय करनेके लिये जीवको अवकाश कहाँ है?

'उस लक्षण द्वारा अंतरमें जाकर आत्माको ढूँढ़ ले।'

ज्ञानलक्षण द्वारा अंतरमें जाकर आत्माको पहिचान, आत्माका ज्ञान कर, तुझे आनन्द होगा; तेरा दुःख टलेगा और अतीन्द्रिय सुखकी प्राप्ति होगी। जो जानता है, जिसमें ज्ञात होता है ऐसा जो ज्ञान वह आत्मा;—इस प्रकार ज्ञानलक्षण द्वारा पहिचान कराते हैं। उस लक्षण द्वारा अंतरमें जाकर आत्माको ढूँढ़ ले।

प्रश्न :—ऐसी बातें! यह किस प्रकारका धर्म है?

उत्तर :—भाई! तुझे धर्मकी खबर नहीं है। धर्म तो कोई अलौकिक, अद्भुत और अपूर्व है। अनंतकाल बीत गया परन्तु 'धर्म क्या है?' वह नहीं जाना और उसका विचार भी यथार्थरूपसे कभी नहीं किया। श्रीमद् कहते हैं कि :—

शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम;
बीजुं कहीअे केटलुं, कर विचार तो पाम।

आत्मा स्वयं शुद्ध चैतन्यज्योति और ज्ञानानन्दका धाम है; उसका कोई कर्त्ता नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। जो 'है' उसे कौन करेगा? और 'न हो' उसे कौन करेगा? जो स्वयं चैतन्यस्वरूप सत् है उसे ज्ञानलक्षण द्वारा पहिचान ले। दया, दान, और व्रतादिके परिणामोंसे वह नहीं पहिचाना जायगा; क्योंकि वे तो विकार हैं, उनमें आत्मा नहीं है।

अरे! लोगोंको यह बात समझनेमें कठिनाई लगती है। व्यापार और स्त्री-बच्चोंसे फुरसत नहीं मिलती। पाँच–दस लाखकी आमदानी हो वहाँ 'मैं चौड़ा और गली सँकरी' इसप्रकार अभिमानमें भटक मरता है; मरकर पशु आदि नीच योनियोंमें चला जायगा, जहाँ कोई उसका सगा नहीं है, परिचित क्षेत्र नहीं है, उसका जाना हुआ कोई भाव नहीं है। ऐसे अनजान क्षेत्रमें पैदा होगा; क्योंकि ज्ञाता ऐसे आत्माको नहीं जाना है ना! इसलिये कहते हैं कि ज्ञानलक्षण द्वारा अंतर्लक्ष्य आत्माको ढूँढ़ ले। चैतन्यस्वरूप निज आत्माकी खोज कर ले, तब तुझे धर्म होगा और जन्म-मरणका अंत आ जायगा।

बम्बईमें तो उपाधियोंका पार नहीं है। श्रीमद्ने उसे 'मोहमयी नगरी' कहा है ना! बाहरी चमक-दमकमें जीव उलझ गये हैं, अंतरमें चैतन्यरत्नके प्रकाशकी चमक क्या है, वह देखनेका कभी अवकाश ही नहीं मिला। आया कुछ समझमें? उसे खोज ले प्रभु! तू महान् चैतन्य प्रभु है। ज्ञानलक्षण द्वारा तेरा लक्ष उसे पहिचान सकेगा—ऐसा तू अंतरमें महान दिव्य पदार्थ है। अहा! शब्द थोड़े और भाव बहुत ऊँचे हैं।

*

ता. १६-६-८०

वचनामृतके एक-एक शब्दमें सारा (–पूरा) सार भरा है। विचारको दीर्घतासे बढ़ाकर अंतरमें जा। अहाहा! बेनकी (चम्पाबेनकी) कैसी स्थिति है! कहती हैं 'आत्मा' बोलना सीखे तो यहाँसे (–गुरुदेवके पाससे)! गजब है उनकी विनय और नम्रता!

–पूज्य गुरुदेव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com